मार्कण्डेय पुराण

(द्वितीय खंड)

५१—भद्राश्वादिवर्ष वर्णन

एवंतुभारतंवर्षयथावत्कथितंमुने ।
कृतंत्रेताद्वापरंचतथातिष्यंचतुष्टयम् ॥१
अत्रैवैतद्युगानान्तुचातुर्वर्ण्यंचवैद्विज ।
चत्वारित्रीणिद्वे चैवकथैकैकंशरच्छतम् ॥२
जीवन्त्यत्रनराब्रह्मन्कृतत्रेतादिषुक्रमात् ।
देवकूटस्यपूर्वस्यशैलेन्द्रस्यमहात्मनः ॥३
पूर्वेणयत्स्थितंवर्षभद्राश्वं तन्निबोधमे ।
श्वेतपर्णश्चनीलश्चशैवालश्चाचलोत्तमः ॥४
कौरञ्चःपर्णशालाग्रःपंचैतेहिकुलाचलाः ।
तेषांप्रसूतिरन्येयेबहवःक्षुद्रपर्वताः ॥५
तैर्विशिष्टाजनपदानानारूपाःसहस्रशः ।
ततःकुमुदसंकाशाःशुद्धसानुसुमङ्गलाः ॥६
इत्येवमाद्योऽन्येऽपिशतशोऽथसहस्रशः ।
सीता [illegible] वतीभद्राचक्रावर्त्तादिकास्तथा ॥७
नद्योऽथव [illegible] श्चोविस्तीर्णाःशीततोयौघवाहिकाः ।
अत्रव [illegible] शङ्खशुद्धहेमसमप्रभाः ॥८

मार्कण्डेयजी ने कहा—भारतवर्ष का यह वास्तविक वर्णन किया गया, इसी भारतवर्ष में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग यह चारों युग विद्यमान हैं ॥१॥ इसी स्थान में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र के भेद से चार वर्ण हैं, यही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के भेद से मनुष्यगण क्रमश चार सौ, तीन सौ, दो सौ और एक सौ की आयु पाते हैं, पूर्व दिशा देवकूट नामक विशाल पर्वत के ॥२-३॥ पूर्व की ओर जो वर्ष अवस्थित है, उसे भद्राश्ववर्ष कहते हैं, अब उसके विषय में कहता हूँ, श्वेतपर्ण, नील शैवाल ॥४ कौरञ्ज, पर्णशालाग्र यह पाँच कुलाचल इस वर्ष में स्थित हैं तथा इसी वर्ष में इन सब पर्वतों से उत्पन्न हुए अनेक छोटे पर्वत भी स्थित हैं ॥५॥ कुमुद, संकाश, शुद्धमानु, सुमङ्गल आदि अन्यान्य सहस्रों जनपद विभिन्न प्रकार से इस वर्ष में ही स्थित हैं, सीता, शङ्खावती, भद्रा और चक्रावर्त आदि ॥६-७॥ बहुतसी अत्यन्त शीतल जल वाली नदियाँ इस में प्रवहमान हैं, इस वर्ष में उत्पन्न होने वाले सभी मनुष्य शंख तथा स्वच्छ स्वर्ण के समान प्रभा सम्पन्न हैं ॥८॥

दिव्यसम्भिन पुण्यादशवर्षशतायुष ।
अधमोत्तमनतेष्वस्तिसर्वेतेसमदर्शना ॥९
तितिक्षादिभिरष्टाभिःप्रकृत्यात्मगुणैर्युता ।
तत्राप्यश्वशिरादेवश्चतुर्बाहुर्जनार्दन ॥१०
शिरोहृदयमेढ्राङ्घ्रिहस्तश्चाक्षित्रयान्वित ।
तस्याप्यर्थंवविषयाविश्वे याजगत प्रभो ॥११
केतुमालमतोवर्षंनिबोधममपश्चिमम् ।
विशाल कम्बल कृष्णोजयन्तोहरिपर्वत ॥१२
विशोकोवर्द्धमानश्चसप्तैतेकुलपर्वता ।
अन्येसहस्रश शैलायेषुलोकगणःस्थित ॥१३
मौलयस्तेमहाकायाःशाकपोतकरम्भरा ।
अङ्गुलप्रमुखाश्चापिवसन्तिसन्तोजना ॥१४

वे सत्य सहित पवित्रता पूर्वक निवास करते हुए सहस्र वर्ष पर्यंत जीवित रहते हैं, उनमें कोई श्रेष्ठ अथवा अधम नहीं है ॥९॥ वहाँ के सब

मनुष्य सभी प्रकार के गुणवान् होते हैं, इस वर्ष में चतुर्भुजी भगवान् हयग्रीव स्वरूप में।१०। शिर,हृदय,मेढ़, चरण हाथ और अक्षित्रयान्वित होकर अवस्थित हैं, उन जगदीश्वर का सम्पूर्ण विषय इसी प्रकार समझो ॥११॥ अब सुमेरु के पश्चिम में स्थित केतुमालवर्ष का वर्णन सुनो—इस वर्ष में जो सात कुलाचल हैं वे विशाल, कम्बल, कृष्ण, जयन्त, हरि पर्वत ॥१२॥ विशोक और वर्द्धमान नामक हैं, इनके अतिरिक्त और भी हजारों विशाल पर्वत हैं, जिनमें अनेक प्राणी निवास करते हैं ॥१३॥ उनमें शाक, पोत, करम्भक और अन्चुलाख्यादि अनेक प्रकार के लोगों का निवास है ॥१४॥

येपिबन्तिमहानद्योवंक्षुश्यामांस्वकम्बलाम् ।
अमोघांकामिनींश्यामांतथैवान्याःसहस्रशः ॥१५
अत्राप्यायुःसमंपूर्वैरत्रापिभगवान्हरिः ।
वराहरूपीपादोस्यहृत्पृष्ठे पार्श्व तस्तथा ॥१६
(मुखेनासादतश्चैवकण्ठतःपुच्छतस्तथा) ।
त्रिनक्षत्रयुतेदेशेनक्षत्राणियुतानिच ।
इत्येतत्केतुमालंतेकथितंमुनिसत्तम ॥१७
अतःपरंकुरून्वक्ष्येनिबोधेहसमोत्तरान् ।
तत्रवृक्षामधुफलानित्यपुष्पफलोपगाः ॥१८
वस्त्राणिचप्रसूयन्तेफलेष्वाभरणानिच ।
सर्वकामप्रदास्तेहिसर्वकालफलप्रदाः ॥१९
भूमिर्मणिमयीवायुःसुगंधःसर्व्वदासुखः ।
जायन्तेमानवास्तत्रच्वलोकपरिच्युताः ॥२०
मिथुनानिप्रसूयन्तेसमकालस्थितानिवै ।
अन्योन्यमनुरक्तानिचक्रवाकोपमानिच ॥२१

जिन महानदियों के जल का यह लोग पान करते हैं, वे वक्षु, श्यामा, कम्बला, अमोघा, कामिनी सुमेधा नाम की महानदी हैं, इनके अतिरिक्त अन्य सहस्रों नदियाँ वहाँ प्रवाहित हैं ॥१५॥ मनुष्यों की आयु वहाँ भी पूर्वोक्त ही है, उस देश में भगवान् श्रीहरि का निवास वाराह रूप से है, उनके चरण,

हृदय, मुख, पृष्ठ देश तथा पार्श्व में मुख, नासिका, कण्ठ, दाँत और पूँछ सहित तीन नक्षत्रों से पूर्ण हो कर सम्पूर्ण देश अवस्थित है, वहाँ भी नक्षत्र शुभाशुभ को सूचित करते रहते हैं ॥१६॥ हे मुने ! इस प्रकार केतुमाल वर्ष का वर्णन भी कर दिया गया ॥१७॥ अब उत्तर कुरुदेश का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो—इस देश में सब ऋतुओं के फल, पुष्प आदि से युक्त सर्व कामना एवं सर्व फल के देने वाले वृक्ष ॥१८॥ वस्त्र उत्पन्न करते है तथा उनके सब फलों से आभरण उत्पन्न होते है ॥१९॥ वहाँ की भूमि मणियुक्त, सुन्दर सुगंधित वायु से सम्पन्न तथा सुख के देने वाली है स्वर्गलोक से भ्रष्ट हुए व्यक्ति ही वहाँ मनुष्य रूप में जन्म लेते हैं ॥२०॥ उत्तम चक्रवाक के समान पारस्परिक प्रेम रहता है तथा समकाल में बालकों को उत्पन्न करते है ॥२१॥

चतुर्दशसहस्राणितेषासार्द्धानिवैस्थिति ।
चन्द्रकान्तश्चशैलेन्द्र सूर्यकान्तस्तथापर ॥२२
तस्मिन्कुलाचलेवर्षेतन्मध्येचमहानदी ।
भद्रसोमाप्रयात्युर्व्यापुण्यामलजलौघिनी ॥२३
सहस्रशस्तथैवान्यानद्योवर्षेऽपिचोत्तरे ।
तथान्या क्षीरवाहिन्योघृतवाहिन्यएवच ॥२४
दध्नोह्रदास्तथातत्रतथान्येचानुपर्वता ।
अमृतास्वादकल्पानिफलानिविविधानिच ॥२५
वनेषुतेषुरम्याणिशतशोऽथसहस्रश ।
तत्रापिभगवान्विष्णु प्राक्छिरामत्स्यरूपवान् ॥२६
विभक्तोनवधाविप्रनक्षत्राणात्रयत्रयम् ।
देशास्तत्रापिनवधाविभक्तामुनिसत्तम ॥२७
चन्द्रद्वीप समुद्र चभद्रद्वीपतस्यापर ।
तत्रापिपुण्याविख्यात समुद्रान्तर्महामुने ॥२८
इत्येतत्कथितब्रह्मन्कुरुवर्षमयोत्तरम् ।
शृणुकिंपुरुषादीनिवर्षाणिगदतोमम ॥२९

वह साढ़े चौदह हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं, इस वर्ष में चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त नामक दो कुलाचल स्थित हैं ।।२२।। उस पर्वत में भद्रसोमा नाम की स्वच्छ जल वाली महानदी प्रवाहित है ।।२३।। इसके अतिरिक्त अन्य सहस्रों छोटी-छोटी नदियाँ वहां हैं, अन्य नदियों में कोई दुग्ध वाहिनी और कोई घृत वाहिनी है ।।२४।। तथा कोई दही के ताल से युक्त है, सात कुलाचलों के अतिरिक्त अन्य क्षुद्र पर्वत बहुत से हैं, उत्तर कुरु में स्थित शत सहस्र वनों के मध्य स्थित सभी वृक्षों में विभिन्न प्रकार के सुस्वादु फल लगते हैं, इसी स्थान में पूर्व की ओर मस्तक करके मत्स्यरूप से श्रीनारायण भगवान् का वास है ।।२५-२६।। इस उत्तर कुरु में नक्षत्र नौ भागों में बँट कर तीन-तीन के क्रम से रहते हैं, इसी प्रकार सब देश नौ भागों में विभाजित हैं ।।२७।। इस वर्ष में चन्द्रीप और भद्रद्वीप नामक दो पवित्र द्वीप हैं, जो समुद्र के मध्य में स्थित हैं ।।२८।। हे ब्रह्मन् यह उत्तर कुरु वर्ष का वर्णन हुआ, अब किम्पुरुषादि के विषय में कहता हूँ ।।२९।।

५२--किम्पुरुषादि वर्णन

यत्तु किम्पुरुषंवर्षंतत्प्रवक्ष्याम्यहंद्विज ।
तत्रायुर्दशसाहस्रं पुरुषाणांवपुष्मताम् ।।१

अनामयाह्यशोकाश्चनारायत्रतथास्त्रियः ।
प्लक्षःखण्डश्चयत्रोक्तःसुमहान्नन्दनोपमः ।।२

तस्यतेवै फलरसंपिवन्तःपुरुषाःसदा ।
स्थिरयौवननिष्पन्नांस्त्रियश्चोत्पलगन्धिकाः ।।३

अतःपरंकिंपुरुषाद्धरिहर्षंप्रचक्षते ।
महारजतसंकाशाजायंतेतत्रमानवाः ।।४

देवलोकच्युताःसर्वे देवरूपाश्चसर्वशः ।
हरिवर्षेनराःसर्वे पिवन्तीक्षुरसंशुभम् ।।५

नजरावाधतेतत्रनजीर्यन्तेदकर्हिचित् ।
तावन्तमेवतेत्रालजीवन्त्ययनिरामया ॥६

मेरुवर्षंमयाप्रोक्त मध्यमर्यादिलावृतम् ।
नततत्रसूर्यंस्तपतिनतेजीयन्तिमानवाः ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! अब किम्पुरुष नामक वर्ष का वृत्तान्त कहता हूँ, सुनो—वहाँ देहधारी मनुष्यों की आयु दस हजार वर्ष की है ॥१॥ वहाँ के सभी स्त्री पुरुष नीरोग तथा शोक रहित होते हैं वहाँ नन्दन वन के समान एक महान् प्लक्ष खण्ड स्थित है ॥२॥ उन वृक्षों के रस का पान करके ही मनुष्य स्थिर यौवन वाले एवं नारियाँ पद्मगन्धा होती हैं ॥३॥ इस वर्ष के पृष्ठ भाग में हरि वर्ष नामक एक अन्य वर्ष है ॥४॥ देव लोक से पतित हुए प्राणी हरि वर्ष में मनुष्य रूप में उत्पन्न होते हैं तथा वहाँ श्रेष्ठ ईख का रस पान करते हैं ॥५॥ वृद्धावस्था उनको पीडित नहीं करती, इसलिये जीर्णता को कोई भी प्राप्त नहीं होता, वे जब तक जीवित रहते हैं तब तक यौवनावस्था स्थित रहती है तथा वे सदा नीरोग रहते हैं ॥६॥ मेरुवर्ष नामक मध्यम वर्ष को इलावृत्त भी कहते हैं, वहाँ का सूर्य ताप रहित है और मनुष्य वहाँ भी वृद्धावस्था से जीर्ण नहीं होते ॥७॥

लभन्तेनात्रमलाभचरश्मयश्चन्द्रसूर्ययो ।
नक्षत्राणांग्रहाणांचमेरोस्तत्रपराद्युति ॥८
पद्मप्रभा पद्मगन्धाजम्बूफलरसाशिन ।
पद्मपत्रायताक्षास्तुजायन्तेतत्रमानवा ॥९
वर्षाणांतुसहस्राणितत्राप्यायुस्त्रयोदश ।
शरावाकारसंस्तारोमेरुमध्येइलावृते ॥१०
मेरुस्तत्रमहाशैलस्तदाख्यातमिलावृतम् ।
रम्यकवर्षमस्माद्वक्ष्यामित्येतिन्नबोधतम् ॥११
वृक्षस्तत्रापिचोत्तुङ्गोन्यग्रोधोहरितच्छदः ।
तस्यापितेफलरसंपिबन्तोवर्त्तयन्तिवै ॥१२

वर्षायुतायुषस्तत्रनरास्तत्फलभोगिनः ।
रतिप्रधानविमलाजरादौर्गन्ध्यवर्जिताः ।।१३
तस्मादथोत्तरंवर्षनाम्नाख्यातंहिरण्मयम् ।
हिरण्वतीनदीयत्रप्रभूतकमलोज्ज्वला ।।१४
महाबलाःसतेजस्काजायन्तेतत्रमानवाः ।
महाकायामहासत्वाधनिनःप्रियदर्शनाः ।।१५

चन्द्रमा, सूर्य,ग्रह और सब नक्षत्रों की किरणें वहाँ उज्ज्वलता को प्राप्त नहीं हो पातीं, क्यों कि वहां सुमेरु का तीव्र प्रकाश रहता है ।।८।। जो मनुष्य उस मेरु वर्ष में उत्पन्न होते हैं, वह सभी कमल के समान प्रभात युक्त, पद्मगन्ध और पद्म पत्र के समान विस्तीर्ण नेत्र वाले तथा जामुन के फलों का रस पान करने वाले होते है ।।९।। वे मनुष्य तेरह सहस्र वर्ष की आयु वाले होते हैं, उस इलावृत्त के बीच में जो मेरु पर्वत स्थित है उसका आकार सकोरे के समान है ।।१०।। उस वर्ष में वह महापर्वत मेरु ही प्रसिद्ध है, अब तुम्हें रम्यक वर्ष के विषय में सुनाता हूं, उसे श्रवण करो ।।११।। उस रम्यक वर्ष में एक अत्यन्त ऊँचा न्यग्रोध नामक वृक्ष है, उसके समस्त पत्र हरे रंग के है, उस वृक्ष के रस पान द्वारा ही वहाँ के मनुष्य जीवन धारण करते है ।।१२।। उसके फलों के रस का पान करने वालों की आयु दश सहस्र वर्ष होती है, वह रति क्रिया में चतुर, सुन्दर तथा दुर्गंधि और जरावस्था से रहित होते हैं ।।१३।। उसके उत्तर में हिरण्यमय वर्ष स्थित है इसमें अनेक कमल पुष्पों से शुसोभित हिरण्य-वती नदी हिरण्ययुक्त जल से परिपूर्ण प्रवाहित है ।।१४।। वहाँ उत्पन्न होने वाले मनुष्य अत्यन्त बली, तेजस्वी, सत्व सम्पन्न, प्रिय दर्शन, विशाल काय तथा धनवान् होते है ।।१५।।

५४–स्वारोचिष मन्वन्तरारम्भ (२)

कथितंभवतासम्यक्पृष्टोऽसिमहामुने ।
भूसमुद्रादिसंस्थानंप्रमाणानितथाग्रहाः ।।१

तेषाञ्चैवप्रमाणयन्नक्षत्राणाञ्चसंस्थितिं ।
भूरादयस्तथालोका पातालान्यखिलान्यपि ॥२
स्वायम्भुव तथाख्यातमुनेमन्वन्तरमम ।
तदन्तराण्यहश्रोतुमिच्छेमन्वन्तराणिवै ॥
मन्वन्तराधिपान्देवानृषींस्तत्तनयान्नृपान् ॥३
मन्वन्तरमयाख्याततवस्वायम्भुवचयत् ।
स्वारोचिषाख्यमन्यत्तु श्रृणुतस्मादनन्तरम् ॥४
कश्चिद्विजातिप्रवरःपुरेऽभूदरुणास्पदे ।
वरुणायास्तटेविप्रोरूपेणात्यश्विनावपि ॥५
मृदुस्वभाव सद्वृत्तोवेदवेदांगपारग ।
सदातिथिप्रियोरात्रावागतानासमाश्रय ॥६
तस्यबुद्धिरियत्वासीदहपश्येवसुन्धराम् ।
अतिरम्यवनोद्यानानानानगरशोभिताम् ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हेमहामुने ! आपने मेरे समस्त प्रश्न का भले प्रकार समाधान किया पृथिवी और समुद्रादि की स्थिति, विस्तार एव ग्रह का परिमाण ॥१॥ नक्षत्रादि की स्थिति और परिमाण, भूरादि सप्तलोक, सप्त पाताल ॥२॥ तथा स्वायंभुव नामक प्रख्यात मन्वन्तर आदि का भी वृत्तान्त कहा है, अब उक्त मन्वन्तर के पश्चात् अन्य सब मन्वन्तर, उनके अधिपति, उनके वंशीय राजा गण देवता एव ऋषियों की कथा सुनने की मुझे उत्कट इच्छा है ॥३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—जिस स्वायंभुव मनु का विषय तुम्हारे प्रति कहा है, अब उसके पश्चात् स्वारोचिष मन्वन्तर का वृत्तान्त सुनो ॥४॥ दोनों अश्विनिकुमारों से भी अधिक रूपवान् शान्त स्वभाव वाला, चरित्रवान्, वेद वेदाङ्ग का ज्ञाता एक ब्राह्मण वरुणा नदी के तट पर स्थित अरुणास्पद नामक नगर में रहता था, वह अतिथि के आगमन पर अत्यन्त प्रसन्न होता था तथा रात्रि के समय आने वाले व्यक्तियों के लिये वह आश्रय स्वरूप था ॥५-६॥ उसके मन में एक इच्छा बलवती थी कि मैं अत्यन्त सुरम्य वनों और उपवनों से सम्पन्न और अनेक नगरों से सुशोभित इस पृथिवी को सम्पूर्ण रूप से देखूँ ॥७॥

अथागंतोऽतिथिःकश्चित्कदाचित्तस्यवेश्मनि ।
नानौषधिप्रभावज्ञोमन्त्रविद्याविशारदः ॥८
अभ्यर्थितस्तुतेनासौश्रद्धापूतेनचेतसा ।
तस्याचख्यौसदेशांश्चरम्याणिनगराणिच ॥९
नदीवनानिशैलांश्चपुण्यान्यायतनानिच ।
सततोविस्मयाविष्टःप्राहतंद्विजसत्तमम् ॥१०
अनेकदेशदर्शित्वेनातिश्रमसमन्वितः ।
त्वं नातिवृद्धोवयसानातिवृत्तश्चयौवनात् ।
कथमल्पेनकालेनपृथिवीमटसिद्विज ॥११
मन्त्रौषधिप्रभावेणविप्राप्रतिहतागतिः ।
योजनानांसहस्रं हिदिनार्द्धेनव्रजाम्यहम् ॥१२
ततःसविप्रस्तंभूयःप्रत्युवाचेदमादरात् ।
श्रद्धधानोवचस्तस्यब्राह्मणस्यविपश्चितः ॥१३
ममप्रसादं भगन्कुरुमन्त्रप्रभावजम् ।
द्रष्टुमेतांममहीमतीवेच्छाप्रवर्तते ॥१४

एक दिन उसके घर में सब औषधियों के प्रभाव का ज्ञाता तथा मन्त्र विद्या में विद्वान् एक अतिथि का आगमन हुआ ॥८॥ ब्राह्मण द्वारा श्रद्धायुक्त मन से प्रश्न करने पर उसके अतिथि ने उसे अनेक देश, रमणीक नगर ॥९॥ वन, नदी, पर्वत और सभी पवित्र स्थानों का वर्णन सुनाया तब उससे वह अरुणास्पद नगर निवासी ब्राह्मण आश्चर्य से कहने लगा ॥१०॥ हे द्विज ! आपने अनेक देशों को देखा है, तो भी आप श्रमाक्रान्त प्रतीत नहीं होते, आप न तो वृद्ध है और न अधिक तरुण ही है, आपकी आयु भी अधिक प्रतीत नहीं होती, तो आपने इस अल्प अवस्था में ही सब पृथिवी में कैसे भ्रमण कर लिया ॥११॥ ब्राह्मण ने कहा—हे ब्रह्मन् मन्त्रों और औषधियों के प्रभाव से मुझे अप्रतिहत गति की प्राप्ति हुई है और इन कारण मैं आधे दिन में सहस्र योजन चल सकता हूँ ॥१२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब उस ब्राह्मण विद्वान् अतिथि के वचन में श्रद्धा युक्त मन हो कर उससे सादर निवेदन किया ॥१३॥ हे

भगवन् ! आप मुझे भी औषधि प्रदान करने की कृपा करिये, क्यों कि इस पृथिवी को देखने के लिये मैं अत्यन्त उत्कंठित हूँ ॥१४॥

प्रादात्सब्राह्मणश्चास्मैपादलेपमुदारधी ।
अभिसन्त्रयामासदिशतेनाख्याताचयत्ततः ॥१५
तेनानुलिप्तपादोऽथसद्विजोद्विमत्तम ।
हिमवन्तमगाद्द्रष्टुं नानाप्रस्रवणान्वितम् ॥१६
सहस्र योजनानांहिदिनार्धेनव्रजामियत् ।
आयास्यामीतिसचिन्त्यतदर्द्धे नापरेणहि ॥१७
सप्राप्तोहिमवत्पृष्ठ नातिश्रान्ततनुर्द्विज ।
विचचारततस्तत्रतुहिनाचलभूतले ॥१८
पादाक्रान्तेनतस्याथतुहिनेनविलीयता ।
प्रक्षालित पादलेप परमौषधिसभव ॥१९
ततोजडगतिःसोऽथइतश्चेतश्चपर्यटन् ।
ददर्शातिमनोज्ञानिसानूनिहिमभूभृत ॥२०
सिद्धगन्धर्वजुष्टानिकिन्नरैरभिरतानिच ।
क्रीडाविहाररम्याणिदेवादीनामितस्तत ॥२१

यह सुन कर उस उदार चेता अतिथि ने उस ब्राह्मण के पाँव में औषधि का लेप कर दिया और अभिमन्त्रण पूर्वक उसे दिशादि का ज्ञान दिया ॥१५॥ जब अतिथि ने ब्राह्मण के पाँव में लेप लगादिया तब वह सोचने लगा कि 'अब मैं दिन के पूर्वार्द्ध में एक हजार योजन गमन करूँगा तथा अपरार्द्ध में वहाँ से लौट आऊँगा, ऐसे विचार कर वह अनेक झरनों वाले हिमालय पर्वत को देखने की इच्छा से चला ॥१६-१७॥ वह सहज में ही हिमालय के पृष्ठ देश पर पहुँच कर उस हिमभूमि में भ्रमण करने लगा ॥१८॥ वहाँ घूमते-घूमते उसके पाँव में अत्यन्त शीतलता के लगने से औषधियुक्त लेप धुल गया ॥१९॥ और उस ब्राह्मण की जड गति हो गई, फिर वह इधर-उधर घूमता हुआ वहाँ के मनोहर सानुप्रान्त का भाग देखने लगा ॥२०॥ उसने देखा सिद्ध,

गन्धर्व, किन्नर वहाँ विहार कर रहे हैं तथा पर्वत के किनारे ही देवताओं के क्रीड़ा और विहार करने के लिये अत्यन्त मनोहर स्थान निर्मित हैं ॥२१॥

दिव्याप्सरोभगणशतैराकीर्णान्यवलोकयन् ।
नातृप्यतद्विजश्रेष्ठःप्रोद्भूतपुलकोमुने ॥२२
क्वचित्प्रस्रवणाद्भ्रष्टजलपातमनोरमम् ।
प्रनृत्यच्छिखिकेकाभिरन्यतश्चनिनादितम् ॥२३
दात्यूहकोयष्टिकाद्यैःक्वचिच्चातिमनोहरैः ।
पुंस्कोकिलकलापैश्चश्रुतिहारिभिरन्वितम् ॥२४
प्रफुल्लतरुगन्धेनवासितानिलवीजितम् ।
मुदायुक्तःसदहशेहिमवन्तंमहागिरिम् ॥२५
दृष्ट्वाचैतंद्विजसुतोहिमवन्तंमहाचलम् ।
श्वोद्रक्ष्यामीतिसंचिन्त्यमतिंचक्रे गृहंप्रति ॥२६
विभ्रष्टपादलेपोऽथचिरशोजडितक्रमः ।
चिन्तयामासकिमिदंमयाऽज्ञानादनुष्ठितम् ॥२७
यदिप्रलेपोनष्टोमेविलीनोहिमवारिणा ।
शैलोऽतिदुर्गमश्चायंदूरंचाहमिहागतः ॥२८

उसने उस स्थान को सैकड़ों अप्सराओं से भरा हुआ देखा. जिससे उसका शरीर पुलकित हो गया और वह अपने मन की किसी प्रकार भी तृप्ति नहीं कर पाया ॥२२॥ उसने देखा कि यह पर्वत कहीं तो पर्वतों से गिरती हुई जलराशि से सुशोभित है, कहीं नृत्य करते हुए मयूरों के रव से शब्दायमान है तथा कहीं विभिन्न प्रकार के पक्षी मन को लुभाने वाली बोली बोल रहे हैं ॥२३॥ कहीं पपीहा, कोयष्टि, टिटीहरी आदि से वह पर्वत व्याप्त है और कहीं कोयल के समान मधुर ध्वनि से प्रतिध्वनित है ॥२४॥ कहीं वृक्षों के प्रफुल्लित पुष्पों की गन्ध से सुगन्धित हुई वायु से सुगन्धित है. इस प्रकार वह उस पर्वत की शोभा देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥२५॥ फिर वह हिमाचल को देख कर सोचने लगा कि कल प्रातः काल आकर पुनः देखूँगा और फिर उसने चलने का विचार किया ॥२६॥ परन्तु पाँवों का लेप छूटने से जड़गति हुआ वह

ब्राह्मण सोचने लगा कि मैंने अज्ञान के वशीभूत हो कर यह क्या कार्य कर डाला ॥२७॥ जब मेरा पद लेप धुल चुका है, तब यहाँ से जाना अत्यन्त दुष्कर है, क्यों कि यह पर्वत अत्यन्त दुर्गम है और मेरा घर भी बहुत दूर है ॥२८॥

प्रयास्यामिक्रियाहानिमग्निशुश्रूषणादिकम् ।
कथमन्नकरिष्यामिसंकटमहदागतम् ॥२९
इदम्परमिदरम्यमित्यस्मिन्वरपर्वते ।
मक्तदृष्टिरहतृप्तिनयास्येऽब्दशतैरपि ॥३०
किन्नराणांकलालापा.समन्ताच्छ्रोत्रहारिणः ।
प्रफुल्लतरुगन्धाश्चघ्राणमत्यन्तमृच्छति ।३१
सुखस्पर्शस्तथावायु फलानिरसवन्तिच ।
हरन्तिप्रसभचेतोमनोज्ञानिसरांसिच ॥३२
एवगतेतुपश्येयंयदिकंचित्तपोनिधिम् ।
सममोपदिशेन्मार्गंगमनायगृहप्रति ॥३३
सएवचिन्तयन्विप्रोवभ्रामचहिमाचले ।
भ्रष्टपादौषधिवलावैक्लव परमगत ॥३४
तददर्शभ्रमन्तचमुनिश्रेष्ठ वरूथिनी ।
वराप्सरामहाभागामोलेयाह्पशालिनी ॥३५

अब तो महान् संकट आगया है, यहा अग्नि सेवादि का कार्य कैसे करूँगा ? इस प्रकार तो नित्य कर्म भी नष्ट हो गया ॥२९॥ 'यह भी मनोहर है, यह भी' इत्यादि सोचता हुआ पर्वत के देखने की इच्छा को मैं वर्ष में भी पूर्ण नहीं कर सकता ॥३०॥ सब ओर से किन्नरों का कर्ण सुखप्रद मधुरालाप सुनाई पड रहा है और पुष्पित वृक्षों से आती हुई सुगंधि से नासिका भी तृप्त हो गई है ॥३१॥ यहाँ सुख-स्पर्श पवन चल रहा है, सभी प्रकार के फलो मे रस है, और सुरम्य सरोवर म मन खिंचा जा रहा है ॥३२॥ अब इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर यहा किसी तपोधन का दर्शन करूँ तो उनसे घर जाने का उपाय पूछूँ ॥३३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पाव लगे लेप के धुल जाने से औषधिशक्ति का क्षय हुआ जान कर अत्यन्त दु खित हुआ ब्राह्मण

चिंता पूर्वक हिमालय में घूमने लगा ॥३४॥ उस समय उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को वहां घूमते हुए वरूथिनी नाम की मौलेया रूपवती अप्सरा ने देखा ॥३५॥

तस्मिन्दृष्टे ततःसाभूद्द्विजवर्येवरूथिनी ।
मदनाकृष्टहृदयासानुरागाहितत्क्षणात् ॥३६
चिन्तयामासकोन्वेषरमणीयतमाकृतिः ।
सफलंमेभवेज्जन्मयदिमांनावमन्यते ॥३७
अहोऽस्यरूपमाधुर्यमहोस्यललिता गतिः ।
अहोगम्भीरतादृष्टेःकुतोऽस्यसदृशोभुवि ॥३८
दृष्टादेवास्तथादैत्याःसिद्धगन्धर्वपन्नगाः ।
कथमेकोऽपिनास्त्यस्यतुल्यरूपोमहात्मनः ॥३९
यथाहमस्मिन्मय्येषसानुरागस्तथायदि ।
भवेदत्रमयाकार्यस्तत्कृतःपुण्यसंचयः ॥४०
यद्येषमयिसुस्निग्धांदृष्टिमद्यनिपातयेत् ।
कृतपुण्यानमत्तोऽन्यात्रैलोक्येवनितातत: ॥४१

वह उसे देखते ही काम बाण से जर्जरित हो उठी और उसके प्रति तुरन्त ही अनुरागवती होगई ॥३६॥ उसने सोचा कि यह सुन्दर आकृति वाला पुरुष कौन है ? यदि यह मेरा आदर करे तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ ॥३७॥ इसकी कैसी अपूर्व माधुरी है, कैसी मनोहर चाल, इसकी गम्भीर दृष्टि में कैसा चमत्कार है, पृथिवी पर इसके तुल्य अन्य पुरुष कौन-सा है ? ॥३८॥ देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग इन सबको मैंने देखा है, परंतु उनमें इसके समान रूपवान् कोई भी दिखाई न दिया ॥३९॥ मैं इसके प्रति जैसी प्रीतिवती हुई हूँ, वैसी ही प्रीति यह भी मेरे प्रति करे तो मेरे पूर्व जन्म के कर्म का ही फल उदय हुआ समझो ॥४०॥ यदि यह मुझ पर अपनी स्निग्ध दृष्टि डालें, तो तीनों लोक में मेरे समान और कौन-सी नारी होगी ॥४१॥

एवंसंचिन्तयन्तीसादिव्ययोषित्स्मरातुरा ।
आत्मानंदर्शयामासकमनीयतराकृतिम् ॥४२

तानुद्दृष्ट्वाद्विजसुतश्चारुरूपावरूथिनीम् ।
सोपचारसमागम्यवाक्यमेतदुवाचह ॥४३
कात्व कमलगर्भाभिकस्यकिवानुतिष्टसि ।
ब्राह्मणोऽहमिहायातोनगरादरुणास्पदात् ॥४४
पादलेपोऽत्रमेध्वस्तोविलीनोहिमवारिणा ।
यस्यानुभावादत्राहमागतोमदिरेक्षणे ॥४५
मौलेयाहमहाभागानाम्नारयातावरूथिनी ।
विचरामिमदं वात्ररमणीयमहाचले ॥४६
साहत्वद्दर्शनाद्विप्रकामवैक्लव्यतागता ।
प्रशाधियन्मयाकार्यत्वदधीनास्मिसाम्प्रतम् ॥४७
येनोपायेनगच्छेयनिजगेहशुचिस्मिते ।
तन्ममाचक्ष्वकल्याणिहानिर्नोऽखिलकर्मणाम् ॥४८
नित्यनैमित्तिकानातुमहाहानिर्द्विजन्मन ।
भवत्यतस्त्वहेभद्रे मामुद्धरहिमालयात् ॥४९

मार्कण्डेयजी ने कहा—दिव्यबाला वरूथिनी कामातुर हुई इसी प्रकार विचार करती करती उस ब्राह्मण को अपने अङ्ग प्रत्यङ्ग दिखाने लगी ॥४२॥ उस रूपवती को उस ब्राह्मण ने जैसे ही देखा वैसे ही विधि पूर्वक पाद्यादि उपचार के सहित उसके पास जा कर बोला ॥४३॥ हे सुन्दरे ! तुम्हारा वर्ण पद्म गर्भ जैसा मनोहर है, तुम कौन, किसकी पत्नी हो ? यहाँ क्या कर रही हो ? मै ब्राह्मण हूँ और यहाँ अरुणास्पद नगर से आ पहुँचा हूँ ॥४४॥ मैं जिस औषधिमय पद लेप के द्वारा यहाँ आया था, वह शीतलजल में धुल गया है और मैं अब इसमें विलीन हो गया हूँ ॥४५॥ वरूथिनी ने कहा—हे महाभाग मेरा नाम वरूथिनी है, मैं अप्सरा हूँ इस सुरम्य पर्वत पर सदा भ्रमण करती रहती हूँ ॥४६॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हें देख कर मैं काम के वश में हुई हूँ, मैं आपके अधीन हूँ, मुझे आज्ञा दीजिये कि आपका क्या प्रिय करूँ ? ॥४७॥ ब्राह्मण बोला—हे शुचिस्मिते ! मैं जिस प्रकार अपने घर लौट सकूँ, वह उपाय कहो, परदेश में रहने से यहाँ मेरे नित्य नैमित्तिक कर्म नष्ट हो रहे हैं ॥४८॥ ब्राह्मण

के लिये इन कर्मो का नष्ट होना अत्यन्त अनिष्ट कारक है, इस लिये हे भद्रे ! मुझे इस हिमालय से निकालो ।४६।।

प्रशस्यतेनप्रवासोब्राह्मणानांकदाचन ।
अपराध्यंतिमेभीरुदेशदर्शनकौतुकम् ।।५०
सतोगृहेद्विजाग्र्यस्यनिष्पत्तिःसर्वकर्मणाम् ।
नित्यनैमित्तिकानांचहानिरेवंप्रवासिनः ।।५१
सात्वं किंबहुनोक्त नतथाकुरुयशस्विनि ।
यथानास्तंगतेसूर्येपश्यामिनिजमालयम् ।।५२
मैवब्रूहिमहाभागमाभूत्सदिवसोमम ।
मांपरित्यज्ययत्रत्वं निजगेहमुपेष्यसि ।।५३
अहोरम्यतरःस्वर्गोनयतोद्विजनन्दन ।
अतोवयंपरित्यज्यतिष्ठामोऽत्रसुरालयम् ।।५४
सत्वंसहमयाभीष्टंकान्तेऽत्र तुहिनाचले ।
रममाणोनमर्त्यानांबान्धवानांस्मरिष्यसि ।।५५
स्रजोवस्त्राण्यलङ्कारान्भक्ष्यभोज्यानुलेपनम् ।
दास्याम्यत्रतथाहन्तेस्मरेणवशगाहृता ।।५६

ब्राह्मण का परदेश निवास अनुचित ही है, मैं देशों को देखने की इच्छा से ही यहां आया था, मैंने कभी कोई अपराध नहीं किया है ।।५०।। घर में रहते हुए नित्य नैमित्तिक कर्म सहज ही पूर्ण हो जाते हैं, और परदेश में पहुँचने पर उन कर्मो का क्षय होता है ।।५१।। हे यशस्विनी ! अधिक क्या कहूँ, सूर्यास्त से पूर्व ही अपने घर पहुंच सकूँ वैसा करो ।।५२।। वरूथिवी ने कहा— हे महाभाग ! आप जिस दिन मुझे त्याग कर अपने घर को लौटें, मेरे लिये वह दिन ही न आवे ।।५३।। इस स्थान की अपेक्षा तो स्वर्ग भी रमणीक नहीं है, इस लिये मैं स्वर्ग का त्याग करके इस स्थान में रहूँगी ।।५४।। आप इस सुरम्य हिमालय में मेरे साथ विहार करेंगे तब आपको बाँधवों की याद नहीं आयेगी ।।५५।। यहां मैं माला, वस्त्र, अलंकार, भक्ष्य, भोज्य, अनुलेपन आदि

तुम्हारे समक्ष उपस्थित करूँगी, क्यो कि मैं काम से पराजित हो कर तुम्हारे अधीन हो गई हूँ ॥५६॥

वीणावेणुस्वनगीतकिन्नराणामनोरमम् ।
ग्रह्लाह्लादकरोवायुरुष्णान्नमुदकशुचि ॥५७
मनाभिलषिताथय्यामुगन्धमनुलेपनम् ।
इहासतोमहाभागगृहेकितेनिजेऽधिकम् ॥५८
इहासतोनैवजराकदाचित्तेभविष्यति ।
त्रिदशानामियंभूमियौवनोपचयप्रदा ॥५९
...... ।
॥६०
मामास्प्राक्षीर्व्रजानात्रदुष्टेयं मद्गतास्तव ।
मयान्यथायाचितात्वमन्यथैवाप्युरीविमाम् ॥६१
सायंप्रातर्हुतहव्यलोकान्यच्छतिशाश्वतान् ।
त्रैलोक्यमेतदखिलमृदेहव्येप्रतिष्ठितम् ॥६२
तमुपायसमाचक्ष्वयनयामिस्त्रमालयम् ।
नितनाहप्रियाविप्ररमणीयोनकिंगिरिः ।
गन्धर्वान्किन्नरादीश्चत्यमत्वाभिष्टोहिवस्तव ॥६३

इस स्थान में रहने से वीणा और वेणु का शब्द, किन्नरो का सुमधुर सगीत, प्रसन्नता देने वाली समीर, उष्ण भोजन और शीतल जल ॥५७॥ मनचाही शय्या, सुगन्धित अनुलेप तुम्हे उपलब्ध होंगे, इससे अधिक तुम्हारे गृह में और क्या होगा ? ॥५८॥ यहाँ रहकर तुम कभी वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं होगे, क्योंकि यह देवभूमि यौवन के बढाने वाली है ॥५९॥ इतना कहकर वरुणयना वरूथिनी व्याकुलता पूर्वक 'प्रसन्न होओ' कहती हुई सहसा ब्राह्मण से आलिंगित हुई ॥६०॥ तब ब्राह्मण बोला—अरी दुष्टे ! मेरा स्पर्श न कर, तू अपने योग्य के ही निकट जा, तू मेरी प्रार्थना के कारण ऐसा विपरीत विचार एव चेष्टा कर रही है ॥६१॥ प्रातः सायं होम करने से सभी शाश्वत लोकों की प्राप्ति होती है, यह तीनो लोक होम के प्रभाव से ही प्रतिष्ठित है ॥६२॥ इसलिये उसके

निर्वाहार्थ मैं अपने घर जिस प्रकार पहुँच सकूँ, वही मुझे शीघ्र बता, वरूथिनी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! तुम मुझे देखकर प्रसन्न क्यों नहीं होते ? क्या यह हिमालय मनोहर नहीं है ? गन्धर्व, किन्नर आदि के अतिरिक्त तुम्हें और किसकी इच्छा है ? ॥६३॥

निजमालयमप्यस्माद्भवान्यास्यत्यसंशयम् ।
स्वल्पकालंमयासार्द्धंभुङ्क्ष्वभोगान्सुदुर्लभान्
अभीष्टागार्हपत्याद्याःसततेमन्त्रयोऽग्नयः ।
रम्यंममाग्निशरणंदेवीविष्टरिणीप्रिया ॥६५
अष्टावात्मगुणायेहितेषामादौदयाद्विज ।
तांकरोषिकथंनत्वंमयिसद्धर्मपालकः ॥६६
त्वद्विमुक्तानजीवामितथाप्रीतिमतीत्वयि ।
नैतद्वदाम्यहंमिथ्याप्रसीदकुलनन्दन ॥६७
यदिप्रीतिमतीसत्यंनोपचाराद्ब्रवीषिमाम् ।
तदुपायंसमाचक्ष्वयेनयामिस्वमालयम् ॥६८
निजमालयमप्यस्माद्भवान्यास्यत्यसंशयम् ।
स्वल्पकालंमयासार्द्धंभुङ्क्ष्वभोगान्सुदुर्लभान् ॥६९
नभोगार्थायविप्राणांशस्यतेहिवरूथिनी ।
इहक्लेशायविप्राणांचेष्टाप्रेत्यफलप्रदा ॥७०

तुम अपने घर अवश्य ही जा सकोगे, परन्तु इस समय तो मेरे साथ इस दुर्लभ सुख का भोग करो ॥६४॥ ब्राह्मण बोला—गार्हपत्य, आवहनीय और दक्षिणाग्नि यह तीनों अग्नियां ही मेरी इच्छित हैं, अग्नि गृह ही मेरे लिये सुरम्य स्थान है तथा विष्टरिणी वेदी ही मेरी प्रिया है ।।६५॥ वरूथिनी ने कहा—आठ प्रकार के जो आत्म गुण कहे गये हैं, उनमें दया ही प्रमुख गुण हैं, फिर भी तुम मेरे प्रति प्रीति रूपी दया क्यों नहीं करते ? ॥६६॥ तुम्हारे प्रति मैं वैसी प्रीतिमती हुई हूँ उस कारण तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकती, मैं असत्य नहीं कहती, तुम मुझ पर प्रसन्न होओ ॥६७॥ ब्राह्मण बोला यदि तू मुझ पर सत्य ही अनुरागमयी हुई है, और मुझसे तूने सत्य बात कही

है तो मैं जिस प्रकार घर पहुँच सकूँ वही मुझे बता ॥६८॥ वरुथिनी ने कहा—तुम अवश्य ही यहाँ से अपने घर जा सकोगे, परन्तु अभी कुछ समय के लिये मेरे साथ दुर्लभ सुख भोग करो ॥६६॥ ब्राह्मण बोला—हे वरुथिनी ? ब्राह्मण को सुख भोग की आज्ञा शास्त्र नही देता क्यो कि स्त्री की चेष्टा से ब्राह्मण इहलोक मे क्लेश और परलोक मे भी विपरीत फल पाता है ॥७०॥

सन्त्राणंम्रियमाणायाममकृत्वापरत्रते ।
पुण्यस्यैवफलभाविभोगाश्चान्यत्रजन्मनि ॥७१
एवचद्वयमप्यत्रतवोपचयकारणम् ।
प्रत्याख्यानादहमृत्यु त्वचपापमवाप्स्यसि ॥७२
परस्त्रियनाभिलषेदित्यूचुर्गु रवोमम ।
तेनत्वानाभिवाञ्छामिकामविलपपव्यवा ॥७३
इत्युक्त्वासमहाभाग स्पृष्टाप प्रयत शुचि ।
प्राहेदप्रणिपत्याग्निगार्हपत्यमुपांशुना ॥७४
भगवन्गार्हपत्याग्नेयोनिस्त्वसर्वकर्मणाम् ।
त्वत्तश्चाहवनीयोऽग्निर्दक्षिणाग्निश्चनान्यत ॥७५
युष्मदाप्यायनाद् वावृष्टिसस्यादिहेतव ।
भवन्तिसस्यादखिलजगद्भवतिनान्यत ॥७६
एवत्वत्तोभवत्येतद्येनसत्येनवैजगत् ।
तथाहमद्यस्वगेहपश्येयमतिभास्करे ॥७७
यथावैदिककर्मस्वकालेनोज्झितमया ।
तेसत्येनपश्येयगृहस्थोऽद्यदिवाकरम् ॥७८
यथाचनपरद्रव्येपरदारेचमेमति ।
कदाचित्सालिपाभूत्तथैतत्सिद्धिमेतुमे ॥७६
एवतुवदतस्तस्यद्विजपुत्रस्यपावक ।

वरुथिनी ने कहा—मैं मृतक के समान हो रही हूँ, मेरी प्राण रक्षा करने के कारण परलोक मे तुम्हें उसी के समान पुण्य फल मिलेगा और अपर जन्म मे तुम्हें उसी के अनेक भोगो की प्राप्ति होगी ॥७१॥ परलोक मे

सुख और जन्मान्तर में सुख भोग यह दोनों ही फल लाभदायक हैं, परन्तु, यदि मुझे निराश करोगे तो मेरी मृत्यु के कारण पाप के भागी होगे ।।७२।। ब्राह्मण बोला—मेरे गुरु का उपदेश है कि परस्त्री में मन न लगाना, इसलिये तू चाहे रुदन कर या प्राण त्याग, मैं तुझे नहीं चाहता ।।७३।। मार्कण्डेयजी ने कहा—वरूथिनी के प्रति ऐसा कह कर ब्राह्मण ने आचमन द्वारा शुद्ध हो कर गार्हपत्य अग्नि को प्रणाम किया और उपांशु जप द्वारा निवेदन करने लगा ।।७४।। हे गार्हपत्य अग्ने ! तुम सभी कर्मों के बीज स्वरूप हो, क्योंकि आहवनीय और दक्षिणाग्नि की उत्पत्ति तुम से ही हुई है ।।७५।। तुम प्रसन्न होते हो तभी देवता वर्षा द्वारा शस्य प्रदान करते हैं, और उस शस्य से ही जगत् की स्थिति है, वह अन्य प्रकार से स्थित नहीं रह सकता ।।७६।। जिस सत्य के द्वारा यह विश्व तुम में प्रतिष्ठित है, मैं भी उसी सत्य से सूर्यास्त से पूर्व ही अपने घर को देखूँ ।।७७।। जिस सत्य के द्वारा सब वैदिक कर्म यथोचित समय में सम्पन्न हो जाते है, उसी सत्य से मैं भी घर में निवास करके सूर्य के दर्शन करूँ ।।७८।। जिस सत्य से मेरी मति पर द्रव्य या परनारी से नहीं लगी है, उसी सत्य से मेरी मति इस विषय में भी सिद्धि को प्राप्त हो ।।७९।।

५४—कलिवरूथिनी समागम

गार्हपत्यःशरीरेंतुसन्निधानमथाकरोत् ।।१
तेनचाधिष्ठितःसोऽथप्रभामण्डलमध्यगः ।
व्यदीपयततंदेशंमूर्तिमानिवहव्यवाट् ।।२
तस्यास्तुसुतरांतत्रतादृग्रूपेद्विजन्मनि ।
अनुरागोऽभवद्विप्रंपश्यन्त्यादेवयोषितः ।।३
ततःसोऽधिष्ठितस्तेनहव्यवाहेनतत्क्षणात् ।
यथापूर्वंतथागन्तुंप्रवृत्तोद्विजनन्दनः ।४
जगामचत्वरायुक्तस्तयासस्नेहंनिरीक्षितः ।
आदृष्टिपातात्तन्वङ्ग्यानिश्वासोत्कम्पिकन्धरम् ।।५

तत क्षणेनैवतदानिजगेहमवाप्यस ।
यथाप्रोक्तद्विजश्रेष्ठश्चकारसकलाःक्रिया ॥६
अथसाचारुसर्वांगीतत्रासक्तात्ममानसा ।
निश्वासपरमानिन्येदिनशेषतथानिशाम् ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार निवेदन करते हुए ब्राह्मण पुत्र के गार्हपत्याग्नि अधिष्ठित हुई ॥१॥ उसकी प्रभा के मध्य में स्थित हो कर वह ब्राह्मण साक्षात् अग्नि समान तेजस्वी हो कर उस स्थान को प्रकाशित करने लगा ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! वरूथिनी ने जब उस ब्राह्मण का ऐसा स्वरूप देखा तब वह अत्यन्त अनुराग से और भी मोह युक्त हुई ॥३॥ जब उस ब्राह्मण ने अग्नि ने अधिष्ठान किया तब वह पहिले के समान शक्ति युक्त हो कर गमन मे प्रवृत्त हुआ ॥४॥ उस समय वरूथिनी खड़ी हुई देख रही थी कि तभी वह ब्राह्मण द्रुतगति से चल दिया, जब वह अदृश्य हो गया, तब वरूथिनी दीर्घ श्वास लेती हुई कापने लगी ॥५॥ वह श्रेष्ठ ब्राह्मण क्षण भर म ही अपने घर पहुच गया और वहा अपनी नित्य नैमित्तिक क्रिया के करने म लगा ॥६॥ इधर उस सर्वाङ्ग सुन्दरी वरूथिनी ने उस ब्राह्मण म अनुरागवती रह कर दीर्घ श्वास छोड़ते हुए उस दिन का शेष भाग एव रात्रि काल व्यतीत किया ॥७॥

निश्वसन्त्यनवद्याङ्गीहाहेतिरुदतीमुहु ।
मन्दभाग्येतिचात्मानंनिनिन्दमदिरेक्षणा ॥८
नविहारेनचाहारेरमणीयेनवावने ।
नकन्दरेषुरम्येषुसाबबधतदारतिम् ॥९
चकाररममाणेचचक्रवाकयुगेस्पृहाम् ।
मुक्तातेनवरारोहानिनिन्दनिजयौवनम् ॥१०
क्वागताहमिमशैलदुष्टदैवबलात्कृता ।
क्वचप्राप्त समेदृष्टेर्गोचरताद्दशोनर ॥११
यद्यसमहाभागोनमेसगमुपैष्यति ।
सत्वामाग्निरवश्यमाक्षपयिष्यतिदु सह ॥१२

रमणीयमभूद्यत्पुंस्कोकिलनिनादितम् ।
तेनहीनंतदेवैतद्दहतीवाद्यमामलम् ॥१३
इत्थंसामदानाविष्टाजगाममुनिसत्तमम् ।
ववृधेचतदारागस्तस्यास्तस्मिन्प्रतिक्षणम् ॥१४

वह अप्सरा घोर रुदन करती हुई दीर्घश्वास छोड़ने लगी और अपने को मन्द भाग समझ कर अपनी निन्दा करने लगी ॥८॥ आहार, विहार, सुरम्य वन, मनोहर गिरि कन्दरा किसी से भी उसकी तृप्ति न हो रही थी ॥९॥ चक्रवाकों का विहार देख कर रति कर्म में उसे स्पृहा हुई, वह ब्राह्मण द्वारा त्यागी जाने के कारण अपनी युवावस्था को कोसने लगी ॥१०॥ मैं दुष्ट दैव के वश से ही इस पर्वत में आई थी अन्यथा वह सर्वाङ्ग सुन्दर पुरुष जो मुझे दिखाई दिया था, उसका देखा जाना क्या कभी संभव था ? मैं उसे क्या जानती थी ? ॥११॥ यदि वह महाभाग इस समय मुझे न मिलेगा, तो दुःसह कामाग्नि में दग्ध होकर मुझे अपने जीवन का परित्याग करना पड़ेगा ॥१२॥ जो कोकिला का शब्द मेरे कानों को मनोरंजक प्रतीत होता था, वह आज अग्नि के समान ही मुझे भस्म कर रहा है ॥१३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार कामासक्त हुई वरूथिनी ने उस मुनि श्रेष्ठ को मन से देखा तो उसका अनुराग क्षण-क्षण में उसके प्रति वृद्धि को प्राप्त होता रहा ॥१४॥

कलिर्नाम्नातुगन्धर्वःसानुरागोनिराकृतः ।
तयापूर्वमभूत्सोऽथतदवस्थांददर्शताम् ॥१५
सचिन्तयामासतदाकिन्त्वेषागजगामिनी ।
निश्वासपवनम्लानागिरावत्रवरूथिनी ॥१६
मुनिशापक्षताकिंनुकेनचित्किंविमानिता ।
बाष्पवारिपरिक्लिन्नमियंधत्तेयतोमुखम् ॥१७
ततःसदध्यौसुचिरंतमर्थंकौतुकात्कलिः ।
ज्ञातवांश्चप्रभावेणसमाधेःसयथातथम् ॥१८
पुनःसचिन्तयामासतद्विज्ञायमुनेःकलिः ।
ममोपपादितंसाधुभाग्यैरतेत्पुराकृतैः ॥१९

मयैपामानुरागेणवहुश प्रार्थितामनी ।
निराकृतवतीसेयमद्यप्राप्याभविष्यति ॥२०
मानुपेमानुरागेयतत्रतद्रूपधारिणि ।
रम्यतेमय्यमन्दिर्घकिकाले नकरोमितत् ॥२१

इस अप्सरा के प्रति पहिले एक कलि नामक गन्धर्व आसक्त था, परन्तु इसने उसका निरादर किया था, उसने इस अप्सरा को ऐसी दशा में देखा तो ॥१८॥ सोचने लगा कि यह गजगामिनी इस पर्वत में दीर्घ श्वास छोड़ती हुई प्रतिक्षण म्लान होती जा रही है, क्या यह वरूथिनी ही है ? ॥१६॥ क्या यह किसी मुनि के शाप से ग्रस्त हुई है अथवा किसी ने इसका निरादर किया है, क्यों कि इसके मुख पर अश्रु बिन्दु दिखाई दे रहे हैं ॥१७॥ फिर उस गन्धर्व ने कुतूहल पूर्वक बहुत समय तक ध्यान किया और उसके द्वारा सब वृत्तान्त उसे ज्ञात होगया ॥१८॥ वृत्तान्त ज्ञात होने पर उसने सोचा कि मेरे पूर्वकृत पुण्य के फल स्वरूप मेरी यह इच्छा पूर्ण हुई है ॥१६॥ जिसने मेरी अनुराग-मयी विनय को ठुकरा दिया था, यह वही वरूथिनी अब मुझे सहज मे प्राप्त हो जायगी ॥२०॥ अब यह जिस मनुष्य के प्रति प्रीतिमती हुई है, मैं उसी मुनि का रूप धारण करूँ तो यह मुझ से भी प्रीति करेगी, इसलिये अब देर क्यों करूँ ॥२१॥

आत्मप्रभावेणततस्तस्यरूपद्विजन्मन ।
कृत्वाचचारयत्रास्तेनिपण्णामावरूथिनी ॥२२
सातदृष्ट्वावगरोहाकिंचिदुत्फुल्ललोचना ।
समेत्यप्राहतन्वङ्गीप्रसीदेतिपुनःपुनः ॥२३
त्वया यक्तानसन्देह परित्यक्ष्यामिजीविनम् ।
तत्राधर्म वकष्टरःक्रियालोपोभविष्यति ॥२४
मयासमेन्यरम्येऽस्मिन्महात्मन्जनवन्दरे ।
मत्परित्राणजर्वमंभवस्यप्रदिपत्स्यसे ॥२५
आयुपःमावशेपमेनूनमस्मिमहामते ।
निवृत्तस्तंननूनहिहृदयान्नादिकारव ॥२६

मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् उसने आत्म प्रभाव से उस ब्राह्मण का रूप धारण किया और जहाँ वरूथिनी बैठी थी, वहाँ जाकर घूमने लगा ।।२२।। वरूथिनी ने जैसे ही उस मुनि वेशधारी कलि को देखा तभी आह्लादयुक्त नेत्रों से उसे देख और निकट पहुँचकर उससे बारम्बार प्रसन्न होओ कहने लगी ।।२३।। और बोली कि यदि तुम मेरा त्याग करोगे तो मैं अपना जीवन समाप्त कर लूँगी, जिससे अधर्म होगा और तुम्हारी सम्पूर्ण क्रिया का भी लोप हो जायगा ।।२४।। यदि इस हिमालय की सुरम्य कन्दरा में मेरे साथ विहार करोगे तो उससे मेरी रक्षा होगी और उसका धर्म फल तुम्हें प्राप्त होगा ।।२५।। हे महामते ! मेरी आयु अभी तक शेष नहीं हुई है, इसीलिए तुम निवृत्त होकर मेरे हृदय में आनन्द का संचार कर सके हो ।।२६।।

किंकरोमिक्रियाहानिर्भवत्यत्रसतोमम ।
त्वमप्येवंविधंवाक्यंब्रवीषितनुमध्यमे ।।२७
तदहंसंकटंप्राप्नोयद्ब्रवीमिकरोषितत् ।
यदिस्यात्संगमोमेद्यभवत्यासहनान्यथा ।।२८
प्रसीदयद्ब्रवीषित्वंतत्करोमिनतेमृषा ।
ब्रवीम्येतदनाशङ्कं यद्यत्कार्यंमयाधुना ।।२९
नाद्यसंभोगसमयेद्रष्टव्योहंत्वयावने ।
निमीलिताक्ष्याःसंसर्गस्तवसुभ्रू मयासह ।।३०
एवंभवतुभद्रं तेयथेच्छसितथास्तुतत् ।
मयासर्वप्रकारंहिवशेस्थेयंतवाधुना ।।३१

कलि बोला—हे सुन्दरी ! समझ में नहीं आता कि क्या करूँ ? यहाँ रहने से मेरे कर्म का लोप हो जायगा, परन्तु तुम भी इस प्रकार से अनुरोध कर रही हो ।।२७।। ऐसे सङ्कट में पड़कर ही मुझे तुम्हारी बातों से अब सहमत होना पड़ा है, परन्तु मैं जो कहता हूँ, वह बात तुम्हें स्वीकार हो तभी तुम्हारे साथ संयोग हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता ।।२८।। वरूथिनी ने कहा—आप कहो, जो कहोगे वही मैं करूँगी इसमें असत्य

नहीं है जो कहते हो वह अभी करूँगी ॥२६॥ कलि बोला—तुम विहार के समय मुझे न देखना, ससर्ग काल मे तुम्हे नेत्र बन्द किये रहना होगा ॥३०॥ वरूथिनी ने कहा—यही होगा, जैसा तुम चाहते हो, वैसा ही होगा, मैं सब प्रकार से तुम्हारे अधीन हू, तुम्हारा मगल हो ॥३१॥

५५—स्वरोचि का जन्म और विवाह

ततःसहतयासोथररामगिरिसानुपु ।
फुल्लकाननहृद्येपुमनोज्ञेपुसरःसुच ॥१
कन्दरेपुचरम्येपुनिम्नगापुलिनेपुच ।
मनोज्ञेपुतथान्येपुदेशेपुमुदितोद्विज ॥२
वह्निनाधिष्ठितस्यासीद्यद्रूपतस्यतेजसा ।
अचिन्तयद्भोगकालेनिमीलितविलोचना ॥३
ततःकालेनसागर्भमवापमुनिसत्तम ।
गन्धर्ववीर्य्यतोरूपचिन्तनाच्चद्विजन्मन ॥४
सागर्भधारिणीसोऽप्यसान्त्वयित्वावरूथिनीम् ।
विप्ररूपधरोयातस्तयाप्रीत्याविसर्जित ॥५
जज्ञेसबालोद्युतिमान्ज्वलन्निवविभावसु ।
स्वरोचिभिर्यथासूर्य्योभासयन्सकलादिश. ॥६
स्वरोचिभिर्यतोभातिभास्वानिवसबालक ।
ततःस्वरोचिरित्येवंनाम्नाख्यातोवभूवस ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—पर्वत के कगूरे, सुरम्य एव पुष्पित वन तथा मनोज्ञ सरोवर ॥१॥ रमणीक कन्दरा, नदी तट तथा अन्यान्य स्थानो मे वह प्रसन्न चित्त से वरूथिनी के साथ विहार करने लगा ॥२॥ अग्नि के अधिष्ठान मे उस ब्राह्मण का जो तेजोमय रूप हो गया था, उसी रूप का चिन्तन वरूथिनी समागम काल मे करने लगी ॥३॥ फिर उस अप्सरा ने उस गधर्व के औरस से यथा समय गर्भ धारण किया, समागम काल मे ब्राह्मण के

तेजोजमय स्वरूप का चिन्तन करने के कारण, उसी ब्राह्मण के समान उसके पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४॥ ब्राह्मण रूप धारी वह गधर्व वरूथिनी को समझाकर वहाँ से चला गया ॥५॥ जिस प्रकार सूर्य की किरणों से सभी दिशाएँ प्रकाशित होती हैं, वैसे ही शरीर के तेज से चारों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए उस बालक ने समय पाकर जन्म लिया ॥६॥ अपने शरीर की प्रभा से भास्कर जैसी दीप्ति प्राप्त करने के कारण उस बालक का नाम स्वरोचि हुआ ॥७॥

ववृधेचमहाभागोवयसानुदिनंतथा ।
गुणौघैश्चयथाबाल.कलाभिःशशलाञ्छनः ॥८
सजग्राहधनुर्वेदंवेदांश्च वयथाक्रमम् ।
विद्याश्चैवमहाभागस्तदायौवनगोचरः ॥९
मन्दराद्रौकदाचित्सविचरंश्चारुचेष्टितः ।
ददर्शकांतदाकन्यांगिरिप्रस्थेभयातुराम् ॥१०
त्रायस्वेतिनिरीक्ष्यैनंसातदावाक्यमब्रवीत् ।
माभैषीरितिसप्राहभयविप्लुतलोचनाम् ॥११
किमेतदितितेनोक्ते वीरवाक्येमहात्मना ।
ततःसाकथयामासश्वासाक्षेपप्लुताक्षरम् ॥१२
अहमिन्दीवराख्यस्यसुताविद्याधरस्यवै ।
नाम्नामनोरमाजातासुतायांमरुधन्वनः ॥१३
मन्दारविद्याधरजासखीममविभावरी ।
कलावतीचाप्यपरासुतापारस्यवैमुनेः ॥१४

हे महाभाग ! जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कला प्रति दिन वृद्धि को प्राप्त होती है, वैसे ही उस बालक के गुणों में प्रतिदिन वृद्धि होने लगी ॥८॥ इस स्वरोचि ने चारों वेद, सभी शास्त्र और धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करके युवावस्था में प्रवेश किया ॥९॥ उस सुन्दर गति वाले स्वरोचि को किसी एक समय मंदराचल पर भ्रमण करते हुए एक भयातुरा कन्या दिखाई दी ॥१०॥ उसने इसे देखकर 'रक्षा करो' कहा और इसने भी कन्या

को भयातुरा देखकर 'भय नहीं' यह कर आश्वस्त किया ॥११॥ फिर उसने वीरोचित शब्दों में 'तुम्हें क्या भय हुआ है ?' यह पूछा, इस पर श्वास छोड़ती हुई उस कन्या ने अस्फुट शब्दों से उत्तर दिया ॥१२॥ वह बोली—मैं इन्दीवर नामक विद्याधर की मरुन्वा सुता के गर्भ से उत्पन्न पुत्री हूँ, मेरा नाम मनोरमा है ॥१३॥ मेरी दो सखी विभावरी और कलावती नाम की हैं, इनमें प्रथम मन्दार विद्याधर की और द्वितीय पार मुनि की कन्या है ॥१४॥

ताभ्यां सहमयायात कैलासतटमुत्तमम् ।
तत्रदृष्टोमुनि कश्चित्तपसातिकृशाकृति ॥१५
क्षुत्क्षामकण्ठोनिस्तेजादूरपाताक्षितारक ।
मयावहसित क्रुद्ध सतदामाशशापह ॥१६
क्षामक्षामस्वर किंचित्कम्पिताधरपल्लव ।
त्वयावहसितोयस्मादनार्ये दुष्टतापसि ॥१७
तस्मात्त्वामचिरेणैवराक्षसोभिभविष्यति ।
दत्त शापेमत्सखीभ्यामनुनिर्भर्त्सितामुनिः ॥१८
धिक्तेब्राह्मण्यमक्षान्त्याहततेनिखिलतप ।
अमर्षणधर्षितोऽस्मितपसानातिकर्शित ॥१९
क्षान्त्यास्पदंब्राह्मण्यंक्रोधसंयमनंतप ।
एतच्छ्रुत्वाददौशापतयोरप्यमितद्युति ॥२०
एकस्या कुष्ठमङ्गेषु भाव्यन्यस्यास्तथाक्षय ।
तयोस्तथैवतज्जातयथोक्त तेनतत्क्षणात् ॥२१

एक दिन मैं उनके साथ कैलास के तट पर गई थी और वहाँ हमें एक मुनि दिखाई दिये थे, उनका अङ्ग तपस्या के वशों में अत्यन्त कृश हो रहा था ॥१५॥ उनका कण्ठ भूख के कारण क्षीण हो रहा था, नेत्र तेज रहित हो गए थे, मैंने उन्हें देखकर उनकी हँसी उड़ाई, इससे क्रोधित होकर उन्होंने कुछ कम्पित से होकर मुझे शाप दे दिया—अरी अनार्ये ! दुष्टे ! तूने मुझ तपस्वी की हँसी उड़ाई है ॥१६-१७॥ इसलिये तू राक्षस से पराभूत होगी इस प्रकार मुनि द्वारा शाप दिया हुआ सुनकर मेरी सखियों ने उनकी भर्त्सना॥

की ॥१८॥ तुम्हारे जैसे क्षमाहीन ब्राह्मण को धिक्कार है और सम्पूर्ण तप निरर्थक है, तुम्हारा शरीर तप के कारण दुबला हुआ प्रतीत नहीं होता, क्रोध से ही हुआ होगा ॥१९॥ ब्राह्मण तो क्षमा के आश्रय रूप और क्रोध पर नियंत्र। ही उनका तप है, तुम तप में परिपक्व नहीं हो पाये, क्योंकि क्रोध ने तुम्हें क्षीण कर दिया है, उनकी ऐसी बात सुनकर उस मुनि ने उन्हें भी शाप दे दिया ॥२०॥ एक से कहा 'तू सर्वाङ्ग में कुष्ठ से पीड़ित होगी' दूसरी से कहा—'तू क्षय रोग से पीड़ित होगी' मुनि द्वारा शाप देते ही उन दोनों के वे रोग तत्काल उत्पन्न हो गये ॥२१॥

ममाप्येवंमहद्रक्षःसमुपैतिपदानुगम् ।
नश्रृणोषिमहानादंतस्यादूरेऽपिगर्जतः ॥२२
तृतीयमद्यादिवसंयन्मेपृष्ठंनमुंचति ।
अस्त्रग्रामस्यसर्वस्यहृदयज्ञाहमद्यते ॥२३
तंप्रयच्छामिमांरक्षरक्षसोऽस्मान्महामते ।
प्रादात्स्वायम्भुवस्वयंरुद्रः साक्षात् पिनाकधृक् ॥२४
स्वायम्भुवोवसिष्ठायसिद्धवर्यायदत्तवान् ।
तेनापिदत्तंमन्मातुःपित्रेचित्रायुधायवै ॥२५
प्रादादौद्वाहिकंसोऽपिमत्पित्रेश्वशुरःस्वयम् ।
मयापिशिक्षितंवीरसकाशाद्बालयापितुः ॥२६
हृदयंसकलास्त्राणामशेषरिपुनाशनम् ।
तदिदंगृह्यतांशीघ्रमशेषास्त्रपरायणम् ॥२७
ततोजहिदुरात्मानमेनंराक्षसमागतम् ॥२८

तभी एक महाराक्षस प्रकट होकर मेरे पीछे भी दौड़ पड़ा, वह तीन दिन से मेरे पीछे लगा है, देखो समीप में ही गरज रहा है, क्या आप उस शब्द को नहीं सुन रहे हैं ? मैं अब सभी अस्त्रों का सार रूप यह प्रख्यात अस्त्र ॥२२-२३॥ आपको दे रही हूँ, इसी से आप मेरी रक्षा करें, पुराकाल में यह अस्त्र स्वायम्भुव मनु को स्वयं रुद्र ने प्रदान किया था ॥२४॥ यह परमोत्तम सिद्ध अस्त्र स्वायम्भुव ने वसिष्ठ को प्रदान किया और वसिष्ठ से इसे मेरे नाना

चित्रायुध से प्राप्त किया ॥२५॥ और उन्होंने विवाह के दहेज में मेरे पिता को दिया, सब अस्त्रों के सारभूत इस अस्त्र की शिक्षा मैंने बाल्यावस्था में अपने पिता से प्राप्त की थी ॥२६॥ यह अस्त्र सभी अस्त्रों का हृदय एवं शत्रु नाशक है, इसे शीघ्र ग्रहण करिये, इसके द्वारा सभी अस्त्रों से होने वाले कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥२७॥ इसके ग्रहण पूर्वक इस राक्षस का वध करिये, जो कि विप्र साथ में मेरा पीछा कर रहा है ॥२८॥

तथेत्युक्तेततस्तेनवार्य्युं पस्पृश्यतस्यतत् ।
अस्त्राणाहृदयप्रादात्मरहस्यनिवर्तनम् ॥२६
एतस्मिन्नन्तरेरक्षस्तत्तदाभीषणाकृति ।
नर्दमानमहानादमाजगामत्वरान्वितम् ॥३०
मयाभिभूतांकिमाणामुपैतिद्रुतमेहिमे ।
भक्षार्थकिंचिरेणतिद्रुवाणतद्दर्शस ॥३१
स्वरोचिश्चिन्तयामासदृष्ट्वातसमुपागतम् ।
गृह्णात्येनवच सत्यतस्यास्त्विति महामुने ॥३२
जग्राहसमुपेत्यनात्वरयासोऽपिराक्षसः ।
त्राहित्राहीतिकरुणविलपन्तीसुमध्यमाम् ॥३३
ततःस्वरोचि सत्क्रुद्धश्चण्डास्त्रमतिभैरवम् ।
दृष्ट्वानिवेश्यनद्रक्षोददर्शानिमिषेक्षण ॥३४
तदाभिभूत सतदातामुत्सृज्यनिशाचर ।
प्रसीदशाम्यतामस्त्रश्रूयताचेत्यभाषत ॥३५

मार्कण्डेय जी ने कहा—जब स्वरोचि ने अस्त्र ग्रहण करना स्वीकार किया, तब उस मनोरमा ने वह अस्त्र उन्हें आचमन करके रहस्य तथा निवर्तन मन्त्र के सहित प्रदान किया ॥२६॥ उसी समय स्वरोचि ने उस भयङ्कर आकार वाले राक्षस को गर्जन पूर्वक वहाँ आता हुआ देखा ॥३०॥ उसने आते ही कहा—मेरे आक्रमण से कोई रक्षा को प्राप्त नहीं हो सकता, अब देर मत करो, मैं तुम्हारा शीघ्र ही भोजन करना चाहता हूँ ॥३१॥ उसे वहाँ देखकर स्वरोचि ने विचार किया कि यदि यह राक्षस इस कन्या को पकड़ लेगा, तो ही उन महा-

मुनि का शाप सत्य हो सकता है ॥३२॥ स्वरोचि के ऐसा विचार करते ही राक्षस ने तुरन्त उस विद्याधरी को पकड़ लिया, इस पर वह त्राहि-त्राहि करती हुई रोने लगी ॥३३॥ तब स्वरोचि ने क्रोध में भर कर उस प्रचण्डास्त्र को धनुष पर चढ़ाया और उस राक्षस की ओर देखा ॥३४॥ उन्हें इस प्रकार उद्यत देखकर राक्षस भय-विह्वल हो गया और कन्या को छोड़कर स्वरोचि से बोला— आप अस्त्र का परित्याग करिये, मुझ पर प्रसन्न होकर मेरा वृत्तान्त सुनिये, उसे मैं आपसे कहता हूँ ॥३५॥

मोक्षितोऽहंत्वयाशापादतिघोरान्महाद्युते ।
प्रदत्तादतितीव्रे णब्रह्मामित्रेणधीमता ॥३६
उपकारोनमेत्वत्तःमहाभागाधिकोपरः ।
येनाहंसुमहाकष्टान्महाशापाद्विमोक्षितः ॥३७
ब्रह्ममित्रेणमुनिनाकिन्निमित्तंमहात्मना ।
शप्तस्त्वंकीदृशश्चैवशापोदत्तोऽभवत्पुरा ॥३८
ब्रह्ममित्रोऽष्टधाभिन्नमायुर्वेदमधीतवान् ।
त्रयोदशाधिकारंचप्रगृह्याथर्वणोद्विजः ॥३९
अहंचेन्दीवराक्षेतिख्यातोऽस्याजनकोऽभवम् ।
विद्याधरपतेःपुत्रोनलनाभस्यखाङ्गिनः ॥४०
मयाचयाचितःपूर्वंब्रह्ममित्रोऽभवन्मुनिः ।
आयुर्वेदमशेषंमेभगवन्दातुमर्हसि ॥४१
यदातुबहुशोवीरप्रश्रयावनतस्यमे ।
नप्रादाद्याचितोविद्यामायुर्वेदात्मिकांमम ॥४२

हे तेजस्विन् ! अत्यन्त तेज सम्पन्न ब्रह्ममित्र मुनि ने मुझे एक बार घोर शाप दिया था, आपने मुझे शाप से मुक्त कर दिया है ॥३६॥ हे महाभाग ! मेरा ऐसा उपकार करने वाला कोई उपकारी आपके समान नहीं है, क्योंकि आप ही ने मुझे घोर क्लेशप्रद ब्रह्म शाप से मुक्त किया है ॥३७॥ स्वरोचि बोले—मुनिवर ब्रह्ममित्र ने तुम्हें जो शाप दिया था, वह कैसा तथा किसलिये दिया था ? ॥३८॥ राक्षस बोला—उन मुनिवर ब्रह्ममित्र ने अथर्व के तेरह

अधिकार में ज्ञान प्राप्त किया था तथा आठ भाग वाले सम्पूर्ण आयुर्वेद को पढ़ा था ॥३९॥ मेरा नाम इन्दीवर है, मैं खड्गीनल नामक विद्याधर का पुत्र तथा इस कन्या का पिता हूँ ॥४०॥ मैंने उन ब्रह्ममित्र से निवेदन किया था कि मुझे सम्पूर्ण आयुर्वेद का ज्ञान दीजिये ॥४१॥ परन्तु बारम्बार विनय पूर्वक निवेदन करने पर भी मुनि ने मुझे आयुर्वेद का ज्ञान नहीं दिया ॥४२॥

शिष्येभ्योददतस्तस्यमयान्तर्धानगेनहि ।
आयुर्वेदात्मिकाविद्यागृहीताभूत्तदानघ ॥४३
गृहीतायातुविद्यायामासैरष्टाभिरन्तराद् ।
ममातिहर्षादभवद्धासोऽन्योवपुनःपुन ॥४४
प्रत्यभिज्ञायमाहासान्मुनिःकोपसमन्वितः ।
विकम्पिकन्धर प्राहमामिदपरुषाक्षरम् ॥४५
राक्षसेनेवयस्मान्मेत्वयाऽदृश्येनदुर्मते ।
हृताविद्यावहामश्चमामवज्ञायवैकृत ॥४६
तस्मात्त्वराक्षस पापमच्छापेननिराकृत ।
भविष्यसिनसन्देह सप्तरात्रेणदारुण ॥४७
इत्युक्तेप्रणिपाताद्यैरुपचारैः प्रसादित ।
समामाहपुनर्विप्रस्तत्क्षणान्मृदुमानस ॥४८

तब, जब वे अपने शिष्य को आयुर्वेद का ज्ञान दे रहे थे, उस समय छिप कर मैंने उस विद्या को प्राप्त किया ॥४३॥ जब आठ महीने में मुझे सम्पूर्ण आयुर्वेद का ज्ञान होगया, तब मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई और मैं बारम्बार हँसने लगा ॥४४॥ मुनि ने जब मेरा इस प्रकार हँसना जाना तो उन्होंने क्रोध से कम्पित कण्ठ होकर यह कठोर वचन कहे ॥४५॥ हे दुर्मते ! तूने राक्षस के समान छिप कर विद्या को चुराया है और अवज्ञा पूर्वक मेरी हँसी उड़ाई है ॥४६॥ इसलिए तू मेरे शाप से अधिकार च्युत होकर सात रात्रि में ही घोर राक्षस हो जायगा ॥४७॥ इस प्रकार का शाप सुनकर मैंने मुनि का विनम्रता युक्त उपचारों से प्रसन्न किया तो वह तुरन्त प्रसन्न होगये और बोले ॥४८॥

यन्मयोक्तमवश्यंतद्भाविगन्धर्वनान्यथा ।
किन्तुत्वंराक्षसोभूत्वापुनःस्वंप्राप्स्यसेवपुः ।।४६
नष्टस्मृतिर्यदाक्रुद्धःस्वमपत्यंचिखादिपुः ।
निशाचरत्वेगन्तासितदस्त्रानलतापितः ।।५०
पुनःसंज्ञामवाप्यस्वामवाप्स्यसिनिजंवपुः ।
तथैवस्वमधिष्ठानंलोकेगन्धर्वसंज्ञिते ।।५१
सोऽहंत्वयामहाभागमोक्षितोऽस्मान्महाभयात् ।
निशाचरत्वाद्धोरतेनमेप्रार्थनांकुरु ।।५२
इमांतेतनयांभार्याप्रयच्छामिप्रतीच्छताम् ।
आयुर्वेदश्चसकलस्त्वष्टांगोयोमयाततः ।
मुनेःसकाशात्संप्राप्तस्तंगृह्णीष्वमहामते ।।५३
इत्युक्त्वाप्रददौविद्यांसचदिव्याम्बरोज्ज्वलः ।
स्रग्भूषणधरोदिव्यंपौराणंवपुरास्थितः ।।५४
दत्त्वा विद्यांततःकन्यांसदातुमुपचक्रमे ।
तमाहसातदाकन्याजनितारस्वरूपिणम् ।।५५

हे गन्धर्व ! मेरा कहा हुआ तो मिथ्या नहीं होगा, परन्तु तू राक्षस होने के पश्चात् पुनः अपने शरीर को प्राप्त होगा ।।४६।। जब तू राक्षस होकर पुरानी बात भूलता हुआ क्रोधवश अपनी ही पुत्री का भक्षण करने को तत्पर होगा, तभी अस्त्रानल से संतप्त होकर ।।५०।। पुनः स्मृति लाभ करेगा और अपने उसी शरीर, गन्धर्वलोक और अधिकार को पूर्ववत् प्राप्त करेगा ।।५१।। हे महाभाग ! आपने मुझे इस घोर राक्षसत्व से मुक्त किया है, इसलिये मुझसे वर माँगो ।।५२।। हे महामते ! इस कन्या को मैं आपको प्रदान करता हूं, इसे पत्नी रूप में स्वीकार करो तथा मुनि से मुझे जिस अष्टांग आयुर्वेद की प्राप्ति हुई है, उसे भी मुझसे ग्रहण करो ।।५३।। मार्कण्डेयजी ने कहा—दिव्य वसन, दिव्य भूषण एवं माला तथा पूर्ववत् दिव्य देह को धारण किये हुए उस गन्धर्व ने ऐसा कहकर स्वरोचि को ।।५४।। सम्पूर्ण आयुर्वेद विद्या प्रदान की तथा

उसने जब कन्याशन का उद्यम किया तभी उस कन्या ने अपने स्वरूप को प्राप्त हुए पिता से कहा ॥५५॥

अनुरागोममाप्यत्रतातातीवमहात्मनि ।
दर्शनादेवसंजातोविशेषेणोपकारिणी ॥५६
किन्त्वेषामेसखीसाचमत्कृतेदुःखपीडिते ।
अतोनाभिलषेभोगान्भोक्तुमेतेनवैसमम् ॥५७
पुरुषैरपिनोशक्याकर्तुमित्थंनृशंसता ।
स्वभावरुचिरैर्मादृक्कथयोपित्करिष्यति ॥५८
साहृयथातेदुःखार्त्तेमत्कृतेवन्यकेपित ।
तथास्थास्यामिदुःखार्तातच्छोकानलतापिता ॥५९
आयुर्वेदप्रसादेनतेवरिष्येपुनर्नवे ।
सख्यौतवमहा..ोकसमुत्सृजसुमध्यमे ॥६०
ततःपित्रास्वयंदत्तातांकन्यांसविधानतः ।
उपयेमेगिरौतस्मिन्स्वरोचिश्चारुलोचनाम् ॥६१

इन महात्मा को देखते ही मेरा अनुराग इनके प्रति होगया था, और यह इस समय भी विशेष रूप से उपकारी है ॥५६॥ परन्तु मेरी दो सखियाँ मेरे ही कारण दुःख का भोग रही है, इसलिए इनके साथ सुख-भोग करना मेरे लिये अनुचित ही है ॥५७॥ जब पुरुष भी ऐसा कठोर व्यवहार नहीं कर सकते, तब मेरे जैसी सरल नारी ही वैसा कैसे कर सकती है ? ॥५८॥ जिस अवस्था में पड़ कर वह दोनो कन्याएँ दुःख भोग रही हैं, उसी प्रकार मैं भी दुःख में संतप्त होकर उन्हीं के समान दुःख भोगूँगी ॥५९॥ स्वरोचि बोले—हे सुमध्यमे ? शोक को छोड़ो. मैं आयुर्वेद के प्रभाव से तुम्हारी सखियों को रोग मुक्त करूँगा ॥६०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् स्वरोचि ने मन्दराचल में पिता-प्रदत्त उस सुशोभित नयन वाली कन्या के साथ विवाह किया ॥६१॥

दत्तातुतातदाकन्यामभिसान्त्व्यचभाविनीम् ।
जगामदिव्ययागत्यागन्धर्वःस्वपुरंततः ॥६२

सचापिसहितस्तन्व्यातदुद्यानंतदाययौ ।
कन्यकायुगलंयत्रतच्छापोत्थगदातुरम् ।।६३
ततस्तयोःसतत्त्वज्ञोरोगघ्नैरौषधैरसैः ।
चकारनीरुजेदेहेस्वरोचिरपिराजितः ।।६४
ततोऽतिशोभनेकन्येविमुक्तेव्याधितःशुभे ।
स्वकान्त्योज्ज्योतितिदिग्भागंचक्रातेतन्महीधरम् ।।६५

कन्यादान करके गन्धर्व उसे हर प्रकार से समझा कर दिव्य विमान पर चढ़ कर अपने लोक को गया ।।६२।। इधर स्वरोचि अपनी पत्नी के सहित वहाँ गये, जहाँ मनोरमा की दोनों सखियाँ रोगाक्रान्त हुई उद्यान में रह रही थीं ।।६३।। और आयुर्वेद के तत्वज्ञाता स्वरोचि ने रोग नाशक औषधियों के रसों से उन दोनों के शरीर को रोग रहित किया ।।६४।। तब उन अत्यन्त रूपवती कन्याओं की देह-कान्ति से पर्वत की सभी दिशाएँ प्रकाशित होने लगीं ।६५।

५६.... स्वरोचि के अन्य विवाह

एवबिमुक्तरोगातुकन्यकातंमुदान्विता ।
स्वरोचिषमुवाचेदंश्रृणुष्ववचनंप्रभो ।।१
मन्दारविद्याधरजानाम्नाख्याताविभावरी ।
उपकारिस्त्वमात्मानंप्रयच्छामिप्रतीच्छमाम् ।।२
विद्यांचतुभ्यंदास्यामिसर्वभूतरुतानिते ।
ययाभिव्यक्तिमेष्यन्तिप्रसादप्रवणोभव ।।३
एवमस्त्वितितेनोक्तेधर्मज्ञेनस्वरोचिषा ।
द्वितीयातुतदाकन्याइदंवचनमब्रवीत् ।।४
कुमारब्रह्मचार्यासीत्पारोनामपितामम ।
ब्रह्मर्षिःसुमहाभागोवेदेवेदांगपारगः ।।५

तस्यपुस्कोकिलालापरमणीयेमधौपुरा ।
आजगामाप्सरोभ्याशंप्रख्यातापुञ्जिकस्थला ॥६
कामवैक्लव्यतानीत सततदामुनिपुङ्गव ।
तत्सयोगेऽहमुत्पन्नातस्यामत्रमहाचले ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—मनोरमा की दोनों सखियों में से एक ने रोग-मुक्ति की प्रसन्नता से स्वरोचि के प्रति कहा कि मेरी बात सुनिये ॥१॥ मैं मन्दार नामक विद्याधर की कन्या विभावरी हूँ, आपने मेरा महान् उपकार किया है, उसके बदले में आपको अपना आत्मा ही अर्पित करती हूँ ॥२॥ तथा जिस विद्या के द्वारा सब प्राणियों के स्वर का ज्ञान होता है, वह भी आपको देती हूँ, उसे आप ग्रहण करिये ॥३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—धर्मज्ञाता स्वरोचि ने विभावरी की बात को स्वीकार कर लिया, इसके पश्चात् दूसरी कन्या ने उनसे कहा ॥४॥ मेरे पिता कुमारावस्था से ही ब्रह्मचर्य का आलम्बन करने वाले, वेद वेदांग के ज्ञाता ब्रह्मर्षि पार हैं ॥५॥ एक समय जब वसंत ऋतु प्राप्त हुई तब कामीजनों के मन को हरण करने वाले पुंस्कोकिल के मधुर स्वर से तपोवन गूँज रहा था तभी एक पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरा उनके निकट आगमन किया ॥६॥ इससे वह मुनिवर काम के वश में होगये और तब उस अप्सरा के गर्भ से मैं इसी महापर्वत में उत्पन्न हुई ॥७॥

विहायमामतासाचमातास्मिन्निर्जनेवने ।
बालामेकामहीपृष्ठेव्यालश्वापदसंकुले ॥८
ततः कलाभि सोमस्यवर्द्ध न्तीभिरहः क्षये ।
आप्यायमानाहरहोवृद्धियातास्मिसत्तम ॥९
ततः कलापतीत्येतन्ममनाममहात्मना ।
गृहीत्वाया कृतंपित्रागन्धर्वेणशुभात्मना ॥१०
नदत्ताहतदातेनयाचितेनमहात्मना ।
देवारिणानियामुमस्ततोमेघातित पिता ॥११
ततोऽहमतिनिर्वेदादात्मव्यापादनोद्यता ।
निवारितादम्भुपत्न्यासत्यासत्यप्रतिश्रवा ॥१२

माशुचःसुभ्र भर्त्तातेमहाभागोभविष्यति ।
स्वरोचिर्नामपुत्रश्चमनुस्तस्यभविष्यति ॥१३
आज्ञांचनिधयःसर्वेकरिष्यंतितवादृताः ।
यथाभिलषितंवित्तंप्रदास्यन्तिचतेशुभे ॥१४

फिर मेरी माता मुझे इस हिंसक जन्तुओं से परिपूर्ण निर्जन वन में एकाकी पड़ी छोड़ कर चली गयी ॥८॥ तब एक महात्मा गन्धर्व ने मेरा पालन किया, वहाँ शुक्ल पक्ष में वृद्धि को प्राप्त होती हुई शशिकला से परिपुष्ट होती हुई मैं बढ़ने लगी, परन्तु कृष्ण पक्ष में चन्द्रकला के क्षय होने पर भी मेरा क्षय न होता हुआ देखकर उस गन्धर्व ने मेरा नाम कलावती रखा ॥९-१०॥ कुछ काल के पश्चात् श्रलि नामक एक राक्षस मेरे पिता के पास आकर मुझे माँगने लगा और जब मेरे पिता ने उसकी याचना स्वीकार न की तो उसने रात्रि में शयन करते हुए मेरे पिता का वध कर दिया ॥११॥ मैं उस दुःख से संतप्त होकर आत्मघात को उद्यत हुई, तब भगवान् शिव की भार्या सती ने मुझे रोका ॥१२॥ उन्होंने कहा—तुम शोक को छोड़ दो, महाभ ग स्वरोचि तुम्हारे पति होंगे और उनका पुत्र मनु होगा ॥१३॥ सभी निधियाँ तुम्हारी आज्ञा का सदैव पालन करेंगी और तुम्हारे लिये इच्छित धन देंगी ॥१४॥

यस्याश्चत्सेप्रभावेणविद्यायास्तांगृहाणमे ।
पद्मिनीनामविद्ये यंमहापद्माभिपूजिता ॥१५
इत्याहमांदक्षसुतासतीसत्यपरायणा ।
स्वरोचिस्त्वश्र वंदेवीनान्यथासावदिष्यति ॥१६
साहंप्राणप्रदायायतांविद्यांस्वंतथावपुः ।
प्रयच्छामिप्रतीच्छत्वंप्रसादसुमुखोभव ॥१७
एवमस्त्वितितामाहसतुकन्यांकलावतीम् ।
विभावर्याःकलावत्याःस्निग्धदृष्टयानुमोदितः ॥१८
जग्राहचततःपाणीसतयोरमरद्यु तिः ।
ननृतुर्देवतूर्येषुनृत्यन्तीस्वप्सरःसुच ॥१९

सत्य परायणा दक्ष सुता का वचन मिथ्या नहीं हो सकता, इसलिये आप अवश्य ही वह स्वरोचि हैं ।।१६।। मैं आपको अपना शरीर, प्राण और विद्या समर्पित करती हूं, आप प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण करिये ।।१७।। मार्कण्डेयजी ने कहा—इस पर स्वरोचि ने 'ऐसा ही हो' कहा और विभावरी एव कलावती दोनों की अनुमति से ।।१८।। स्वरोचि ने उस कन्या का भी पाणिग्रहण कर लिया, उस समय दिव्य वाद्य बजने लगे और अप्सरायें नाचने लगी ।।१९।।

५७—चक्रवाक और मृग का तिरस्कार

तत सताभि सहितःपत्नीभिरमरद्यु ति ।
ररामतस्मिञ्छैलन्द्रे रम्य काननिर्झरे ।।१
सर्वोपभोगरत्नानिमघूनिमधुराणिच ।
निधय समुपाजग्म् पद्मिन्यावशवर्तिन. ।।२
तजोवस्त्राण्यलङ्कारान्गधाढयमनुलेपनम् ।
आसनान्यतिशुभ्राणिकाचनानियथेच्छया ।।३
सौवर्णानिमहाभागकरकान्भाजनानिच ।
तथाशय्याश्चविविधादिव्यैरास्तरणैर्यु ता ।।४
एवसताभिःसहितोदिव्यगन्धाधिवासिते ।
ररामस्वरुचिर्भाभिर्भासितेवरपर्वते ।।५
ताश्चापिसहतेनेतिलेभिरेमुदमुत्तमाम् ।
रममाणायथास्वर्गेतयातत्रशिलोच्चये ।।६
कलहसीजगादेकाचक्रवाकीजलेसतीम् ।
तस्यतामाचललितेसम्बन्धेचस्पृहावती ।।७

मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर अमर दीप्ति वाले स्वरोचि अपनी तीनों पत्नियों के साथ मलयाचल के उस सुरम्य वन एव निर्झर स्थानों में विहार करने लगे ।।१।। पद्मिनी विद्या के वश में हुई निधियाँ उपभोगार्थ नाना प्रकार

के रत्न एवं मधुर मद्य ॥२॥ माला, वस्त्राभूषण, सुगन्धित लेप, आसन, चाँदी एवं स्वर्ण ॥३॥ तथा स्वर्ण के विभिन्न पात्र, दिव्य बिछौनों से युक्त शय्या एवं अन्य द्रव्य उन्हें प्रदान करने लगीं ॥४॥ इस प्रकार वह स्वरोचि दिव्य गंधादि से सुवासित और रत्नादि से सुशोभित पर्वतीय प्रदेश में तीनों पत्नियों के साथ विहार-रत हुए ॥५॥ उस स्वर्ग तुल्य रमणीक श्रेष्ठ पर्वत में विहार करती हुई तीनों भार्या भी अत्यन्त सुखी हुईं ॥६॥ उस समय उनको इस प्रकार प्रणय युक्त विहार करते देखकर एक कलहंसी ने जल में स्थित अन्य चक्रवाकी के प्रति कहा ॥७॥

धन्योऽयमतिपुण्योऽयंयोऽयंयौवनगोचरः ।
दयिताभिःसहैताभिर्भुङ्क्ते भोगानभीप्सितान् ॥८
सन्तियौवनिनःश्लाघ्यास्तत्पत्न्योनातिशोभनाः ।
जगत्यामल्पकाःपत्न्यःपतयश्चातिशोभनाः ॥९
अभीष्टाकस्यचित्कान्ताकान्तःकस्याश्चिदीप्सितः ।
परस्परानुरागाढ्यं दाम्पत्यमतिदुर्लभम् ॥१०
धन्योऽयंदयिताभीष्टोह्येताश्चास्यातिवल्लभाः ।
परस्परानुरागोहिधन्यानामेवजायते ॥११
एतन्निशम्यवचनंकलहंसीसमीरितम् ।
उवाचचक्रवाकीतांनातिविस्मितमानसा ॥१२
नायंधन्योयतोलज्जानान्यस्त्रीसन्निकर्षतः ।
अन्यांस्त्रियमयंभुङ्क्तेनसर्वास्वस्यमानसम् ॥१३
चित्तानुरागएकस्मिन्नधिष्ठानेयतःसखि ।
ततोतिप्रीतिमानेषभार्यासुभविताकथम् ॥१४

इन स्त्रियों के साथ समस्त इच्छित भोगों को भोगने वाला यह युवक ही धन्य है ॥८॥ संसार में रूप और यौवन से सम्पन्न ऐसे अनेक पुरुष हैं, जिनकी भार्या असुन्दर हैं, ऐसे दम्पत्ति कोई विरले ही हैं, जो पति-पत्नी दोनों ही सौन्दर्य से शोभायमान हों ॥९॥ कोई पति अपनी पत्नी में और कोई पत्नी अपने पति में अनुरक्त हैं, परन्तु समान आसक्ति वाले स्त्री-पुरुष कठिनता से ही

मिलते हैं ॥१०॥ इसलिये अपनी पत्नियों के यह प्रियतम और इनकी प्रियतमा पत्नियाँ भी धन्य हैं, क्योंकि कृतकृत्य प्राणियों में ही परस्पर अनुराग की उत्पत्ति होती है ॥११॥ कलहंसी की बात से चक्रवाकी अधिक विस्मित नहीं हुई, उसने कहा ॥१२॥ यह स्वरोचि धन्य नहीं हो सकते क्योंकि एक स्त्री के सामने ही दूसरी से विहार करते हैं, इसलिये इन्हें किंचित् भी लज्जा नहीं आती, सब पत्नियों के प्रति इनकी समान रुचि भी नहीं है ॥१३॥ जब चित्त का अनुराग एक ही में अवस्थान करता है, तब यह स्वरोचि सब पत्नियों में समान अनुराग कैसे रख सकते हैं ॥१४॥

एतानदयिता पत्युर्नैतामादयित पति ।
विनोदमात्रमेवतायथापरिजनोपर ॥१५
एतासाचयदीष्टोऽयस्तत्विभाणान्नमुञ्चति ।
आलिङ्गत्यपरावान्ताव्यातोवैकान्तयान्यया । १६
विद्याप्रदानमूल्येनक्रीनोह्म पसुभृत्यवत् ।
प्रवर्त्ततोनहिप्रेमसमवह्वीपुतिष्ठति ॥१७
कलहंसिपतिर्धन्योममधन्याहमेवच ।
यस्यैकस्याचिरचित्तयस्यादकैक असस्थितम् ॥१८
बहुपत्नीपतिर्लोक शरणपुण्यपापयोः ।
गृहाशनामनार्थं अभूपर्गांश्चसहागमे ॥१९
विषमं क्रियमाणेहियुज्यतेमहदेनसा ।
ज्येष्ठाकनीयभावेनकनिष्ठाज्येष्ठतानयेत् ॥२०
गुरवेतुवरदत्वाहुत्वान्यासमिधयथा ।
ऊढयासहकर्त्तव्यानित्यनैमित्तिकी क्रिया ॥२१

इनकी यह सब पत्नियाँ प्रियतमा नहीं हैं और न उन सबको ही यह समान रूप से प्रिय हैं, जैसे चित्त को विनोद प्राप्त हो सके उसी विनोद की सामग्री यह पत्नियाँ भी हैं ॥१५॥ यदि यह सब में समान प्रीति वाले होते तो सबको सब समय सन्तुष्ट करने में समर्थ होकर क्या इतने काल पर्यन्त जीवित रह सकते थे, इनमें परस्पर का अनुराग और समान प्रेम कहाँ से हो सकता

है ? ।।१६। यह स्वरोचि विद्या प्राप्ति के मूल्य में बिक कर पत्नियों के समक्ष भृत्य के समान ही हैं, सभी पत्नियों में प्रेम का समान भाव से रहना सम्भव नहीं है ।।१७।। हे सखी ! धन्य तो मैं हूँ और मेरे पति हैं, क्योंकि मैं ही उनकी एकमात्र भार्या हूँ, उनके चित्त का अनुराग मेरे ही प्रति है और मैं भी उन्हीं में अनुरक्त हूँ ।।१८।। अनेक भार्याओं का पति पुण्य और पाप का कारण है, गृह निवासिनी के शब्दायमाल आभूषणों से और विषम शास्त्रों के द्वारा हुए निश्चय से ।।१६।। युक्त मनुष्य विषमता के कारण महापापी होता है, तथा बड़ी को छोटी और छोटी को बड़ी मानने से ।।२०।। तथा गुरु को दक्षिणा के रूप में वर देकर समिधाओं के द्वारा हवन करने जैसा है, विवाहिता पत्नी के सहित नित्य नैमित्तिक कर्मों को करे ।।२१।।

जगादाथान्यभावेनपापीयाञ्जायतेनरः ।
सर्वसत्त्वरुतज्ञोऽसौस्वरोचिरपराजितः ।।२२
निशम्यलंज्जितोदध्यौसत्यमेवहिनानृतम् ।
ततोवर्षशतेयातेरममाणोमहागिरौ ।
रममाणःसमन्ताभिर्ददर्शपुरतोमृगम् ।।२३
सुस्निग्धपीनावयवंमृगीयूथविहारिणम् ।
वासिताभिःस्वरूपाभिर्मृगीभिःपरिवारितम् ।।२४
आकृष्टघ्राणपुटकाजिघ्रन्तीस्तास्ततोमृगीः ।
उवाचसमृगोऽलंवोलज्जात्यायेनगम्यताम् ।।२५
नाहंस्वरोचिस्तच्छीलोनचैवाहंसुलोचनाः ।
निर्लज्जावहवःसन्तितादृशास्तत्रगच्छत ।।२६
एकात्वनेकानुगतायथाहासास्पदंजने ।
अनेकाभिस्तथैवैकोभोगदृष्ट्यानिरीक्षितः ।।२७
तस्यधर्मक्रियाहानिरहन्यहनिजायते ।
सक्तोऽन्यभार्ययाचान्यकामासक्तःसदैवसः ।।२८
यस्तादृशोऽन्यस्तच्छीलःपरलोकपराङ्मुखः ।
तंकामयतभद्रंवोनाहंतुल्यःस्वरोचिषा ।।२९

अन्य प्रकार से करने वाला पापी कहा जाता है, मार्कण्डेयजी ने कहा—सब जीवों की वार्ता को समझने वाले पराजय-रहित स्वरोचि ॥२२॥ उनकी बात सुनकर लज्जित हुए और विचारने लगे कि इसका वचन सत्य है, इसमें अनृत कुछ भी नहीं है, फिर भी उस महाचल में पत्नियों के संग विहार करते हुए उन्हें सौ वर्ष व्यतीत होगये, तदनन्तर एक दिन जब पत्नियों के साथ विहार रत थे तभी उन्होंने सामने स्थित ॥२३॥ एक स्थूलकाय, सर्वाङ्ग पुष्ट मृगी-यूथ के साथ विहार करने वाले एक मृग को देखा, वह चारों से अपनी समान आयु वाली मृगियों से घिरा हुआ था ॥२४॥ तब नासिका सिकोड़ कर मृग के शरीर को सूंघती हुई मृगिया को देखकर मृग ने उनसे कहा—अरी मृगियो ! तुमने लज्जा छोड़ दी है, इसलिये अब और कहीं जाओ ॥२५॥ हे सुन्दर नयन वालियो ! मैं स्वरोचि नहीं हूँ और न मेरा स्वभाव ही उनके जैसा है, उनके समान अनेक लज्जाहीन पुरुष मिल सकते हैं, तुम उन्हीं के पास जाओ जैसे एक स्त्री अनेक पुरुषों की अनुगामिनी होने पर समाज में हँसी के योग्य होती है, वैसे ही अनेक स्त्रियों से विहार करने वाला पुरुष भी हास्यास्पद होता है ॥२७॥ उसकी नित्यक्रिया नष्ट हो जाती है, वह पत्नी के साथ रहकर भी अन्य स्त्रियों की सदा इच्छा करता रहता है ॥२८॥ इसलिये परलोक से विमुख स्वभाव वाले स्वरोचि जैसा कोई अन्य पुरुष हो तुम उसी के पास जाओ, मैं वैसा नहीं हूँ ॥२९॥

५८—स्वारोचिष मनु की उत्पत्ति

एवंनिरस्यमानास्ता हरिणेनमृगाङ्गना ।
श्रुत्वास्वरोचिरात्मानमेनेमपतितयथा ॥१
त्यागेचकारचमन सतामामुनिसत्तम ।
चक्रवाकोमृगप्रोक्तो मृगचर्याजुगुप्सित ॥२
समेत्यताभिर्भू यश्चवर्द्ध मानमनोभव ।
आक्षिप्तनिर्वेदस्योरेमेवर्षशतानिषट् ॥३

किन्तुधर्माविरोधेनकुर्वन्धर्माश्रिताःक्रियाः ।
भुङ्क्तेस्वरोचिर्विषयान्सहताभिरुदारधीः ।।४
ततश्चजज्ञिरेतस्यत्रयःपुत्राःस्वरोचिषः ।
विजयो मेरुनन्दश्चप्रभावश्चमहाबलः ।।५
मनोरमाचविजयंप्रासूतेन्दीवरात्मजा ।
विभावरीमेरुनन्दंप्रभावंचकलावती ।।६
पद्मिनीनामयाविद्यासर्वभोगोपपादिका ।
सतेषांतत्प्रभावेणपिताचक्रेपुरत्रयम् ।।७

मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार उस मृग के द्वारा वे हरिणियाँ निराश हुईं और इस वार्ता को सुनकर स्वरोचि ने स्वयं को पतित समझा ।१। हे मुनिवर ! चक्रवाकी और मृग द्वारा ऐसी निन्दा को पाकर तथा मृग के आचरण को देखकर अपने को निन्दित समझा और पत्नियों को त्यागने का विचार किया ।।२।। परन्तु पत्नियों से मिलते ही पुनः काम की प्रवृत्ति के सबल होने से उनका विरक्त भाव नष्ट होगया और इसके पश्चात् उन्होंने छः सौ वर्ष तक पत्नियों के साथ विहार किया ।।३।। परन्तु जब वे विषय-रत होते तब वे अपने धर्म-मार्गानुसार सभी क्रिया यथा विधि सम्पन्न करते थे ।।४।। फिर उनके विजय, मेरुनन्द और प्रभाव नाम तीन अत्यन्त बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए ।।५।। इन्दीवर की पुत्री मनोरमा से विजय, विभावरी से मेरुनन्द और कलावती से प्रभाव की उत्पत्ति हुई थी ।।६।। सर्व भोगों का सम्पादन करने वाली पद्मिनी विद्या के प्रभाव से स्वरोचि ने तीन पुरों की रचना की ।।७।।

प्राच्यांतुविजयंनामकामरूपेनगोत्तमे ।
विजयायसुतायादौसददौपुरमुत्तमम् ।।८
उदीच्यांमेरुनंदस्यपुरींनन्दवतीमिति ।
ख्यातांचकारप्रत्तुङ्गवप्रप्राकारमालिनीम् ।।९
कलावतीसुतस्यापिप्रभावस्यनिवेशितम् ।
पुरंतालमितिख्यातंदक्षिणापथमाश्रितम् ।।१०

एवंनिवेश्यपुत्रान्सपुरेषुपुरुषर्षभः ।
रेमेनाभि समविप्रमनाज्ञास्त्वद्रिभूमिषु ॥११
एकदातुगतोऽरण्येविहरन्सधनुर्द्धरः ।
चरपंधनुरालोक्यवराहमतिदूरगम् ॥१२
अथाहकाचिदभ्येत्यततदाहरिणांगना ।
मय्ययंपात्यताबाणः प्रसीदेतिपुनः पुनः ॥१३॥
किमनेनहतनाद्यमामाशुविनिपातय ।
त्वयानिपातितोबाणोदुःखान्मामोक्षयिष्यति ॥१४

पूर्व दिशा में कामरूप पर्वत पर विजय नामक पुर बनाकर विजय को ॥८॥ उत्तर दिशा में अत्यन्त ऊँची प्राचीरों वाला नन्दवती नामक पुर मेरुनन्द को दिया ॥९॥ और दक्षिण में ताल नामक पुर बनाकर प्रभाव को प्रदान किया ॥१०॥ इस प्रकार पुरुष श्रेष्ठ स्वरोचि ने तीनों पुत्रों उन तीनों पुरों में बसा कर पत्नियों सहित अत्यन्त सुरम्य प्रदेशों में विहार किया ॥११॥ एक दिन धनुष ग्रहण करके विहार करते हुए बहुत दूर पर उन्होंने एक वाराह को देखकर शर सधान किया ॥१२॥ तभी एक हरिणी वहाँ आई और वह बारबार प्रार्थना करने लगी—'मुझ पर प्रसन्न होकर इस बाण को मुझ पर चलाओ ॥१३॥ इस वाराह का वध किया जाना व्यर्थ होगा, इसलिये आप मुझ पर अपना बाण चला कर मुझे दुःख से छुडाइये ॥१४॥

ननेशरीरमरुजमस्माभिरुपलक्ष्यते ।
किन्नुतत्कारणयनत्वप्राणान्हातुमिच्छसि ॥१५
अन्यास्वासक्तहृदयेयस्मिश्चेतःकृतास्पदम् ।
ममतेनविनामृत्युरौषधंकिमिहापरम् ॥१६
कस्त्वानाभिलषेद्धीरुसानुरागासिकुत्रवा ।
यदप्राप्तौनिजान्प्राणान्परित्यक्तुंव्यवस्यसि ॥१७
त्वामिच्छामिभद्रं तेत्वयामेऽपहृतमनः ।
वृणोम्यहमतोमृत्युं मयिबाणोनिपात्यताम् ॥१८

त्वंमृगीचंचलापांगीनररूपधरावयम् ।
कथंत्वयासंमयोगोमद्विधस्यभविष्यति ॥१९
यदिसापेक्षितंचित्तंमयितेमांपरिष्वज ।
यदिवासाधुचित्तंतेकरिष्यामियथेप्सितम् ॥२०
एतावताहंभवताभविष्याम्यतिमानिता ।
आलिलिंगततस्तांसस्वरोचिर्हरिणांगनाम् ॥२१

स्वरोचि बोले—तेरा देह किसी प्रकार भी रोग ग्रस्त प्रतीत नहीं होता फिर तू क्यों अपना देह त्यागना चाहती है ? ॥१५। मृगी ने कहा—मेरा चित्त उसके प्रति आसक्त है, जिसका चित्त किसी अन्य नारी में अनुरक्त हुआ है, इस लिये उसे प्राप्त न करने रूप रोग की एक मात्र औषधि आपके बाण से प्राण त्याग करना ही है ॥१६॥ स्वरोचि बोले—मुझे कौन नहीं चाहता ? तू किस के प्रति आसक्ति वाली हुई है ? जिसके प्राप्त न होने से तू प्राण त्याग करने को दृढ़ निश्चय है ॥१७॥ मृगी ने कहा—आपने मेरा चित्त चुरा लिया है मैं आपकी ही अभिलाषा करती हूं, इसी लिये प्राण त्याग के लिये तत्पर हुई हूँ, आप शीघ्र ही मुझ पर बाण चलाइये ॥१८॥ स्वरोचि बोले—तू चपल अङ्ग वाली मृगी है और मैं मनुष्य शरीर में हूँ, इस लिये मेरा तुम्हारा संग किस प्रकार संभव है ? ॥१९॥ मृगी ने कहा—यदि मेरे प्रति आपके चित्त में भी अनुराग है तो मुझे आलिंगन प्रदान करिये यदि आप साधु चित्त वाले हैं तो मैं आपके इच्छित कार्य को सम्पादित करूँगी ॥२०॥ इस प्रकार मैं आपके द्वारा अत्यन्त सम्मान को प्राप्त हूँगी, मार्कण्डेयजी ने कहा—यह सुन कर स्वरोचि ने उस मृगी का आलिंगन किया ॥२१॥

तेनचालिंगितासद्यःसाभूद्दिव्यवपुर्धरा ।
ततःसविस्मयाविष्टःकात्वमित्यभ्यभाषत ॥२२
साचास्मैकथयामासप्रेमलज्जाजडाक्षरम् ।
अहमभ्यर्थितादेवैःकाननस्यास्यदेवता ॥२३
उत्पादनीयोहिमनुस्त्वयामयिमहामते ।
प्रीतिमत्यांमयिसुतंभूर्लोकपरिपालकम् ॥२४

तमुत्पादयदेवानाराख्यामहंवचनाद्वदे ।
तत सतस्यातनयसर्वलक्षणलक्षितम् ॥२५
तेजस्विनमिवात्मानजनयामासतत्क्षणात् ।
जातमात्रस्यतस्याथदेववाद्यानिसस्वनु ।
जगुर्गन्धर्वपतयोननृतुश्चाप्सरोगणा ॥२६
सिषिचु शीकरैर्मेघाश्चपयश्चतपोधना ॥२७
देवाश्चपुष्पवर्षचमुमुचश्चसमन्तत ।
तस्यतेज भमालोक्यनामचक्रे पितास्वयम् ॥२८
द्यु तिमानितियेनास्यतेजसाभासितादिश ।
सवालोद्यु तिमाद्यामहावलपराक्रम ॥२९

उनका आलिंगन प्राप्त करते ही वह मृगी उसी समय दिव्य शरीर धारण करके एक सुन्दर नारी हो गई, इस पर स्वरोचि ने अत्यन्त विस्मय पूर्वक उससे कहा 'तुम कौन हो ? ॥२२॥ तब उस मृगी ने लज्जा और प्रेम से गद्गद हो कर कहा कि मैं इस वन की अधिष्ठात्री देवी हूँ और देवताओं से प्रार्थित हो कर तुम्हारे निकट आई हूँ ॥२३॥ हे महामते ? मैं तुम पर अनुरक्त हुई हूँ मुझ से तो मनु को उत्पन्न करना तुम्हारे लिये कर्त्तव्य है, इस लिये उस भूर्लोक परिपालक पुत्र को मुझ से उत्पन्न करिये ॥२४॥ यह बात मैंने देवताओं के वचनः के अनुसार ही कही है, मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर स्वरोचि ने उस वन देवी के गर्भ से अपने ही समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया, उसके उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण वाद्य बजने लगे, गन्धर्वपति गायन करने लगे और अप्सराएं नृत्य करने लगी ॥२५-२६॥ दिशाओं से हाथी जल सींचने लगे और तपोधन ऋषि ॥२७॥ तथा देवता सब ओर पुष्प बरसाने लगे, उस बालक के तेज से सभी दिशाएँ प्रकाशित हो उठी, ऐसी अग दीप्ति देख कर स्वरोचि ने पुत्र का ॥२८॥ नाम द्युतिमान् रखा , यह बालक अत्यन्त बली और हुआ ॥२९॥

स्वरोचिष सुतोयस्मात्तस्मात्स्वारोचिषोऽभवत् ।
सचापिविचरश्रम्येक्दाचिद्गिरिनिर्झरे ॥३०

स्वरोचिर्ददृशेहंसंनिजपत्नीसमन्वितम् ।
उवाचसतदाहंसींताभिलाषांपुनःपुनः ॥३१
उपसंह्रियतामात्माचिरंतेक्रीडितंमया ।
किंसर्वकालंभोगैस्तेआसन्नं चरमंवयः ॥३२
परित्यागस्यकालोमेतवचापिजलेचरि ।
अकालःकोहिभोगानांसर्वंभोगात्मकंजगत् ॥३३
यज्ञाःक्रियन्तेभोगार्थंब्राह्मणैःसंयतात्मभिः ।
दृष्टादृष्टांस्तथाभोगान्वाञ्छमानाविवेकिनः ॥३४
दानानिचप्रयच्छन्तिपूतान्धर्मांश्चकुर्वते ।
सत्वंनेच्छसिकिंभोगान्भोगश्चेष्टफलंनृणाम् ॥३५

स्वरोचि का पुत्र होने के कारण उसे स्वारोचिप भी कहा जाने लगा, फिर किसी एक समय सुरम्य पर्वत और निर्झर में भ्रमण करते हुए ॥३०॥ उन स्वरोचि ने अपनी भार्या के सहित एक हंस को देखा, वह कामया हँसी से कह रहा था ॥३१॥ हे हंसी ! अपने मन को अब निवृत्त कर, मैंने तेरे साथ बहुत समय तक विहार किया है, अब सदैव ही भोग-रत रहने से क्या लाभ है, क्यों कि वृद्धावस्था आ गई है ॥३२॥ यह हमारे द्वारा विषय भोगों के त्यागे जाने का समय उपस्थित है, इस पर हंसी ने कहा--भोग का समय-असमय क्या है, देखो यह सम्पूर्ण विश्व भोगमय ही है ॥३३॥ क्यों कि संयतात्मा ब्राह्मण भोग की इच्छा से ही यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं तथा ज्ञानीजन भी दृष्ट-अदृष्ट भोगों की अभिलाषा करते हुए ॥३४॥ दान और पूर्व के धर्म में लगे रहते हैं, जब ऐसे व्यक्तियों का भी कर्म फल भोग ही है तो तिर्यक् योनि वालों के विषय में कहा ही क्या जाय ? ॥३५॥

विवेकिनांतिरश्चांचकिंपुनःसंयतात्मनाम् ।
भोगेष्वासक्तचित्तानांपरमार्थान्वितामतिः ।
भविष्यतिकदासंगमुपेतानांचबन्धुषु ॥३६
पुत्रमित्रकलत्रेषुसक्ताःसीदन्तिजन्तवः ।
सरःपङ्कार्णवेमग्नाजीर्णावनगजाइव ॥३७

किनपश्यसिनाभद्रेजातसङ्गंस्वरोचिषम् ।
श्राबाल्यात्त्वाममसक्त मग्नस्नाहाम्बुकर्दमे ॥३८
यौवनस्नात्रभायामुमाम्पतपुत्रनप्तृषु ।
स्वराचिषोमनोमग्नमुद्धारप्राप्स्यतकुत ॥३६
नाहस्वराचिषतुल्य स्त्रीवश्योवाजलेचरि ।
विवक्त्वाश्चभागानानिवृत्तोऽस्मिचसाम्प्रतम् ॥४०
स्वराचिरनदाकर्ण्यजाताद्व ग स्वर्गेरितम् ।
श्रादायभार्यास्तिस्रमययावन्यत्तपोवनम् ॥४१
तस्रतप्त्वातपाघारसहताभिरदारधी ।
जगामनाकानमनानिवृत्ताखिनकल्मष ॥४२

इस लिये तुम उस भाग को क्या नहीं चाहते ? हंस बोला—भोगों में जिनकी जिस वृत्ति नहीं उनकी मति परमात्मा की अनुगामिनी है बाँधवों के समान वाले मनुष्य की बुद्धि क्या कभी इस प्रकार की हो सकती है ? ॥३६॥ पुत्र मित्र और कलत्र में आसक्ति वाले जीव सरोवर के पङ्क में फँसे हुए जंगली हाथी के समान नष्ट हो जाते रहते हैं ॥३७॥ हे भद्रे ! क्या तुमने बाल्यावस्था से कामासक्त एवं स्नेह पङ्क में फँसे हुए स्वरोचि को नहीं देखा है ? ॥३८॥ यौवनवती पत्नियों पुत्रों और पौत्रों में डूबे हुए उस स्वरोचि का मन किस प्रकार उद्धार को प्राप्त हो सकेगा ? ॥३९॥ उस स्वरोचि के समान मैं स्त्रियों के अधीन नहीं हूँ और सब भोगों का परित्याग करता हूँ ॥४०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हंस के यह वचन सुन कर स्वरोचि अपनी तीनों पत्नियों को साथ लेकर तप करने के उद्देश्य से तपोवन को प्राप्त हुए ॥४१॥ वहाँ उन्होंने पत्नियों के सहित घोर तप किया और सभी पापों से मुक्त होकर मन रहित नाक को गये ॥४२॥

५६—स्वारोचिष मन्वन्तर कथन

ततःस्वारोचिषंनाम्नाद्य ुतिमन्तंप्रजापतिम् ।
मनुं चकारभगवांस्तस्यमन्वन्तरंश्रृणु ॥१
तत्रान्तरेतुयेदेवामुनयस्तत्सुताश्चये ।
भूपालाःक्रौष्टुकेयेतान्गतस्त्वंनिशामय ॥२
देवाःपारावतास्तत्रतथैवतुषिताद्विज ।
स्वारोचिषेऽन्तरेचेन्द्रोविपश्चिदितिविश्रुतः ॥३
ऊर्जस्तम्बस्तथाप्राणोदत्तोलिर्ऋषभस्तथा ।
निश्चरश्चार्ववीरांश्चतत्रसप्तर्षयोऽभवन् ॥४
चैत्रकिंपुरुषाद्याश्चसुतास्तस्यमहात्मनः ।
सप्तासन्सुमहावीर्याःपृथिवीपरिपालकाः ॥५
तस्यमन्वन्तरंयावत्तावत्तद्वंशविस्तरे ।
भक्तयमवनिःसर्वाद्वितीयंवै तदन्तरम् ॥६
स्वरोचिषस्तुचरितंजन्मस्वारोचिषस्यच ।
निशम्यमुच्यतेपापैःश्रद्दधानोहिमानवः ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् भगवान् ने स्वारोचिष अर्थात् द्युतिमान् नामक प्रजापति को मनु बनाया अब उनके मन्वन्तर का वर्णन सुनो ॥१॥ हे क्रौष्टुके ! उस स्वारोचिष मन्वन्तर में जो देवता, मुनि, मनु पुत्र राजा आदि हुए, उनके विषय में कहता हूँ, उसे सुनो ॥२॥ हे द्विज ! उस स्वारोचिष मन्वन्तर में देवताओं को पारावत और तुषित तथा इन्द्र को विपश्चित् कहा जाता था ॥३॥ ऊर्ज, स्तम्ब, प्राण, दत्तोलि, ऋषभ, निश्चर और अर्ववीरी नामक यह सप्तर्षि थे ॥४॥ उन स्वारोचिष मनु के चैत्र और किम्पुरुष आदि नाम वाले सात पुत्र पराक्रमी एवं पृथिवी का पालन करने वाले थे ॥५॥ उन का मन्वन्तर जितने दिन का था, तब तक उनके वंशधरों ने पृथिवी का भार भोगा, मन्वन्तरों में स्वारोचिष मन्वन्तर द्वितीय है ॥६॥ स्वरोचि का चरित्र

और स्वारोचिष मनु की उत्पत्ति को जो कोई श्रद्धा पूर्वक श्रवण करता है, वह पापों से मुक्त होता है ॥७॥

६०–निधि-निर्णय

भगवन्कथितमेतद्विस्तरेणत्वयामम ।
स्वरोचिषस्तुचरितजन्मस्वारोचिषस्यतु ॥१
यात्वसौपद्मिनीनामविद्याभोगोपपादिका ।
तत्संश्रयायेनिधयस्तान्मेविस्तरतोवद ॥२
अष्टायनिधयस्तेषांस्वरूपंद्रव्यसंस्थिति ।
भवताभिहितंसम्यक्श्रोतुमिच्छाम्यहंगुरो ॥३
पद्मिनीनामयाविद्यालक्ष्मीस्तस्याश्चदेवता ।
तदाधाराश्चनिधयस्तान्मेनिगदतः शृणु ॥५
तत्रपद्ममहापद्मौतथामकरकच्छपौ ।
मुकुन्दोनन्दकश्चैवनीलः शङ्खोऽष्टमोनिधिः ॥८
सत्यामृद्धौभवन्त्येतेसिद्धिस्तथाहिजायते ।
एतेह्यष्टौसमाख्यातानिधयस्तवक्रोष्टुके ॥६
देवतानांप्रसादेनसाधुसंसेवनेनच ।
एभिरालोकितंवित्तं मानुषस्यसदामुने ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हे भगवन् ! आपने स्वरोचि का चरित्र और स्वारोचिष मनु की उत्पत्ति का वर्णन विस्तार पूर्वक मुझसे किया है ॥१॥ परन्तु सर्व भोगों का सम्पादन करने वाली पद्मिनी विद्या की आश्रिता निधियों का वर्णन भी विस्तार सहित कहिए ॥२॥ हे गुरो ! अष्ट निधियों का स्वरूप और द्रव्य में स्थिति को भी सम्यक् प्रकार से आपके मुख से सुनने की इच्छा है ॥३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पद्मिनी विद्या की अधिष्ठात्री लक्ष्मीजी हैं, यह विद्या अष्ट निधियों की आश्रय स्वरूपिणी है, इनके विषय में कहता हूँ, तुम श्रवण

करो ।।४।। पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्दक, नील और शङ्ख यह आठों निधि उस विद्या की आश्रिता हैं ।।५।। समृद्धि होने से ही इन निधियों की सिद्धि प्राप्त होती है, हे क्रौष्टुके ! तुम्हें यह आठ प्रकार की निधियाँ बताई गई हैं ।।६।। हे मुने ! देव प्रसाद और साधु सेवा के फल से मनुष्य का वित्त इन निधियों के द्वारा सदैव आलोकित होता है ।।७।।

याहृक्स्वरूपंभवतितन्मेनिगदतःशृणु ।
पद्मोनामनिधिःपूर्वसयस्यभवतिद्विज ।।८
सतस्यतत्सुतानांचतत्पौत्राणांचनित्यशः ।
दाक्षिण्यसारःपुरुषस्तेनचाधिष्ठितोभवेत् ।।९
सत्वाधारोमहाभागोयतोऽसौसात्त्विकोनिधिः ।
सुवर्णरूप्यताम्रादिधातूनांचपरिग्रहम् ।।१०
करोत्यतितरांसोऽथतेषांचक्रयविक्रयम् ।
करोतिचतथायज्ञान्दक्षिणांचप्रयच्छति ।।११
(संपादयतिकामांश्चसर्वानेवयथाक्रमम् ।।)
सभांदेवनिकेतांश्चसकारयतितन्मनाः ।
सत्वाधारोनिधिश्चान्योमहापद्मइतिश्रुतः ।।१२
सत्वप्रधानोभवतितेनचाधिष्ठितोनरः ।
करोतिपद्मरागादिरत्नानांचपरिग्रहम् ।।१३
मौक्तिकानांप्रवालानांतेषांचक्रयविक्रयान् ।
ददातियोगशीलेभ्यस्तेषामावसथांस्तथा ।।१४
सकारयतितच्छीलःस्वयमेवचजायते ।
तत्प्रसूतास्तथाशीलाःपुत्रपौत्रक्रमेणच ।।१५

इनका जो स्वरूप है, वह बताता हूँ—पद्म नामक निधि सदा ही मय दानव के पास थी ।।८।। फिर उसके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र के पास रही, इस निधि के अधिष्ठान से पुरुष चातुर्य एवं ।।९।। सत्वगुण से सम्पन्न और अत्यन्त भोगवान् होता है, क्योंकि यह निधि सतोगुण से युक्त हैं, इस निधि से सम्पन्न पुरुष सुवर्ण, रजत, ताम्रादि सब धातुओं का परिग्रह ।।१०।। तथा क्रय-विक्रय

करता है तथा बहुत से विपुल दक्षिणा वाले यज्ञों का अनुष्ठान करता है ॥११॥ (क्रम पूर्वक सब अभिलाषाओं को पूर्ण करने मे समर्थ होता है) तथा एकाग्र चित्त से सभा भवन और देव मन्दिर निर्मित कराता है, महापद्म नामक निधि सत्वाधार के नाम से विख्यात है ॥१२॥ उससे अधिष्ठित मनुष्य भी सतोगुण प्रधान होता है तथा पद्मराग आदि रत्नों को संचित करने वाला होता है ॥१३॥ और मुक्ता आदि का क्रय-विक्रय करता है एवं योगियों को उनका स्थान देता ॥१४॥ तथा साधारण व्यक्तियों को योगाभ्यास के लिए उत्साहित करता है और स्वयं भी योग में तत्पर रहता है, उसके पुत्र, पौत्रादि वंशधर भी उसी के समान होते हैं ॥१५॥

पूर्वद्विमात्र सप्तासोपुरुषाश्चनमु चति ।
तामसोमकरोनामनिधिस्तेननावलोकित ॥१६
पुरुषोऽप्यनम प्राय सुशीलोऽपिहिजायते ।
बाणनद्गर्ष्टिनुयाचर्मसंग्रहपरिग्रहम् ॥१७
दशनानाचयुरनेयोतिमैत्रीचराजभिः ।
ददातिशौर्यवृत्तीनाभूभुजायेचनत्प्रिया ॥१८
क्रयविक्रयेचशस्त्राणांनान्यत्रप्रीतिमेतिच ।
एवस्यैवभवत्येपनरस्यनमुनानुग ॥१६
द्रव्यार्थदस्युनानाशमथाभेवापिसव्रजेत् ।
मच्छपश्चनिधियोंऽसौनरस्तनाभिवीक्षित ॥२०
सम प्रधानाभवतियनोऽसौनामसोनिधि ।
व्यवहारानशेपास्तुपुण्यजाते करोतिच ॥२१
मर्मस्थानश्चिनात्यंचनचिरमितिवस्यचित् ।
ममस्तानियथाद्वानिसहस्त्येवकच्छप. ॥२२

यह महापद्म नामक निधि पूर्व के अपेक्षा उत्तरोत्तर आधी आधी शक्ति से सम्पन्न हुई सात पीढ़ियों तक रहती है तथा जो मकर नाम की तमोगुणी निधि है, उससे अधिष्ठित पुरुष ॥१६॥ तमोगुण प्रधान और शीलसम्पन्न होता है, वह धनुष-बाण, खड्ग, ढाल तथा आयुधों के धारण करने वाला होता है

॥१७॥ भोज्य पदार्थ का स्वाद ग्रहण करने में समर्थ होता है, राजाओं के साथ सख्यभाव स्थापित करता है तथा शौर्य वृत्ति वाले वीरों को दान देकर संतुष्ट होता है ॥१८॥ शस्त्रों का क्रय-विक्रय किये बिना तुष्ट नहीं होता परन्तु धनके लोभ से तस्करों द्वारा अथवा रणक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होता है. यह निधि एक पीढ़ी तक ही रहती है, फिर नहीं रहती, इसे तामसी कहा गया है, इसकी दृष्टि जिस पर पड़ती है ॥१९-२०॥ वह पुरुष तमोगुण प्रधान, पुण्यमय एवं आचार व्यवहार तथा कर्म के वश में होकर सब भोगों को भोगता हुआ, किसी पर विश्वास नहीं करता और जैसे कछुआ अपने अङ्गों को समेट कर छिपा लेता है ॥२१-२२॥

तथाविष्टभ्यरत्नानितिष्ठत्याकुलमानसः ।
नददातिनधाभुङ्क्तेतद्विनाशभयाकुलः ॥२३
निधानमुर्व्याकुरुतेनिधिःसोप्येकपूरुषः ।
रजोगुणमयश्चान्योमुकुन्दोनामयोनिधिः ॥२४
नरोऽवलोकितस्तेनतद्गुणोभवतिद्विज ।
वीणावेणुमृदङ्गानामातोद्यस्यपरिग्रहम् ॥२५
करोतिगायतांवित्तंनृत्यतांचप्रयच्छति ।
वन्दिमागधसूतानांविटानांलास्यपाठिनाम् ॥२६
ददात्यहर्निशंभोगान्भुङ्क्तेतैश्चसमंद्विज ।
कुलटासुरतिश्चास्यभवत्यन्यैश्चतद्विधैः ॥२७
प्रयातिसंगमेकंचयंनिधिर्भजतेनरम् ।
रजस्तमोमयश्चान्योनन्दोनाममहानिधिः ॥२८

वैसे ही अपने अभिप्राय को गुप्त रखता और चित्त को संयमित बनाता है तथा नष्ट होने के भय से धन का उपभोग स्वयं नहीं करता और न किसी दूसरे को ही प्रदान करता है ॥२३॥ यह निधि पृथिवी में एक पीढ़ी तक रहती है और मुकुन्द नाम की जो अन्य रजोगुणी निधि है ॥२४॥ उसकी दृष्टि जिस मनुष्य पर पड़ती है, वह रजोगुणी होता है तथा उससे अवलंबित मनुष्य वीणा, वेणु मृदङ्ग आदि आतोद्य वाद्यों का संग्रह करता है ॥२५॥ गायकों

और नर्तकों को बहुत धन देने वाला, वन्दी, सूत, मागध, विट और लास्यपाठी नृत्य-गान की विशेषता वालों को ॥२६॥ दिन रात्रि इच्छित भोग देता है तथा उनके साथ भोजन करता है, इसकी प्रीति अपने समान एवं कुलटा मनुष्यों में रहती है ॥२७॥ यह नित्य जिसे चाहती है, उसी की अनुगामिनी रहती है, उसके अपरों के पास नहीं रहती, नन्द नाम की निधि रजोगुण और तमोगुण दोनों से युक्त है ॥२८॥

उपेतिस्तम्भमधिकन्नरस्तेनावलोकितः ।
समस्तधातुरत्नानांपुण्यधान्यादिकस्यच ॥२९
परिग्रहचरोत्येषतथैवक्रयविक्रयम् ।
आधारःस्वजनानांचआगतान्यागतस्यच ॥३०
सहतेतापमानोक्तिस्वल्पामपिमहामुने ।
स्तूयमानश्चमहतीप्रीतिबध्नातियच्छति ॥३१
यंयमिच्छतिनैमामगृदुत्वमुपयातिच ।
बह्वोभार्याभवन्त्यस्यसुतिमत्योऽतिशोभना ॥३२
भजतेसप्तवन्नराणिनिधिर्नन्दोऽनुवर्तते ।
प्रवर्द्धमानोऽष्टमभागेनसत्तम ॥३३
दीर्घायुष्ट्वमशेषाणांपुरुषाणांप्रयच्छति ।
बन्धूनामेवभरणेयेचदूरादुपागताः ॥३४
तेषांकरोतिवैनन्द परलोकेनचादरः ।
भवत्यस्यनचस्नेहः सहवासिपुजायते ॥३५

इसकी दृष्टि जिस पर पड़ती है, अत्यन्त स्तम्भित रहता है, इससे अधिष्ठित मनुष्य सब धातु, रत्न, धान्य आदि पुण्य द्रव्यों का ॥२९॥ संग्रह और क्रय-विक्रय करता है तथा वह स्वजनों, अतिथियों और अभ्यागतों को आश्रय रूप होता है ॥३०॥ वह निरादर सहन नहीं करता और प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होता है ॥३१॥ याचकों की अभिलाषा के अनुसार वस्तुएँ प्रदान करता है तथा मृदु स्वभाव का होता है, उसमें अत्यन्त सुन्दरी पुत्रवती अनेक पत्नियाँ प्रेम करती हैं ॥३२॥ यह निधि क्रमशः अष्टमांश होती

हुई सात पीढ़ी तक रहती है ॥३३॥ और जिसमें अधिष्ठित होती है, उसकी दीर्घ आयु करती है, वह मनुष्य बांधवों और आगत मनुष्यों का परिपालक होता है ॥३४॥ परन्तु यह परलोक के लिए कोई यत्न नहीं करता और न नगर निवासियों से ही प्रीति रखता है ॥३५॥

पूर्वमित्रेषुशैथिल्यंप्रीतिमन्यैः करोतिच ।
तथैवसत्त्वरजसीयोविभर्तिमहानिधिः ॥३६
सनीलसंज्ञस्तत्संगीनरस्तच्छीलवान्भवेत् ।
वस्त्रकार्पासधान्यादिफलपुष्पपरिग्रहम् ॥३७
मुक्ताविद्रुमशङ्खानांशुक्त्यादीनांतथामुने ।
काष्ठादीनांकरोत्येषयच्चान्यज्जलसम्भवम् ॥३८
क्रयविक्रयमन्येषांनान्यत्ररभिजायते ।
तडागान्पुष्करिण्याश्चतथारामान्करोतिच ॥३९
बन्धंचसरितांवृक्षांस्पथारोपयतेनरः ।
अनुलेपनपुष्पादिभोगभुग्वाभिजायते ॥४०
त्रिपौरुषश्चापिनिधिर्नीलोनामैषजायते ।
रजस्तमोमयश्चान्यःशङ्खसंज्ञोहियोनिधिः ॥४१
तेनापिनीयतेविप्रतद्गुणित्वंनिधीश्वरः ।
एकस्यैवभवत्येषनरंनान्यमुपैतिच ॥४२

पहिले मित्र से मैत्रि भाव में शिथिलता और नयों से प्रीति स्थापित करता है, इसी प्रकार जो सत्व और रजोगुण से युक्त महानिधि है ॥३६॥ वह नीलनिधि नाम वाली अपने अधिष्ठान रूप पुरुष को सतोगुण और रजोगुण से युक्त करती है, इसकी दृष्टि जिस पर पड़ती है, वह वस्त्र, कपास, धान्यादि अन्न, फल एवं पुष्प ॥३६॥ तथा मोती, मूँगा, संख, सीपादि तथा जल में उत्पन्न अन्य वस्तुओं और काष्ठादि का संचय करता है ॥३८॥ और इन पदार्थों का स्वयं उपभोग करता हुआ, क्रय-विक्रय भी करता है, इसके अतिरिक्त अन्य किसी विषय में वह प्रीतिमान् नहीं होता ॥३६॥ वह मनुष्य तडाग, पोखर, उपवन, बनवाता, नदी पर पुल बँधवाता तथा वृक्षारोपण

करता है और अनुलेप और पुष्पादि का अनुलेप करता हुआ प्रसिद्धि को प्राप्त होता है ॥४०॥ यह नील निधि तीन पीढ़ी तक स्थिति रखती है तथा शङ्ख नाम की निधि रजोगुण और तमोगुण के मिश्रण से युक्त है ॥४१॥ इसके अधिष्ठान से पुरुष उक्त दोनों गुणों से युक्त होता है, यह एक ही पुरुष की अनुगामिनी होती है, किसी अन्य पुरुष तथा अन्य पीढ़ी में स्थिति नहीं रहती ॥४२॥

यस्यशङ्खोनिधिस्तस्यस्वरूपंक्रोष्टुकेशृणु ।
एकवात्मनामृष्टमन्नं भुङ्क्ते तथाम्बरम् ॥४३
कदन्नभुक्परिजनोनचशोभनवस्त्रधृक् ।
नददातिसुहृद्भार्याभ्रातृपुत्रस्नुषादिषु ॥४४
स्वपोषणपरःशङ्खीनरोभवतिसर्वदा ।
इत्येतेनिधयःख्यातानराणामर्थदेवताः ॥४५
मिश्रावलोकनान्मिश्राःस्वभावफलदायिनः ।
यथाख्यातस्वभावस्तुभवत्येकविलोकनात् ।
सर्वेषामाधिपत्येचश्रीरेषाद्विजपद्मिनी ॥४६

हे क्रोष्टुके ! जो पुरुष शङ्खनिधि को अपने वश में कर लेता है, उसका रूप सुनो, वह स्वोपार्जित श्रेष्ठ अन्न का भोजन करता और सर्वोत्कृष्ट वस्त्र पहनता है ॥४३॥ परन्तु उसके कुटुम्बियों को निकृष्ट भोजन वस्त्र उपलब्ध होते और जिनका जीवन कष्ट से व्यतीत होता है और शङ्ख निधि युक्त पुरुष अपने सुहृद भ्राता, पत्नी, पुत्र आदि के भरण पोषण को भी कुछ नहीं देता ॥४४॥ केवल अपना ही भरण-पोषण करने में लगा रहता है, मनुष्य के वित्त की देवता कहकर यह निधि विख्यात है ॥४५॥ इसके देखने से मनुष्य उपर्युक्त स्वभाव वाला होता है, परन्तु यह निधियाँ मिलकर देखने में मधुरा फल के देने वाली हैं तथा स्वतन्त्र रूप से देखें तो स्वस्व फलप्रद हैं। यह श्री स्वरूपिणी पद्मिनी विद्या उक्त अष्ट निधियों के आश्रय में अधिष्ठित है ॥४६॥

६१—औत्तर मन्वन्तर आरम्भ (३)

विस्तरात्कथितंब्रह्मन्भमस्वारोचिषंत्वया।
मन्वन्तरंतथैवाष्टौयेपृष्टानिधयोमया ॥१
स्वायम्भुवंपूर्वमेवमन्वन्तरमुदाहृतम् ।
मन्वन्तरंतृतीयंमेकथयौत्तमसंज्ञितम् ॥२
उत्तानपादपुत्रोऽभूदुत्तमोनामनामतः ।
सुरुच्यास्तनयःख्यातोमहाबलपराक्रमः ॥३
धर्मात्माचमहात्माचपराक्रमवनोनृपः ।
प्रतीत्यसर्वभूतानिबभौभानुपराक्रमः ॥४
समःशत्रौचमित्रेचपरेपुत्रेचधर्मवित् ।
दुष्टेयमवत्साधौसोमवच्चमहामुने ॥५
बाभ्रव्यांबहूलांनामउपयेमेसधर्मवित् ।
उत्तानपादतनयःशचीमिन्द्रइवोत्तरः ॥६
तस्यामतीवतस्यासीद्विजवर्यमनःसदा ।
स्नेहवच्छशिनोयद्वद्रोहिण्यांनिहितास्पदम् ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हे ब्रह्मन् ! स्वारोचिष मन्वन्तर का विषय आपने विस्तार पूर्वक वर्णन किया है, अब आठ मन्वन्तर और मेरे द्वारा पूछी गई निधि के विषय में कहिये ॥१॥ आप स्वायंभुव मन्वन्तर का पहिले वर्णन कर चुके हैं, अब औत्तम नामक तृतीय मन्वन्तर का वर्णन करिये ॥२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा उत्तानपाद के एक अत्यन्त पराक्रमी उत्तम नामक पुत्र रानी सुरुचि के गर्भ से उत्पन्न हुआ ॥३॥ वह धर्मवान् और पराक्रमी उत्तम राज्य को प्राप्त होकर अपने पराक्रम से अत्यन्त तेजस्वी हुए ॥४॥ वह धर्मज्ञ राजा शत्रु, मित्र तथा प्रजा और पुत्र में समान दृष्टि रखने वाले थे, वह दुष्टों के लिए सदा यम तुल्य और शिष्ट व्यक्तियों के लिए चन्द्रमा के समान शीतल थे ॥५॥ जिस प्रकार इन्द्र ने सभी लोकों में प्रसिद्ध शची का पाणिग्रहण किया, उसी प्रकार उत्तम ने बभ्रु-सुता बहुला नाम की विख्यात कन्या का

पाणिग्रहण किया था ॥६॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! जिस प्रकार चन्द्रमा का चित्त रोहिणी में अनुरक्त है, वैसे ही उत्तम का चित्त बहुला में आसक्त था ॥७॥

अन्यप्रयोजनासक्तिमुर्पतिनिहितन्मन ।
स्वप्नेचैवतदालम्बिमनोऽभूत्तस्यभूभृतः ॥८
सचतस्या सुचार्वङ्गचादर्शनादेवपार्थिव ।
ददाह्लोचनर्गात्रेगानस्पर्शश्चतन्मय ॥६
श्रोत्राद्वे गकरवाक्यप्रियमप्यवनीपते ।
तस्यापिभूरिसन्मानमेनेपरिभवतत ॥१०
अवमेनेस्रजदत्ताशुभान्याभरणानिच ।
उत्तस्यात्रर्धपीतेवपिवतोऽप्यवरासवम् ॥११
भुञ्जतावनरेन्द्रे एक्षणमात्रकरेघृता ।
दुभुजेस्वल्पकमक्ष्यद्विजनातिमुदावली ॥१२
एवतस्यामनुकूलस्यनानुकूलामहात्मन ।
प्रभूततरमत्यर्थचक्रे रागमहीपति ॥१३
अथपानगतोभूप कदाचित्तामनस्विनीम् ।
सुराभृतपानपात्रग्राहयामासमसादर ॥१४
पश्यताभूमिपालानावाङ्मुख्यासमन्वित ।
प्रगीयमानोमधुरंर्गेयगायनतत्परै ॥१५

राजा का चित्त बहुला के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं था और वह स्वप्न में भी अन्य नारी का चिन्तन नहीं करते थे ॥८॥ वह राजा अपनी रूप वती भार्या को जैसे ही देखते, वैसे ही उसमें तन्मय हो जाते थे ॥६॥ परन्तु रानी बहुला को उनके मधुर वचन भी कटु प्रतीत होते और वह उनका सम्मान करने में भी अपना अपमान समझती थी ॥१०॥ उनके द्वारा अर्पित माला और मनोहर आभूषणों के प्रति रानी अवज्ञा व्यक्त करती और आसव-पान के समय दुःख अनुभव करती हुई उनके पास से उठ जाती थी ॥११॥ हे द्विज ! जब राजा भोजन के समय अनेक प्रकार के आग्रह करते तब वह अप्रसन्न मन से अल्पाहार करती ॥१२॥ इस प्रकार रानी के अधिक अनुकूल न होने पर भी

राजा अपनी प्रिया के प्रति अत्यधिक अनुराग प्रकट करते थे ॥१३॥ एक समय जब श्रेष्ठ वारांगनाएँ मधुर स्वर से राजा के निकट गा रही थीं तभी राजा ने सुर पान की इच्छा करके अपने सभासदों के समक्ष ही निकट बैठी बहुला को मद्य से परिपूर्ण पात्र दिया ॥१४-१५॥

सातुनेच्छतितत्पात्रमादातुं तत्पराङ् मुखी ।
समक्षमवनीशानांततःक्रुद्धःसपार्थिवः ॥१६
उवाचद्वाःस्थमाहूयनिःश्वसन्नुरगोयथा ।
निराकृतस्तयादेव्याप्रिययापतिरप्रियः ॥१७
द्वाःस्थैनांदुष्टहृदयामादायविजनेवने ।
परित्यज्याशुनैतत्ते विचार्यंवचनंमम ॥१८
ततोनृपस्यवचनमविचार्यमवेक्ष्यसः ।
द्वाःस्थस्तत्याजतांसुभ्रूमारोप्यस्यन्दनेवने ॥१९
साचतं विपिनेत्यागंनीतातेनमहीभृता ।
अपश्यमानातंमेनेपरंकृतमनुग्रहम् ॥२०
सोऽपितत्रानुरागार्तिदह्यमानात्ममानसः ।
औत्तानपादिर्भूपालोनान्याभार्यामविन्दत ॥२१

परन्तु रानी ने उनसे विमुख होकर मद्य पात्र को ग्रहण नहीं किया, तो राजा को अत्यन्त क्रोध हुआ ॥१६॥ और सर्प के समान निःश्वास को त्यागते हुए उन्होंने द्वारपाल को बुलाया और उससे बोले कि इस मेरी प्रियतमा बहुला ने मुझे अप्रिय मान कर मेरा निरादर किया है ॥१७॥ इस लिये इस दुष्ट हृदय वाली को शीघ्र ही यहाँ से ले जाकर वन में छोड़ आओ मेरी इस आज्ञा का तुरन्त पालन करो ॥१८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—द्वारपाल ने राजा की आज्ञा को प्राप्त कर रानी को रथ में चढ़ाया और उसे वन में छोड़ आया ॥१९॥ राजा द्वारा रानी को वन में छोड़े जाने पर, अब राजा को न देखना होगा, ऐसा सोच कर रानी ने राजा का अनुग्रह ही माना ॥२०॥ इधर राजा उत्तम ने रानी के प्रति अत्यन्त अनुराग होने के कारण दुःखित हृदय होते हुए अन्य पत्नी को ग्रहण नहीं किया ॥२१॥

मस्मारतामुत्वाऽङ्गीमहर्निशमनिर्वृत ।
चकारचनिजराज्यप्रजाधर्मेणपालयन् ॥२२
प्रजा पालयतस्तस्यपितु पुत्रानिवौरसान् ।
यागत्यब्राह्मण कश्चिदिदमाहार्त मानस ॥२३
महाराजभृशार्त्तोऽस्मिश्रू यतागदतोमम ।
नृणामार्तिपरित्राणमन्यतोननराधिपात् ॥२४
ममभार्याप्रसुप्तस्यकेनाप्यपहृतानिशि ।
गृहद्वारमनुद्घाट्यतामसमानेतुमर्हसि ॥२५
नवत्सिकेनापहृतात्ववानीतालुसाद्विज ।
यतामिविग्रहेकस्यश्रुतोवाप्यानयामिताम् ॥२६
तथैवमस्थिगिनेद्वारिप्रसुप्तस्यगृहेमम ।
हृताहिभार्यायिकेनेत्येतद्विज्ञायतेभवान् ॥२७
त्वरक्षितानानृपतेषड्भागादानवेतन ।
धर्मस्यतस्तानिश्चिन्तास्वपन्तिमनुजानिशि ॥२८

वह दुःखित चित्त में उसी शोभनाङ्गी का स्मरण करने लगा और इस अवस्था में भी धर्म-पूर्वक प्रजा पालन करते हुए राज्य-कार्य में लगे रहे ॥२२ वह राजा अपनी प्रजा का पालन औरस पुत्र के समान करते थे, एक दिन एक ब्राह्मण उनके निकट आया और दुःखित हृदय से बोला ॥२३॥ हे राजन्! मैं अत्यन्त कष्ट में हूँ मेरी बात सुनो, क्या कि मनुष्यों के क्लेशों को राजा ही दूर कर सकता है ॥२४॥ मैं रात्रि के समय जब शयन कर रहा था, तभी घर के द्वार खोले बिना ही किसी ने मेरी पत्नी का हरण कर लिया है, अब आप मेरी उस पत्नी को लाकर मुझे दीजिये ॥२५॥ राजा ने कहा—हे ब्रह्मन्! आपकी पत्नी का हरण किसने किया है और कहाँ रखा है? जब तक मैं यह न जान लूँ, तब तक उसे कहाँ से प्राप्त करूँ ॥२६॥ ब्राह्मण बोला हे राजन्! मेरे शयन करने में घर का द्वार खोले बिना ही मेरी पत्नी का हरण किस प्रकार हुआ, यह तो आप ही जान सकते हैं ॥२७॥ क्या कि आप

राजा हैं, धर्म का षष्ठांश वेतन स्वरूप लेकर रक्षा के लिये नियुक्त हैं, इसी लिये मनुष्य रात्रि काल में निश्चिंत शयन करते हैं ॥२८॥

नतेदृष्टामयाभार्यायाद्दग्रूपाचदेहत: ।
वयश्चवक्षमाख्याहिकिंशीलाब्राह्मणोचते ॥२९
कठोरनेत्रासात्युच्चाह्रस्वबाहुःकृशानना ।
(लंबोदरीह्रस्वस्फिजंतथाह्रस्वस्तनींनृप) ।
विरूपरूपाभूपालननिन्दामितथैवताम् ॥३०
वाचिभूपातिपरुषानसौम्यासाचशीलतः ।
इत्याख्याताभयाभार्यासकरालनिरीक्षणा ॥३१
मनागतीतंभूपालतस्याश्चप्रथमंवयः ।
तादृग्रूपाहिमेभार्यासत्यमेतन्मयोदितम् ॥३२
अलंतेब्राह्मणतयाभार्यामन्यांददामिते ।
सुखायभार्याकल्याणीदुःखहेतुर्हिताद्दशी ॥३३
अल्पाकुरूपताविप्रकारणंशीलमुत्तमम् ।
रूपशीलविहीनायात्याज्यातेन्येनसाह्वता ॥३४

राजा बोले—आपकी पत्नी को मैंने कभी भी नहीं देखा, इस लिये आप उसकी आकृति, आयु और स्वभाव का भले प्रकार वर्णन करिये ॥२९॥ ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! मेरी पत्नी कठोर नयन, दीर्घ आकार, छोटी भुजा, कृश मुख (लम्बा उदर और सूक्ष्म हाथ) वाली अत्यन्त कुरूप है, फिर भी मैं उसे निन्दनीय नहीं मानता ॥३०॥ वह वाणी और स्वभाव से अत्यन्त कर्कश है उसकी प्रथमावस्था कुछ-कुछ ढल चुकी है, इस प्रकार उसका सभी वर्णन सत्य-सत्य आपसे किया है ॥३१-३२॥ राजा ने कहा—हे विप्र ! ऐसी कुलक्षणा पत्नी का आप क्या करेंगे ? मैं आपको एक अन्य पत्नी प्रदान कर सकता हूँ, क्यों कि सुलक्षणा पत्नी से सुख और कुलक्षणा से दुःख ही प्राप्त होता है ॥३३॥ हे ब्रह्मन् ! सौन्दर्य और शील स्वभाव से ही मंगल होता है, इस लिये कुरूप तथा शील रहित पत्नी का तो परित्याग ही ठीक है ॥३४॥

रक्ष्याभार्यामहीपालइतिचश्रु तिरुत्तमा ।
भार्यायारक्ष्यमाणायाप्रजाभवतिरक्षिता ॥३५
ग्रात्माहिजायतेतस्यसारक्ष्यातोतरेश्वर ।
प्रजायारक्ष्यमाणायामात्माभवतिरक्षित. ॥३६
तस्यामरक्ष्यमाणायामवितावर्णसङ्कर ।
सपातयेन्महीपालपूर्वान्स्वर्गादघ पितृन् ॥३७
(ग्रनुज्ञायगुरु राजन्दत्वान्याजातवेदसे ॥३८
समिध तुमयाभार्या उृतेयकर्कशायत ।
कथमेताविहायान्यभार्यंयामहसचरे ॥३९
गृह्यधर्मोयतोब्रह्मप्राप्यतेशाश्वतनरं ।
पूर्वोढयानुधर्मेणगृहीकुर्वंन्नसीदति ॥४०
त्यक्त्वाताचक्रियाकुर्वन्नैवकर्मफललभेत् ।
ग्रग्निनासहयानूनसा जगामगृहशुभा ॥४१
धर्मस्यग्रहणेसातुपूर्वोढैवप्रशस्यते ।
शठायाचारणात्तस्याजायतेवर्णसङ्कर ॥४२

ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! पत्नी सदैव रक्षा के योग्य होती है, मुझे यह श्रुति विदित है कि पत्नी की सम्यक् रक्षा मे ही सन्तान की रक्षा हो सकती है ॥३५॥ हे राजन् ! पत्नी के गर्भ मे अपने आत्मा की ही उत्पत्ति होती है, इसी लिये सन्तान की रक्षा करने मे अपने आत्मा की ही रक्षा होना माना गया है ॥३६॥ इसलिये पत्नी की भले प्रकार रक्षा करे, उसकी रक्षा न करने से वर्णसङ्कर की उत्पत्ति होती है, जिसके कारण पूर्व पितरो का स्वर्ग से पतन होता है ॥३७॥ (हे राजन् ! गुरुजनो की अनुमति से अग्नि को साक्षी करके) ॥३८॥ इस कर्कश पत्नी का मेरे साथ वरण हुआ है, इस लिये इसका त्याग करके अन्य नारी के साथ किस प्रकार मह आचरण करूँ ॥३९॥ और ऐसे आचरण मे गृहस्थ धर्म के साथ ही मनुष्य को शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति होती है और जिस स्त्री के साथ धर्म कार्य करता हुआ गृही दुःख को प्राप्त नहीं होता ॥४०॥ उस स्त्री को त्याग कर जो क्रिया वह करता है वह

क्रिया फल रहित होती है, जो शुभ अग्नि की साक्षी में अपने गृह पर लायी गयी है ॥४१॥ वह प्रथम ही धर्म के ग्रहण में प्रशंसनीय है तथा उस दुष्टा के त्याग से वर्णसंकर की उत्पत्ति संभव है ॥४२॥

धर्महानिश्चानुदिनमभार्यस्यभवेन्मम ।
नित्यक्रियाणांविभ्रंशात्सचापिपतनायमे ॥४३
तस्यांचपृथिवीपालभवित्रीममसन्ततिः ।
तवषड्भागदात्रीसाभवित्रीधर्महेतुको ॥४४
तदेतत्तेमयाख्यातापत्नीयामेहृताप्रभो ।
तांसमानयरक्षायांभवानधिकृतोयतः ॥४५
सतस्यैवंवचःश्रुत्वाविमृश्यचनरेश्वरः ।
सर्वोपकरणैर्युक्तमारुरोहमहारथम् ॥४६
इतश्चेतश्चतेनासौपरिबभ्राममेदिनीम् ।
ददर्शचमहारण्येतापसाश्रममुत्तमम् ॥४७
अवतीर्यचतत्रासौप्रविश्यददृशेमुनिम् ।
कौश्यांवृष्यांसमासीनंज्वलन्तमिवतेजसा ॥४८
सदृष्ट्वानृपतिंप्राप्तंसमुत्थायत्वरान्वितः ।
संमान्यस्वागतेनैवशिष्यमाहार्घ्यमानय ॥४६

पत्नी के न होने से धर्म की दिन-दिन हानि होती है तथा इस प्रकार नित्य क्रिया के नष्ट होने पर तुझे भी पतित भाव की प्राप्ति होगी ॥४३॥ हे राजन् ! मेरी उस पत्नी के गर्भ से जो सन्तान होगी, वह आपको धर्म पूर्वक अपनी आय का छटवां भाग देगी ॥४४॥ इन्हीं कारणों से मैं निवेदन कर रहा हूं कि आप मेरी उसी पत्नी को लाकर दीजिये, क्यों कि हमारी रक्षा के निमित्त आप ही नियुक्त हैं ॥४५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मण के ऐसे वचन सुन कर महाराज उत्तम कुछ समय तक सोच विचार करके सर्व सामग्री सम्पन्न रथ पर चढ़े ॥४६॥ और रथ के द्वारा विचरण करते हुए एक महावन में श्रेष्ठ तपस्या मय आश्रम देखा ॥४७॥ तब रथ से उतर कर उन्होंने आश्रम में प्रवेश किया जहाँ कुशा के आसन पर अपने तेज से प्रकाशित एक श्रेष्ठ मुनि

को बैठे हुआ देखा ॥४८॥ राजा का आगमन देख कर शीघ्रता पूर्वक उठते हुए मुनि ने उनका स्वागत-सत्कार किया और अपने शिष्य को अर्घ्य लाने की आज्ञा दी ॥४९॥

समाह शिष्य शनकैर्दातव्योऽर्घ्योऽस्यकिं मुने ।
तदाज्ञापय सञ्चिन्त्य त्वदाज्ञाहि करोम्यहम् ॥
ततोऽवगतवृत्तान्तो भूपतेस्तस्य स द्विज ।
सम्भाषासनदानेन चक्रे सम्मानमात्मवान् ॥५०
विदितस्त्वमिहायातो भवान्किं ते चिकीर्षितम् ।
उत्तानपादतनयं वेद्मि त्वामुत्तमं नृप ॥५१
ब्राह्मणस्य गृहात्कश्चिदज्ञातेनापहृता मुने ।
अविज्ञातस्वरूपेण तामन्वेष्टुमिहागत ॥५२
पृच्छामि यत्ते तन्मे त्वं प्रणतस्यानुकम्पया ।
अभ्यागतस्याथ गृहं भगवन्वक्तु महंसि ॥५३
पृच्छमामवनीपालयत्प्रष्टव्यमशङ्कितः ।
वक्तव्यं चेत्तव मया कथयिष्यामि तत्त्वत ॥५४
गृहागताय यास्माभिः प्रथमं दत्तं मुने ।
त्वया समनुज्ञातात्तु पश्चात्सोऽर्घ्यो निवर्तित ॥५५

इस पर शिष्य ने कहा—कि इन महाराज को अर्घ्यदान उचित होगा या नहीं, इसका विचार करके ही आज्ञा दीजिये, मैं आपकी आज्ञा का तत्काल पालन करूँगा, तब आत्मवान् मुनि ने सब वृत्तान्त जान लिया और आसन दे कर सम्भाषण द्वारा ही उन्होंने राजा का सम्मान किया ॥५०॥ ऋषि बोले—हे राजन्! आप उत्तानपाद-तनय उत्तम हैं, यह मुझे विदित है, परन्तु आप यहाँ क्यों आये हैं? आपका इच्छित विषय क्या है, यह बताइये ॥५१॥ राजा ने कहा—हे मुने! एक ब्राह्मण के घर से कोई अज्ञात व्यक्ति उसकी पत्नी को हर ले गया है, मैं उसी ब्राह्मणी की खोज के लिये यहाँ आया हूँ ॥५२॥ हे भगवन्! मैं आपसे जो विनम्र निवेदन करता हूँ और आप भी अनुग्रह पूर्वक मुझे कृपा के योग्य समझ कर उसे कहने की आज्ञा दीजिये ॥५३॥ ऋषि बोले—

हे राजन् ! आप जो पूछना चाहें, शंका रहित हो कर पूछें, कथन योग्य बात को मैं यथार्थ रूप में ही कहूँगा ॥५४॥ राजा ने कहा—मैं जब यहाँ आया था तब पहिले आप मुझे अर्घ्य देने की इच्छा करते थे, फिर आप उससे निवृत्त क्यों हो गये ? ॥५५॥

त्वद्दर्शनेनरभसादाज्ञप्तोऽयंमयानृप ।
यदातदाहमेतेनशिष्येणप्रतिबोधितः ॥५६
एषवेत्तिजगत्यत्रमत्प्रसादादनागतम् ।
यथाहंसमतीतंचवर्त्तमानंचसर्वतः ॥५७
आलोच्याज्ञापयेत्युक्ते ततोज्ञातंमयापितत् ।
ततोनदत्तवानर्घ्यमहतुभ्यंविधानतः ॥५८
सत्यंराजंस्त्वमर्घ्यार्हःकुलेस्वायम्भुवस्यच ।
तथापिनार्घ्ययोग्यंत्वांमन्यामोवयमुत्तमम् ॥५९
किंकृतंहिमयाब्रह्मञ्ज्ञानादज्ञानतोऽपिवा ।
येनत्वत्तोऽर्घ्यमर्हामिनाहमभ्यागतश्चिरात् ॥६०
किंविस्मृतंतेयत्पत्नीत्वयात्यक्ताचकानने ।
परित्यक्तस्तयासार्द्धंत्वयाधर्मोनृपाखिलः ॥६१
पक्षेणकर्मणोह्यन्याप्रयात्यस्पृश्यतांनरः ।
किमत्रवार्षिकीयस्यहानिस्तेनित्यकर्मणः ॥६२
पत्न्यानुकूलयाभाव्यंयथाशीलेऽपिभर्त्तरि ।
दुःशीलापितथाभार्यापोषणीयानरेश्वर ॥६३

ऋषि बोले—हे राजन् ! आपको देखते ही, जैसे ही मैंने अर्घ्य लाने की आज्ञा दी, वैसे ही इस शिष्य ने शंका व्यक्त की ॥५६॥ जैसे मैं अतीत, वर्त्तमान और भविष्य के सभी गुप्त या प्रकट वृत्तान्त को भले प्रकार जानता हूँ, वैसे ही मेरा यह शिष्य भी मेरे प्रसाद से भूत, भविष्य, वर्त्तमान का ज्ञाता है ॥५७॥ इस शिष्य ने विचार कर आज्ञा देने का अनुरोध किया, तब मैंने सब बात जान कर आपको विधिवत् अर्घ्य नहीं दिया ॥५८॥ हे राजन् ! आप स्वायम्भुव मनु के वंशोत्पन्न हैं, इस लिये अर्घ्य के योग्य हो कर भी मेरे विचार

में अर्घ्य के योग्य नहीं हैं ॥५९॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! मैंने जाने अन-जाने में ऐसा कौन सा कार्य किया है, जिससे प्रथम बार आकर भी मैं अर्घ्य के योग्य नहीं रहा ? ॥६०॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! आपने अपनी पत्नी को त्याग कर वन में भेज दिया है, क्या यह स्मरण नहीं रहा ? उस पत्नी के त्याग के साथ ही आपने धर्म का भी त्याग कर दिया समझो ॥६१॥ धर्म-कर्म की हानि में एक पक्ष तक होने से मनुष्य स्पर्श के योग्य भी नहीं रहता, तुम्हारी तो वर्षों ही कर्म-हानि हुई है, इसलिये अपनी अर्घ्य विषयक योग्यता पर पर आप स्वयं ही विचार कीजिये ॥६२॥ हे राजन् ! जैसे पति के विप-रीत चरित्र वाला होने पर भी पत्नी को पति की अनुगामिनी होना कर्त्तव्य है, वैसे ही पत्नी के शील-रहित होने पर भी उसका भरण-पोषण पति का कर्त्तव्य है ॥६३॥

प्रतिकूलाहिसापत्नीतस्यविप्रस्ययाहृता ।
तयाग्निधर्मनाशोऽस्मीत्वामुद्घोतितवान्नृप ॥६४॥
चलत स्थापयस्यन्यान्स्वधर्मेपुमहीपते ।
त्वास्वधर्माद्विचलितङ्कोऽपर स्थापयिप्यति ॥६५
(द्वोपेवड गगीयेवागाशिचान्यायवर्तिनि ।
पापकृत्सुचविद्वत्सुनियताजतुरक्षक ॥
विलक्ष्य समहीपालइत्युक्तस्तेनधीमता ।
तथेत्युक्त्वा नपप्रच्छहृतापत्नीद्विजन्मन ॥६६
भगवन्केननीतासापत्नीविप्रस्यकुत्रवा ।
अतीतानागतवेत्तिजगत्यवितथभवान् ॥६७
ताजहाराद्रितनयोबलाकोनामराक्षस ।
द्रक्ष्यतेचाद्यताभूपत्वत्पलावतकेवने ॥६८
गच्छसयोजयाशुत्वमार्यायाहिद्विजोत्तमम् ।
मापापास्पदतायातुत्वमिवासौदिनेदिन ॥६९

हे राजन् ! उस ब्राह्मण की हरण की गई पत्नी उसके प्रतिकूल है तो भी वह उसकी इतनी इतनी खोज कर रहा है ॥६४॥ हे राजन् ! धर्म भ्र

को धर्म में स्थापित करने वाले आप ही हैं, परन्तु जब आप स्वयं ही धर्म को छोड़ेंगे तब आपको उसमें कौन प्रवृत्त करेगा ? ॥३५॥ (वन का गेंडा खेत के धान्य का भक्षण करके अपना निर्वाह करे, राजा अन्यायी हो या विद्वान् पुरुष पाप कर्म करे तो फिर शिक्षा देने वाला कौन होगा ?) मार्कण्डेयजी ने कहा—ऋषि के ऐसे वचन सुन कर राजा लज्जित हो गये और सब दोष स्वीकार कर, विप्र पत्नी का वृत्तान्त उन्होंने पूछा ॥६६॥ हे भगवन् ! आप विश्व के सभी भूत, भविष्य, वर्त्तमान के ज्ञाता हैं, अब उस विप्र पत्नी को किसने हरण किया और कहाँ रखा है, यह बताने की कृपा करिये ॥६७॥ ऋषि बोले—हे राजन् उस ब्राह्मणी का हरण अद्रि के पुत्र बलाक नामक राक्षस ने किया है, उसे आप इस समय उत्पलावत नाम के वन में देखेंगे ॥६८॥ अब आप जाइये और ब्राह्मण को उसकी पत्नी को मिलाइये, जिससे उस ब्राह्मण को आपके समान पाप भागी न होना पड़े ॥६९॥

६२—द्विजभार्या को पति के घर भेजना

अथारुरोहस्वरथंप्रणिपत्यमहामुनिम् ।
तेनाख्यातंवनंतत्रप्रययावुत्पलावतम् ॥१
यथाख्यातस्वरूपांविभार्याभर्त्ताद्विजस्यताम् ।
भक्षयन्तींददर्शाथश्रीफलानिनरेश्वरः ॥२
पप्रच्छचकथंभद्रे त्वमेतद्वनमागता ।
स्फुटंब्रवीहिवैशालेरपिभार्य्यासुशर्मणः ३॥
सुताहमतिरात्रस्य द्विजस्यवनवासिनः ।
पत्नीविशालपुत्रस्ययस्यनामत्वयोदितम् ॥४
साहहृताबलाकेनराक्षसेनदुरात्मना ।
प्रसुप्ताभवनस्यान्तर्भ्रातृमातृवियोजिता ॥५
भस्मीभवतुतद्रक्षोयेनास्म्येवंवियोजिता ।
मात्राभ्रातृभिरन्यैश्चतिष्ठाम्यत्रसुदुःखिता ॥६

अस्मिन्वनेऽतिगहनेयेनानीयाहमुज्भिता ।
नवेद्मिकारणंकितन्नोपभुङ्क्तेनखादति ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा उन महर्षि को प्रणाम करके रथमें चढ़े और महर्षि द्वारा बताये हुए उत्पलावत वन में पहुंचे ॥१॥ वहाँ देखा कि पति के बताये हुए रूप वाली वह ब्राह्मणी श्रीफल खा रही है ॥२॥ उसे देखकर उन्होंने पूछा—हे भद्रे ! तुम वन में किस प्रकार आगयी ? तुम विशाल पुत्र सुशर्मा नामक ब्राह्मण की ही पत्नी हो न ? यह स्पष्ट बताओ ॥३॥ ब्राह्मणी बोली—मैं अतिरात्र नामक वनवासी ब्राह्मण की पुत्री और जिन विशाल पुत्र का आपने नाम लिया है, उनकी ही भार्या हूं ॥४॥ मैं घर में शयन करती थी, तभी पापी राक्षस मुझे भाई और माता से वियोग करके यहां ले आया है ॥५॥ अब मैं सब आत्मीयजनों से पृथक् होकर अत्यन्त दुःख पूर्वक यहाँ रह रही हूं, जिस राक्षस ने मेरी यह दशा की है, वह भस्म होजाय ॥६॥ उस राक्षस ने इस निर्जन वन में मुझे ला रखा है, मुझे ज्ञात नहीं कि वह मेरा भक्षण या उपभोग क्यों नहीं करता है ? ॥७॥

अपितज्ज्ञायतेरक्षस्त्वामुत्सृज्यवनंगतम् ।
अहमर्थानर्थंवासम्प्रेषितोद्विजनन्दिनि ॥८
धर्म्यंत्वत्काननस्यान्तःतिष्ठतिनिशाचरः ।
अविश्यपश्यनुभवान्नविभेतितत्तोयदि ॥९
अविवेशाततःसोयतयावर्त्मनिदर्शितः ।
ददर्शोपरिवारणसमवेतचराक्षसम ॥१०
दृष्टमात्रेनतस्मिन्मस्त्वरमाणःमराक्षसः ।
दूरादेवमहीमूर्ध्नास्पृशन्पादान्तिकंययौ ॥११
ममात्रागमनंनागेहप्रसादस्तेमहान्कृतः ।
अन्यार्थिकरोम्येपवमामिविषयेतव ॥१२
अर्घ्यंचेमप्रतीच्छवरयीयतयेदमासनम् ।
वयभृत्याभवान्स्वामीदृढमाज्ञापयस्वमाम् ॥१३

कृतमेवस्त्वयासर्वंसर्वमेपचितिःकृताः ।
किमर्थंब्राह्मणवधूस्त्वयानीतानिशाचर ॥१४

राजा ने कहा—तुम्हारे पति ने ही मुझे यहाँ भेजा है, क्या तुम्हें विदित है कि वह राक्षस इस समय कहाँ गया होगा ? ॥८॥ ब्राह्मणी बोली—इसी वन-प्रान्त में कहीं होगा, यदि उससे डर न हो तो, वन में प्रवेश करो तो वह दिखाई पड़ जायगा ॥९॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मणी द्वारा मार्ग प्रदर्शित करने पर राजा ने वन में घुस कर अपने परिवारी जनों से घिरे हुए उस राक्षस को देखा ॥१०॥ वह राजा को देखते ही तुरन्त उठा और मस्तक से पृथिवी को स्पर्श करता हुआ राजा के चरणों के समीप आकर बोला ॥११॥ राक्षस ने कहा—महाराज की मुझे क्या आज्ञा है, जिस लिए मेरे घर पर पधारे हैं, मैं आपके राज्य में निवास करता हूँ, आप मुझे आज्ञा करिये ॥१२॥ यह अर्घ्य ग्रहण करिये, इस आसन पर विराजमान होइये, आप स्वामी हैं और मैं सेवक हूँ, आप मुझे निःसंकोच आज्ञा दीजिये ॥१३॥ राजा ने कहा—तुमने अपने कर्त्तव्य का पालन और अतिथि सत्कार भी उचित रीति से किया है, परन्तु यह बताओ कि तुम उस विप्रपत्नी को किसलिये हरण कर लाये हो ? ॥१४॥

नेयंसुरूपासन्त्यन्याभार्यार्थंचेद्धृतात्वया ।
भक्ष्यार्थंचेत्कथंनात्तात्वयैतत्कथ्यतांमम ॥१५
नवयंमानुषाहाराअन्येतेनृपराक्षसाः ।
सुकृतस्यफलंयत्तुतदश्नीमोवयंनृपः ॥१६
(सुकृतस्यफलंयत्तुतत्तवक्ष्याम्यहंनृप ।
राक्षसींयोनिमापन्नःक्रूरांलोकभयंकरीम् ।)
स्वभावंचमनुष्याणांयोषितांचविमानिताः ।
नामिषचसमश्नीमोनवयंजन्तुखादकाः ॥१७
यदस्माभिर्नृणांक्षान्तिर्भुक्ताक्रुध्यन्तितेतदा ।
भुक्तेदुष्टेस्वभावेचगुणवन्तोभवन्तिच ॥१८
सन्तिनःप्रमदाभूपरूपेणाप्सरसांसमाः ।
राक्षसयंस्तासुतिष्ठत्सुमानुषीषुरतिःकथम् ॥१९

यद्यपानोपभोगायनाहारायनिशाचर ।
गृहप्रविश्यविप्रस्यतत्किमेपाहृतात्वया ॥२०

पत्नी बनाने को लाये हैं, यह भी नहीं कह सकता, क्योंकि वह कुरूप है, यदि भक्षणार्थ लाये हैं तो भक्षण क्यों नहीं करते ? यह सब मुझे यथार्थ रूप से बताओ ॥१५॥ राक्षस बोला—हे राजन् ! मनुष्य का भक्षण करने वाला नहीं हूँ, मनुष्य भक्षी राक्षस अन्य होते हैं, मैं तो पुण्यफल का ही भोजन करता हूँ ॥१६॥ (हे नृप ! अब मैं पुण्य का फल बताता हूँ, क्रूर और भयदायक राक्षस योनि को प्राप्त हुआ मैं) सम्मान युक्त अथवा असम्मानित स्त्री-पुरुषों के स्वभाव का ही सदा भोजन करता हूँ, मैं जन्तुभोजी राक्षस नहीं हूँ ॥१७॥ इस प्रकार क्षमागुण वाले स्वभाव का भोजन करने से क्रोध उत्पन्न होता है और दुष्ट स्वभाव का भोजन करने पर वह गुण युक्त होते हैं ॥१८॥ हे राजन् ! मेरे पास अप्सराओं के समान रूपवती अनेक राक्षसी पत्नियाँ हैं, उनके होते हुए मैं मनुष्य स्त्री की कामना क्यों करता ? ॥१९॥ राजा ने कहा—यदि यह ब्राह्मणी तुम्हारे लिए भोग्य अथवा भक्ष्य नहीं थी तो तुमने इसका ब्राह्मण के घर से हरण क्यों किया ? ॥२०॥

मन्त्रवित्सद्विजश्रेष्ठोयज्ञेयज्ञेगतस्यमे ।
रक्षोघ्नमन्त्रपठनात्करात्युच्चाटननृप ॥२१
वयबुभुक्षितास्तस्यमन्त्रोच्चाटनकर्मणा ।
क्वयाम सर्वयज्ञेपुसञ्जातिश्वभवतिद्विज ॥२२
ततोऽस्माभिरिदतस्यवैकल्यमुपपादितम् ।
पत्न्याविनापुमानिज्यावकर्मयोग्यानजायते ॥२३
वैकल्योच्चारणात्तस्यब्राह्मणस्यमहामते ।
तेन सराजातिभृशविषण्णःसमजायत ॥२४
वैकल्यमपविप्रस्यवदन्मामेवनिन्दति ।
अनर्हमर्घस्यचगामोऽप्याहमुनिसत्तम ॥२५
वैकल्यतस्यविप्रस्यराक्षसोऽप्याहमेयथा ।
अपत्नीकतयासोऽहमदृष्टमहदास्थिन ॥२६

एवंचिन्तयतस्तस्यपुनरप्याहराक्षसः ।
प्रणामनम्रोराजानंवद्धांजलिपुटोमुने ॥२७
नरेन्द्राज्ञाप्रदानेनप्रसादः क्रियतांमम ।
भृत्यस्यप्रणतस्येत्थंयुष्मद्विषयवासिनः ॥२८

राक्षस बोला—हे राजन् ! वह ब्राह्मण मन्त्रवेत्ता हैं और सभी यज्ञों में जाकर रक्षोघ्न मन्त्र का पाठ करके मेरा उच्चाटन करते हैं ॥२१॥ जब वह मन्त्र पाठ द्वारा मेरा उच्चाटन करते हैं, तब मैं क्षुधा से पीड़ित होकर कहाँ जाऊँ ? क्योंकि वह सभी यज्ञों में ऋत्विक् बनते हैं ॥२२॥ इसीलिये मैंने उनके चित्त को उद्विग्न किया है, क्योंकि भार्या के बिना पति कभी किसी यज्ञ-कर्म में समर्थ नहीं होता ॥२३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राक्षस द्वारा ब्राह्मण के चित्त का उद्विग्न किया जाना सुनकर राजा अत्यन्त क्षुभित हुए ॥२४॥ और उन्होंने सोचा कि ब्राह्मण को उद्विग्न किया कह कर यह राक्षस मेरी ही निन्दा करता है, इसी कारण उन ऋषिवर ने मुझे अर्घ्य के अयोग्य बताया था ॥२५॥ और अब यह राक्षस भी मुझ पत्नी-विहीन के समान ही ब्राह्मण की पत्नी का हरण करके उसको उद्विग्न किया कहता है, इसलिये मैं भी पत्नी-हीन होने से सङ्कट ग्रस्त हो रहा हूं ॥२६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार राजा विचार कर ही रहे थे, तभी उस राक्षस ने पुनः विनम्रता पूर्वक प्रणाम करके, करवद्ध निवेदन किया ॥२७॥ हे राजन् ! मैं भी आपके राज्य का ही एक प्रजाजन हूँ, इस कारण इस सेवक को आज्ञा देकर कृतार्थ करिये ॥२८॥

स्वभावंवयमश्नीमस्त्वयोक्तंयन्निशाचर ।
तदर्थिनोवयंयेनकार्येणश्रृणुतान्मम ॥२९
अस्यास्त्वयाद्यब्राह्मण्यादौःशील्यमुपभुज्यताम् ।
येनत्वयात्तदौःशील्यात्तद्विनीताभवेदियम् ॥३०
नीयतांयस्यभार्येयंतस्यवेश्मनिशाचर ।
अस्मिन्कृतेकृतंसर्वंगृहमस्यागतस्यमे ॥३१
ततःसराक्षसस्तस्याःप्रविश्यान्तःस्वमायया ।
भक्षयामासदौःशील्यंनिजशक्त्यानृपाज्ञया ॥३२

दो शील्येनातिगोद्रे णपत्नीतस्यद्विजन्मन ।
तेनसासम्परित्यक्तातमाहजगतीपतिम् ॥३३
स्वकर्मफलपाकेनभर्तुस्तस्यमहात्मन ।
वियोजिताहतद्धेतुरयमासीन्निशाचर ॥३४
नास्यदोषोनचातस्यममभर्तुर्महात्मन ।
ममैवदोषोनान्यस्यस्वकृतह्य पभुज्यते ॥३५

राजा बोले—हे निशाचर ! तुमने स्वभाव भक्षण करने की बात कही है, अब मैं जिस कार्य के लिये आया हूँ, उसे सुनो ॥२९॥ तुम इस ब्राह्मणी के खोटे स्वभाव का भक्षण करो, क्योंकि ऐसा होने से इसके स्वभाव में विनम्रता आ जायगी ॥३०॥ ऐसा करने के पश्चात् तुम इसे उसी के घर में पहुँचा दो, जिसकी यह पत्नी है, ऐसा करने से तुम्हारे द्वारा मेरे आतिथ्य सत्कार की भी पूर्ति होगी ॥३१॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब अपनी माता के प्रभाव से उस राक्षस ने ब्राह्मणी के हृदय में प्रवेश किया और उसके दुष्ट स्वभाव का भक्षण कर लिया ॥३२॥ तदनन्तर अपने अत्यन्त दुष्ट स्वभाव से मुक्त हुई वह ब्राह्मणी राजा से बोली ॥३३॥ मैं अपने कर्म से ही अपने महात्मा स्वामी के वियोग को प्राप्त हुई हूँ, यह राक्षस उसका एकमात्र कारण है ॥३४॥ परन्तु इस राक्षस का मेरे उन महात्मा पति का इसमें कुछ भी दोष नहीं है, दोष तो मेरा ही है, क्योंकि स्वकृत कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है ॥३५॥

अन्यजन्मनिकस्यापिविप्रयोगःकृतोमया ।
सोऽयमयाप्युपगत कोदोषोऽस्यमहात्मन ॥३६
प्रापयाभितवादेशाद्दिमाभर्तुर्गृहप्रभो ।
यदन्यत्करणीयतेतदाज्ञापयपार्थिव ॥३७
अस्मिन्नन्तेन्द्रनमयैत्वयामेरजनीचर ।
आगन्तव्यञ्चतेनीरवात्यंवालेस्मृतेनमे ॥३८
तयेत्युक्त्वातुतद्रक्षस्तामादायद्विजाङ्गनाम् ।
निन्येभर्तृगृहमुदारो मोन्यापगमात्तदा ॥३९

प्रतीत होता है कि पूर्व किसी जन्म में मैंने किसी का वियोग कराया था, इसी से मेरा भी अपने पति से वियोग हुआ, इसमें इस राक्षस का क्या दोष है ? ॥३६॥ राक्षस ने कहा—हे महाराज ! आपकी आज्ञा से मैं इसे अभी इसके पति-गृह में पहुँचाता हूं, मुझे आज्ञा दीजिये कि आपका और क्या कार्य मैं करूँ ? ॥३७॥ राजा बोले—हे राक्षस ! इस कार्य को करके तुमने मेरे सभी कार्य कर दिये हैं, फिर भी हे वीर ! मेरे द्वारा स्मरण करने पर तुम मेरे पास उपस्थित होओ, यह स्वीकार करो ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राक्षस ने राजा की बात स्वीकार करके दुष्ट स्वभाव से मुक्त हुई उस ब्राह्मणी को उसके पति-गृह में जा पहुंचाया ॥३९॥

६३—ऋषि से उत्तम का कथोपकथन

तांप्रेषयित्वाराजापिस्वभर्तृ गृहमंगनाम् ।
चिन्तयामासनिःश्वसन्किमत्रसुकृतंभवेत् ॥१
अनर्घयोग्यताकष्टंसमामाहमहामनाः ।
वैकल्यंविप्रमुद्दिश्यतथाहार्यंनिशाचरः ॥२
सोऽहंकथंकरिष्यामित्यक्तापत्नीमयाहिसा ।
अथवाज्ञानदृष्टिंतंपृच्छामिमुनिसत्तमम् ॥३
संचिन्त्येत्थंसभूपालःसमारुह्यचतंरथम् ।
ययौयत्रसधर्मात्मात्रिकालज्ञोमहामुनिः ॥४
अवरुह्यरथात्सोऽथतंसमेत्यप्रणम्यच ।
यथावृत्तंसमाचख्यौराक्षसेनसमागमम् ॥५
ब्राह्मण्यादर्शनंचैवदौःशील्यापगमंतथा ।
प्रेषणंभर्तृ गेहेचकार्यमागमनेचयत ॥६
ज्ञातमेतन्मयापूर्वंयत्कृतंतेनराधिप ।
कार्यमागमनेचैवमत्समीपेतवाखिलम् ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—उस ब्राह्मणी को उसके पति के घर भेजकर राजा दीर्घ श्वास लेते हुए सोचने लगे कि अब किस कर्म के द्वारा मेरी भलाई हो ॥१॥ उन महर्षि ने मुझे पत्नी त्याग के कारण अर्घ्य के अयोग्य बताया और इस राक्षस ने भी ब्राह्मण के प्रति पत्नी-वियोग से उत्पन्न कर्म हानि का विषय कहा ॥२॥ मैंने अपनी पत्नी का परित्याग किया है, अब मुझे क्या करना चाहिये, इस विषय में उन्हीं ज्ञान दृष्टि वाले महर्षि से प्रश्न करूँ ॥३॥ ऐसा विचार करके राजा रथारूढ़ हुए और उन त्रिकालज्ञ मुनि के आश्रम में पहुँचे ॥४॥ रथ से उतर कर उनके निकट उपस्थित हुए और प्रणाम करके ब्राह्मणी से मिलना, राक्षस से समागम होना, ब्राह्मणी के दुष्ट स्वभाव का नष्ट होना और उसे उसके पति-गृह भेजकर पुनः उनके पास आने का उद्देश्य भी आदि से अन्त तक कहा ॥५-६॥ ऋषि ने कहा—हे राजन्! आपके द्वारा किया गया कार्य और आपके पुनरागमन का उद्देश्य यह सब मैं पहिले ही जान चुका हूँ ॥७॥

अप्रष्टुमामिहायातस्त्वमयेत्युद्विग्नमानसः ।
त्वमागतोमहीपालशृणुकार्यंचयत्त्वया ॥८
पत्नीधर्मार्थकामानांकारणंप्रबलंनृणाम् ।
विशेषतश्चधर्मस्यसंत्यक्तस्त्यजताहिताम् ॥९
अपत्नीकनरोभूपनयोग्योनिजकर्मणाम् ।
ब्राह्मणःक्षत्रियोवापिवैश्यःशूद्रोऽपिवानृप ॥१०
त्यजताभवतापत्नीनशोभनमनुष्ठितम् ।
अत्याज्योहियथाभर्तास्त्रीणांभार्यातथानृणाम् ॥११
भगवन्निचरोऽस्येपविपाकोममकर्मणाम् ।
नानुकूलानुकूलस्ययस्मात्त्यक्तातोमता ॥१२
यद्यत्करोतितत्क्षान्तंदह्यमानेनचेतसा ।
भगवंस्तद्वियोगार्तिबिभीतेनान्तरात्मना ॥१३
साम्प्रतंतुवनेत्यक्तानवेद्मिक्वनुमागता ।
भक्षितावापिविपिनेसिंहव्याघ्रनिशाचरैः ॥१४

फिर भी आप स्वयं ही मुझसे प्रश्न करें, इसी की प्रतीक्षा में था. हे राजन् ! अब आप अपने कर्त्तव्य के विषय में सुनिये ॥८॥ मनुष्यों के धर्म, अर्थ और काम के साधन का प्रबल कारण भार्या ही है, जो भार्या का त्याग कर देते हैं, वह धर्म का भी त्याग करते हैं ॥९॥ हे राजन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र ही क्यों न हो, पत्नी को त्याग करके अपने कर्म के अनुष्ठान में समर्थ नहीं होते ॥१०॥ हे राजन् ! आपने पत्नी का त्याग करके उचित कार्य नहीं किया है, जैसे स्त्री के लिये पति का त्याग अनुचित है, वैसे ही पति के लिये पत्नी का त्याग भी उचित नहीं है ॥११॥ राजा बोले—हे भगवन् ! मैं तो पत्नी का त्याग कर ही बैठा, अब मुझे क्या करना चाहिये ? ॥१२॥ उसके वियोग के कारण मेरा अन्तरात्मा क्षोभ से भरा हुआ है और चित्त दग्ध हो रहा है, इसीलिये उस पत्नी द्वारा किये सब अप्रिय आचरण भूल गया हूँ ॥१३॥ परन्तु, वन में त्यागी हुई मेरी पत्नी न जाने कहां चली गई होगी ? अथवा उसे सिंह, व्याघ्र या राक्षसों ने भक्षण कर लिया होगा, यह मुझे ज्ञात नहीं है ।१४।

नभक्षितासाभूपालसिंहव्याघ्रनिशाचरैः ।
सात्वविप्लुतचरित्रासाम्प्रतंतुरसातले ॥१५
सानीताकेनपातालमास्तेसाऽदूषिताकथम् ।
अत्युद्भुतमिदंब्रह्मन्यथावद्वक्तुमर्हसि ॥१६
पातालेनागराजोऽस्तिप्रख्यातश्चकपोतकः ।
तेनदृष्टात्वयात्यक्ताभ्रममाणामहावने ॥१७
सारूपशालिनीतेनसानुरागेणपार्थिव ।
वेदितार्थेनपातालंनीतासायुवतीतदा ॥१८
ततस्तस्यसुतासुभ्रूर्नन्दानाममहीपते ।
भार्यामनोरमाचास्यनागराजस्यधीमतः ॥१९
तयामातुःसपत्नीयंसाभवित्रीतिशोभना ।
दृष्टास्वगेहंसानीतागुप्ताचान्तःपुरेशुभा ॥२०
यदातुयाचितानन्दानददातिनृपोत्तरम् ।
मूकाभविष्यसीत्याहतदातांतनयांपिता ॥२१

ऋषि ने कहा—हे राजन् ! सिंह, व्याघ्र अथवा राक्षस किसी ने भी उसका भक्षण नहीं किया है, वह इस समय विशुद्ध चरित्र युक्त होकर रसातल में रह रही है ॥१५॥ राजा बोले—हे ब्रह्मन् ! मेरी पत्नी रसातल में किसके द्वारा गई और किस प्रकार विशुद्ध होकर रहती है, यह अद्भुत बात मुझे यथावत् बताने की कृपा करिये ॥१६॥ ऋषि ने कहा—हे राजन् ! कपोतक नाम के एक नागराज रसातल में रहते हैं, उन्होंने आपके द्वारा परित्यक्त उस रूपवती नारी को महावन में भ्रमण करते हुए देखा तो वह उस पर अनुरक्त होगये और अपना प्रयोजन बता कर वह उसे रसातल में ले गये ॥१७-१८॥ उन नागराज की पत्नी का नाम मनोरमा तथा कन्या का नाम नन्दा है ॥१९॥ उस कन्या ने इस सुन्दरी को अपनी माता की होने वाली सपत्नी जानकर उसे अन्तःपुर में छिपा लिया ॥२०॥ जब नागराज इस सुन्दरी के विषय में अपनी पुत्री से कहते तब वह उन्हें कुछ उत्तर न देती थी, इस पर नागराज ने अपनी पुत्री नन्दा को गूँगी होने का शाप दे दिया ॥२१॥

एवंशप्तासुतातेनसाचास्येतश्चभूपते ।
नीतातेनोरगेन्द्रेणधृतातत्सुतयासती ॥२२
ततोराजापरंहर्षमवाप्यतमपृच्छत ।
द्विजवर्यस्वदौर्भाग्यकारणंदयिताप्रति ॥२३
भगवन्सर्वलोकस्यममयिप्रीतिरुत्तमा ।
किन्नुतत्कारणंयेनस्वपत्नीनातिवत्सला ॥२४
ममचासासमतीभेष्टाप्राणेभ्योऽपिमहामुने ।
साचमाप्रतिदुःशीलाब्रूहितत्कारणंद्विज ॥२५
पाणिग्रहणकालेत्वंसूर्यभौमशनैश्चरैः ।
शुक्रवाचस्पतिभ्यांचतत्रभार्याचवीक्षिता ॥२६
तन्मुहूर्तेऽभवच्चन्द्रस्तस्याः सोमसुतस्तथा ।
परस्परविपक्षातौनतःशृणुष्वतेऽवनीम् ॥२७
तद्गच्छस्वस्वधर्मेणपरिपालयमेदिनीम् ।
पत्नीमादायसर्वाश्चकुरुधर्मवतीःक्रियाः ॥२८

इत्युक्तेप्रणिपत्यैनमारुह्यस्यन्दनंततः ।
उत्तमःपृथिवीपालश्राजगामनिजंपुरम् ॥२९

हे राजन् ! वह नागकन्या इस प्रकार अपने पिता के द्वारा शापित हुई है, फिर भी उसने इस सुन्दरी को पकड़ रखा है ॥२२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस पर राजा अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होंने अपनी पत्नी के अपने प्रति अप्रिय भाव का कारण ऋषि से पूछा ॥२३॥ राजा बोले—हे भगवन् ! सभी मनुष्य मुझसे अत्यन्त प्रेम करते हैं, परन्तु मेरी अपनी ही पत्नी मुझ में अनुरागिणी नहीं है, इसका कारण क्या है ? ॥२४॥ हे महामुने ! मेरे प्राणों से अधिक प्रिय होने पर भी वह पत्नी मेरे प्रति कुव्यवहार करती है, उसका कारण मुझे बताइये ॥२५॥ ऋषि ने कहा—जिस समय आपका विवाह हुआ था, उस समय आप पर सूर्य, मंगल और शनिश्चर की तथा आपकी पत्नी पर शुक्र और बृहस्पति की दृष्टि थी ॥२६॥ उसी मुहूर्त्त में आपके बुध और आपकी पत्नी के चन्द्रमा परस्पर में घोर विपक्षी थे ॥२७॥ अब जाकर अपनी पत्नी से मिलो और सब प्रकार धर्म-कार्यों का अनुष्ठान और पृथिवी का पालन करो ॥२८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—महर्षि के ऐसा कहने पर महाराज उत्तम ने उन्हें प्रणाम किया और रथारूढ़ होकर अपने नगर में आये ॥२९॥

६४—गौतम मनु की उत्पत्ति

ततःस्वनगरंप्राप्यतंददर्शद्विजंनृपः ।
समेतंभार्ययाचैवशीलवत्यामुदान्वितम् ॥१
राजवर्यकृतार्थोऽस्मियतोधर्म्मोहिरक्षितः ।
धर्मज्ञेनेहभवताभार्यामानयतामम ॥२
कृतार्थस्त्वंद्विजश्रेष्ठनिजधर्मानुपालनात् ।
वयंसङ्कटिनोविप्रयेषांपत्नीनवेश्मनि ॥३
नरेन्द्रसाहिविपिनेभक्षिताश्वापदैर्यदि ।
क्रोधस्यवशमागम्यधर्मोनावेक्षितस्त्वया ।

अलतयाविमन्यस्थानपाणिगृं ह्यतेत्वया ।
सन्तिराज्ञागृहेकन्याशोभनानृपनन्दन ॥४
नभक्षितामेदयिताश्वापदै.माहिजीवति ।
अविदूषितचारित्राकथमेतत्करोम्यहम् ॥५
यदिजीवतितभार्यानचैवव्यभिचारिणी ।
अपत्नीकत्वतोजन्मकिपापक्रियतेत्वया ॥६
आनीतापिहिसाविप्रप्रतिकूलामदैवमे ।
दुःखायनसुखायालतस्यामैत्रीनवैमयि ।
यथातेब्राह्मणीविप्रवशगातवसुव्रती ।
तथात्वकुरुयत्नमेयथामावशगामिनी ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—महाराज उत्तम ने अपने नगर में पहुँचकर उस ब्राह्मण को अपनी शीलवती पत्नी के साथ हर्ष सहित स्थित देखा ॥१॥ ब्राह्मण ने राजा से कहा—हे नृपश्रेष्ठ ! आपने धर्म के ज्ञाता होने के कारण मेरी पत्नी को लाकर धर्म की रक्षा की है इससे मैं धन्य हुआ हूँ ॥२॥ राजा ने कहा—हे द्विजवर ! आप अपने धर्म पालन के कारण कृतकृत्य हुए हैं, परन्तु मेरे घर में भार्या नहीं है इसलिए मैं घोर विपत्ति में पड़ा हूँ ॥३॥ ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! आपने क्रोधवश उस समय धर्म को नहीं देखा, अब उसे कहीं हिंसक जीवों ने भक्षण कर लिया हो या किसी और प्रकार से नष्ट हो गई हो तो उसके मिलने की आशा न करके किसी अन्य कन्या से विवाह क्यों नहीं कर लेते हे राजन् ! राजाओं के घर अनेक कन्याएँ होंगी ॥४॥ राजा ने कहा—मेरी पत्नी का किसी ने भक्षण नहीं किया, वह अभी भी विशुद्ध चरित्र से जीवितावस्था में है फिर कैसे अन्य स्त्री का ग्रहण करूँ ? ॥५॥ ब्राह्मण बोला—यदि आपकी पत्नी अभी तक श्रेष्ठ चरित्र वाली होकर जीवित है तो उसे छोड़कर पाप क्यों करते हैं ? राजा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं उसे ले भी आऊँगा तो वह मेरे अनुकूल नहीं होगी, क्योंकि उसकी प्रीति मुझमें नहीं है इससे मुझे दुःख ही होगा, अब आप वह उपाय करिये जिससे वह मेरे वश में हो सके ॥७॥

त्वयिसंप्रीतयेतस्यावरेष्टिरुपकारिणी ।
क्रियतेमित्रकामैर्यामित्रविन्दांकरोमिताम् ॥८
अप्रीतयोःप्रीतिकरीसाहिसंजननीपरम् ।
भार्यापत्योर्मनुष्येन्द्रतांतवेष्टिंकरोम्यहम् ॥९
यत्रतिष्ठतिसासुभ्रूस्तवभार्यामहीपते ।
तस्मादानीयतांसातेपरांप्रीतिमुपैष्यति ॥१०
(तस्यास्तवहितार्थायधर्मोयत्रनसीदति)
इत्युक्तःसतुनिखिलसम्भारानननीपतिः ।
आनिनायचकारेष्टिंसचतांद्विजसत्तमः ॥११
सप्तकृत्व सतुतदा चकारेष्टिंपुनःपुनः ।
तस्यराज्ञोद्विजश्रेष्ठोभार्यासम्पादनायवै ॥१२
यदारोपितमैत्रांतामसन्यतमहामुनिः ।
स्वभर्त्तरितदाविप्रस्तमुवाचनराधिपम् ॥१३
आनीयतांनरश्रेष्ठयातवेष्ठात्मनोऽन्तिकम् ।
भुंक्ष्वभोगांस्तयासार्द्धयजयज्ञांस्तयाद्दतः ॥१४

ब्राह्मण बोला—मित्रता की कामना वाले उपकारी पुरुष जिस यज्ञ को करते हैं, उसी मित्रविन्दा नामक यज्ञ को मैं तुम्हारी पत्नी के लिए करूंगा ॥८॥ हे राजन् ! वह यज्ञ असन्तुष्ट स्त्री-पुरुष में प्रीति कराने वाला और शक्ति का देने वाला है, मैं उसी का आपके निमित्त अनुष्ठान करूंगा ॥९॥ आपकी वह पत्नी जहाँ रहती है, वहाँ से उसे ले आइये, वह अवश्य ही आप के प्रति परम कर्तव्य करने वाली हो जायगी ॥१०॥ (तुम्हारे हित के लिए ऐसे अवसर में धर्म की हानि नहीं होती) मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मण का वचन सुनकर महाराज उत्तम ने सम्पूर्ण यज्ञ सामग्री उपस्थित की और उस ब्राह्मण ने भी यज्ञ का अनुष्ठान किया ॥१२॥ जब उसने उस राजमहिषी को अपने स्वामी के प्रति अनुरक्त समझा तब वह राजा से बोला ॥१३॥ हे राजन्, अब अपनी उस पत्नी को लाकर सांसारिक सुखों को भोगिये, और यत्न पूर्वक यज्ञ कार्यों को सम्पन्न करिये ॥१४॥

इत्युक्तस्तेनविप्रेणभूपालोविस्मितस्तदा ।
सस्मारतंमहावीर्यसत्यसन्धंनिशाचरम् ॥१५
स्मृतस्तेनतदासद्य समुपेत्यनराधिपम् ।
किंकरोमीतिसोऽप्याहप्रणिपत्यमहामुने ॥१६
ततस्तेननरेन्द्रेणविस्तरेणनिवेदिते ।
गत्वापातालमादायराजपत्नीमुपाययौ ॥१७
आनीताचातिहार्देनसाददर्शतदापतिम् ।
उवाचचप्रसीदेतिभूयोभूयोमुदान्विता ॥१८
तत सराजारभसापरिष्वज्याहमानिनीम् ।
प्रियेप्रसन्नएवाहभूयाऽप्येवंब्रवीषिकिम् ॥१९
यदिप्रसादप्रवणनरेन्द्रमयितेमन ।
तदेतदभियाचेत्वातत्कुरुष्वममाहणम् ॥२०
नि शङ्केन्रूहिमत्तायद्रूवत्याकिंचिदीप्सितम् ।
तदलभ्यनतभीरतवायत्तोऽस्मिनान्यथा । २१

मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मण की यह बात सुनकर राजा अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हुए और उन्होंने उसी समय उस महान् पराक्रमी राक्षस का स्मरण किया ॥१५॥ स्मरण करते ही वह राक्षस उसी समय उपस्थित हुआ और उनको प्रणाम करता हुआ बोला—मुझे क्या आज्ञा है ? ॥१६॥ तब राजा ने सब बात उस विस्तारपूर्वक बतायी और तब वह पाताल में जाकर रानी को शीघ्र ही लाकर आ गया ॥१७॥ रानी ने वहाँ आकर हार्दिक प्रीति सहित अपने पति को देखा और प्रसन्न होओ इस प्रकार बारम्बार विनय करने लगी ॥१८॥ फिर राजा ने उत्सुकतापूर्वक उसे हृदय से लगा लिया और बोले—हे प्रिये ! मैं तो तुम पर प्रसन्न ही हूँ। फिर तुम बारम्बार इस प्रकार क्यों कहती हो ? ॥१९॥ रानी ने कहा—हे महाराज ! आप यदि मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे योग्य सम्मान की आप रक्षा करें ॥२०॥ राजा बोले—अपनी अभिलषित बात शङ्का रहित मन से कहो, मेरे पास तुम्हारे लिए अप्राप्य वस्तु भी नहीं है, मैं तुम्हारे ही वश में हूँ ॥२१॥

मदर्थंतेननागेनसुताशप्तासखीमम ।
मूकाभविष्यसीत्याहसाचमूकत्वमागता ॥२२
तस्याःप्रतिक्रियांप्रीत्याममशक्रोतिचेद्भवान् ।
वाग्विघातप्रशान्त्यर्थंततःकिंनकृतंमम ॥२३
ततःसराजातंविप्रमाहास्मिन्कीदृशीक्रिया ।
तन्मूकतापनोदायसचतंप्राहपार्थिवम् ॥२४
भूपसारस्वतीमिष्टिंकरोमिवचनात्तव ।
पत्नीतवेयमानृण्यंयातुतद्वाक्प्रवर्तनात् ॥२५
इष्टिंसारस्वतींचक्रे तदर्थंसद्विजोत्तमः ।
सारस्वतानिसूक्तानिजजापचसमाहितः ॥२६
ततःप्रवृत्तवाक्यांतांगर्गःप्राहरसातले ।
उपकारःसखीभर्त्राकृतोऽयमतिदुष्करः ॥२७
इत्थंज्ञानंसमासाद्यनन्दाशीघ्रगतिःपुरम् ।
ततोराज्ञींपरिष्वज्यस्वसखीमुरगात्मजा ॥२८
तंचसंस्तूयभूपालंकल्याणोक्त्यापुनःपुनः ।
उवाचमधुरंनागीकृतासनपरिग्रहा ॥२९

रानी ने कहा—नागराज की कन्या मेरी सखी है और वह नागराज के शापवश गूँगी हो गई है ॥२२॥ यदि आप मुझ पर प्रीति करते हैं और उसके गूँगेपन को दूर करने में समर्थ हैं, तो आपने अवश्य ही मेरा सब कुछ कार्य किया समझो ॥२३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब राजा ने उस ब्राह्मण से नागकन्या के गूँगेपन को दूर करने का उपाय पूछा ॥२४॥ ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! आपके वचन मानकर मैं सरस्वती की इष्टि करूँगा, क्योंकि आपकी यह पत्नी उसकी मूकता दूर होने पर ही ऋण से छूटेगी ॥२५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब उस ब्राह्मण ने सरस्वती की इष्टि का प्रारम्भ किया और यत्न पूर्वक सारस्वत सूक्त को जपने लगा ॥२६॥ तदनन्तर गर्ग ऋषि ने पाताल में वाक्शक्ति को प्राप्त हुई उस नागकन्या से कहा कि तुम्हारी सखी ने तुम्हारा

यह अत्यन्त कठिन उपकार किया है ॥२७॥ तब वह नागकन्या नन्दा अपनी सखी के लिए उस नगर में आई और उसने रानी को आलिंगन किया ॥२८॥ और वह राजा के भी गुण गाती हुई आसन पर बैठकर मंगलमय वचनों द्वारा कहने लगी ॥२६॥

उपकार कृतोवीरभवतायोममाधुना ।
॥३०

तस्याप्रतिहतचक्रमस्याभुविभविष्यति ॥३१
सर्व्वार्थंशास्त्रतत्त्वज्ञोधर्मानुष्ठानतत्पर ।
मन्वन्तरेश्वरोधीमान्भविष्यतिसवैमनुः ॥३२
इतिदत्वावरतस्मैनागराजसुतातत ।
सखीतासपरिष्वज्यपातालमगमन्मुने ॥३३
तत्रतस्यतयासार्द्धं रमत पृथिवीपते ।
जगामकाल सुमहान्प्रजा पालयतस्तथा ॥३४
तत सतस्मात्तनय।जज्ञे राज्ञीमहात्मन ।
पौर्णमास्यायथापूर्णचन्द्र मपूर्णमण्डल ॥३५

हे वीर ! आपने जो मेरा जो उपकार किया है, उससे मेरा हृदय अत्यन्त आह्लादित हुआ है। अब मैं जो कुछ कहती हूँ, उसे श्रवण करें ॥३०॥ हे राजन् ! आपको अत्यन्त पराक्रमी पुत्र की प्राप्ति होगी और इस भूमण्डल पर उसका अखण्ड राज्य होगा ॥३१॥ आपका सर्वार्थ साधक, शास्त्र में तत्वज्ञानी, धर्मानुष्ठान में सदैव तत्पर वह मेधावी पुत्र मन्वन्तर का स्वामी मनु होगा ॥३२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार राजा को बारम्बार वर देती हुई नागकन्या अपनी सखी का प्रगाढ़ आलिंगन करके अपने लोक को गई ॥३३॥ इसके पत्नी के साथ विहार करते हुए और प्रजा का पालन करते हुए राजा को बहुत समय व्यतीत हो गया ॥३४॥ फिर रानी के गर्भ में पूर्णिमा के चन्द्र मण्डल के समान श्रेष्ठ कान्ति वाले पुत्र की उनके उत्पत्ति हुई ॥३५॥

तस्मिंञ्जातेमुदंप्रापु:प्रजा:सर्वा:सहामरा ।
देवदुन्दुभयोनेदु:पुष्पवृष्टि:पपातच ॥३६॥
तस्यदृष्ट्वावपु:कान्तंभविष्यंशीलमेवच ।
औत्तमश्चेतिमुनयोनामचक्रु:समागता: ॥३७॥
जातोऽयमुत्तमेवंशेबाल कालेतथोत्तमे ।
उत्तमावयवस्तेनऔत्तमोऽयंभविष्यति ॥३८॥
उत्तमस्यसुत:सोऽथनाम्नाख्यातस्तथौत्तम: ।
मानुरासी त्तत्प्रभावोभागुरेश्रूयतांमम ॥३९॥
उत्तमाख्यानमखिलंजन्मचैवौत्तमस्यय: ।
नित्यंशृणोतिविद्वेषंसकदाचिन्नगच्छति ॥४०॥
इष्टैर्दारैस्तथापुत्रैर्बन्धुभिर्वाकदाचन ।
वियोगोनास्यभविताशृण्वत:पठतोऽपिवा ॥४१॥
तस्यमन्वन्तरंब्रह्मन्वदतोममविस्तरात् ।
श्रूयतांतत्रयश्चेन्द्रोयेचदेवास्तथर्षय: ॥४२॥

उनके जन्म लेने पर समस्त प्रजा आनन्द में मग्न होगई, देवताओं द्वारा वाद्य वादन और पुष्प वृष्टि की गई ॥३६॥ आगत मुनियों ने उसके स्वभावादि को देखकर उसका 'औत्तम' नाम रखा ॥३७॥ मुनिगण बोले कि इसने उत्तम कुल, उत्तम काल और उत्तम अङ्ग सहित जन्म ग्रहण किया है, इसलिये यह 'औत्तम' नाम से प्रसिद्ध होगा ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुने ! उत्तम के पुत्र होने से वह 'औत्तम' नाम से प्रसिद्ध होकर मनु होगये, अब उनका प्रभाव कहता हूँ उसे सुनो ॥३९॥ जो मनुष्य राजा उत्तम के आख्यान और औत्तम मनु के जन्म का वृत्तान्त श्रवण करते हैं, वे कभी विद्वेष को प्राप्त नहीं होते ॥४०॥ तथा इसके सुनने या पढ़ने वालों को कभी इष्ट, मित्र, पुत्र, स्त्री और बन्धुओं का वियोग सहन नहीं करना पड़ता ॥४१॥ अब उनके मन्वन्तर के वृत्तान्त का विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूँ, उसे श्रवण करो, हे ब्रह्मन् ! उस समय के देवताओं और ऋषियों के विषय में भी कहता हूं ॥४२॥

६५—औत्तम मन्वन्तर कथन

मन्वन्तरेतृतीयेऽस्मिन्नौत्तमस्यप्रजापते ।
देवानिन्द्रमृषीन्भूपान्निबोधगदतोमम ॥१॥
स्वधामानस्तथादेवायथानामानुकारिणः ।
सत्याख्यश्चद्वितीयोऽन्यस्त्रिदशानातथागणः ॥२॥
तृतीयेतुगणेदेवा शिवाख्यामुनिसत्तम ।
शिवास्वरूपतस्तेतु श्रु ता पापप्रणाशना ॥३॥
प्रतर्दनाख्यश्चगणोदेवानामुनिसत्तम ।
चतुर्थ स्तत्रकथितऔत्तमस्यान्तरेमनो ॥४॥
वशवर्तिन पचमेऽपिदेवास्तत्रगणद्विज ।
यथास्यातस्वरूपास्तुसर्वएवमहामुने ॥५॥
एतेदेवगणा पचस्मृतायज्ञभुजस्तथा ।
मन्वन्तरेमनुश्रेष्ठे सर्वेद्वादशकागणा ॥६
तेषामिन्द्रामहाभागस्त्रैलोक्यस्यश्चगोऽभवत् ।
शतयज्ञनामाहत्यमुनान्निर्नामनामत ॥७
यस्यापसर्गनाशायनामाक्षरविभूषिता ।
अद्यापिमानवैर्गाथागीयतेतुमहीतले ॥८

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुने ! अब औत्तम प्रजापति के तृतीय मन्वन्तर के देवता, इन्द्र और ऋषिगण के विषय में कहता हूँ श्रवण करो ॥१॥ पहला 'स्वधामा' नामक ... देवताओं के नाम के अनुरूप ही स्वज्योति से प्रकाशित है और द्वितीय गण का नाम 'सत्य' है ॥२॥ तृतीय गण 'शिव' नाम से प्रसिद्ध है तथा इसके नाम का स्मरण करते ही वह पाप को नष्ट करके 'शिव' नाम को सार्थक करता है ॥३॥ हे मुने ! औत्तम मन्वन्तर के देवताओं का चतुर्थगण 'प्रतर्दन' नाम वाला है ॥४॥ पंचम गण में 'वशवर्ती' नामक देवता स्थित हैं, ये सब नाम के ही अनुरूप कार्य करने वाले हैं, हे द्विजवर ! इस मन्वन्तर में यज्ञ भोगी देवताओं के पाँच प्रकार के गण तथा प्रत्येक गण में द्वादश देवता

हैं ॥५-६॥ उन देवताओं के इन्द्र 'सुशान्ति' नामक हैं, जो सौ अश्वमेध यज्ञ करके तीनों लोक के गुरु होते हैं ॥७॥ उन देवेन्द्र सुशान्ति का यह नाम और अक्षर से विभूषित वृत्तान्त भूतल में अब भी कहा जाता है ॥८॥

सुशान्तिर्देवराट्कान्तःसुशान्तिंसंप्रयच्छति ।
सहितःशिवसत्याद्यै स्तथैववशवर्तिभिः ॥९
अजः परशुचिर्दिव्योमहाबलपराक्रमः ।
पुत्रास्तस्यमनोरासन्विख्यातास्त्रिदशोपमाः ॥१०
तत्सूतिसम्भवैर्भू तिःपालिताभून्नरेश्वरैः ।
यावन्मन्वन्तरंतस्यमनोरुत्तमतेजसः ॥११
चतुर्यु गानांसंख्याता साधिकाह्ये कसप्ततिः ।
कृतत्रेतादिसज्ञानियान्युक्तानिपुरामया ॥१२
स्वतेजसाहितपसोवरिष्ठस्यमहात्मनः ।
तनयाश्चान्तरेतस्मिन्सप्तसप्तर्षयोभवन् ॥१३
तृतीयमेतत्कथितंतवमन्वन्तरमया ।
तामसस्यचतुर्थंतुमनोरन्तरमुच्यते ॥१४
वियोनिजन्मनोयस्ययशसाद्योतितंजगत् ।
जन्मतस्यमनोर्ब्रह्मञ्छ्रूयतांगदतोमम ॥१५
अतीन्द्रियमशेषाणांमनूनांचरितंतथा ।
तथाजन्मापिविज्ञेयंप्रभावश्चमहात्मनाम् ॥१६

वह तेजस्वी देवेन्द्र सुशान्ति शिवादि देवताओं के सहित सुख शान्ति के ने वाले हैं तथा उनके वश में रहने वाले देवता भी इसी प्रकार के स्वभाव ाले हैं ॥९॥ इन औत्तम मनु के तीन पुत्र देवताओं के समान अत्यन्त पराक्रमी ए थे, जिनके नाम अज, परशुचि और दिव्य थे ॥१०॥ उनका मन्वन्तर जितने दनों तक रहा, उतने काल तक उनके वंशधर इस पृथिवी पर राज्य करते हे ॥११॥ इस मन्वन्तर में सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलि यह चारों युग हुए , उक्त प्रकार की कुछ अधिक चतुर्यु गियों का मन्वन्तर कहा गया है ॥१२॥ इस मन्वन्तर में महातपा नामक महात्मा के सात पुत्र ही सप्तर्षि हुए थे ॥१३॥

यह तृतीय मन्वन्तर का वृत्तान्त हुआ, अब चतुर्थ मन्वन्तर के विषय में कहता हूँ ॥१४॥ विभिन्न योनि जन्मा जिन मनु से सुयश से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशमान हुआ उन मनु की उत्पत्ति कहता हूँ, उसे तुम श्रवण करो ॥१५॥ इन सभी महात्मा मनुओं का चरित्र और उनके जन्म के प्रभाव को अवश्य जानना चाहिए ॥१६॥

६६—तामस मन्वन्तर

राजाभूद्भुवि विख्यात स्वराष्ट्रोनामवीर्यवान् ।
अनेकयज्ञकृत्प्राज्ञ सग्रामेष्वपराजित ॥१
तस्यायु सुमहद्दत्तंसूर्येणसुमहात्मने ।
(पुराभगवताविप्रमन्त्रिणाराधितेनवै ।)
पत्नीनाञ्चशतनस्य धन्यानामभवद्द्विज ॥२
तस्यदीर्घायुषःपत्न्योनातिदीर्घायुषोमुने ।
कालेनजग्मुर्निधनभृत्यमन्त्रिजनास्तथा ॥३
सभार्याभिस्तथामुक्तोभृत्यैश्चसहजन्मभि ।
उद्विग्नचेता सप्रापवीर्यहानिमहर्निशम् ॥४
तवीर्यहीननिर्भृतंभृत्यैस्त्यक्त सुदु खितम् ।
अनन्तरोविमर्दाख्योराज्याच्च्यावितवास्तदा ॥५
राज्याच्च्युत सोऽपिवनगत्वानिर्विण्णमानस ।
तपस्तेपेमहाभागोवितस्तापुलिनेस्थित ॥६
ग्रीष्मेपञ्चतपाभूत्वावर्षास्वभ्रावकाशक ।
जलशायीचशिशिरेनिराहारोयतव्रत ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—स्वराष्ट्र नामक एक राजा अनेक यज्ञों का करने वाले, युद्ध में सदा जीतने वाले, अत्यन्त पराक्रमी और ज्ञानी थे ॥१॥ हे द्विज ! उनके मन्त्रियों की आराधना से प्रसन्न हुए भगवान् भास्कर ने उनको दीर्घा-

पुण्य वज्रधर था, उन राजा की 'धन्या' नाम की एक अत्यन्त सुन्दर भार्या थी ॥२॥ परन्तु, उन राजा की भार्याएँ दीर्घायु वाली नहीं थीं, इसलिये वे शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हुईं और मन्त्रिगण तथा भृत्यगण भी काल के वशीभूत होगये ॥३॥ राजा अपने सुहृदों, भृत्यों और भार्याओं के वियोग में उद्विग्न रहते हुए दिनोंदिन पराक्रम-हीन होने लगे ॥४॥ अवसर प्राप्त कर एक निकटस्थ विमर्द नाम के राजा ने इस वीर्यहीन और विश्वासी भृत्यों से रहित दुःखित हृदय राजा को राज्य से भ्रष्ट कर डाला ॥५॥ वह राजा अपने राज्य से हटने के कारण दुःख पूर्ण हृदय से वितस्तानदी के तट पर वन में रहते हुए तप करने लगे ॥६॥ वह ग्रीष्म काल में पञ्चाग्नि से तपते, वर्षा के समय खुले में बैठ कर भीगते और शीतकाल में जल में शयन करते आहार त्याग कर संयम पूर्वक तप करते थे ॥७॥

ततस्तापस्यतस्तस्यप्रावृट्कालेमहाप्लवः ।
बभूवानुदिनंमेघैर्वर्षद्भिरनुसन्ततम् ॥८
नदिग्विज्ञायतेपूर्वादक्षिणावानपश्चिमा ।
नोत्तरातमसासर्वमनुलिप्तमिवाभवत् ॥९
ततोऽतिपूरेणनृपःनद्यास्तीरितस्तटम् ।
प्रार्थयन्नपिनावापह्रियमाणोऽतिवेगिना ॥१०
अथदूरेजलौघेनह्रियमाणोमहीपतिः ।
आससादजलेरौहींसपुच्छेजगृहेचताम् ॥११
तेनप्लवेनसययाबूह्यामनोमहीतले ।
इतश्चेतश्चान्धकारेआससादतटंततः ॥१२
विस्तारिपङ्कमत्यर्थंदुस्तरंसनृपस्तरम् ।
तथैवकृष्यमाणोऽन्यद्रम्यंवनमवापसः ॥१३
तत्रान्धकारेसारौहीचकर्षवसुधाधिपम् ।
पुच्छेलग्नमहाभागंकृशंधमनिसन्ततम् ॥१४

फिर एक दिन, जब राजा तपस्या में रत थे, तब घोर वृष्टि होने से पृथिवी सर्वत्र जलमयी होगई थी ॥८॥ दिशाएँ अन्धकार से ढक गई थीं, इस-

लिए दक्षिणादि किसी भी दिशा का ज्ञान नहीं हो रहा था ॥९॥ तब वह राजा जल के वेग से नदी तट में प्रवाहित होते हुए उस नदी के तट को नहीं पा सके ॥१०॥ फिर वह जल प्रवाह में बहने लगे, तभी उन्हें एक रोही दिखाई दी, तो उन्होंने उसकी पूँछ पकड़ ली ॥११॥ फिर उस विशाल जल समूह से खिंचे हुए पृथिवी के तल में पहुँचे और अँधेरे में इधर-उधर टटोल कर किनारे को प्राप्त हुए ॥१२॥ मृगी के द्वारा खिंचते हुए राजा उस विस्तृत और कठिनता से पार की जाने वाली कीचड़ से पार होकर एक सुरम्य वन में पहुँच गये ॥१३॥ वह मृगी पूँछ का पकड़े हुए उन महाभाग राजा को अन्धकार में खींचने लगी ॥१४॥

तस्याश्चस्पर्शसम्भूतामवापमुदमुत्तमाम् ।
सोऽन्धकारे भ्रमन्भूपो मदनाकृष्टमानसः ॥१५
विज्ञायमानुरागं तं पृष्ठस्पर्शनतत्परम् ।
नरेन्द्र तद्वृपस्यतमामृगीतमुवाचह ॥१६
किंपृष्ठे वेपथुमता करेणस्पृशसे मम ।
अन्यथैवास्य कार्यस्य सञ्ज्ञानान्नृपतेगति ॥१७
विविक्तेत्वमहं स्थाने मा विघ्नमपलालये करोनिमे ॥१८
इतिथ्रुत्वा वचस्तस्या मृग्याश्च जगतां पतिः ।
जातकौतूहलो राजा तामिदं वचनमब्रवीत् ॥१९
कात्वम् हि मृगीवाक्यं कथमानुषवद्वदेत् ।
कश्च वनालोयाविघ्नत्वमन्ते कुरुते मम ॥२०
महन्तेऽस्पिता भूपश्रोगामयुत्पलावती ।
भार्याधिताप्रमहिषी दुहिता दृढधन्वनः ॥२१

भावमगत चित्त वाले होकर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥१५॥ महाराज स्वराष्ट्र अन्धेरे में विचरण करते हुए मृगी के स्पर्श से कामागत चित्त वाले होकर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥१५॥ जब उन्होंने उस मृगी के पृष्ठ भाग का उस वन प्रदेश में जाकर स्पर्श किया, तब उन्हें अनुरक्त जानकर वह मृगी बोली ॥१६॥ हे राजन् ! अपने कम्पित हाथों से मेरी पीठ

का इस प्रकार स्पर्श क्यों कर रहे हो ? इस स्पर्श का अन्य भाव प्रतीत हो रहा है ॥१७॥ हे राजन् ! आपकी इच्छा अयोग्य के प्रति नहीं, गमन योग्य के प्रति ही हुई है परन्तु यह लोल आपके संसर्ग में बाधक हैं ॥१८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—मृगी की यह बात सुनकर राजा ने विस्मय पूर्वक उससे कहा ॥१९॥ तुम कौन हो ? मृगी होकर भी मानवी के समान किस प्रकार बोल रही हो तथा तुम्हारे संसर्ग में बाधा देने वाले कौन हैं, यह सब मुझे बताओ ॥२०॥ मृगी बोली—हे राजन् ! मैं आपकी प्रियतमा राजमहिषी तथा सभी रानियों में श्रेष्ठ एव दृढ़धन्वा की पुत्री उत्पलावती हूँ ॥२१॥

किन्तुयावत्कृतंकर्मयेनेमांयोनिमागता ।
पतिव्रताधर्मपरासाचेत्थंकथमीदृशी ॥२२
अहंपितृगृहेबालासखीभिःसहितावनम् ।
रन्तुंगतादर्दशैकंमृगंमृग्यासमागतम् ॥२३
ततःसमीपवर्तिन्यामयासाताडितामृगी ।
मयात्रस्तागतान्यत्रक्रुद्धःप्राहततोमृगः ॥२४
मूढेकिमेवंमत्तासिधिक्तेदौःशील्यमीदृशम् ।
आधानकालोयेनायंत्वयामेविफलीकृतः ॥२५
वाचंश्रुत्वाततस्तस्यमानुषस्येवभाषतः ।
भीतातमब्रुवंकोऽसीत्येतांयोनिमुपागतः ॥२६
ततःसप्राहपुत्रोऽहमृषेर्निर्वृतिचक्षुषः ।
सुतपानाममृग्यान्तुसाभिलाषोमृगोऽभवम् ॥२७
इमांचानुगतःप्रेम्णावाञ्छितश्चानयावने ।
त्वयावियोजितादुष्टेतस्माच्छापंददामिते ॥२८

राजा ने कहा—तुमने ऐसा कौन-सा कर्म किया है, जिसके कारण तुम्हें इस योनि को प्राप्त होना पड़ा है ? मेरी वह भार्या तो पतिव्रता और धर्म-परायण थी फिर उसकी ऐसी दशा क्यों हुई ? ॥२२॥ मृगी ने कहा—मैं अपने पितृगृह में, बाल्यकाल में अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा के लिये वन में गई थी, वहाँ एक मृग से युक्त मृगी को मैंने देखा ॥२३॥ फिर उसके पास

जाकर मैंने उस पर प्रहार किया तो वह मृगी भय के कारण वहाँ से चली गई, तब क्रोधित होकर वह मृग मुझसे बोला ॥२४॥ हे मूर्ख ! तेरी इस दुःशीलता का धिक्कार है, तू ऐसी मत्त क्यों हो रही है ? तूने मेरे गर्भाधान काल को विफल कर दिया है ॥२५॥ उस मृग को मनुष्य के समान बोलते देखकर मुझे अत्यन्त भय हुआ और मैंने उससे पूछा—आपको इस मृगयोनि की प्राप्ति क्यों हुई है ? ॥२६॥ मृग ने कहा—मैं निर्वृ तिचक्षु मुनि का पुत्र सुतपा हूँ, मैंने मृगी की इच्छा से मृग रूप धारण किया है ॥२७॥ इस मृगी की अभिलाषा से, इसकी प्रीतिवश हो मैं इसका अनुगामी हुआ हूँ, परन्तु तूने उससे मेरा वियोग करा दिया, इसलिए मुझे शाप दूँगा ॥२८॥

मयाचोक्त तवाज्ञानादपराध कृतोमुने ।
प्रसादकुरुशापमेनभवान्दातुमर्हति ॥२९
इत्युक्त प्राहमामोऽपिमुनिरित्थमहीपते ।
नप्रयच्छामिशापतेयद्यात्मानददासिते ॥३०
मयाचोक्त मृगीनाहमृगरूपधरावने ।
लप्स्यसेऽन्यामृगीतात्वन्मयिभावोनिवर्त्यताम् ॥३१
इत्युक्तःकोपरक्ताक्ष सप्राहस्फुरिताधर ।
नाहमृगीत्वयेत्युक्त मृगीमूढभविष्यसि ॥३२
ततोभृशमव्यथिताप्रणम्यमुनिमब्रु वम् ।
स्वरूपस्थमतिक्रुद्ध प्रसीदेतिपुन पुन ॥३३
बालानभिज्ञावाक्यानातत प्रोक्तमिदमया ।
पितर्यसतिनारीभिर्व्रियतेहिपति स्वयम् ॥३४
सपिताकेनचाहत्वणोमिमुनिसत्तम ।
मापरावाब्धवापादोप्रसीदेपानमाम्यहम् ॥३५

मैंने कहा—हे मुनि श्रेष्ठ ! मुझसे यह अपराध अज्ञान के कारण हुआ है, आप मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे शापित न करें ॥२९॥ हे महाराज ! मेरी बात सुनकर वे मुझसे बोले—यदि मैं तुमसे आत्मदान कर सकूँ तो तुम्हें शापित नहीं करूँगा ॥३०॥ मैं मृगी नहीं हूँ, वन में आपको दूसरी मृगी प्राप्त

हो जायगी, इसलिये मेरे प्रति अपनी इस इच्छा को शान्त कीजिये ।।३१।। ऐसा सुनते ही उनके नेत्र क्रोध से लाल होगये और उन्होंने कम्पित होठों से कहा—तूने 'मैं मृगी नहीं हूं' यह कहा है, इसलिये तू मृगी होगी ।।३२।। तब मैंने व्यथित चित्त से मृग रूप धारी उन मुनि को प्रणाम पूर्वक कहा—मैं बाला हूं, बात कहना भी नहीं जानती, इसीसे ऐसा कह बैठी, आप मेरे प्रति प्रसन्न हों, यदि पिता न हो तो कन्या अपने पति का वरण स्वयं करती है ।।३३-३४।। परन्तु, मैं अपने पिता के होते हुए आपका वरण कैसे कर सकती हूं ? हे प्रभो ! मेरे अपराध को क्षमा करिये, मैं आपके चरणों में वन्दन करती हूं, आप प्रसन्न हों ।।३५।।

प्रसीदेतिप्रसीदेतिप्रणतायांमहामते ।
इत्थंलालप्यमानायाःसप्राहमुनिपुङ्गवः ।।३६
नभवत्यन्यथाप्रोक्तं ममवाक्यंकदाचन ।
मृगीभविष्यसिमृतावनेऽस्मिन्नं त्रजन्मनि ।।३७
मृगत्वेच्चमहाबाहुस्तवगर्भंमुपेष्यति ।
लोलोनाममुनेःपुत्रःसिद्धवीर्यस्यभाविनि ।।३८
जातिस्मराभवित्रीत्वंतस्मिन्गर्भमुपागते ।
स्मृतिंप्राप्यतथावाचंमानुषीमीरयिष्यसि ।।३९
तस्मिञ्जातेमृगत्वात्त्वंविमुक्तापतिनार्चिता ।
लोकानवाप्स्यसिप्राप्यायेनदुष्कृतकर्मभिः ।।४०
सोऽपिलोलोमहावीर्यःपितृशत्रून्निपात्यवै ।
जित्वावसुन्धरांकृत्स्नांभविष्यतिततोमनुः ।।४१
एवंशापमहंलब्ध्वाथमृतातिर्य्यक्त्वमागता ।
त्वत्संस्पर्शाच्चगर्भोऽसौसंभूतोजठरेमम ।।४२

मुझे बारम्बार 'प्रसन्न हों, प्रसन्न हों' कहते देखकर उन मुनिश्रेष्ठ ने कहा ।।३६।। मेरा वचन कभी मिथ्या नहीं होता तो मरने के बाद पर जन्म में इसी वन में मृगी बनोगी ।।३७।। जब तुम मृगी होजाओगी तब किसी सिद्ध वीर्य मुनि का पुत्र 'लोल' तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होगा ।।३८।। जब वह लोल

तुम्हारे गर्भ में स्थित होगा, तब तुम पूर्व जन्म का स्मरण करने वाली और मनुष्यों जैसी वाणी बोलने वाली होगी ॥३९॥ उस महाबाहु लोल के उत्पन्न होने पर तुम शाप मुक्त होकर पति के द्वारा सम्मानित होगी और जिन लोक को पापी मनुष्य प्राप्त नहीं कर पाते, उसी लोक को तुम प्राप्त होगी ॥४०॥ फिर वह अत्यन्त पराक्रमी लोल ही पिता के शत्रुओं का संहार करेगा तथा समस्त पृथिवी का विजेता मनु होगा ॥४१॥ हे राजन्! इस प्रकार शापित होकर मैं तिर्यक् योनि को प्राप्त हूँ, तुम्हारे स्पर्श से मेरे उदर में वह गर्भ उत्पन्न हुआ है ॥४२॥

अतोऽत्रवीमिनास्यानन्वयातमनोमयि ।
नचाप्यगम्यागमनस्याल्लानाविघ्नकरात्यसौ ॥४३
एवमुक्तस्ततः साऽपि राजाप्राप्यपरांमुदम् ।
पुत्रो ममारीञ्जित्वा तु पृथिव्यां भविता मनुः ॥४४
ततस्तं सुषुवे पुत्रं सा मृगी लक्षणान्वितम् ।
तस्मिञ्जाते च भूतानि सर्वाणि प्रययुर्मुदम् ॥४५
विशेषतश्च राजासौ पुत्रे जाते महाबले ।
सा विमुक्ता मृगी शापात्प्राप लोकाननुत्तमान् ॥४६
ततस्तस्य पपुः सर्वे मम समुनिसत्तम ।
अवश्यभाविनीं वृद्धिं नाम चक्रे महात्मने ॥४७
तामसीं भजमानायां योनिं मातर्यजायत ।
तामसाचारभावेतामसाख्यो भविष्यति ॥४८
ततः स तामसस्तेन पित्रा संवर्धितो वने ।
जातबुद्धिश्च वाचेदं पितरं मुनिसत्तम ॥४९

इसीलिए मैंने कहा था कि आपकी मेरे प्रति अभिलाषा गम्य के प्रति है, किन्तु उस गर्भ में स्थित बालक इस कार्य में बाधक है ॥४३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यह पुत्र शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके मनु होगा, यह बात सुनकर राजा अत्यन्त हर्षित हुए ॥४४॥ फिर उस मृगी से श्रेष्ठ लक्षण वाले पुत्र की उत्पत्ति हुई उस समय सभी जीव आनन्द में मग्न हो गये ॥४५॥ इस महा-

पराक्रमी पुत्र के उत्पन्न होने से राजा को परम हर्ष हुआ और मृगी भी शाप से मुक्त होकर अत्युत्कृष्ट लोक में गई ।।४६।। हे मुनिवर ! फिर ऋषियों ने वहाँ आकर उसका भविष्य देखते हुए नामकरण किया ।।४७।। वे बोले— विश्व के अन्धकार द्वारा ढके जाने पर तामसी योनि को प्राप्त हुई माता के गर्भ से इस बालक ने जन्म लिया, इसलिये इसका नाम 'तामस' हुआ ।।४८।। हे मुने ! वह 'तामस' पिता के द्वारा उसी वन में वृद्धि को प्राप्त हुआ और समय पाकर बुद्धि के उदित होने पर वह पिता से बोला ।।४९।।

कस्त्वंतातकथंवाहंपुत्रोमाताचकामम ।
किमर्थमागतश्चत्वमेतत्सत्यंब्रवीहिमे ।।५०
ततःपितायथावृत्तंस्वराज्यच्यावनादिकम् ।
तस्याचष्टेमहाबाहु;पुत्रस्यजगतीपतिः ।।५१
श्रुत्वातत्सकलंसोऽपिसमाराध्यचभास्करम् ।
अवापदिव्यान्यस्त्राणिससहाराण्यशेषतः ।।५२
कृतास्त्रस्तानरीञ्जित्वापितुरानीयचान्तिकम् ।
अनुज्ञातान्मुमोचाथसचस्वंधर्ममास्थितः ।।५३
पितापितस्यसयाँल्लोकांस्तपोयज्ञसमार्जितान् ।
विसृष्टदेहःसंप्राप्तोदृष्ट्वापुत्रमुखंसुखम् ।।५४
जित्वासमस्तांपृथिवींतामसाख्यः सपार्थिवः ।
तामसाख्योमनुरभूत्तस्यमन्वन्तरंशृणु ।।५५

हे तात ! आप कौन है ? मैं आपका पुत्र कैसे हुआ ? मेरी माता कौन हैं ? आप यहाँ किस लिये आये हैं, यह सब मेरे प्रति यथार्थ रूप से कहिये ।५०। तब उन महाबाहु राजा ने अपने पुत्र को अपने राज्य से च्युत होने आदि का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा ।।५१।। उस तामस ने यह बात सुनकर भगवान् भास्कर की उपासना की और निर्वतन मन्त्र के सहित विभिन्न प्रकार के सब दिव्यास्त्र मन्त्र पूर्वक प्राप्त किये ।।५२।। वे अस्त्र प्रयोग में निपुण होकर शत्रुजेता हुए और शत्रुओं को अपने पिता के पास लाकर उनकी आज्ञा से मुक्त कर दिया, इस प्रकार वे अपने धर्म की रक्षा में तत्पर हुए ।।५३।। फिर उनके पिता ने

भी अपने पुत्र का मुख देखकर सुखपूर्वक देह-त्याग किया और यज्ञादि द्वारा संचित पुण्य के प्रभाव से उच्च लोकों को प्राप्त हुए ॥५४॥ सम्पूर्ण पृथिवी के विजेता होकर तामस अपने नामानुसार मनु हुए, अब उनके मन्वन्तर के विषय में श्रवण करो ॥५५॥

येदेवास्तत्पतिर्यश्चदेवेन्द्रोयेतथर्षय ।
येपुत्राश्चमनोस्तस्यपृथिवीपरिपालका ॥५६
सत्यास्तथान्येसुधिय सुरूपाहरयस्तथा ।
एतेदेवगणास्तत्रसप्तविंशतिकामुने ॥५७
महाबलोमहावीर्य्य शतयज्ञोपलक्षित ।
शिखिरिन्द्रस्तथातेषादेवानामभवद्विभु ॥५८
ज्योतिर्धर्मापृथु काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वलकस्तथा ।
पीवरश्चतथाब्रह्मन्सप्तसप्तर्षयोऽभवन् ॥५९
नर क्षान्ति शान्तदान्तजानुजङ्घादयस्तथा ।
पुत्रास्तुतामसस्यासन्राजान सुमहाबला ॥६०
इत्येततामसस्यविप्रमन्वन्तरमुदाहृतम् ।
य पठेच्छृणुयाद्वापितमसानबाध्यते ॥६१

उस मन्वन्तर के देवता, इन्द्र ऋषि और मनु के जिन पुत्रों ने पृथिवी की रक्षा की उनका वृत्तान्त सुनो ॥५६॥ हे मुने ! इस मन्वन्तर में सत्य, सुधी, सुरूप और हरि यह चार प्रकार के देवता गण हुए और प्रत्येक गण में सत्ताईस देवता हुए ॥५७॥ महाबली और पराक्रमी 'शिखी' नामक इन्द्र हुए, जो सौ यज्ञ करके उन देवताओं के स्वामी बने ॥५८॥ उस मन्वन्तर में जो सप्तर्षि हुए उनके नाम ज्योतिर्धामा, पृथु काव्य, चैत्र, अग्नि, बलक और पीवर हुए ॥५९॥ उन मनु के नर, क्षान्ति, शान्त, दान, जानु, जंघा इत्यादि महाबली एवं पराक्रमी पुत्र हुए ॥६०॥ इस प्रकार तामस मन्वन्तर का वृत्तान्त यथार्थ रूप में आपके प्रति कहा है, इसको पढ़ने या सुनने वालों को अज्ञानान्धकार बाधा नहीं देता ॥६१॥

६७–रैवत मन्वन्तर

पंचमोपिमनुर्ब्रह्मन्रैवतोनामविश्रुतः ।
तस्योत्पत्तिविस्तरशःश्रृणुष्वकथयामिते ॥१
रासीन्महाभागऋतवागितिविश्रुतः ।
तस्यापुत्रस्यपुत्रोऽभूद्रेवत्यन्तेमहात्मनः ॥२
सतस्यविधिवच्चक्रे जातकर्मादिकाःक्रियाः ।
तथोपनयनादींश्चसचाशीलोऽभवन्मुने ॥३
यतःप्रभृतिजातोऽसौततःप्रभृतिसोप्यृषिः ।
दीर्घरोगपरामर्शमवापमुनिपुङ्गवः ॥४
मातातस्यपरामार्तिकुष्ठरोगादिपीडिता ॥३
जगामसपिताचास्यचिन्तयामासदुःखितः ॥५
किमेतदितिसोऽप्यस्यपुत्रोऽप्यत्यन्तदुर्मतिः ।
जग्राहभार्यामन्यस्यमुनिपुत्रस्यसंमुखीम् ॥६
ततोविषण्णमनसाऋतवागिदमुक्तवान् ।
अपुत्रतामनुष्याणांश्रेयसेनकुपुत्रता ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब रैवत नाम के प्रसिद्ध पाँचवें मनु का जन्म तुमसे कहता हूं, उसे श्रवण करो ॥१॥ ऋतवाक् नामक एक प्रसिद्ध ऋषि थे, वह प्रथम तो पुत्रहीन थे, फिर रेवती नक्षत्र के शेष में उनको एक पुत्र की प्राप्ति हुई ।।२।। उन ऋषि ने अपने उस पुत्र का विधिवत् जातकर्म, उपनयन आदि संस्कार किया, परन्तु वह पुत्र शीलवान् नहीं था ।।३।। हे मुने ! उस बालक का जन्म होने के समय से ही वह ऋषि दीर्घ काल व्यापी रहने वाले रोग से ग्रसित होगये ॥४॥ उसकी माता भी कष्ट के कारण अत्यन्त कष्ट भोगने लगी, तब उसके पिता ने दुःखित चित्त से विचार किया ।।५।। 'ऐसा किस कारण हुआ ?' इसके पश्चात् उनके उस विपरीत मत वाले पुत्र ने एक मुनि के सामने ही, उनकी पत्नी का हरण कर लिया ॥६॥ इससे ऋतवाक्

ऋषि को अत्यन्त दुःख हुआ और वे कुपुत्र से तो पुत्रहीन रहना ही ठीक है, ऐसा सोचने लगे ॥७॥

कुपुत्रोहृदयायाससर्वदाकुरुतेपितुः ।
मातुश्चस्वर्गसंस्थांश्चस्वपितृन्पातयत्यधः ॥८
सुहृदांनोपकारायपितॄणांचनतृप्तये ।
पित्रोर्दुःखायधिग्जन्मतस्यदुष्कृतकर्मणः ॥९
धन्यास्तेतनयायेषांसर्वलोकाभिसम्मताः ।
परोपकारिणःशान्ताःसाधुकर्मण्यनुव्रताः ॥१०
अनिर्वृतंतथामन्दंपरलोकपराङ्मुखम् ।
नरकायनसद्गत्यैकुपुत्रालम्बिजन्मनः ॥११
करोतिसुहृदांदैन्यमहितानांतथामुदम् ।
अकालेचजरांपित्रोःकुसुतःकुरुतेध्रुवम् ॥१२
एवमत्यन्तदुष्टस्यपुत्रस्यचरितैर्मुनिः ।
दह्यमानमनावृत्तिंऋतगर्गमपृच्छत ॥१३
सुव्रतेनपुरावेदागृहीताविधिवन्मया ।
समाप्यवेदान्विधिवत्कृतोदारपरिग्रहः ॥१४
सदारेणक्रियाःकार्याःश्रौताःस्मार्तावषट्क्रियाः ।
नमेन्यूनाकृताकाश्चिद्यावदद्यमहामुने ॥१५

क्योंकि कुपुत्र सदा ही माता पिता के हृदय को पीड़ित करता रहता है और स्वर्गवासी पितरों को भी वहाँ से पतित करता है ॥८॥ उसके द्वारा सुहृदों का भी कोई उपकार नहीं हो पाता और न पितरों की ही तृप्ति होती है, माता पिता के लिये दुःख के कारण रूप ऐसे पुत्र को धिक्कार है ॥९॥ जिनकी सन्तति सब के द्वारा सत्कारित, परोपकार रत, सत्यकर्म वाली और शान्त प्रकृति की है, वही कृतार्थ हैं ॥१०॥ हमारा जन्म परलोक से विमुख, कुपुत्र का आश्रयी और नरक के निमित्त ही हुआ है, श्रेष्ठ गति के लिये नहीं हुआ ॥११॥ कुपुत्र सदा सुहृदों को दीन, अपकार करने वालों को प्रसन्न और माता पिता को वृद्धावस्था प्राप्त कराने वाला है ॥१२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—

इस प्रकार दुश्चरित्र पुत्र के विपरीत आचरण से मन में दग्ध होते हुए उन ऋषि ने गर्ग ऋषि से सम्पूर्ण वृत्तान्त कह कर उनसे पूछा ॥१३॥ ऋतवाक् बोले—मैंने श्रेष्ठ व्रतों का अनुष्ठान करते हुए विधि सहित वेदों का अध्ययन किया है और इसके पश्चात् विधि पूर्वक स्त्री का पाणिग्रहण किया है ॥१४॥ श्रौत, स्मार्त और वषट्कार रूप जो कर्म पत्नी के सहित करने का निर्देश है, वह सब मैंने किये हैं और उन व्रतों के अनुष्ठान में त्रुटि नहीं होने दी है ॥१५॥

गर्भाधानविधानेननकाममनुरुध्यता ।
पुत्रार्थजनितश्चायंपुन्नाम्नोबिभ्यतामुने ॥१६
सोयंकिमात्मदोषेणममदोषेणवामुने ।
अस्मद्दुःखावहोजातोदौःशील्याद्बन्धुशोकदः ॥१७
रेवत्यन्तेमुनिश्रेष्ठजातोऽयंतनयस्तव ।
तेनदुःखायतेदुष्टेकालेयस्मादजायत ॥१८॥
नतेऽपचारोनैवास्यमातुर्नायंकुलस्यते ।
तस्यदौःशील्यहेतुत्वंरेवत्यन्तमुपागतम् ॥१६
यस्मान्ममैकपुत्रस्यरेवत्यन्तसमुद्भवम् ।
दौःशील्यमेतत्सातस्मात्पततामाशुरेवती ॥२०
तेनैवंव्याहृतेशापेरेवत्यृक्षंपपातह ।
पश्यतःसर्वलोकस्यविस्मयाविष्टचेतसः ॥२१

पुन्नाम नरक से डर कर और उससे मुक्त होने के निमित्त मैंने विधिवत् गर्भाधान द्वारा इस पुत्र को जन्म दिया है, कामासक्त होकर इस पुत्र की उत्पत्ति नहीं की है ॥१६॥ हे मुने ! फिर भी यह बालक हमारे लिये दुःखदायी, बन्धुओं को शोक प्रदान करने वाला तथा बुरे स्वभाव का उत्पन्न हुआ है, ऐसा आत्मदोष से या मेरे दोष से हुआ है ? ॥१७॥ गर्गजी ने कहा—हे मुनिवर ! तुम्हारा पुत्र रेवती के अन्त में उत्पन्न हुआ है, उस दुष्ट काल में जन्म लेने के कारण ही, यह तुम्हारे लिये दुःखदायी हुआ है ॥१८॥ यह तुम्हारे, तुम्हारी पत्नी के या तुम्हारे वंश के धर्म के व्यतिक्रम से इस प्रकार का नहीं हुआ, इसके दुष्ट स्वभाव का कारण रेवती का अंतिम काल ही है ॥१६॥ ऋतवाक्

बोले—जिस रेवती के अन्त में उत्पन्न होने के कारण मेरा एकमात्र पुत्र ऐसे बुरे स्वभाव का हुआ है, उस रेवती का शीघ्र ही पतन हो ॥२०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ऋतवाक् ऋषि ने जब ऐसा शाप दिया, तब सबके सामने उस रेवती नक्षत्र को गिरता हुआ देखकर सभी आश्चर्यचकित होगये ॥२१॥

रेवत्यृक्षं चपतितकुमुदाद्रौसमन्ततः ।
भासयामासमहसावनकन्दरनिर्झरान् ॥२२॥
कुमुदाद्रिश्चतत्पातात्ख्यातोरैवतकोऽभवत् ।
अतीवरम्य सर्वस्यापृथिव्यापृथिवीधरः ॥२३
तस्यर्क्षस्यतुयाकान्तिर्जातापङ्कजिनीसर ।
ततोजज्ञे तदाकन्यारूपेणातीवशोभना ॥२४
रेवतीकान्तिसम्भूतांतांदृष्ट्वाप्रमुचोमुनि ।
तस्यानामचकारेत्थंरेवतीनामभार्गुरे ॥२५
पोषयामासचैवैतांस्वाश्रमास्यासम्भवाम् ।
प्रमुच समहाभागस्तस्मिन्नेवमहाचले ॥२६
तान्तुयौवनिनीदृष्ट्वाकन्यकांरूपशालिनीम् ।
सामुनिश्चिन्तयामासकोऽस्याभर्ताभवेदिति ॥२७
एवंचिन्तयतस्तस्ययय्यौकालोमहान्मुने ।
नचाससादसदृशंवरतस्यामहामुनिः ॥२८

कुमुद पर्वत में सहसा गिरकर उस रेवती नक्षत्र ने उसकी सभी दिशाएँ, वन, कन्दरा आदि को प्रकाशित कर दिया ॥२२॥ पृथिवी भर में अत्यन्त रमणीय वह कुमुद पर्वत भी रेवती के गिरने से रैवतक के नाम से हुआ ॥२३॥ उसकी कान्ति से कमल युक्त सरोवर हुआ और उस सरोवर से एक अत्यन्त रूप वती कन्या उत्पन्न हुई ॥२४॥ उस कन्या को रेवती से उत्पन्न हुई देखकर प्रमुचमुनि ने उसका नाम 'रेवती' रखा ॥२५॥ वह महाभाग ऋषि रैवतक पर्वत में अपने आश्रम के निकट उत्पन्न हुई कन्या का पालन करने लगे ॥२६॥ उस रूपवती कन्या को युवावस्था से सम्पन्न देखकर मुनि सोचने लगे कि इसका

पति कौन होगा ।।२७।। इस प्रकार चिन्ता करते हुए उन्हें बहुत दिन व्यतीत होगये, परन्तु उसके योग्य कोई भी वर दिखाई न दिया ।।२८।।

ततस्तस्यावरंद्रष्टुमग्निसप्रमुचोमुनिः ।
विवेशवह्निशालांवैपृष्टस्तंप्राहहव्यभुक् ।।२९
महाबलोमहावीर्यःप्रियवाग्धर्मवत्सलः ।
दुर्गमोनामभविताभर्त्ताह्यस्यामहीपतिः ।।३०
अनन्तरश्चमृगयाप्रसङ्गेनागतोमुने ।
तस्याश्रमपदंधीमान्दुर्गमःसनराधिपः ।।३१
प्रियव्रतान्वयभवोमहाबलपराक्रमः ।
पुत्रोविक्रमशीलस्यकालिन्दीजठरोद्भवः ।।३२
सप्रविश्याश्रमपदंतांतन्वींजगतीपतिः ।
अपश्यमानस्तमृषिंप्रियेत्यामन्त्र्यपृष्टवान् ।।३३
क्वगतोभगवानस्मादाश्रमान्मुनिपुङ्गवः ।
तंप्रणेतुमिहेच्छामितत्त्वंप्रब्रूहिशोभने ।।३४
अग्निशालांगतोविप्रस्तच्छ्रुत्वातस्यंभाषितम् ।
प्रियेत्यामन्त्रणंचैवनिश्चक्रामत्वरान्वितः ।।३५
सददर्शमहात्मानंराजानंदुर्गमंमुनिः ।
नरेन्द्रचिह्नसहितंप्रश्रयावनतंपुरः ।।३६।

तब अग्नि से पूछने के लिये अग्निशाला में गये, इस पर अग्नि ने उनसे कहा ।।२९।। इस कन्या के पति महाबली, पराक्रमी, प्रियवक्ता, धर्मवत्सल दुर्गम नामक महीपाल होंगे ।।३०।। मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुने ! इसके पश्चात् स्वायम्भुव मनु के ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत के वंश में उत्पन्न हुए विक्रमशील नरेश की कालिन्दी नाम की रानी से उत्पन्न हुए अत्यन्त पराक्रमी वह राजेन्द्र दुर्गम मृगया के पीछे मुनि के उस आश्रम में पहुंचे ।।३१-३२।। उन्होंने आश्रम में ऋषि को न देखकर उस कृशांगी कन्या से ही उनके विषय में 'प्रिये' कहकर पूछा ।।३३।। हे सुन्दरी ! वह मुनिवर कहाँ गये हैं मुझे यह बताओ, क्योंकि उन्हें प्रणाम करने की इच्छा से उपस्थित हुआ हूँ ।।३४।। श्री मार्कण्डेयजी ने

कहा—यह विप्रश्रेष्ठ अग्निशाला में गये हुए थे, वह राजा का वचन और 'प्रिय' सम्बोधन सुनकर अग्निशाला से बाहर निकले ॥३५॥ और उन्होंने राज-लक्षणों से विभूषित और विनयवान महाराज दुर्गम को देखा ॥३६॥

तस्मिन्दृष्टे ततः शिष्यमुवाच मुनिगौतमम् ।
गौतमानीयतामाशु अर्घोऽस्य जगतीपते ॥३७
एकस्तावदयं भूपश्चिरकालादुपागत ।
जामाता च विशेषेण योग्योऽर्घस्य मतो मम ॥३८
ततः संचिन्तयामास राजा जामातृकारणम् ।
विवेद च न तन्मौनी जगृहेऽर्घं च तं नृप ॥३९
तमासनगतं विप्रो गृहीतार्घं महामुनि ।
स्वागतं प्राह राजेन्द्र अपि ते कुशलं गृहे ॥४०
कोशे बले च मित्रेषु भृत्यामात्ये नरेश्वर ।
तथात्मनि महाबाहो यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥४१
पत्नी च ते कुशलिनी यत एवात्र तिष्ठति ।
पृच्छाम्यस्यास्ततो नाहं कुशलिन्योऽपरास्तव ॥४२

उन्हें देखकर ऋषि ने अपने गौतम नामक शिष्य को अर्घ्य लाने की आज्ञा दी ॥३७॥ उन्होंने कहा कि एक तो बहुत समय के पश्चात् यहाँ इनका आगमन हुआ है, दूसरे यह जामाता भी है, इसलिए यह अर्घ्यदान के उचित पात्र हैं ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ऋषि द्वारा जामाता कहे जाने पर राजा सोचने लगे कि क्यों यह शब्द कहा, परन्तु वह कुछ समझ न पाये और मौन रह कर अर्घ्य ग्रहण किया ॥३९॥ अर्घ्य ग्रहण के पश्चात् वे श्रेष्ठ आसन पर बैठे तब उनसे महामुनि ने कहा—हे राजन्! आप यहाँ सुख पूर्वक तो आ गये? आपका कोषागार तो ठीक है? आपकी सेना, मित्र, सेवक और मन्त्रिगण तो कुशल पूर्वक हैं? आप सबके आश्रय स्थान भी सकुशल तो हैं? ॥४०-४१॥ आपकी पत्नी यहाँ कुशल पूर्वक रह रही है, इसीलिये मैंने उस विषय कुशल प्रश्न नहीं किया, इसके अतिरिक्त आपके पुर की अन्य ललनाएं तो कुशल से हैं? ॥४२॥

त्वत्प्रसादादकुशलंनवर्चिन्ममसुव्रत ।
जातकौतूहलश्चास्मिममभार्य्यात्रिकामुने ॥४३
रेवतीसुमहाभागात्रैलोक्यस्यापिसुन्दरी ।
तवभार्य्यावरारोहातांत्वंराजन्नवेत्सिकिम् ॥४४
सुभद्रांशान्ततनयांकावेरीतनयांविभाम् ।
सुराष्ट्रजांसुजातांचकदम्बांचवरूथजाम् ॥४५
विपाठांनन्दिनींचैववेद्मिभार्यांगृहेद्विज ।
तिष्ठ न्तमेनभगवन्रे वतीवेद्मिकान्वियम् ॥४६
प्रियेतिसाम्प्रतंयेयंत्वयोक्तावरवर्णिनी ।
किंविस्मृतंतेभूपालश्लाघ्येयंगृहिणीतव ॥४७
सत्यमुक्तं मयाकिन्तुभावोदुष्टोनमेमुने ।
नात्रकोपंभवान्कर्तुं मर्हत्यस्मासुयाचितः ॥४८
यस्त्वंब्रवीषिभूपालनभावस्तवदूषितः ।
व्याजहारभवानेनतद्वह्निनानृपचोदितः ॥४९

राजा ने कहा—हे सुव्रत ! महामुने ! आपकी कृपा से मेरी सब प्रकार से कुशल है, परन्तु, यह मेरी पत्नी कौन-सी है, इसे जानने के लिये मुझे कुतूहल हुआ है ॥४३॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! रेवती नाम की तीनों लोकों में अद्वितीय सुन्दरी आपकी पत्नी है, क्या आप उसे नहीं जानते ? ॥४४॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! सुभद्रा, शान्ततनया, कावेरीतनया, सुराष्ट्रजा, सुजाता, कदम्बा, वरूथजा ॥४५॥ विपाठा और नन्दिनी यह मेरी पत्नियाँ हैं, इन्हें मैं भले प्रकार जानता हूँ, क्योंकि वह मेरे ही घर में रहती हैं, परन्तु मैं अपनी रेवती नाम की पत्नी को नहीं जानता कि वह कौन-सी है ? ॥४६॥ ऋषि ने कहा—वर को वरण करने के लिये तत्पर जिस कन्या को आपने 'प्रिये' कहा, वही आपकी श्लाघनीय पत्नी है, हे राजन् ! क्या तुम उसे भूल गये हो ? ।४७। राजा ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठ ! आपका कथन सत्य है, परन्तु मेरे द्वारा किये गये 'प्रिये' सम्बोधन में मेरा कोई दुष्ट भाव नहीं था, इसलिये आप मुझ पर क्रोध न करें ॥४८॥ ऋषि ने कहा—हे राजन् ! आपका दुष्ट भाव नहीं था,

यह सत्य ही है, परन्तु आपके द्वारा यह सम्बोधन अग्नि की ही प्रेरणा से हुआ है ॥४९॥

मयापृष्टाहृतवह कोऽस्याभर्त्तेतिपार्थिव ।
भवितातनचाप्युक्ताभवानवाद्यवरं ॥५०
तद्गृह्यतामयादत्तानुभ्यमन्यानराधिप ।
प्रियत्यामन्त्रिताचयविचारकुरुपकथम् ॥५१
ततासावभवन्मौनीलेनोक्त पृथिवीपति ।
ऋपिस्तयाद्यत वतु तस्यावैवाहिकविधिम् ॥५२
तमुद्यतसापितरविवाहायमहामुन ।
उवाचवार्यांल चित्प्रश्रयावनताननना ॥५३
यदिमप्रीतिमास्तातप्रसादकतु मर्हसि ।
रेवत्युक्षेविवाहमेतस्य गोनुप्रमादित ॥५४
रवत्युक्षनवभद्र च द्वयागिव्यवस्थितम् ।
अन्यानिमन्तिनक्षत्राणिमुभ्रु वैवाहिकानित ॥५५
तासतनविनाकानाविपन प्रतिभातिम ।
विवाहोविपलत्रान्नमहिधाया वथमभवेत् ॥५६

हे मुने ! मैंने अग्नि से इसके पति के विषय में पूछा था तब अग्नि ने आपके ही इसके पति होने की बात कही थी ॥५०॥ इसलिये हे राजन् ! आपने जिसके प्रति प्रिय कहा है वह कन्या मैं आपको प्रदान करता हूँ आप इसमें विचार क्या करते हैं इसे ग्रहण करिये ॥५१॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ऋषि के वचन सुनकर राजा मौन हो गये और ऋषि भी गस्कार के काम सम्पादन में तत्पर हुए ॥५२॥ जब कन्या ने मुनि को करने में तत्पर देखा तब उसने विनय पूर्वक निवेदन किया ॥५३॥ हे तात ! आपकी मुझ में प्रीति है और यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरा गस्कार रेवती नक्षत्र में सम्पन्न करें ॥५४॥ ऋषि ने कहा—रेवती नक्षत्र याग में अवस्थित नहीं है परन्तु, विवाह-कार्य में श्रेष्ठ अन्य सभी नक्षत्र विद्यमान हैं ॥५५॥ कन्या ने कहा—हे तात ! रेवती नक्षत्र से वर्जित समय

विषय में विकल जान पड़ता है, मेरे जैसी कन्या का विवाह विकल समय में कैसे होगा ? ॥५६॥

ऋतवागितिविख्यातस्तपस्वीरेवतींप्रति ।
चकारकोपंक्रुद्धे नतेनर्क्षंविनिपातितम् ॥५७
मयाचास्मैप्रतिज्ञाताभार्येतिमदिरेक्षणा ।
नचेच्छसिविवाहंत्वंसंकटंनःसमागतम् ॥५८
ऋतवाक्समुनिस्तातकिमेवंतप्तवांस्तपः ।
नत्वयाममतातेनब्रह्मबन्धोःसुतास्मिकिम् ॥५६
ब्रह्मबन्धोःसुतानत्वंबालेनैवतपस्विनः ।
सुतात्वंममयोदेवान्कर्तुंमन्यान्समुत्सहे ॥६०
तपस्वीयदिमेतातस्तत्किमृक्षमिदंदिवि ।
समारोप्यविवाहोमेतद्दृक्षेक्रियतेनतु ॥६१
एवंभवतुभद्रन्तेभद्रे प्रीतिमतीभव ।
आरोपयामीन्दुमार्गेरेवत्यृक्षंकृतेतव ॥६२
ततस्तपःप्रभावेणरेवत्यृक्षमहामुनिः ।

ऋषि बोले—पहिले ऋतवाक् नामक प्रख्यात तपस्वी ने रैवती नक्षत्र को क्रोध पूर्वक आकाश से पतित कर दिया है ॥५७॥ मैं राजा को वचन दे चुका हूँ कि इस कन्या को मैं तुम्हे पत्नी रूप में दूँगा, इसलिये इस समय विवाह के लिये तुम्हारा सहमत न होना मुझे सङ्कट में डाल रहा है ॥५८॥ कन्या ने कहा—हे तात ! उन ऋतवाक् मुनि ने ऐसा कौन-सा तप किया है, जो आप जैसे मेरे पिता द्वारा साधित नहीं हो सका, तो क्या मैं किसी ब्रह्मबन्धु की कन्या हूँ ? ॥५६॥ ऋषि बोले—तुम ब्राह्मण बन्धु की नहीं हो और न किसी साधारण तपस्वी की ही पुत्री हो जो, जो ऋषि देवताओं को जन्म देने में समर्थ हो, उसी मुझ ऋषि की तुम पुत्री हो ॥६०॥ कन्या ने कहा—यदि मेरे पिता ऐसे तपस्वी है तो वे उस नक्षत्र को आकाश में स्थित करके, उसी नक्षत्र में मेरा विवाह-संस्कार क्यों नहीं कर सकते ? ॥६१॥ ऋषि बोले—ऐसा ही होगा, तुम्हारा कल्याण हो, तुम प्रीतिमती होओ, तुम्हारे हित के लिये रैवती

नक्षत्र को मैं चन्द्रमार्ग में स्थित किये देता हूँ ॥६२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! तदनन्तर उन महर्षि ने अपने तप के बल से रेवती नक्षत्र को पहिले के ही समान चन्द्रमा से स्थित कर दिया ॥६३॥

यथापूर्वंतथाचक्रेसोमयोगिद्विजोत्तम ॥६३
विवाहंचैवदुहितुर्विधिवन्मन्त्रयोगिनम् ।
निष्पाद्यप्रीतिमान्भूयोजामातरमथाब्रवीत् ॥६४
औद्वाहिकंतेभूपालकथ्यतांकिंददाम्यहम् ।
दुर्लभ्यमपिदास्यामिममाप्रतिहतंतपः ॥६५
मनोः स्वायम्भुवस्याहमुत्पन्नः सन्ततौमुने ।
मन्वन्तराधिपंपुत्रं त्वत्प्रसादाद्वृणोम्यहम् ॥६६
भविष्यत्येषतेकामोमनुस्त्वत्तनयोमहीम् ।
सकलांभोक्ष्यतेभूपधर्मविच्चभविष्यति ॥६७
तामादायततोभूपः स्वमेवनगरं ययौ ।
तस्मादजायतसुतोरेवत्यांरैवतोमनुः ॥६८
समेतः सकलैर्धर्मैर्मानवैरपराजितः ।
विज्ञाताखिलशास्त्रार्थोवेदविद्यार्थशास्त्रवित् ॥६९
तस्यमन्वन्तरेदेवान्मुनिदेवेन्द्रपार्थिवान् ।
कथ्यमानान्मयाब्रह्मन्निबोधसुसमाहितः ॥७०

और वैवाहिक मन्त्रों से अपनी पुत्री का विवाह संस्कार सम्पन्न करके अत्यन्त प्रसन्न मन से अपने जामाता के प्रति कहा ॥६४॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! विवाह में दान स्वरूप तुम्हें क्या प्रदान करूँ, यह मुझे बताओ, तुम यदि कोई दुर्लभ वस्तु भी माँगोगे तो मैं अपनी तपस्या के प्रभाव से उसे दूँगा ॥६५॥ राजा ने कहा—हे मुने ! मैं स्वायंभुवमनु के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ, मैं आपकी कृपा से मन्वन्तराधिपति पुत्र को प्राप्त करूँ, यही चाहता हूँ ॥६६॥ ऋषि ने कहा—हे राजन् तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी, तुम्हारा पुत्र धर्मज्ञ तथा मनु होकर सम्पूर्ण पृथिवी का भोग करने वाला होगा ॥६७॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तदनन्तर वह राजा अपनी पत्नी को साथ लेकर अपने नगर को गये

और समय पाकर उस रेवती के गर्भ से रैवत मनु उत्पन्न हुए ॥६८॥ यह धर्मज्ञाता, अजेय, शास्त्रों में पारगामी तथा वेद विद्या और अर्थ शास्त्र में भी पारंगत हुए ॥६६॥ हे ब्रह्मन् ! अब उनके मन्वन्तर के देवता, ऋषि, इन्द्र और राजाओं का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो ॥७०॥

सुमेधसस्तत्रदेवास्तथाभूतनयाद्विज ।
वैकुण्ठश्चामिताभाश्चचतुर्दशचतुर्दश ॥७१
तेषादेवगणानांतुचतुर्णामधिपेश्वरः ।
नाम्नाविभुरभूदिन्द्रःशतयज्ञोपलक्षकः ॥७२
हिरण्यलोमावेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथापरः ।
वेदबाहुःसुधामाचपर्जन्यश्चमहामुनिः ॥७३
वसिष्ठश्चमहाभागोवेदवेदांगपारगः ।
एतेसप्तर्षयश्चासन्रैवतस्यान्तरेमनोः ॥७४
बलबन्धुर्महावीर्यःसुयष्टव्यस्तथापरः ।
सत्यकाद्यास्तथैवासन्रैवतस्यमनोःसुताः ॥७५
रैवतान्तास्तुमनवःकथितायेमयातव ।
स्वायम्भुवाश्रयाह्येतेस्वारोचिषमृतेमनुम् ॥७६
(यएषांशृणुयान्नित्यंपठेदाख्यानमुत्तमम् ।
विमुक्तःसर्वपापेभ्योलोकंप्राप्नोत्यभीप्सितम् ॥७७

हे द्विज ! देवगण, सुमेध, वैकुण्ठ और अमिताभ यह चार गण हैं तथा प्रत्येक गण में चौदह देवता हैं ॥७१॥ उन चार गणों के अधिपति सौ यज्ञ करने वाले 'विभु' नामक इन्द्र हैं ॥७२॥ हिरण्यलोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, महामुनि पर्जन्य ॥७३॥ तथा वेदवेदांग-पारंगत वसिष्ठ यह सप्तर्षि उस रैवत मन्वन्तर में हुए ॥७४॥ रैवत मनु के बल-बन्धु, महावीर्य, सुयष्टव्य, सत्यक आदि पुत्र हुए थे ॥७५॥ रैवत मनु तक जिनका विषय तुम से कहा गया है, वह सभी स्वायंभुव मनु के वंश में हुए थे, परन्तु स्वारोचिष मनु उस वंश के नहीं थे ॥७६॥ जो इस श्रेष्ठ आख्यान को नित्य सुनते या पढ़ते है, वह सब पापों से मुक्त होकर अपने इच्छित लोक को प्राप्त होते हैं ॥७७॥

६८—चाक्षुष मन्वन्तर

इत्येतत्कथितंतुभ्यंपञ्चममन्वन्तरमया ।
चाक्षुषस्यमनोषष्ठ श्रूयतामिदमन्तरम् ॥१
अन्यजन्मनिजातोऽसौचक्षुष परमेष्ठिन ।
चाक्षुषत्वमतस्तस्यजन्मन्यस्मिन्नपिद्विज ॥२
(अनमित्रस्यराजर्षेर्भद्राभार्यामहात्मन ।
जज्ञे सुतसुविद्वान्सशुचिजातिस्मर विभुम् ॥३)
जातमातानिजोत्सङ्गे स्थितमुल्लाप्यतपुन ।
परिष्वजतिहार्देनपुनरुल्लापयत्यथ ॥४
जातिस्मर सजातावैमातुरुत्सङ्गमास्थित ।
जहासतन्दामातासक्रुद्धावाक्यमब्रवीत् ॥५
भीतास्मिकिमिदं वत्सहासायद्वदनेतव ।
अकालेनबोध सञ्जात कच्चित्पश्यसिशोभनम् ॥६
(तन्मातुर्वचनश्रुत्वाप्रहस्यसमयाब्रवीत्) ।
मामत्तुमिच्छतिपुरामार्जारीकिनपश्यसि ।
अन्तर्द्धानगताचेयद्वितीयाजानहारिणी ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! मैंने तुम्हारे प्रति इन पाँच मन्वन्तरों का वर्णन किया, अब छठवें चाक्षुष मनु के मन्वन्तर के विषय में कहता हूँ, श्रवण करो ॥१॥ अन्य जन्म में परमेष्ठी ब्रह्माजी के चक्षु से उत्पन्न होने के कारण इनका नाम इस जन्म में भी चाक्षुष हुआ था ॥२॥ महात्मा अनमित्र की भद्रा नामक पत्नी के गर्भ से विद्वान् पवित्र, जातिस्मर और विभु गुण से सम्पन्न एक पुत्र की उत्पत्ति हुई) ॥३॥ माता ने आनन्द में भर कर उस उत्पन्न हुए पुत्र का लाड पूर्वक आलिंगन किया और फिर वह उसका आदर करने लगी ॥४॥ इस पर माता की गोदी में स्थित हुए वह जातिस्मर पुत्र हँस पड़ा तो माता ने उससे क्रोध पूर्वक कहा ॥५॥ हे वत्स ! तुम्हारे मुख की इस हँसी को देखकर मैं डर गई हूँ तुम्हें इस शिशुकाल में ज्ञान को प्राप्त होकर

क्या कुछ शुभ दिखाई देता है ? ॥६॥ (माता की बात सुन कर पुत्र हँस कर बोला) पुत्र ने कहा—यह जो मार्जारी मुझे भक्षण करने की इच्छा से सामने खड़ी है, उसे क्या तुम नहीं देख सकतीं ? गुप्त रूप से यह जात हारिणी यहाँ स्थित है, उसे क्या तुम नहीं जान सकतीं ? ॥७॥

पुत्रप्रीत्याचभवतीसहार्द्रामामवेक्षती ॥
उल्लाप्योल्लाप्यबहुशःपरिष्वजसिमांयतः ॥८
उद्भूतपुलकास्नेहसम्भवास्नाविलेक्षणा ।
ततोममागतोहासःशृणुचाप्यत्रकारणम् ॥९
स्वार्थप्रसक्तामार्ज्जारीप्रसक्तं मामवेक्षते ।
तथान्तर्द्धानगाचैवद्वितीयाजातहारिणी ॥१०
स्वार्थायस्निग्धहृदयेयथैवैतेममोपरि ।
प्रवृत्तेस्वार्थमास्थायतथैवप्रतिभासिमे ॥११
किन्तुमदुपभोगाययमार्ज्जारीजातहारिणी ।
त्वन्तुक्रमेणोपभोग्यंमत्तःफलमभीप्ससि ॥१२
नमांजानासिकोप्येषनचैवोपकृतंमया ।
सङ्गतंनातिकालीनंपंचसप्तदिनात्मकम् ॥१३
तथापिस्निह्यसेसास्रापरिष्वजसिचाप्यति ।
तातेतिवत्सभद्रेतिनिर्व्यलीकंब्रवीषिमाम् ॥१४

जब तुमने पुत्र के वात्सल्य से स्नेहमयी होकर आदर पूर्वक मेरा बार-म्बार आलिंगन किया तो मुझे हँसी आगई, अब मैं उसका कारण बताता हूं, श्रवण करो ॥८॥-॥९॥ वह मार्जारी और जात हारिणी अपने प्रयोजन में आसक्त हुई अपनी अर्थपूर्ण दृष्टि से मुझे देख रही हैं ॥१०॥ यह स्वार्थवश मेरे प्रति जैसी नम्र हृदया हुई है, वैसे ही स्वार्थवश तुम भी मेरे प्रति स्नेहमयी हुई हो, मैं यही समझता हूँ ॥११॥ यह मार्जारी और जातहारिणी मेरा भक्षण करने की इच्छा करती है और तुम मुझसे इच्छित उपभोग प्राप्त करने की अभि-लाषा रखती हो ॥१२॥ क्योंकि तुम मुझे नहीं जानतीं कि मैं कौन हूँ, बहुत दिनों का मिलना भी नहीं है और न मैंने कोई उपकार ही किया है, केवल

पांच या सात दिन माता-पुत्र रूप से ही मिलन हुआ है ।।१३।। फिर भी तुम अश्रुपूर्ण नेत्रों से मेरे प्रति स्नेह प्रकट करते हो, आलिंगन करती हो और कपट-रहित हृदय से तात, वत्स, भद्र आदि कह कर पुचकारती हो ।।१४।।

नत्वाहमुपकारार्थवत्सप्रीत्यापरिष्वजे ।
नचेदेनन्द्धुवत्प्रीत्यैपरित्यक्तास्म्यहत्वया ।।१५
स्वार्थोमयापरित्यक्तोयस्त्वत्तोमेभविष्यति ।
इत्युक्त्वासातमुत्सृज्यनिष्क्रान्तासूतिकागृहात् ।।१६।।
जडाङ्गवाह्यकरणाशुद्धान्त करणात्मकम् ।
जहारतपरित्यक्त मातदाजानहारिणी ।।१७
माहित्वातनदावालविक्रान्तस्यमहीभृत ।
प्रसूतपत्नीशयनेन्यस्यतस्याददेसुतम् ।।१८
तमप्यन्यगृहेनीत्वागृहीत्वातस्यचात्मजम् ।
तृतीयभक्षयामासमाक्रमाज्जानहारिणी ।।१९
हृत्वाहृत्वातृतीयतुभक्षयत्यतिनिर्घृणा ।
यगोत्यनुदिनमातुरिवर्त्ततथान्यया ।।२०
विक्रान्तोऽपितत्सतस्यसुतस्यैवमहीपति ।
कान्यामासमन्यासाधाजन्यस्यभवन्तिये ।।२१

माता ने कहा—हे वत्स ! किसी उपकार की आशा से मैं तुम्हारा आलिङ्गन नहीं करती यदि तुम मेरे आलिङ्गन करने आदि से प्रसन्नता को प्राप्त नहीं होते तो मुझे छोड़ दो ।।१५।। तुमसे जिस स्वार्थ सिद्धि की आशा है, मैंने उसे छोड़ा, ऐसा कहकर प्रसूति गृह से माता उस जड़वत् पुत्र का परित्याग कर बाहर निकली, तब माता द्वारा परित्यक्त उस पुत्र का जातहारिणी ने हरण कर लिया ।।१६-१७।। इसका हरण करके उसने विक्रान्त नामक राजा की प्रसूता पत्नी की शय्या में रख कर उसके नवोत्पन्न शिशु का हरण किया ।।१८।। और उस भी किसी दूसरे के घर में रख कर उसके पुत्र को चुरा कर अन्त में उस तृतीय शिशु का भक्षण कर लिया ।।१९।। वह अत्यन्त निर्दय जातहारिणी तब प्रसूति शिशुओं का नित्य प्रति इसी प्रकार हरण करती और पहिले दो का

परिवर्तन करके तीसरे का आहार कर लेती थी ।।२०।। इसके अनन्तर राजा विक्रान्त ने अपने उस परिवर्त्तित पुत्र के क्षत्रियोचित सभी संस्कार कराये ।२१।

आनन्देतिचनामास्यपिताचक्रे विधानतः ।
मुदापरमयायुक्तोविक्रान्तःसनराधिपः ।।२२
कृतोपनयनंतंतुगुरुराहकुमारकम् ।
जनन्याःप्रागुपस्थानंक्रियतांचाभिवादनम् ।।२३
सगुरोस्तद्वचःश्रुत्वाविहस्यैवमथाब्रवीत् ।
वंद्यामेकतमामाताजननीपालनीनुकिम् ।।२४
नन्वियंतेमहाभागजनित्रीजारुजात्मजा ।
विक्रान्तस्याग्रमहिषीहैमिनीनामनामतः ।।२५
इयंजनित्रीचैत्रस्यविशालग्रामवासिनः ।
विप्राग्र्यबोधपुत्रस्ययोस्यांजातोन्यतोगमम् ।।२६
कुतस्त्वंकथयानन्दचैत्रःकोवात्वयोच्यते ।
संकटंमहदाभातिक्वजातोऽत्रब्रवीषिकिम् ।।२७

उस पुत्र को पाकर राजा अत्यन्त आनन्दित हुए, इसलिये उसके उस पुत्र का नाम आनन्द रखा गया ।।२२।। तदनन्तर उस यज्ञोपवीत संस्कार किये गये कुमार को गुरुजी ने माता निकट जाकर प्रणाम करने को कहा ।।२३।। गुरुजी के वचन सुनकर आनन्द ने हँस कर कहा—मैं किस माता को प्रणाम करूँ ? जन्म देने वाली को अथवा पालने वाली को ? ।।२४।। गुरुजी ने कहा—हे महाभाग ! महाराज विक्रान्त की राजमहिषी हैमिनी क्या तुम्हारी जन्मदात्री नहीं है ? ।।२५।। आनन्द बोला—इनके गर्भ से उस चैत्र की उत्पत्ति हुई थी जो विशाल नाम ग्राम निवासी बोध नामक ब्राह्मण का पुत्र है, मेरा जन्म अन्यत्र हुआ था ।।२६।। गुरुजी ने कहा—हे आनन्द ! तुम कहाँ से आये ? तुमने जिस चैत्र का नाम लिया, वह चैत्र कौन है ? तुम कहाँ उत्पन्न हुए और यहाँ किस प्रकार आये ? जो चैत्र यहाँ उत्पन्न हुआ वह कहाँ गया ? यह तुम क्या कह रहे हो ? ।।२७।।

जातोऽहमनमित्रस्यक्षत्रियस्यगृहेद्विज ।
तत्पत्न्यागिरिभद्रायामाददेजातहारिणी ॥२८
तयानमुक्तोहैमिन्यागृहीत्वाचसुतंचसा ।
बोधस्यद्विजमुख्यस्यगृहेनीतवतीपुन ॥२९
भक्षयामासचसुतंतस्यवाधद्विजन्मन ।
मतत्रद्विजसंस्कारं संस्कृतोहैमिनीसुत ॥३०
वयमत्रमहाभागसंस्कृतागुरुणात्वया ।
मयातवचकार्य्यंसुपेमिक्तमागुरो ॥३१
अनीवगहनवत्समकटमहदागतम् ।
नवेद्मिकिंचिन्मोहेनभ्रमन्तीवहिबुद्धय ॥३२
माहम्यावमत्र कोऽत्रजगत्येवव्यवस्थिते ।
क कस्यपुत्रोविप्रर्षेकोवावस्यनवान्धव ॥३३
आरभ्यजन्मनोनृणासम्बन्धित्वमुपैतियः ।
अन्यमवधिनाविप्रमृत्युनासन्निवर्तिता ॥३४
अत्रापिजातस्यसुत सम्बन्धायोऽभ्यवान्धवं ।
गोप्यस्तमन्तेदहम्यप्रयात्यपोऽखिलक्रम ॥३५

आनन्द बोला—राजा अनमित्र की पत्नी गिरिभद्रा के गर्भ से मै उत्पन्न हूँ और जातारिणी मेरा हरण करके यहाँ रख गई ॥२८॥ और हैमिनी के पुत्र का हरण करके उसे ब्राह्मण वर बोध के यहाँ ले जाकर ॥२९॥ उस बोध के पुत्र को खा गई, हैमिनी के उस पुत्र का विशाल ग्राम मे द्विज संस्कार किया गया है ॥३०॥ और मेरा सस्कार यहाँ आपके द्वारा हुआ है, हे महा-भाग ! आप मेरे गुरु हैं, मुझे आपकी आज्ञा पूर्ण रूपेण स्वीकार है, अत आज्ञा कीजिये कि मैं किस माता को प्रणाम करूँ ॥३१॥ गुरुजी ने कहा—हे वत्स ! यह तो अत्यन्त घोर संकट आ गया है, मैं कुछ भी नहीं समझ पाता जैसे मेरी बुद्धि मोह से भ्रमित होगई है ॥३२॥ आनन्द बोला—हे ब्रह्मर्षे ! इस प्रकार से व्यवस्थित इस संसार मे मोह का विषय क्या है ? इसलिये कौन किसका पुत्र है ? जन्म लेने के पश्चात् जीव विभिन्न जीवों से सम्बन्ध युक्त होता है, सब

कोई किसी का बन्धु नहीं हो सकता, जिस प्रकार सम्बन्ध वाले मनुष्य मृत्यु के द्वारा धराशायी होते हैं ॥३३-३४॥ तथा बाँधवों के सहित जन्म लेने वाले मनुष्यों का जो सर्वानुगामी सम्बन्ध है, वह भी शरीर के नष्ट होने पर टूट जाता है ॥३५॥

अतोऽब्रवीमिसंसारेवसतःकोनबान्धवः ।
कोवापिसततंबन्धुःकिंवोविभ्राम्यतेमतिः ॥३६
पितृद्वयंमयाप्राप्तमस्मिन्नेवहिजन्मनि ।
मातृद्वयंचकिंचित्रंयदन्यद्देहसम्भवे ॥३७
सोऽहंतपःकरिष्यामित्वयायोह्यस्यभूपतेः ।
विशालग्रामतःपुत्रश्चैत्रआनीयतामिह ॥३८
ततःसविस्मितोराजासभार्य्यःसहबन्धुभिः ।
तस्मान्निवर्त्यममतामनुमेनेवनायतम् ॥३९
चैत्रमानीयतनयंराज्ययोग्यंचकारसः ।
समान्यब्राह्मणंयेनपुत्रबुद्धयासपालितः ॥४०
सोऽप्यानन्दस्तपस्तेपेबालएवमहावने ।
कर्मणांक्षपणार्थायविमुक्तेःपरिपन्थिनाम् ॥४१

इसीलिये कहता हूँ कि संसारी जीवों का कोई बन्धु नहीं,इसलिये आपकी बुद्धि किस कारण से भ्रान्त हो रही है ॥३६॥ इसी जन्म में मेरे दो पिता और दो माता हो चुकी हैं फिर यदि दूसरा देह धारण करके ऐसा सम्बन्ध हो जाय तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? ॥३७॥ अब मैं तप करूँगा, आप इन राजा के पुत्र चैत्र को विशाल ग्राम से यहाँ ले आइये ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब ,राजा ने पत्नी और बन्धुओं से आश्चर्यान्वित होकर उस पुत्र के प्रति मोह का परित्याग कर उसे वन जाने की आज्ञा दी ॥३९॥ और जिस ब्राह्मण ने चैत्र का पालन किया था, उसे सम्मानित कर, उससे अपना पुत्र लेकर उसका राज्याभिषेक किया ॥४०॥ उधर आनन्द मुक्ति में बाधक होने वाले सब कर्मों के परित्याग पूर्वक बाल्यावस्था से ही तप करने लगा ॥४१॥

तपस्यन्ततस्तञ्चप्राहदेव प्रजापति ।
रिमर्थंतप्यसेवत्सतपस्तीव्र वदस्वतत् ॥४२
आत्मन शुद्धिकामोऽहंकरोमिभगवस्तप ।
बन्धायममकर्माणियानितत्क्षपणोन्मुखः ॥४३
क्षीणाधिकाराभवतिमुक्तियोग्यानकर्मवान् ।
गत्वाधिकारवान्मुक्तिमवाप्स्यसितताभवान् ॥४४
भवतामनुनाभाव्यषष्ठेनव्रजतत्कुरु ।
अलतेत रसानस्मि कृतमुक्तिमवाप्स्यसि ॥४५
इत्युक्तो ब्रह्मणासोऽपितथेत्युक्त्वामहामति ।
तत्कर्माभिमुखोयस्तुतपसोविरराम ह ॥४६
चाक्षुषेत्याह तं ब्रह्मातपसोविनिवर्तयन् ।
पूर्वनाम्नावभूवाथप्रख्यातश्चाक्षुषोमनु ॥४७
उपयेमेविदर्भामसुतामुग्रस्यभूभृत ।
तस्याञ्चोत्पादयामासपुत्रान्प्रख्यातविक्रमान् ॥४८
तस्यमन्वन्तरेशम्ययऽन्तरेत्रिदशाद्विज ।
येचर्षयस्तथैवन्द्रायसुताश्चास्यतान्छृणु ॥४९

जब वह इस प्रकार तप में प्रवृत्त हुआ, तब प्रजापति ब्रह्माजी ने उससे कहा—हे वत्स ! ऐसा घोर तप किसलिये कर रहे हो ? ॥४२॥ आनन्द बोला—हे भगवन् ! संसार के बन्धन रूप कर्मों को नष्ट करने की अभिलाषा से ही मैं यह तप कर रहा हूँ ॥४३॥ ब्रह्माजी ने कहा—क्षीणाधिकार वाले मनुष्य ही मोक्ष के अधिकारी होते हैं क्योंकि वे कर्मवान् नहीं होते, तुम जैसा पर आधिपत्य करने वाले होकर मोक्ष को कैसे प्राप्त हो सकोगे ? ॥४४॥ जाओ, तुम छठवें मनु होगे उसी प्रकार के कार्य से मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे, अब तुम्हें तप करना आवश्यक नहीं है ॥४५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर 'ऐसा ही हो' कहते हुए आनन्द ने तपस्या का परित्याग किया ॥४६॥ और ब्रह्माजी ने उन्हें तप से निवृत्त करके पूर्ववत् 'चाक्षुष' नाम दिया, फिर वही चाक्षुष मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए ॥४७॥ फिर उन्होंने राजा उग्र

की पुत्री विदर्भा से विवाह किया और उसके गर्भ से उन्होंने विक्रम युक्त अनेक पुत्र प्राप्त किये ।।४८।। उस मन्वन्तर पति के मन्वन्तर में जो ऋषि, इन्द्र और जो-जो सन्तान हुई, उसका वर्णन सुनो ।।४६।।

आप्यानामसुरास्तत्रतेषामेकोऽष्टकोगणः ।
प्रख्यातकर्मणांविवयज्ञेहव्यभुजामयम् ।।५०
प्रख्यातबलवीर्य्याणांप्रभामण्डलदुर्द्दशाम् ।
द्वितीयश्चप्रसूताख्योदेवानामष्टकोगणः ।।५१
तथैवाष्टकएवान्योभव्याख्योदेवतागणः ।
चतुर्थश्चगणस्तत्रयूथगाख्यस्तथाष्टकः ।।५२
लेखसंज्ञास्तथैवान्येतत्रमन्वन्तरेद्विज ।
पंचमेचगणेदेवास्तत्संज्ञाह्यमृताशिनः ।।५३
शतंक्रतूनामाहृत्ययस्तेषामधिपोभवत् ।
मनोजस्वस्तृथैवेन्द्र:संख्यातोयज्ञभागभुक् ।।५४
समेधाविरजाश्चैवहविष्मानुन्नतोमधुः ।
अतिनामासहिष्णुश्चसप्तसप्तर्षिचर्षयः ।।५५
ऊरूपुरुशतद्युम्नप्रमुखा:सुमहाबलाः ।
चाक्षुषस्यमनो:पुत्रा:पृथिवीहृतयोभवन् ।।५६

हे ब्रह्मन् ! इस मन्वन्तर में देवताओं का 'आर्य' नामक प्रथम गण हुआ, उस गण में कर्म और यज्ञ में हव्यभोजी आठ प्रसिद्ध देवता थे ।।५०।। बल वीर्य में विख्यात और प्रभा मण्डल के मध्यवर्ती होने के कारण दुर्दर्श अन्य देवताओं का 'प्रसूत' नामक द्वितीय गण हुआ,इसके भी आठ देवता हुए ।।५१।। मन्ताख्य नामक तृतीय देवगण में आठ और यूथग नामक चतुर्थगण में भी आठ ही देवता हुए ।।५२।। पाँचवें गण में अमृताशी नामक विख्यात देवता हैं। उस मन्वन्तर में अन्य देवता 'लेख' नाम वाले हैं, इस पाँचवें गण में पूर्ववत् अमृतभोजी देवता आठ हैं ।।५३।। सौ यज्ञ करके 'मनोजव' नामक इन्द्र उन देवताओं के अधिपति हुए ।।५४।। इसमें सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उन्नत,

मधु, भ्रति और सहिष्णु यह सप्तर्षि हुए तथा ऊरु, पुरु, शतद्युम्न इत्यादि राजा सन चाक्षुष मनु के अन्यन्त बलवान् पुत्र हुए ॥५५-५६॥

एतत्तेकथितषष्ठ मयामन्वन्तर द्विज ।
चाक्षुषस्यतथाजन्मचरितचमहात्मनः ॥५७
साम्प्रतवर्त्ततेयोऽयनाम्नावैवस्वतोमनुः ।
सप्तमोयेन्तरेतस्यदेवाद्यास्ताञ्छृणुष्वमे ॥५८
(यइद कीर्तयद्वीमाञ्चाक्षुषस्यान्तरभुवि ।
शृणुतेचलभेत्पुत्रानारोग्यमुत्तसम्पदम्) ॥५९

यह इस षष्ठ मन्वन्तर और महात्मा चाक्षुष मनु का जीवन चरित्र मैंने तुमसे कह दिया ॥५७॥ अब जो वैवस्वत नामक सातवें मनु वर्तमान है, उनके मन्वन्तर में देवतादि का वर्णन श्रवण करो ॥५८॥ जो मनुष्य इस चाक्षुष मन्वन्तर को कहेंगे या श्रवण करेंगे उन्हें पुत्र आरोग्यता, सुत, सम्पत्ति की प्राप्ति होगी ॥५९॥

६६- वैवस्वत मन्वन्तर आरम्भ

मार्त्तण्डस्यरवेर्भार्यातनयाविश्वकर्मणः ।
सज्ञानाममहाभागतस्याभानुरजीजनत् ॥१
मनु प्रख्यातयशसमनेकज्ञानपारगम् ।
विवस्वत सुतोयस्मात्तस्माद्वैवस्वतस्तुस ॥२
सज्ञाचरविणादृष्टानिमीलयतिलोचने ।
यतस्ततःसरोषोऽर्क सज्ञानिष्ठुरमब्रवीत् ॥३
मयिदृष्टेसदायस्मात्कुरुषेनेत्रसयमम् ।
तस्माज्जनिष्यसेमूढेप्रजासयमनयमम् ॥४
ततःसाचपरादृष्टिदेवीचक्रेभयाकुला ।
विलोलितदृशदृष्ट्वापुनराहचतारविः ॥५

यस्माद्विलोलिताद्दृष्टिर्मयिदृष्टे त्वयाधुना ।
तस्माद्विलोलांतनयांनदींत्वप्रसविष्यसि ॥६
त:संज्ञातुसंजज्ञेभर्तृशापेनतेनवै ।
यमश्चयमुनाचेयप्रख्यातासुमहानदी ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे महाभाग ! विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा मार्त्तण्डदेव की भार्या थी, उसके गर्भ से ॥१॥ यश में विख्यात एवं अत्यन्त ज्ञानवान् मनु उत्पन्न हुए, वह विवस्वान् के पुत्र होने से 'वैवस्वत' नाम से प्रसिद्ध हुए ॥२॥ रूप को देखते ही वह संज्ञा अपने नेत्र बन्द कर लेती थी, इसलिए एक दिन सूर्य ने उसके प्रति यह कठोर वचन कहा ॥३॥ तू मुझे देख कर सदैव नेत्रों का संयम कर लेती है, इसलिये तेरे प्रजा का संयम करने वाले यम की उत्पत्ति होगी ॥४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तभी से संज्ञा से भय से व्याकुल होकर सूर्य को चञ्चल दृष्टि से देखने लगी, तब उसे चञ्चल नेत्र वाली देख कर सूर्य ने उससे कहा ॥५॥ तू मुझे देखकर चञ्चल दृष्टि कर लेती है, इसलिये अब तू चञ्चल नदी रूप वाली कन्या को उत्पन्न करेगी ॥६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पति के द्वारा इस प्रकार शापित हुई संज्ञा के गर्भ से यम उत्पन्न हुआ और फिर यमुना नाम की विख्यात नदी भी उत्पन्न हुई ॥७॥

सापिसंज्ञारवेस्तेजःसेहेदुःखेनभाविनी ।
असहन्तीचसातेजश्चिन्तयामासवैतदा ॥८
किंकरोमिक्वगच्छामिक्वगतायाश्चनिर्वृतिः ।
भवेन्ममकथंभर्ताकोपमर्कश्चनेष्यति ॥९
इतिसंचिन्त्यबहुधाप्रजापतिसुतातदा ।
बहुमेनेमहाभागापितृसंश्रयमेवसा ॥१०
ततःपितृगृहंगन्तुंकृतबुद्धिर्यशस्विनी ।
छायामयीमात्मतनुंनिर्ममेदयितारवेः॥ ११
तांचोवाचत्वयावेश्मन्यत्रभानोर्यथामया ।
तथासम्यगपत्येषुवर्तितव्यंयथारवौ ॥१२

पृष्टयापिनवाच्यतेतद्भर्तागमनमम ।
संवासिमनामसज्ञेतिवाच्यमेतत्सदावच: ॥१३
आकेशग्रहणाद्देविआशापाच्चवचस्तव ।
करिष्येकथयिष्यामिवृत्ततुशापवर्पणात् ॥१४

उस संज्ञा ने उतने समय तक अत्यन्त कष्ट पूर्वक सूर्य के तेज को सहन किया था, परन्तु अब अधिक सहन न करने के कारण वह विचार करने लगी ॥८॥ क्या करूँ ? किधर जाऊँ ? किस प्रकार भय से बचूँ ? किस उपाय अपने पति को क्रोध से निवृत्त करूँ ? ॥९॥ तब उस प्रजापति सुता संज्ञा ने पितृ गृह के आश्रय मे जाने का ही विचार स्थिर किया ॥१०॥ ऐसा निश्चय करके उसने अपनी छाया स्वरूप एक देह बनाकर ॥११॥ उस छाया से कहा—जिस प्रकार मैं इन सूर्य देव के गृह में निवास करती हूँ, उसी भाव से यहाँ रहती हुई मेरे पुत्र और पति के प्रति मेरे ही समान आचरण करना ॥१२॥ सूर्य पूछें तो भी मेरे चले जाने की वार्ता उन्हें मत बताना, 'मैं ही संज्ञा हूँ' उन्हें ऐसे ही समझाये रहना ॥१३॥ छाया ने कहा—हे देवि ! जब तक वे मेरे केश नहीं पकड़ेंगे और शाप नहीं देंगे, तब तक मैं तुम्हारे वचनों के अनुसार कार्य करूँगी और केश पकड़ने या शाप देने पर सब वृत्तान्त बता दूँगी ॥१४॥

इत्युक्तासातदादेवीजगामभवनंपितु. ।
ददर्शतत्रत्वष्टारतपसाधूतकल्मषम् ॥१५
बहुमानाच्चतेनापिपूजिताविश्वकर्मणा ।
तस्थौपितृगृहेसातुकंचित्कालमनिन्दिता ॥१६
ततस्तांप्राहचार्वङ्गींपितानातिचिरोषिताम् ।
स्तुत्वाचतनयाप्रेमबहुमानपुरःसरम् ॥१७
त्वांतुपश्यतोवत्सेदिनानिसुबहून्यपि ।
मुहूर्तार्द्धसमानिस्युकिन्तुधर्मोविलुप्यते ॥१८
बान्धवेषुचिरवासोनारीणांनयशस्कर ।
मनोरथोबान्धवानांनार्य्याभर्तृगृहेस्थिति- ॥१९

सात्वंत्रैलोक्यनाथेनभर्त्रासूर्य्यणसंङ्गता ।
पितृगेहेचिरं कालंवस्तुं नार्हसिपुत्रिके ॥२०
सात्वंभर्तृ गृहंगच्छतुष्टोऽहंपूजितासिमे ।
पुनरागमनंकार्यंदर्शनायशुभेमम ॥२१

यह बात सुनकर संज्ञा अपने पिता के घर चली गई और वहाँ उसने तप के द्वारा पाप रहित हुए विश्वकर्मा के दर्शन किये ॥१५॥ विश्वकर्मा ने संज्ञा का स्वागत सत्कार किया और फिर आनन्द युक्त हुई संज्ञा ने कुछ काल तक अपने पिता के गृह में निवास किया ॥१६॥ फिर कुछ कालोपरान्त उसके पिता ने अत्यन्त मान के सहित उससे कहा ॥१७॥ हे वत्से ! तुमको देखते हुए बहुत समय व्यतीत होने पर भी वह मुझे आधे मुहूर्त्त के समान ही समय व्यतीत हुआ प्रतीत होता है, परन्तु इससे धर्म का लोप हो जाता है ॥१८॥ स्त्रियों के लिये बांधवों के साथ सदा निवास करना यश देने वाला कार्य नहीं है, उनका निवास तो पतिगृह में ही उचित है ॥१९॥ तीनों लोकों के स्वामी सूर्य तुम्हारे पति हैं, तुम उनके साथ विवाह सूत्र में बँधी हो, तुम्हारा पितृगृह में रहना उचित नहीं हो सकता ॥२०॥ इसलिए अब तुम अपने पति के घर चली जाओ, तुम्हारे आगमन से मैं सन्तुष्ट हुआ और तुम भी मेरे द्वारा सत्कारित हुईं, अब फिर देखने के लिये यहाँ आजाना ॥२१॥

इत्युक्तासातदापित्रातथेत्युक्त्वाचसामुने ।
सपूजयित्वापितरंजगामाथोत्तरान्कुरून् ॥२२
सूयतापमनिच्छन्तीतेजसस्तस्यबिभ्यती ।
तपश्चचारतत्रापिवडवारूपधारिणी ॥२३
सज्ञेयमितिमन्वानोद्वितीयायामहस्पतिः ।
जनयामासतनयौकन्यांचैकांमनोरमाम् ॥२४
छायासज्ञात्वपत्येषुयथास्वेष्वतिवत्सला ।
तथानसंज्ञाकन्यायांपुत्रयोश्चान्ववर्त्तत ॥२५
लालनाद्युपभोगेषुविक्षेपमनुवासरम् ।
मनुस्तत्क्षान्तवानस्यायमस्तस्यानचक्षमे ॥२६

ताडनायचवैकोपात्पादस्तेनसमुत्तत ।
तस्या पुत्र क्षान्तिमतानतुदेहेनिपातित ॥२७
तत शशापतकोपाच्छायामज्ञायमद्विज ।
किंचित्प्रस्फुरमाणोष्ठीविचलत्पाणिपल्लवा ॥२८
पितु पत्नीममर्यादयन्मातर्ज्जयसेपदा ।
भुवितस्मादयपादस्तवाद्यं पतिष्यति ॥२९

मार्कण्डेयजी ने कहा—अपने पिता विश्वकर्मा के ऐसा कहने पर संज्ञा उनकी आज्ञा मांग कर और उनका पूजन कर उत्तरकुरुदेश में गई ॥२२॥ सूर्य के तेज से भयभीत संज्ञा सूर्य के तेज को न चाहने की इच्छा से वहाँ घोड़ी का रूप रख कर तप करने लगी ॥२३॥ उधर सूर्य ने उस छाया को ही संज्ञा मानते हुए उसके गर्भ से दो पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया ॥२४॥ परन्तु वह छाया जितनी प्रीतिवती अपनी सन्तान के प्रति थी, उतनी संज्ञा की सन्तान के प्रति स्नेहवती नहीं थी ॥२५॥ वह लालन पालन के समय सन्तानों में भेद भाव दिखाती थी, इसके लिए मनु ने तो उससे कुछ नहीं कहा, परन्तु यम ने उसे क्षमा नहीं किया ॥२६॥ उन्होंने क्रोधवश प्रहार करने को अपना चरण उठाया, परन्तु क्रोध को रोक कर चरण प्रहार नहीं किया ॥२७॥ परन्तु उस छाया संज्ञा ने क्रोध के वशीभूत होकर होठ कम्पित करते हुए हाथ उठा कर शाप दिया ॥२८॥ मैं तेरे पिता की पत्नी हूँ फिर भी तू मेरी मर्यादा न रख कर चरण दिखाकर डराता है, इसलिए तेरा यह चरण तत्काल पृथिवी में गिर जाय ॥२९॥

इत्याकर्ण्यंयम शापमात्मादत्त भयातुर ।
अभ्येत्यपितर प्राहप्रणिपातपुर सरम् ॥३०
तातैतन्महदाश्चर्यंनदृष्टमितिकेनचित् ।
माताावात्सल्यमुत्सृज्यशापपुत्रेप्रयच्छति ॥३१
यथामनुर्ममाचष्टे नयमातातथामम ।
निर्गुणेष्वपिपुत्रेषुनमातानिर्गुणाभवेत् ॥३२

यमस्यैतद्वचःश्रुत्वामगवांस्तिमिरापहः ।
छायासंज्ञांसमाहूयपप्रच्छक्वगतेतिसा ।।३३
साचाहतनयात्वष्टुरहंसंज्ञाविभावसो ।
पत्नीतवत्वयापत्यान्येतानिजनितानिमे ।।३४
इत्थंविवस्वतःसातुबहुशःपृच्छतोयदा ।
नाचचक्षेततःक्रुद्धोभास्वांस्तांशप्तुमुद्यतः ।।३५

मार्कण्डेयजी ने कहा—माता द्वारा ऐसा शाप सुनकर भय से आतुर हुए यम ने अपने पिता सूर्य के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और बोले ।।३०।। यम ने कहा—माता अपने ही पुत्र को शाप दे, यह अत्यन्त विस्मयजनक है, ऐसी बात तो कभी कहीं नहीं देखी गई ।।३१।। मनु ने मुझसे जैसा कहा था, वैसी यह माता नहीं है, पुत्र के असद्गुणी होने पर भी माता उसके अमंगल की बात नहीं कहती ।।३२।। मार्कण्डेयजी ने कहा—यम का वचन सुनकर भगवान् सूर्य ने छाया को अपने पास आदर सहित बुला कर पूछा—संज्ञा कहाँ गई ? ।।३३।। छाया ने कहा—हे भगवन् ! विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा मैं ही हूं, मैं ही तुम्हारी भार्या हूं, मेरे ही गर्भ से इस सन्तान की उत्पत्ति हुई है ।।३४।। सूर्य के बारम्बार प्रश्न करने पर भी उसने वही उत्तर दिया तब सूर्य क्रोधित होगये और शाप देने के लिये तत्पर हुए ।।३५।।

ततःसाकथयामासयथावृत्तंविवस्वतः ।
विदितार्थश्चभगवाञ्जगामत्वष्टुरालयम् ।।३६
ततःसपूजयामासतदात्रैलोक्यपूजितम् ।
भास्वन्तंपरयाभक्त्यानिजगेहमुपागतम् ।।३७
संज्ञांपृष्टस्तदातस्मैकथयामासविश्वकृत् ।
आगतेहसेवेश्मभवतःप्रेषितेतिवै ।।३८
दिवाकरःसमाधिस्थोवडवारूपधारिणीम् ।
तपश्चरन्तींददृशेउत्तरेषुकुरुष्वथ ।।३९
सौम्यमूर्तिःशुभाकारोममभर्त्ताभवेदिति ।
अभिसन्धिश्चतपसोबुबुधेऽस्यादिवाकरः ।।४०

शातनतेजसोमेऽद्यक्रियतामितिभास्करः ।
मचाहृत्विश्वकर्माणमज्ञाया पितरद्विज ॥४१
सवत्सरभ्रमेस्तस्यविश्वकर्मारवेस्तत ।
तेजस शातनचक्रे स्तूयमानश्चदेवतैं ॥४२

तब जो वृत्तान्त था वह सभी उसने सूर्य से कह दिया, जिसे जानकर वह विश्वकर्मा के घर पहुँचे ॥३६॥ अपने घर पर आगत भगवान् सूर्य का विश्वकर्मा ने अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजन किया ॥३७॥ इसके पश्चात् जब सूर्य ने सज्ञा का वृत्तान्त पूछा, तो उन्होंने बताया कि सज्ञा यहाँ आई थी और फिर मैंने उसे आपके ही यहाँ भेज दिया था ॥३८॥ तब सूर्य ने ध्यान में अवस्थित होकर सज्ञा को घोड़ी का रूप धारण किये उत्तर कुरु वष में तप करते हुए देखा ॥३६॥ उन्होंने जान लिया कि उसके तप का उद्देश्य मेरी सुन्दराकृति और सौम्य मूर्ति होने की कामना ही है ॥४०॥ तब भगवान् सूर्य ने सज्ञा के पिता विश्वकर्मा से कहा कि मेरे तेज को क्षीण कर दीजिए ॥४१॥ देवताओं के द्वारा प्रार्थना करने पर उन विश्वकर्मा ने सूर्य के तेज को क्षीण कर दिया ॥४२॥

७०–सूर्य-स्तव एवं अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति

ततस्ततुष्टुवुर्देवास्तथादेवर्षयोरविम् ।
वाग्भिरीड्यमशेषस्यत्रैलोक्यस्यमागता ॥१॥
नमस्तेऋक्स्वरूपायसामरूपायतेनमः ।
यजुःस्वरूपरूपायसाम्नामधामवतेनम ॥२॥
ज्ञानैकधामभूतायनिर्धूततमसेनम ।
शुद्धज्योतिःस्वरूपायविशुद्धायामलात्मने ॥३॥
(वरिष्ठायवरेण्यायपरस्मैपरमात्मने)
वरिष्ठायवरेण्यायपरस्मैपरमात्मने ।
नमोऽखिलजगद्व्यापिस्वरूपायात्ममूर्त्तये ॥४॥

सर्वकारणभूतायनिष्ठायैज्ञानचेतसाम् ।।५।।
नम.सूर्यस्वरूपायप्रकाशात्मस्वरूपिणे ।
भास्करायनमस्तुभ्यंतथादिनकृतेनमः।।६।।
शर्वरीहेतवेचैवसन्ध्याज्योत्स्नाकृतेनमः ।
त्वंसर्वमेतद्भगवञ्जगदुद्भ्रमतात्वया ।।७।।

मार्कण्डेयजी ने कहा—सब देवता और ऋषि वहाँ आकर त्रैलोक्य पूज्य भगवान् भास्कर की स्तुति करने लगे ।। १ ।। देवताओं ने कहा—हे देव ! आप ऋक् स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है, आप साम स्वरूप को नमस्कार हैं, आप ही यजुःस्वरूप एवं साम के द्युतिमान् हैं, आपको नमस्कार है ।। २ ।। आप ही ज्ञान के एकमात्र आश्रय स्वरूप, अन्धकार के नाशक, ज्योति स्वरूप विशुद्ध एवं विमलात्मा है, आपको नमस्कार हैं, ।। ३ ।। आप शङ्ख, चक्र, पद्म और शार्ङ्ग धारण करने वाले को नमस्कार, आप वरिष्ठ, वरेण्य, पर, परमात्मा, आत्म स्वरूप एवं जगद्व्यापी स्वरूप को नमस्कार है ।। ४ ।। आप ही ज्ञान चित्त वाले पुरुषों के लिये निष्ठा स्वरूप तथा सर्वभूतों के कारण रूप हैं ।। ५ ।। आप ही सूर्यरूपी प्रकाश और आत्मरूपी भास्कर हैं, आप दिनकर को नमस्कार है ।।६।। रात्रि के कारण, संध्या एवं ज्योत्स्ना को प्रकट करने वाले आप भगवान् के लिये नमस्कार है, आपके ही द्वारा यह विश्व जाग्रति और सुषुप्ति में पड़ता है ।।७।।

भ्रमत्याविद्धमखिलंब्रह्माण्डसचराचरम् ।
त्वदंशुभिरिदंस्पृष्टंसर्वंसंजायतेशुचिः ।।८
क्रियतेत्वत्करैःस्पर्शाज्जलादीनांपवित्रता ।
होमदानादिकोधर्मोनोपकारायजायते ।।९
तावद्यावन्नसंयोगिजगदेतत्त्वदंशुभिः ।
ऋचस्तेसकलाह्येतायजूंष्येतानिचान्यतः ।।१०
सकलानिचसामानिनिपतन्तित्वदङ्गतः ।
ऋङ्मयस्त्वंजगन्नाथत्वमेवचयजुर्मयः ।।११

यत सामसयदवैततोनाथत्रयीमय. ।
त्वमेवब्रह्मणास्पपरचापरमेवच ॥११
मूर्त्तामूर्त्तस्तथासूक्ष्म स्थूलरुपस्तथास्थित ।
निमेषकाष्ठादिमयकालरूप क्षयात्मक ।
प्रसीदस्वेच्छयारूपस्वतेज शमनकुरु ॥१३
इद स्तोत्रवररम्यश्रोतव्यश्रद्धयानरं ।
शिष्योभूत्वासमाधिस्थोदस्वादेयगुरोरपि ॥१४

आपके द्वारा ही यह चराचर ब्रह्माण्ड गति करता है और सभी स्पर्शनीय द्रव्य आपकी रश्मियों का स्पर्श प्राप्त करके ही पवित्र होते हैं ॥८॥ आपकी रश्मियों से ही जलादि पवित्र होते हैं तथा जब उपकारार्थ होम, दान आदि कर्म नहीं होते ॥ ९ ॥ तब तक यह विश्व आपकी रश्मियों के संयोग को प्राप्त नहीं होता, आपके अंग से उद्भूत रश्मियाँ ऋक्, यजु और साम ही हैं, इसलिये आप ही ऋङ्मय, यजुर्मय ॥ १०–११ ॥ और साममय हैं, आप ही त्रयीमय ब्रह्मस्वरूप तथा प्रधान और अप्रधान भी हो ॥ १२ ॥ आप मूर्तिधारी हो, तथा आप ही आकृति हीन हो, स्थूल एवं सूक्ष्मरूप से आप ही निमेष काष्ठा आदि एवं क्षयात्मक काल हो, आप प्रसन्न हो और स्वेच्छा-पूर्वक ही रूप और तेज को क्षीण करें ॥१३॥ (इस सुरम्य स्तोत्र को श्रद्धा-पूर्वक सुनें और गुरु भी अपने शिष्य को समाधि में स्थित होकर प्रदान करें ॥

एवसंस्तूयमानस्तुदेवदेवर्षिभिस्तथा ।
मुमोचस्वतदातेजस्तेजसाराशिरव्ययः ॥१५॥
यत्तस्यऋङ्मयतेजोभवितात्तेनमेदिनी ।
यजुर्मयेनापिदिवस्वर्गं साममयरवे. ॥१६॥
शातितान्स्तेजसोभागायेत्वष्ट्रादशपञ्च ।
त्वष्ट्रे वर्तनशर्वस्यकृतशूलमहात्मना ॥१७॥
चक्र विष्णोर्वसूनाञ्च वीयमुदारुणा ।
पावकस्त्वनयाशक्ति निविकायनदम्यात्त ॥१८॥

अन्येषामसुरारीणामस्त्राण्युग्राणियानिवै ।
यक्षविद्याधराणाञ्चतानिचक्रे सविश्वकृत् ॥१६॥
ततश्चषोडशंभागंबिभर्तिभगवान्विभुः ।
तत्तेजःपंचदशधाशातितंविश्वकर्मणा ॥२०॥
ततोऽश्वरूपधृग्भानुरुत्तरानगमत्कुरून् ।
ददृशेतत्रसंज्ञांचवडवारूपधारिणीम् ॥२१॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—देवताओं और ऋषियों द्वारा इस प्रकार स्तुत होकर तेजोराशि भगवान् सूर्य ने अपने तेज को क्षीण किया ॥१५॥ उनके ऋक्‌मय तेज से पृथिवी हुई, यजुर्मय तेज से आकाश और साममय तेज से स्वर्ग हुआ ॥१६॥ त्वष्टा ने सूर्य-तेज के जिस पंचदश भाग को छोड़ दिया था, उसी भाग से शिवजी का शूल ॥१७॥ विष्णु चक्र तथा वसुगण, शंकर और अग्नि की दारुण शक्ति का निर्माण किया तथा उसी से कुबेर की पालकी ॥१८॥ तथा अन्यान्य देवता, यक्ष, विद्याधर आदि के जो तीक्ष्ण अस्त्र हैं वह सब बनाये ॥१६॥ फिर भगवान् सूर्य ने अपने तेज का षोडशांश मात्र धारण किया, उसे भी विश्वकर्मा ने पन्द्रह बार छीला ॥२०॥ तदनन्तर सूर्य ने अश्व का रूप धारण किया और उत्तर कुरुवर्ष में पहुँच कर अश्वी रूप में अवस्थित संज्ञा को देखा ॥२१॥

साचदृष्ट्वातमायान्तपरपुंसोविशङ्कया ॥
जगामसंमुखंतस्यपृष्ठरक्षणतत्परा ॥२२॥
ततश्चनासिकायोगंतयोस्तत्रसमेतयोः ।
नासत्यस्रौतनयावश्वीवक्त्रविनिर्गतौ ॥२३॥
रेतसोऽन्तेचरेवन्तःखड्गीखीचर्म्मीतनुत्रधृक् ।
अश्वारूढ समुद्भूतोबाणतूणसमन्वितः ॥२४॥
ततःस्वरूपमतुलदर्शयामासभानुमान् ।
तस्यैषाचसमालोक्यस्वरूपंमुदमाददे ॥२५॥
स्वरूपधारिणींचेमामानिनायनिजाश्रमम् ।
संज्ञांभार्यांप्रीतिमतींभास्करोवारितस्करः ॥२६॥

तत्र पूर्वसुतोयोऽस्या सोऽभूद्वैवस्वतोमनु. ।
द्वितीयश्चयम-शापाद्धर्मदृष्टिरभूत्सुत ॥२७॥
कृमयोमांसमादायपादतोऽस्यमहीतले ।
पतिष्यन्तीतिशापान्तन्तस्यचक्रे पितास्वयम् ॥२८॥
धर्मदृष्टियंतश्चासौसमोमित्रेतयाऽहिते ।
ततोनियोगतयाम्येचकारतिमिरापह ॥२९॥

उन्हें माना देख कर पर-पुरुष की आशंका से संज्ञा अपनी पीठ की रक्षा करती हुई उनके सामने पहुँची ॥२२॥ फिर उन दोनो की नासिका मिलने के कारण अश्वों के मुख से नासत्य और दस्र नामक दो पुत्र तत्काल बाहर निकले ॥२३॥ तथा वीर्य के शेष भाग से ढाल, कवच, खड्ग, बाण, तूण धारी अश्वारूढ़ के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम रैवत हुआ ॥२४॥ फिर सूर्य ने उस घोड़ी को अपना अतुलित स्वरूप दिखाया, उस स्वरूप को देख कर अश्वा रूपिणी संज्ञा ने प्रसन्न हो कर अपना यथार्थ रूप धारण कर लिया ॥२५॥ तब जल का शोषण करने वाले भगवान् सूर्य उस संज्ञा नाम की अपनी पत्नी को घर ले गये ॥२६॥ इसी का ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनु हुआ और दूसरा पुत्र यम शाप के कारण धर्मदृष्टि हुआ ॥२७॥ उनको दिये गये शाप का निवारण उनके पिता सूर्य ने स्वयं कर दिया ॥२८॥ तथा धर्म दृष्टि और शत्रु मित्र में सम दृष्टि देख कर सूर्य ने उनको यमत्व के कार्य में नियुक्त किया ॥२९॥

यमुनाचनदीजज्ञे कलिन्दान्तरवाहिनी ।
अश्विनौदेवभिषजौकृतौपित्रामहात्मना ॥३०॥
गुह्यकाधिपतित्वेचरेवन्तोऽपिनियोजित ।
छायासंज्ञासुतानांचनियोग श्रूयतामम ॥३१॥
पूर्वजस्यमनोस्तुल्यश्छायासंज्ञासुतोऽग्रज· ।
ततः सावर्णिकीसंज्ञामवापतनयोरवे ॥३२॥
भविष्यतिमनु सोऽपिबलिरिन्द्रोयदातदा ।
शनैश्चरोग्रहाणांचमध्येपित्रानियोजितः ॥३.॥

तयोस्तृतीयाकन्यातुतपतीनामसाकुरुम् ।
नृपात्संवरणात्पुत्रमवापमनुजेश्वरम् ॥३४॥
तस्यवैवस्वतस्याहंमनोःसप्तममन्तरम् ।
कथयामिसुतान्भूपानृषीन्देवान्सुराधिपम् ॥३५॥

उनकी कन्या यमुना नदी रूप से कलिंद देश के मध्य में बहने लगी और घोड़ी के दोनों पुत्र (अश्विनीकुमार) पिता के द्वारा स्वर्ग के वैद्य नियुक्त हुये ॥३०॥ तथा रेवंत गुह्यकाधिपति हुए, अब छाया के पुत्रों की नियुक्ति कहता हूं ॥३१॥ वैवस्वत मनु के समान छाया के गर्भ से उत्पन्न हुए ज्येष्ठ पुत्र का नाम सार्वर्णिक हुआ ॥३२॥ जब बलि इन्द्र हो जायेंगे तब यह मनु होंगे तथा पिता के द्वारा शनैश्चर को ग्रह में अवस्थित किया गया। सब से छोटी कन्या का नाम तपती हुआ, उसे संवरण नामक नरेश से एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥३४॥ अब उन सप्तम मनु वैवस्वत के अनन्तर सब ऋषि, देवता, इन्द्र और उनके जो पुत्र राजा हुए उनके विषय में वर्णन करता हूं ॥३५॥

७१ वैवस्वत मन्वन्तर कथन

आदित्यावसवोरुद्राःसाध्याविश्वेमरुद्गणाः ।
भृगवोऽङ्गिरसश्चाष्टौयत्रदेवगणाःस्मृताः ॥१
आदित्यावसवोरुद्राविज्ञेयाःकश्यपात्मजाः ।
साध्याश्चवसवोविश्वेधर्मपुत्रगणास्त्रयः ॥२
भृगोस्तुभृगवोदेवा पुत्राह्यङ्गिरसःसुताः ।
एषसर्गश्चमारीचोविज्ञेयःसाम्प्रताधिपः ॥३
ऊर्ज्जस्वीनामचैवेन्द्रोमहात्मायज्ञभागभुक् ।
अतीतानागतायेचवर्तन्त्तेसाम्प्रतंचये ॥४
सर्वेतेत्रिदशेन्द्रास्तुविज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ।
सहस्राक्षाःकुलिशिनःसर्वएवपुरन्दराः ॥५

मघवन्तोवृषा सर्वेशृ ङ्गिणोगजगामिनः ।
तेशतक्रतव सर्वेभूताभिभवतेजस ॥६
धर्माद्यै कारणैश्शुद्धै राधिपत्यगुणान्विताः ।
भूतभव्यभवन्नाथा श्रृणुचैतत्त्रयद्विज ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—इस मन्वन्तर में आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्व, मरुद्गण, भृगु और अंगिरा यह आठ देवता है ॥१॥ उनमें आदित्य, वसु और रुद्र कश्यपजी से उत्पन्न हुए हैं तथा साध्य, वसु और विश्वेदेवा धर्म की सन्तान हैं ॥२॥ भृगुगण भृगु के पुत्र तथा आङ्गिरागण अङ्गिरा के पुत्र हैं, इस सर्ग को मारीच सर्ग कहा गया है ॥३॥ इस मन्वन्तर में महात्मा ऊर्जस्वी यज्ञ भाग के भोगने वाले इन्द्र हुए हैं, पहिले जो इन्द्र हुए, अब जो इन्द्र हैं या जो भविष्य में इन्द्र होंगे ॥४॥ यह सब देवेन्द्र कह कर ही प्रसिद्ध हैं, सभी सहस्राक्ष, वज्रधर और पुरंदर हैं ॥५॥ सभी मघवा, वृष, शृङ्गधारी और गज पर गमन करने वाले हैं, सभी सौ यज्ञ करने वाले, भूतों को जीतने वाले तथा तेजोमय हैं ॥६॥ यह सब इन्द्र पवित्र, धर्मादि के कारण, आधिपत्य गुण वाले और भूत, भविष्यत्, वर्तमान के अधीश्वर हैं, अब तीनों लोक का विभाग श्रवण करो ॥७॥

भूर्लोकोऽयस्मृताभूमिरन्तरिक्षदिविस्मृतम् ।
दिव्याख्यश्चतथास्वर्गस्त्रैलोक्यमितिपद्यते ॥८
अत्रिश्चैववसिष्ठश्चकश्यपश्चमहानृषि ।
गौतमश्चभरद्वाजोविश्वामित्रोऽथकौशिक ॥६
तथैवपुत्राभगवानृचीकस्यमहात्मन ।
जमदग्निस्तुसप्तैतेमुनयोऽत्रवान्तरे ॥१०
इक्ष्वाकुर्नाभगश्चैव धृष्टःशर्यातिरेवच ।
नरिष्यन्तश्चविख्यातानाभागोदिष्टएवच ॥११
करूषश्चपृषध्रश्चवसुमांल्लोकविश्रुत ।
मनोर्वैवस्वतस्यैतेनवपुत्रा प्रकीर्तिता ॥१२
वैवस्वतमिदङ्ब्रह्मन्कथिततेमयान्तरम् ।

अस्मिञ्छ्रुतेनर:सद्य:पठितेचैवसत्तम ।
मुच्यतेपातकै:सर्वै:पुण्यंचमहदश्नुते ॥१३

इस पृथिवी को भूर्लोक, अन्तरिक्ष को दिव और स्वर्ग को दिव्य कहते हैं, यही त्रैलोक्य कहे जाते हैं ॥८॥ अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र ॥९॥ और भगवान् ऋचीक के पुत्र जमदग्नि यह इस मन्वन्तर में सप्तर्षि हैं ॥१०॥ इक्ष्वाकु, नाभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट ॥११॥ करूष और पृषध्र यह नौ उन वैवस्वत मनु के प्रसिद्ध पुत्र हुए ॥१२॥ हे विप्र ! वैवस्वत मन्वन्तर का वर्णन तुम्हारे प्रति किया गया, इसके सुनने और पाठ करने से शीघ्र ही सब पापों से मुक्त होकर मनुष्य पुण्य फल को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

७२—सावर्णिक मन्वन्तर

स्वायम्भुवाद्या:कथिता:सप्तैतेमनवोमम ।
तदन्तरेषुयेदेवाराजानोमुनयस्तथा ॥१
अस्मिन्कल्पेसप्तयेऽन्येभविष्यन्तिमहामुने ।
मनवस्तान्समाचक्ष्वतथादेवादयश्चये ॥२
कथितस्तवसावर्णिश्छायासंज्ञासुतश्चय: ।
पूर्वजस्यमनोस्तुल्य:समनुर्भविताष्टम: ॥३
रामोव्यासोगालवश्चदीप्तिमान्कृपएवच ।
ऋष्यशृङ्गस्तथाद्रोणस्तत्रसप्तर्षयोऽभवन् ॥४
सुतापाश्चामिताभाश्चमुख्याश्चैवत्रिधासुरा: ।
विंशक:कथिताश्चैषांत्रयाणांत्रिगुणोगण: ॥५
तपस्तपश्चशक्रश्चद्युतिर्ज्योति:प्रभाकर: ।
प्रभासोदयितोधर्मस्तेजोरश्मिश्चवक्रतु: ॥६
इत्यादिकस्तुसुतपादेवानांविंशकोगण: ।
प्रभुर्विभुर्विभासाद्यस्तथान्योविंशकोगण: ॥७

क्रोष्टुकि बोले—आपने स्वायम्भुवादि सात मनु, उनके मन्वन्तर, देवता, ऋषि और राजाओं का वर्णन मेरे प्रति किया ॥१॥ अब, इस कल्प में जो सात मनु होंगे उनका और उस समय में होने वाले देवादि का वर्णन मेरे प्रति कीजिये ॥२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—संज्ञा की छाया के गर्भ से उत्पन्न जिन ज्येष्ठ पुत्र सावर्णि के विषय में तुम से कहा गया, वही सावर्णि आठवें मनु होंगे ॥३॥ इस मन्वन्तर में राम, व्यास, गालव, दीप्तिमान्, कृप, ऋष्य शृङ्ग और द्रौणि यह सात महर्षि होंगे ॥४॥ सुतपा, अमिताभ और मुख्य यह तीन गण और प्रत्येक गण में बीस देवता हैं, इस प्रकार यह साठ हैं ॥५॥ उनमें तपस्तप, शक, द्युति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभास, दयित, धर्म, तेज, रश्मि और क्रतु ॥६॥ आदि सभी देवता उन बीस गणों के अन्तर्गत हैं, प्रभु, विभु और विभासादि देवता अमिताभ देवताओं के बीस गण हैं ॥७॥

सुराणाममितानां तृतीयमपि मे शृणु ।
दमो दान्तमृतः सोमो वित्ताद्याश्च वविंशति ॥८
मुख्या ह्येते समाख्याता देवा मन्वन्तराधिपाः ।
मारीचस्यैते पुत्राः काश्यपस्य प्रजापतेः ॥९
भविष्याश्च भविष्यन्ति साअर्णस्यान्तरे मनो ।
तेषामिन्द्रो भविष्यस्तु बलिर्वैरोचनिर्मुने ॥१०
पाताल आस्ते योऽद्यापि दैत्य समयबन्धन ।
विरजाश्चार्ववीरश्च निर्मोहः सत्यवाक्कृतिः ।
विष्णवाद्याश्च तनया सावर्णस्य मनोर्नृपाः ॥११

अब तृतीय गण का विवरण कहता हूँ—दम, दान्त, ऋत, सोम और वित्त आदि देवगण मुख्य नाम के तृतीय विभाग के अन्तर्गत हैं ॥८॥ यह सभी मन्वन्तराधिपति और सभी मरीचि पुत्र प्रजापति कश्यपजी के ही पुत्र हैं ॥९॥ सावर्णि मन्वन्तर में यह देवता और विरोचन पुत्र बलि इन्द्र होंगे ॥१०॥ जो दैत्य राज प्रतिज्ञा पाश में बंधे होने से अब भी पाताल में रहते हैं, वह विरजा, अर्ववीर, निर्मोह, सत्यवाक्, कृति, विष्णु नामक यह सावर्णि पुत्र उस काल में राजा होंगे ॥११॥

७३—देवी माहात्म्य-मधुकैटभ बध

सावर्णिःसूर्यतनयोयोमनुःकथ्यतेष्टमः ।
निशामयतदुत्पत्तिविस्तराद्गदतोमम ॥१
महामायानुभावेनयथामन्वन्तराधिपः ।
सबभूवमहाभागःसावर्णिस्तनयोरवेः ॥२
स्वारोचिषेंतरेपूर्वचैत्रवंशसमुद्भवः ।
सुरथोनामराजाभूत्समस्तेक्षितिमंडले ॥३
तस्यपालयतःसम्यक्प्रजाःपुत्रानिवौरसान् ।
बभूवुःशत्रवोभूपाःकोलाविध्वंसिनस्तदा ॥४
तस्यतैरभवद्युद्धमतिप्रबलदंडिनः ।
न्यूनैरपिसतैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥५
ततःस्वपुरमायातोनिजदेशाधिपोभवत् ।
आक्रान्तःसमहाभागस्तैस्तदाप्रबलारिभिः ॥६
अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्यदुरात्मभिः ।
कोशोबलंचापहृतंतत्रापिस्वपुरेततः ॥७

मार्कण्डेयजी बोले—जिस सूर्य पुत्र सावर्णि को आठवाँ मनु कहा गया है, उसका विस्तार पूर्वक जन्म कहता हूं, तुम श्रवण करो ॥१॥ जिस प्रकार वह महामाया भगवती की कृपा से सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर मन्वन्तराधिपति हुआ, उसे सुनो ॥२॥ स्वारोचिष मनु के राज्याधिकार से पूर्व चैत्र-वंशोत्पन्न सुरथ नामक समस्त पृथिवी का राजा हुआ ॥३॥ जब वह सुरथ अपनी प्रजा का पालन पुत्रवत् करने लगा, उसी अवसर पर कोला विध्वंस नामक राजा उससे शत्रुता करने लगे ॥४॥ और प्रबल दण्ड देने में समर्थ राजा सुरथ के साथ उनका युद्ध हुआ, यद्यपि शत्रु अल्प थे, फिर भी उन्होंने सुरथ को परास्त कर दिया ॥५॥ तब अपने प्रबल शत्रुओं से वशीभूत हुआ राजा सुरथ अपने नगर में आकर राज्य करने लगा ॥६॥ उस नगर में भी

प्रबल और दुष्ट अमात्यों ने उस राजा का कोषागार तथा सेना नष्ट कर डाली ॥७॥

ततोमृगयाव्याजेनहृतस्वाम्यःसभूपतिः ।
एकाकीहयमारुह्यजगामगहनंवनम् ॥८
सतत्राश्रममद्राक्षीद्द्विजवर्यस्यमेधसः ।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णंमुनिशिष्योपशोभितम् ॥९
तस्थौकञ्चित्सकालंचमुनिनातेनसत्कृतः ।
इतश्चेतश्चविचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥१०
सोऽचिन्तयत्तदातत्रममत्वाकृष्टमानसः ।
मत्पूर्वैःपालितंपूर्वंमयाहीनंपुरंहितत् ।
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतःपाल्यतेनवा ॥११
नजानेसप्रधानोमेशूरोहस्तीसदामदः ।
ममवैरिवशंयातःकान्भोगानुपलप्स्यते ॥१२
येममानुगतानित्यंप्रसादधनभोजनैः ।
अनुवृत्तिंध्रुवंतेऽद्यकुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ॥१३
असम्यग्व्ययशीलैस्तैःकुर्वद्भिःसततंव्ययम् ।
सञ्चितःसोऽतिदुःखेनक्षयंकोशोगमिष्यति ॥१४

इस प्रकार राज्य के छिन जाने पर राजा सुरथ अश्वारूढ़ होकर मृगया के मिस से एकाकी ही निर्जन वन में चले गए ॥८॥ वहाँ उनको परहिंसा से निवृत्त हुए पशुओं से परिपूर्ण एक आश्रम देखा जो कि मेधा नामक महर्षि का था, वह अपने शिष्यों के सहित वहाँ निवास करते थे ॥९॥ उन महर्षि ने राजा का अत्यन्त सत्कार किया और तब वह राजा कुछ काल तक महर्षि के आश्रम में ठहर कर इधर-उधर विचरण करते रहे ॥१०॥ फिर उनका मन ममता पूर्वक उन्हें चिन्तन कराने लगा कि मेरे पूर्व पुरुषों द्वारा पालित राज्य अब मुझसे विहीन हो गया है, मेरे दुराचारी भृत्य उसका धर्म पूर्वक पालन करते होंगे या नहीं ? ॥११॥ सदा मद में रहने वाला वह मेरा प्रधान हाथी अब शत्रुओं के वशीभूत होकर क्या सह रहा होगा ॥१२॥ जो नित्य-प्रति प्रसाद,

धन, भोजनादि देने के कारण मेरे अनुगामी रहते थे, अब वह अवश्य ही अन्य राजाओं की सेवा में लगे होंगे ॥१३॥ तथा अन्यान्य प्रकार से धन व्यय करते हुए भी अत्यन्त कष्ट पूर्वक संचित कोष उन सेवकों के द्वारा नष्ट कर दिया जायगा ॥१४॥

एतच्चान्यच्चसततंचिंतयामासपार्थिवः ।
तत्रविप्राश्रमाभ्याशेवैश्यमेकंददर्शसः ॥१५
सपृष्टस्तेनकस्त्वंभोहेतुश्चागमनेत्रकः ।
सशोकइवकस्मात्त्वंदुर्मनाइवलक्ष्यसे ॥१६
इत्याकर्ण्यवचस्तस्यभूपतेःप्रणयोदितम् ।
प्रत्युवाचसतंवैश्यःप्रश्रयावनतोनृपम् ॥१७
समाधिर्नामवैश्योहमुत्पन्नोधनिनांकुले ।
पुत्रदारैर्निरस्तश्चधनलोभादसाधुभिः ॥१८
विहीनःस्वजनैर्दारैपुत्रैरादायमेधनम् ।
वनमभ्यागतोदुःखीनिरस्तश्चाप्तबंधुभिः ॥१९
सोहंनवेद्मिपुत्राणांकुशलाकुशलात्मिकाम् ।
प्रवृत्तिस्वजनानांचदाराणांचात्रसंस्थितः ॥२०
किंनुतेषांगृहेक्षेममक्षेमंकिंनुसांप्रतम् ।
कथंतेकिंनुसद्वृत्तादुर्वृत्ताःकिंनुमेसुताः ॥२१

राजा सुरथ इस प्रकार की अनेक चिन्ताएँ करने लगे, तभी उन्होंने आश्रम के समीप एक वैश्य को देखा ॥१५॥ तो उन्होंने उससे पूछा कि तुम कौन हो ? यहां किसलिये आये हो ? तुम शोक सन्तप्त से क्यों दिखाई दे रहे हो ? ॥१६॥ राजा के ऐसे विनम्र वचन सुनकर वैश्य ने भी उन्हें अत्यन्त नम्रता पूर्वक उत्तर दिया ॥१७॥ वैश्य न कहा—मैं धनिक कुल में उत्पन्न हुआ समाधि नामक एक वैश्य हूँ, धन के लालच में मेरी स्त्री और पुत्रों ने ॥१८॥ मेरा सम्पूर्ण धन छीन कर मुझे घर से बाहर कर दिया है और इस अवस्था में मुझे मेरे बांधवों और मित्रों ने भी त्याग दिया है, इसीलिये दुःखित हृदय में इस वन में आया हूं ॥१९॥ तथा इस वन में आकर मैं अपने स्त्री-

पुत्रादि व कुशल या अमङ्गल की बात से अनभिज्ञ हूँ ॥२०॥घर में कुशल है या नहीं तथा उन पुत्रादि का आचरण सुधरा है अथवा नहीं, यही चिन्ता है ॥२१॥

यैनिरस्तोभवाल्लुब्धैःपुत्रदारादिभिर्धनैः ।
तेषुकिंभवतःस्नेहमनुबध्नातिमानसम् ॥२२
एवमेतद्यथाप्राहभवानस्मद्गतंवचः ।
किंकरोमिनबध्नातिममनिष्ठुरतांमनः ॥२३
यैःसन्त्यज्यपितृस्नेहंधनलुब्धैर्निराकृतः ।
पतिस्वजनहार्दंचहार्दितेष्वेवमेमनः ॥२४
किमेतन्नाभिजानामिजानन्नपिमहामते ।
यत्प्रेमप्रवणंचित्तंविगुणेष्वपिबन्धुषु ॥२५
तेषांकृतेमेनिःश्वासोदौर्मनस्यंचजायते ।
करोमिकिंयन्नमनस्तेष्वप्रीतिषुनिष्ठुरम् ॥२६
ततस्तौसहितौविप्रतंमुनिंसमुपस्थितौ ।
समाधिर्नामवैश्योऽसौसचपार्थिवसत्तमः ॥२७
कृत्वातुतौयथान्याययथार्हंतेनसंविदम् ।
उपविष्टौकथाःकाश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥२८

राजा बोले— जिन धन के लालची स्त्री पुत्रादि ने तुम्हें घर से निकाल बाहर किया, उनके प्रति भी तुम्हारा चित्त स्नेहवान् क्यों है ? ॥२२॥ वैश्य बोला—आपका कथन यथार्थ है, परन्तु मैं क्या करूँ, मेरा मन किसी प्रकार भी उनका कठोर नहीं हो पा रहा है ॥२३॥ जिन पुत्रों ने पितृ स्नेह को त्याग कर, जिन पत्नियों ने पति प्रेम को छोड़कर और जिन बन्धुओं ने बांधवत्व का परित्याग कर धन के लालच से मुझे घर से बाहर कर दिया, उन्हीं दुष्ट स्त्री, पुत्र और बन्धुओं में मेरा मन फँसा हुआ है, हे महामते ! उनमें मेरा चित्त इतना आसक्त क्यों है, यह मेरी समझ में नहीं आता ॥२४-२५॥ उन्हीं के प्रति खिन्न हुआ मेरा चित्त दीर्घ निःश्वास छोड़ता हुआ इतना प्रीतिमान् है और कठोरता को प्राप्त नहीं हो पाता ॥२६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुनिवर ! इसके पश्चात् राजा सुरथ और वैश्य दोनों ही मिलकर महर्षि मेधा के पास

पहुंचे ।।२७।। और दोनों ने मुनि का यथोचित सम्मान करके उनके साथ वार्तालाप प्रारम्भ किया ।।२८।।

भगवंस्त्वामहंप्रष्टु मिच्छाम्येकंवदस्वतत् ।
दुःखाययन्मेमनसः स्वचित्तायत्ततांविना ।।२६।।
ममत्वंगत राज्यस्य राज्यांगेष्वखिलेष्वपि ।
जानतोपियथाज्ञस्यकिमेतन्मुनिसत्तम ।।३।।
अयंचनिकृतःपुत्रै दारैर्भृ त्यैस्सथोज्झितः ।
स्वजनेनचसंत्यक्तस्तेषुहार्दीतथाप्यति ।।३१।।
एवमेषतथाहंचद्वावप्यत्यंतदुःखितौ ।
दृष्टदोषेपिविषयेममत्वाकृष्टमानसौ ।।३२।।
तकिमेतन्महाभागयन्मोहोज्ञानिनोरपि ।
ममास्यचभवत्येषाविवेकांधस्यमूढ़ता ।।३३।।
ज्ञानमस्तिसमस्तस्यजंतोर्विषयगोचरे ।
विषयाश्चमहाभागयांतिचैवंपृथक्पृथक् ।।३४।।
दिवांधाःप्रणिनःकेचिद्रात्रावंधास्तथापरे ।
केचिद्दिवातथारात्रौप्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ।।३५।।

राजा बोले—हे भगवन् ! जिस विषय को न समझने के कारण मेरा मन दुःखित है, उस विषय को आप से पूछा चाहता हूं, उसे मुझे समझाने की कृपा करें ।।२६।। हे प्रभो ! यद्यपि यह भ्रम है, फिर भी राज्यादि के प्रति मेरी इतनी ममता है, ऐसा क्यों है ? ।।३०।। इस वैश्य को भी इसके पुत्र, स्त्री भृत्य, बांधवादि ने अपमानित करके त्याग दिया है, फिर भी यह उन्हीं के प्रति अनुराग युक्त है ।।३१।। इस प्रकार मैं और यह वैश्य दोनों ही इस दिखाई पड़ते हुए दूषित विषय में ममतावान् होकर अत्यन्त दुःखित हो रहे हैं ।।३२।। हम ज्ञानी होकर भी विवेकांध के समान विमूढ़ हो रहे हैं ऐसा क्यों है ? ।।३३।। ऋषि ने कहा—सभी जीवों को विषय के दिखाई पड़ने पर ज्ञान है, परन्तु विषयों के प्रति पृथक्-पृथक् ज्ञान की प्राप्ति होती है ।।३४।। देखो कोई

जीव दिन में नहीं देख सकता, कोई रात्रि में नहीं देख पाता और किसी को दिन और रात्रि में समान रूप से दिखाई देता है ॥३५॥

ज्ञानिनोमनुजा सत्यंकिंतुनेनहिकेवलम् ।
यतोहिज्ञानिनः सर्वेपशुपक्षिमृगादयः ॥३६॥
ज्ञानंचतन्मनुष्याणांयत्तेषांमृगपक्षिणाम् ।
मनुष्याणांचयत्तेषांतुल्यमन्यत्तथोभयोः ॥३७॥
ज्ञानेपिसतिपश्यैतान्पतगाञ्छावचञ्चुषु ।
कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपिक्षुधा ॥३८॥
मानुषामनुजव्याघ्रसाभिलाषाः सुतान्प्रति ।
लोभात्प्रत्युपकारायनन्वेतान्किंनपश्यसि ॥३९॥
तथापिममतावर्त्तेमोहगर्त्तेनिपातिताः ।
महामायाप्रभावेणसंसारस्थितिकारिणा ॥४०॥
तन्नात्रविस्मयः कार्योयोगनिद्राजगत्पतेः ।
महामायाहरेश्चैतत्तयासम्मोह्यतेजगत् ॥४१॥
ज्ञानिनामपिचेतांसिदेवीभगवतीहिसा ।
बलादाकृष्यमोहायमहामायाप्रयच्छति ॥४२॥

आप जिस प्रकार ज्ञानवार्ता करते हैं, ऐसा ज्ञान मनुष्यों को है, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु केवल मनुष्य ही ऐसे ज्ञान के अधिकारी नहीं हैं पशु, पक्षी तथा मृगादि को भी ऐसा ज्ञान प्राप्त है ॥३६॥ दिखाई पड़ने वाले विषय का ज्ञान पशु, पक्षी और मनुष्यों का समान ही है, उसमें कुछ भेद नहीं है ॥३७॥ परन्तु ऐसा ज्ञान होने पर भी पारस्परिक विषय में कितनी विभिन्नता है, देखो यह पक्षी स्वयं क्षुधातुर होकर भी अपने बालकों की चोंच में मोह के वशीभूत होकर ही धान्यादि के डालते हैं ॥३८॥ और मनुष्य भी अपनी सन्तान के प्रति प्रीतिमान् होकर उनका भरण-पोषण करते हैं, परन्तु मनुष्य का यह कार्य प्रत्युपकार के लोभ से ही है, क्या तुम्हें यह दिखाई नहीं देता ? ॥३९॥ इस प्रकार उपकार आदि की आशा से रहित होकर भी सभी जीव महामाया के प्रभाव से ममता रूप भ्रमर से युक्त मोह रूप गर्त्त में पतित होते हैं ॥४०॥ इस

विषय में विस्मय की कोई बात नहीं है, जगदीश्वर श्री विष्णु की योग निद्रा स्वरूपिणी महामाया ही इस विश्व को विमोहित करती है ॥४१॥ वही महामाया ज्ञानियों के चित्त का बलपूर्वक आकर्षण करके उन्हें मोह में गिराती है ॥४२॥

तयाविसृज्यतेविश्वंजगदेतच्चराचरम् ।
सैषाप्रसन्नावरदानृणांभवतिमुक्तये ॥४३॥
साविद्यापरमांमुक्तेर्हेतुभूतासनातनी ।
संसारबन्धहेतुश्चसैवसर्वेश्वरेश्वरी ॥४४॥
भगवन्काहिसादेवीमहामायेतियांभवान् ।
ब्रवीतिकथमुत्पन्नाकर्मचास्याश्चकिंद्विज ॥४५॥
यत्प्रभावाचसादेवीयत्स्वरूपायदुद्भवा ।
तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामित्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥४६॥
नित्यैवसाजगन्मूर्तिस्तयासर्वमिदंततम् ।
तथापितत्समुत्पत्तिर्बहुधाश्रूयतांमम ॥४७॥
देवानांकार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवतिसायदा ।
उत्पन्नेतितदालोकेसानित्याप्यभिधीयते ॥४८॥

देवी ने इस विश्व को उत्पन्न किया है और वही जब प्रसन्न होती है तब मनुष्यों को मोक्षदायक वर देती है ॥४३॥ मोक्ष की सर्वोत्तम हेतु स्वरूपा, ब्रह्मज्ञान स्वरूपा विद्या एवं संसार-बंधन की कारण रूपा वही है, वही ईश्वर की भी अधीश्वरी है ॥४४॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! जिसे आपने महामाया बताया है, वह कौन है ? उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई और उनके कर्म किस प्रकार के है ? ॥४४॥ उनका स्वभाव और स्वरूप कैसा है ? हे ब्रह्मविद् श्रेष्ठ ! यह सब मैं आप से सुनना चाहता हूँ ॥४६॥ ऋषि ने कहा—वह जगन्मूर्ति नित्य हैं तथा सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है, फिर भी उनके अनेक प्रकार से उत्पन्न होने का वृत्तान्त तुमसे कहता हूं, श्रवण करो ॥४७॥ जब देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये उनका आविर्भाव होता है, तब नित्य होती हुई भी लोक में उत्पन्न हुई कहलाती है ॥४८॥

योगनिद्रांयदाविष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ।
ग्रास्तीर्य शेषमभजत्कल्पांतेभगवान्प्रभु ॥४९॥
तदाद्वावसुरौघोरौविख्यातोमधुकैटभौ ।
विष्णुकर्णमलोद्भूतौहन्तु ब्रह्माणमुद्यतौ ॥५०॥
सनाभिकमलेविष्णो स्थितोब्रह्माप्रजापति ।
दृष्ट्वातावसुरौचोग्रौप्रसुप्तचजनार्दनम् ॥५१॥
तुष्टावयोगनिद्रांतामेकाग्रहृदयस्थित ।
प्रबोधनार्थायहरेर्हग्नेत्रकृतालयाम् ॥५२॥
विश्वेश्वरीजगद्धात्रीस्थितिसंहारकारिणीम् ।
स्तौमिनिद्रांभगवतोविष्णोरतुलतेजस ॥५३॥
त्वस्वाहात्वस्वधात्वहिवषट्कार स्वरात्मिका ।
सुधात्वमक्षरेनित्येत्रिधामात्रात्मिकास्थिता ॥५४॥
ग्रर्धमात्रास्थितानित्यायानुच्चार्याविशेषतः ।
त्वमेवसन्ध्यासावित्रित्वदेविजननीपरा॥५५॥
त्वयैतद्धार्यतेविश्वं त्वयैतत्सृज्यतेजगत् ।
त्वमेवसत्पाल्यतेदेविरवमत्स्यतेचसर्वदा ॥५६॥

तथा जब कल्पान्त मे यह विश्व जल मग्न हो गया था, तब भगवान् विष्णु शय्या पर शयन करके योग निद्रा म निमग्न हो गये ॥४९॥ तभी मधु कैटभ नामक दो अत्यन्त भयकर एव प्रसिद्ध असुर भगवान् विष्णु के कान के मैल से उत्पन्न हुए और ब्रह्मा जी का वध करने मे तत्पर हुए ॥विष्णु के नाभि कमल में अवस्थित अत्यन्त तेजवान् प्रजापति ब्रह्माजी ने उन दोनों असुरों को देखा और भगवान् विष्णु को निद्रा में निमग्न देख कर ॥५१ उन्हें जगाने के लिए एकाग्र चित्त से विष्णु के नेत्रों मे स्थित निद्रा [illegible] विश्वेश्वरी, विश्व की स्थिति और लय करने वाली एव भगवान् की उन भगवती निद्रा की स्तुति करने लगे ॥५२-५३॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे स्वधे ! हे नित्य ! तुम हवि दान के मन्त्र स्वाहा स्वरूप वाली हो, पितरो श्राद्ध में तुम ही स्वधास्वरूपिणी हो, वषट्कार इन्द्र के हविर्दान मन्त्र को [illegible]

स्वरूपा भी तुम ही हो तुम ही सुधा तथा तुम ही अक्षरों में, ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत स्वरूपा त्रिमात्रा हो ॥५४॥ जिस गायत्री में अर्द्ध मात्रा का उच्चारण विशेष रूप में स्थित हो, वह तुम ही हो और तुम ही सर्वश्रेष्ठ जगज्जननी एवं प्रकृति स्वरूपा हो ॥५५॥ हे देवि ! इस विश्व को उत्पन्न करने वाली तुम ही हो. तुम ही इसका धारण, पालन एवं प्रलयकाल में ग्रास करने वाली हो ॥५६॥

> विसृष्टौसृष्टिरूपात्वंस्थितिरूपाचपालने ।
> तथासंहृतिरूपाँतेजगतोस्यजगन्मये ॥५७॥
> महाविद्यामहामायामहामेधामहास्मृतिः ।
> महामोहाभगवतीमहादेवी महेश्वरी ॥५८॥
> प्रकृतिस्त्वंचसर्वस्यगुणत्रयविभाविनी ।
> कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्चदारुणा ॥५९॥
> त्वंश्रीस्त्वमीश्वरीत्वंह्रीस्त्वंबुद्धिर्बोधलक्षणा ।
> लज्जापुष्टिस्तथातुष्टिस्त्वंशान्तिःक्षांतिरेवच ॥६०॥
> खड्गिनीशूलिनीघोरागदिनीचक्रिणीतथा ।
> शंखिनीचापिनीबाणाभुशुंडीपरिघायुधा ॥६१॥
> सौम्यासौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ।
> परापराणांपरमा त्वमेवपरमेश्वरी ॥६२॥
> यच्चकिंचित्क्वचिद्वस्तुसदसद्वाऽखिलात्मके ।
> तस्यसर्वस्यथाशक्तिःसात्वंकिस्तूयसेमया ॥६३॥

सभी काल में सृष्टि और स्थितिरूप हो और विश्व के विनष्ट होते समय तुम ही संहार स्वरूपा हो ॥५७॥ तुम ही महाविद्या, महामेधा, महामाया, महास्मृति, महामोहा, महादेवी और महेश्वरी हो ॥५८॥ तुम ही सत्, रज, तम स्वरूप में सब जीवों की प्रकृति हो, तुम ही कालरात्रि, महारात्रि एवं प्रलय स्वरूपा हो, तुम ही भयंकर मोहरात्रि हो ॥५९॥ तुम ही श्री, तुम ही ईश्वरी, बुद्धि तथा दिव्यज्ञान की एकमात्र लक्षणा हो, तुम ही लज्जा, पुष्टि,

तुष्टि, शान्ति तथा क्षान्ति हो ॥६०॥ तुम ही खड्गिनी, शूलिनी, भयंकर स्वरूपा, गदिनी, चक्रिणी, शंखिनी और चापिनी हो, बाण, भुशुण्डी और परिघ इन अस्त्रों के भी धारण करने वाली हो ॥६१॥ तुम ही सौम्या, सौम्यतरा तथा विश्व के सब सुन्दर पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य वाली हो, श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर तथा श्रेष्ठतरों की भी ईश्वरी हो ॥६२॥ सत्, असत् वस्तु और उनकी जो शक्ति है वह तुम ही हो, इसलिये तुम्हारी स्तुति मैं किस प्रकार करूँ ? ॥६३॥

यथात्वयाजगत्स्रष्टाजगत्पात्यत्तियोजगत् ।
सोपिनिद्रावशंनीत कस्त्वांस्तोतुमिहेश्वरः ॥६४॥
विष्णु शरीरग्रहणमहमीशानएवच ।
कारितास्तेयतोऽतस्त्वांकस्तोतु शक्तिमान्भवेत् ॥६५॥
सात्वमित्थप्रभावं स्वैरुदारैर्देविसंस्तुता ।
मोहयैतौदुराधर्षावसुरौमधुकैटभौ ॥६६॥
प्रबोधंचजगत्स्वामीनीयतामच्युतोलघु ।
बोधश्चक्रियतामस्यहंतुमेतौमहासुरौ ॥६७॥
एवंस्तुतातदादेवीतामसीतत्रवेधसा ।
विष्णो प्रबोधनार्थायनिहंतु मधुकैटभौ ॥६८॥
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ।
निर्गम्यदर्शनेतस्थौब्रह्मणोव्यक्तजन्मनः ॥६९॥
उत्तस्थौचजगन्नाथस्तयामुक्तोजनार्दनः ।
एकार्णवेहिशयनात्ततःसददृशेचतौ ॥७०॥

हे देवि ! जब तुमने विश्व के सृष्टा, पालक और प्रलयकर्त्ता भगवान को ही निद्राभिभूत किया हुआ है तब तुम्हारी स्तुति करने की सामर्थ्य और किस में होगी ? ॥६४॥ हे देवि ! जब तुमने विष्णु, ईशान और मुझे देह प्राप्त करायी है तब अन्य कौन पुरुष तुम्हारे स्तोत्र में समर्थ है ? ॥६५॥ हे देवि ! तुम अपने उदार स्वभाव के इस वर्णन से प्रसन्न होकर इन मधु कैटभ नामक दोनों दुर्धर्ष असुरों को मोहित कर दो ॥६६॥ तथा विश्वेश्वर विष्णु को

शीघ्र जगाकर इन असुरों के संहार के लिये प्रेरित करो ॥६७॥ ऋषि ने कहा—ब्रह्माजी ने उन दोनों का संहार करने के लिये जब इस प्रकार उन तमोगुणी निद्रादेवी की स्तुति की ॥६८॥ तब उनके देखते-देखते भगवान् विष्णु के नेत्र, नासिका, बाहु और हृदय से निकल कर भगवती अवस्थित हुईं ॥६९॥ फिर निद्रा स्वरूपिणी देवी से मुक्त होकर भगवान् विष्णु ने एकार्णव में स्थित हुई शय्या से उठ कर देखा ॥७०॥

मधुकैटभौदुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ।
क्रोधरक्तेक्षणौहंतुंब्रह्माणंजनितोद्यमौ ॥७१॥
समुत्थायततस्ताभ्यांयुयुधेभगवान्हरिः ।
पंचवर्षसहस्राणिबाहुप्रहरणोविभुः ॥७२॥
तावप्यतिबलोन्मत्तौमहामायाविमोहितौ ।
उक्तवंतौवरोस्मत्तोव्रियतामितिकेशवम् ॥७३॥
भवेतामद्यमेतुष्टौममवध्यावुभावपि ।
किमन्येनवरेणात्रएतावद्धिवृतंमया ॥७४॥
वंचिताभ्यामितितदासर्वमापोमयञ्जगत् ।
विलोक्यताभ्यांगदितोभगवान्कमलेक्षणः ॥७५॥
प्रीतौस्वस्तवयुद्धेनश्लाध्यस्त्वंमृत्युरावयोः ।
आवांजहिनयत्रोर्वीसलिलेनपरिप्लुता ॥७६॥
तथेत्युक्त्वाभगताशंखचक्रगदाभृता ।
कृत्वाचक्रेणवैच्छिन्नेजघनेशिरसीतयोः ॥७७॥
एवमेषासमुत्पन्नाब्रह्मणासंस्तुतास्वयम् ।
प्रभावमस्यादेव्यास्तुभूयःश्रृणुवदामिते ॥७८॥

क्रोध से लाल नेत्र किये हुए वे मधु कैटभ नामक दोनों दुरात्मा असुर ब्रह्माजी का वध करना चाहते हैं ॥७१॥ भगवान् विष्णु ने उठ कर उन दोनों असुरों के साथ पाँच सहस्र वर्ष तक बाहुओं से ही युद्ध किया ॥७२॥ फिर बल से उन्मत्त हुए उन दोनों असुरों ने महामाया के द्वारा मोहित होकर भगवान् से कहा—हम से वर मांगो ॥७३॥ भगवान् ने कहा—यदि तुम मुझ पर

प्रसन्न हुए हो तो मेरे द्वारा मारे जाओ, यही वर चाहता हूँ, अन्य वर से क्या प्रयोजन है ॥७४॥ ऋषि ने कहा—भगवान् द्वारा ऐसा कहने पर उन असुरों ने सम्पूर्ण विश्व को जलमय देख कर उनसे कहा ॥७५॥ हम तुम्हारे साथ युद्ध करके प्रसन्न हुए हैं इसलिये तुम्हारे हाथ से मरना हमें श्लाघनीय है, परन्तु जो स्थान जलमग्न न हो, हमारा वध वहीं करना ॥७६॥ ऋषि ने कहा—ऐसा ही हो कहकर भगवान् विष्णु ने शंख चक्र और गदा को धारण करके उन असुरों के मस्तकों को अपनी जंघा पर रख कर चक्र से काट डाला ॥७७॥ स्वयं ब्रह्माजी द्वारा स्तुति करने पर यह मायादेवी इस प्रकार से अवतरित हुईं अब इन देवी का प्रभाव तुम्हारे प्रति कहता हूँ, उसे श्रवण करो ॥७८॥

७४- महिषासुर सैन्य वध

देवासुरमभूद्युद्ध पूर्णमब्दशतपुरा ।
महिषसुराणामधिपेदेवानाञ्चपुरन्दरे ॥१
तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यपराजितम् ।
जित्वा च सकलान्देवानिन्द्रोभून्महिषासुरः ॥२
ततः पराजितादेवा पद्मयोनिप्रजापतिम् ।
पुरस्कृत्यगतास्तत्रयत्रेशगरुडध्वजौ ॥३
यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् ।
त्रिदशा कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥४
सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनायमस्यवरुणस्यच ।
अन्येषाचाधिकारान्सस्वयमेवाधितिष्ठति ॥५
स्वर्गान्निराकृता सर्वेतेनदेवगणाभुवि ।
विचरन्तियथामर्त्यामहिषेणदुरात्मना ॥६
एतद्व कथितसर्वममरारिविचेष्टितम् ।
शरणञ्च प्रपन्ना स्मोवधस्तस्यविचिन्त्यताम् ॥७

मुनि ने कहा—आदिकाल में जब देवाधिपति इन्द्र थे और महिष दानवों का अधिपति था, उस काल में एक सौ वर्ष तक निरन्तर देवता और दानवों का युद्ध हुआ ॥१॥ उस युद्ध में महापराक्रमी दानवों ने देव-सेनाओं पर विजय प्राप्त की एवं सभी देवगण को जीतकर असुराधिपति महिष स्वयं इन्द्र बन गया ॥२॥ तदुपरान्त पराजित देवगण प्रजापति ब्रह्माजी के पास आये और शिवजी व विष्णु के निकट भी पहुँचे ॥३॥ देवगण ने शिवजी व भगवान् विष्णु को सम्पूर्ण युद्ध वृत्तान्त कह सुनाया और महिषासुर की विजय व उसके इन्द्रासन पर अधिकार की बात विस्तार से कही ॥४॥ देवताओं ने कहा कि, महिषासुर ने सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्र, यम, वरुण व अन्य दूसरे देवताओं के कार्यों पर अधिकार कर लिया है ॥५॥ महिष द्वारा स्वर्ग से निष्कासित देवता मर्त्यलोक के मनुष्यों के तुल्य पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं ॥६॥ हमने आपसे उन दानवों के अत्याचार का वर्णन किया। हम आपकी शरणागत हैं आप महिषासुर के विनाश के लिए विचार करिये ॥७॥

इत्थंनिशम्यदेवानांवचांसिमधुसूदनः ।
चकारकोपंशंभुश्चभ्रु कुटीकुटिलाननौ ॥८
ततोतिकोपपूर्णस्यचक्रिणोवदनात्ततः ।
निश्चक्राममहत्तेजोब्रह्मणःशंकरस्यच ॥९
अन्येषांचैवदेवानांशक्रादीनांशरीरतः ।
निर्गतंसुमहत्तेजस्तच्चैक्यंसमगच्छत ॥१०
अतीवतेजसःकूटंज्वलंतमिवपर्वतम् ।
ददृशुस्तेसुरास्तत्रज्वालाव्याप्तदिगंतरम् ॥११
अतुलंतत्रतत्तेजःसर्वदेवशरीरजम् ।
एकस्थंतदभून्नारीव्याप्तलोकत्रयंत्विषा ॥१२
यदभूच्छांभवंतेजस्तेनाजायतत्तन्मुखम् ।
याम्येनचाभवन्केशाबाहवोविष्णुतेजसा ॥१३
सौम्येनस्तनयोर्युग्मंमध्यमैंद्रेणचाभवत् ।
वारुणेनचजंघोरूनितंबस्तेजसाभुवः ॥१४

मुनि ने कहा—देवगण के ऐसे वचन सुनते ही शिवजी और विष्णु भगवान् अत्यन्त कुपित हुए, और क्रोध से उन दोनो के मुख तथा भृकुटी कुटिल होगई ॥८॥ तदुपरान्त क्रोध से युक्त विष्णु भगवान्, शिवजी एव ब्रह्माजी के मुखो से एक विस्तृत तेज प्रकट हुआ ॥९॥ इसी प्रकार इन्द्र एव अन्य दूसरे देवताओ के मुखो से भी तेज निकला। अन्तत निकला हुआ समस्त तेज मिलकर एक होगया ॥१०॥ इसके पश्चात् मिलकर एक हुए उस अत्यन्त तेज पुञ्ज को, जिसकी ज्वालाएँ सम्पूर्ण दिशाओ मे फैल गई, पर्वत के तुल्य जलते देखा ॥११॥ फिर वह एकत्रित त्रिभुवन को अपनी आभा से प्रकाशित करने वाला तेज पुञ्ज स्त्री रूप मे परिवर्तित होने लगा ॥१२॥ शिवजी के मुख से प्रकट हुए तेज से उसका मुख, यम के तेज से केश तथा विष्णु के तेज से उसकी दो भुजाऐ बन गई ॥१३॥ चन्द्र के तेज से दोनो स्तन, इन्द्र के तेज से मध्य प्रदेश, वरुण के तेज से जघा और ऊरु, पृथ्वी के तेज से नितम्ब ॥१४॥

ब्रह्मणस्तेजसापादौतदगुल्योर्कतेजसा ।
वसूनाचकरागुल्यःकौवेरेणचनासिका ॥१५
तस्यास्तुद ता सभूताःप्राजापत्येनतेजसा ।
नयनत्रितयजज्ञे तथापावकतेजसा ॥१६
भ्रुवौचसध्ययोस्तेज श्रवणावनिलस्यच ।
अन्येपाचैवदेवानासभवस्तेजसांशिवा ॥१७
ततःसमस्तदेवानातेजोराशिसमुद्भवाम् ।
तांविलोक्यमुद प्रापुरमरामहिषार्दिता ॥१८
ततोदेवाददुस्तस्यैस्वानिस्वान्यायुधानिच ।
ऊचुर्जयजयेत्युच्चै र्जयतींतेजयैषिण ॥१९
शूलंशूलाद्विनिष्कृष्यददौतस्यैपिनाकधृक् ।
चक्रचदत्तवान्कृष्ण समुत्पाट्यस्वचक्रत ॥२०
शखचवरुण शक्तिददौतस्यैहुताशन ।
मारुतोदत्तवाश्चापवाणपूर्णौतथेषुधी ॥२१

ब्रह्मा के तेज से चरण, सूर्य के तेज से चरणों की अंगुलियाँ, वसुगणों के तेज से हाथों की अंगुलियाँ कुवेर के तेज से नासिका ॥१५॥ प्रजापति के तेज से दंतावलि, अग्नि के तेज से त्रिनेत्र ॥१६॥ दोनों संध्याओं के तेज से भृकुटि, पवन के तेज से दो कान वन गये एवं अन्य दूसरे देवताओं विश्वकर्मा आदि के तेज से भी उसके अङ्ग सम्पूर्ण होकर उस मङ्गलकारी देवी ने जन्म लिया ॥१७॥ उसके पश्चात् सम्पूर्ण देवताओं के तेज-पुञ्ज से उत्पन्न उन देवी को देखकर महिषासुर से त्रसित वह देवगण अत्यन्त हर्षित हुए ॥१७॥ फिर सभी देवताओं ने उन्हें अपने-अपने युद्धास्त्र प्रदान किये और विजय के आकांक्षी वह देवता जयन्ती देवी की जय-जयकार करने लगे ॥१६॥ इसके पश्चात् शिवजी ने अपने शूल से शूल उत्पन्न करके उन्हें प्रदान किया। विष्णु भगवान् ने अपने चक्र से चक्र उत्पन्न करके दिया ॥२०॥ वरुण ने उन्हें शंख, हुताशन ने शक्ति एवं पवन ने उन्हें धनुष व बाण प्रदान किये ॥२१॥

वज्रमिन्द्रःसमुत्पाट्यकुलिशादमराधिपः ।
ददौतस्यैसहस्राक्षोघंटामैरावतादगजात् ॥२२
कालादडाश्चमोदडपाशंचांबुपतिर्ददौ ।
प्रजापतिश्चाक्षमालांददौब्रह्माकमंडलुम् ॥२३
समस्तरोमकूपेषुनिजरश्मीन्दिवाकरः ।
कालश्चदत्तवान्खङ्गंतस्यैचर्मचनिर्मलम् ॥२४
क्षीरोदश्चामलंहारमजरेचतथांबरे ।
चूडामणिंतथादिव्यंकुंडलेकटकानिच ॥२५
अर्द्धचंद्रंतथाशुभ्रंकेयूरान्सर्वबाहुषु ।
नूपुरौविमलौतद्वद्ग्रैवेयकमनुत्तमम् ।
अंगुलीयकरत्नानिसमस्तास्वंगुलीषुच ॥२६
विश्वकर्माददौतस्यैपरशुंचातिनिर्मलम् ।
अस्त्राण्यनेकरूपाणितथाभेद्यंचदंशनम् ॥२७
अम्लानपंकजांमालांशिरस्युरसिचापराम् ।
अददाज्जलधिस्तस्यैपंकजंचातिशोभनम् ॥२८

सहस्राक्ष अमरेश्वर इन्द्र ने अपने वज्र से वज्र उत्पन्न करके दिया और एरावत हाथी का घण्टा खोलकर दिया ॥२२॥ यमराज ने कालदण्ड से एक दण्ड उत्पन्न कर उन्हें प्रदान किया। वरुण ने पाश, दक्ष प्रजापति ने अक्षमाला एवं ब्रह्माजी ने उन्हें कमण्डलु प्रदान किया ॥२३॥ दिनकर ने उन कल्याणी देवी के समस्त रोम-रोम को अपनी किरणें प्रदान की, काल ने उन्हें स्वच्छ तलवार और ढाल दी ॥२४॥ क्षीरोद समुद्र ने भी पूर्ण उज्ज्वल मोतियों का हार, दो स्वच्छ वस्त्र, सुन्दर चूड़ामणि, दिव्य कुण्डल और कंगन प्रदान किये ॥२५॥ अर्द्ध चन्द्र ने भी सुन्दर पायल, दोनों बाहुओं में बाजूबन्द, कंठ के लिए सुन्दर आभूषण एवं समस्त अंगुलियों में अनुपम अंगूठियाँ दीं ॥२६॥ विश्वकर्माजी ने अनुपम परशु और अकाट्य कवच उन्हें प्रदान किया ॥२७॥ समुद्र ने खिले हुए कमल पुष्पों की शोभायमान मालाएँ कंठ एवं सिर पर धारण करने के लिये दीं ॥२८॥

हिमवान्वाहनंसिंहरत्नानिविविधानिच ।
ददावशून्यंसुरयापानपात्रंधनाधिपः ॥२९
शेषश्चसर्वनागेशोमहामणिविभूषितम् ।
नागहारंददौतस्यैधत्तेयःपृथिवीमिमाम् ॥३०
अन्यैरपिसुरैर्देवीभूषणैरायुधैस्तथा ।
सम्मानितानना दोच्चैः साट्टहासंमुहुर्मुहुः ॥३१
तस्यानादेनघोरेणकृत्स्नमापूरितंनभः ।
अमायतातिमहताप्रतिशब्दोमहानभूत् ॥३२
चुक्षुभुः सकलालोकाः समुद्राश्चचकम्पिरे ।
चचालवसुधाचेलुः सकलाश्चमहीधराः ॥३३
जयेतिदेवाश्चमुदातामूचुः सिंहवाहिनीम् ।
तुष्टुवुर्मुनयश्चैनांभक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः ॥३४
दृष्ट्वासमस्तंसंक्षुब्धंत्रैलोक्यममरारयः ।
सन्नद्धाखिलसैन्यास्तेसमुत्तस्थुरुद्यतायुधाः ॥३५

हिमालय ने देवी को सवारी के लिए सिंह और विभिन्न रत्न प्रदान

किये। धनपति कुवेर ने उन्हें सुरा युक्त सुरा-पान पात्र दिया ॥२६॥ पृथ्वी के आधार अनन्त नागेश ने देवीजी को महामणि युक्त नागहार प्रदान किया ॥३०॥ अन्य दूसरे देवताओं ने भी उन्हें विभिन्न प्रकार के अस्त्र एवं आभूषण प्रदान किये। इस प्रकार देवताओं द्वारा सम्मानित वह देवी अट्टहास के साथ भीषण गर्जना करने लगी ॥३१॥ उस भयङ्कर गर्जना से समस्त आकाश पूर्ण होगया फिर आकाश से एक अचानक घोर प्रति शब्द भी हुआ ॥३२॥ जिससे तीनों लोक हिल गये समुद्र कांप गये, पृथ्वी डगमगाने लगी और सभी पर्वत कम्पायमान होने लगे ॥३३॥ तब सुरगण सिंह पर सवार उन भगवती की प्रसन्नता से जय-जय करने लगे। ऋषिगण भी नम्रता पूर्वक उनका गुण-गान करने लगे ॥३४॥ तीनों लोकों को इस प्रकार क्रियाशील देखकर दानवगण सम्पूर्ण सेना को सज्जित कर शस्त्रास्त्र धारण कर तैयार होगए ॥३५॥

आः किमेतदितिक्रोधादाभाष्यमहिषासुरः ।
अभ्यधावततंशब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ॥३६
सददर्शततोदेवींव्याप्तलोकत्रयांत्विषा ।
पादाक्रांत्यानतभुवंकिरीटोल्लिखितांबराम् ॥३७
क्षोभिताशेषपातालांधनुर्ज्यानिःस्वनेनताम् ।
दिशोभुजसहस्रेणसमताव्द्याप्यसंस्थिताम् ॥३८
ततःप्रववृतेयुद्धंतयादेव्यासुरद्विषाम् ।
शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुक्तैरादीपितदिगंतरम् ॥३६
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्योमहासुरः ।
युयुधेचामरश्चान्यश्चतुरंगबलान्वितः ॥४०
रथानामयुतैःषड्भिरुदग्राख्योमहासुरः ।
अयुध्यतायुतानांचसहस्रेणमहाहनुः ॥४१
पंचाद्भिश्चनियुतैरसिलोमामहासुरः ।
अयुतानांशतैःषड्भिर्बाष्कलोयुयुधेरणे ॥४२

"अहा ! यह क्या होता है" कुपित महिषासुर ऐसा कहकर समस्त असुर सेना सहित उस ओर दौड़ पड़ा ॥३६॥ तो महिषासुर ने देखा कि वह

देवी अपनी माया बिखेरती हुई त्रैलोक्य मे व्याप्त विद्यमान हैं। एवं जिनके चरण पृथ्वी पर हैं और उनका मुकुट आकाश को चूम रहा है ॥३७॥ जिनके धनुष की प्रत्यंचा के शब्द से समस्त भू-गर्भ भी कम्पित हो रहा था और वह कल्याणी देवी अपनी सहस्त्र भुजाओं से सम्पूर्ण दिशाओं के आच्छादित करते हुए शोभायमान थी ॥३८॥ तत्पश्चात् देवी के साथ दानवों का युद्ध प्रारम्भ होगया, जिसमें प्रयोग हुए विभिन्न प्रकार के युद्धास्त्रों से आकाश भी प्रकाशित होगया ॥३६॥ महिषासुर का सेनाध्यक्ष चिक्षुर घोर दानवी युद्ध करने लगा। चतुरंगिणी सेना से सज्जित चामर नाम का असुर अन्य सेना के साथ मिलकर युद्ध करने लगा ॥४०॥ विकराल असुर उदग्र साठ हजार रथों सहित युद्ध करने लगा एवं महाहनु नाम का असुर भी एक करोड़ रथों को लेकर रण-क्षेत्र में उतर आया ॥४१॥ असुलोम नाम का महाअसुर पाँच करोड़ रथ लेकर और महादानव बाष्कल साठ हजार रथों को लेकर युद्ध करने लगा ॥४२॥

गजवाजिसहस्रौघैरनेकैःरप्रदर्शनः ।
वृतो रथानाकोट्याचयुद्धे तस्मिन्नयुध्यत ॥४३
बिडालाख्यो महादैत्य पञ्चाशद्भि रथायुतै ।
युयुधेसयुगेतत्ररथानापरिवारित ॥४४
वृत कालोरथानाचरणेपञ्चाशतायुतै ।
युयुधेसयुगेतत्रताबद्भिःपरिवारित ॥४५
अन्येचतत्रायुतशोरथानागहयैर्वृ ता ।
युयुधु सयुगेदेव्यासहतत्रमहासुरा ॥४६
कोटिकोटिसहस्रै स्तु रथानादन्तिनातथा ।
हयानाचवृतोयुद्धे तत्राभून्महिषासुर ॥४७
तोमरैर्भिन्दिपालैश्चशक्तिभिर्मुसलैस्तथा ।

दधार तत्प्रहारैस्तुतेनाहतु प्रचक्रमुः ॥४८

महादैत्य परिवारित अनेक सहस्र हाथी व घोड़े युक्त एक करोड़ रथों

सहित उनमें मिलकर युद्ध करने लगा ।।४३।। महाअसुर बिडाल पाँच लाख रथों को लेकर युद्ध क्षेत्र में युद्ध-रत होगया ।।४४।। एवं इतने ही रथों सहित काल नाम का महादैत्य विशाल सेना सहित युद्ध में रत होगया ।।४५।। साथ ही अन्य दूसरे अनेक घोर असुर करोड़ों रथ हाथी और घोड़ों से युक्त उस देवी के साथ युद्ध करने लगे ।।४६।। करोड़ों हजारों रथ हाथी और घोड़ों से सज्जित होकर वह महिषासुर उस युद्ध में आया ।।४७।। इस प्रकार असुरगण तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मूसल, तलवार, फरसा व पट्टिश द्वारा देवी के साथ युद्ध करने लगे ।।४८।। किसी ने शक्ति किसी ने पाश और किसी ने खड्ग चलाकर देवी पर वार करने के प्रयास किये ।।४९।।

सापिदेवीततस्तानिशस्त्राण्यस्त्राणिचंडिका ।
लीलयैवप्रचिच्छेदनिजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ।।५०
अनायस्तानानादेवीस्तूयमानासुरर्षिभिः ।
मुमोचासुरदेहेषुशस्त्राण्यस्त्राणिचेश्वरी ।।५१
सोपिक्रुद्धोधुतसटोदेव्यावाहनकेसरी ।
चचारासुरसैन्येषुवनेष्विवहुताशनः ।।५२
निश्वासान्मुमुचेयांश्चयुध्यमानारणेम्बिका ।
तएवसद्यःसभूतागणाःशतसहस्रशः ।।५३
युयुधुस्तेपरशुभिर्भिंदिपालासिपट्टिशैः ।
नाशयंतोसुरगणान्देवीशक्त्युपबृंहिताः ।।५४
अवादयंतपटहान्गणाःशंखांस्तथापरे ।
मृदंगांश्चतथैवान्येतस्मिन्युद्धमहोत्सवे ।।५५
ततोदेवीत्रिशूलेनगदयाशरवृष्टिभिः ।
खड्गादिभिश्चशतशोनिजघानमहासुरान् ।।५६

फिर उन देवी ने भी अपने शस्त्रास्त्रों की वर्षा करके लीलापूर्वक उन दानवों के सभी अस्त्र-शस्त्र नष्ट कर डाले ।।५०।। उस समय प्रसन्नतापूर्ण उन देवी का समस्त देवता और मुनिगण गुण-गान करने लगे । इसके पश्चात् देवी असुरों पर शस्त्रास्त्रों की वर्षा करने लगी ।।५१।। देवी-वाहन सिंह भी केसर

प्रज्वलित कर अग्नि के समान दैत्य सेनाओं में विचरण करने लगा ॥५२॥ युद्ध में रत देवी के निश्वासों से ही शत सहस्र गण तुरन्त उत्पन्न होगये और असुर सेनाओं से युद्ध करने लगे ॥५३॥ देवी के प्रभाव से बलशाली वह गण फरसा, भिन्दिपाल, असि और पट्टिश से दानवों को नष्ट करने लगे ॥५४॥ गण युद्ध क्षेत्र में शंखनाद भी करते थे और मृदङ्ग भी बजाते थे ॥५५॥ इसके पश्चात् देवी ने भी त्रिशूल, गदा, शक्ति, ऋष्टि, खड्ग वगैरह से शत शत घोर दानवों का शमन किया ॥५६॥

पातयामासचैवान्यान्घटास्वनविमोहितान् ।
असुरान्भुविपाशेनबद्ध्वाचान्यानकर्षयत् ॥५७
केचिद्द्विधाकृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ।
विपोथितानिपातेनगदयाभुविशेरते ॥५८
वेमुश्चकेचिद्रुधिरंमुसलेनभृशंहता ।
केचिन्निपतिताभूमौभिन्नाः शूलेनवक्षसि ॥५९
निरन्तराःशरौघेणकृताःकेचिद्रणाजिरे ।
शैलानुकारिणःप्राणान्मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ॥६०
केषांचिद्बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ।
शिरांसिपेतुरन्येषामन्येमध्येविदारिताः ॥६१
विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरेपेतुरुर्व्यांमहासुराः ।
एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्याद्विधाकृताः ॥६२
छिन्नेपिचान्येशिरसिपतिताः पुनरुत्थिताः ।
कबन्धायुयुधुर्देव्यागृहीतपरमायुधाः ॥६३

कई को घंटे शब्द से मोहित कर मारा और दूसरे बहुत से राक्षसों को पाश में बाँधकर धरातल पर खींचा ॥५७॥ कई को अपनी तलवार की तीव्र धार से दो टुकड़े कर डाला और कई को गदा के प्रहारों से चूर्ण कर डाला ॥५८॥ कोई-कोई मूसल के प्रहार से निरन्तर रक्त-वमन करने लगे और कई असुर हृदय में त्रिशूल भेदन से पीड़ित होकर पृथ्वी पर सुला गये ॥५९॥ युद्ध भूमि में देवी के बाणों के प्रहारों से निरन्तर असुरों की सेनाओं की सहायता

करने वाले देवताओं के शत्रु इस प्रकार मरते जाते थे ।।६०।। किसी असुर की भुजाऐं कटीं, किसी की गर्दन, अन्य दूसरों के मस्तक धड़ से अलग होगये और किसी के मध्य से दो टुकड़े होगये ।।६१।। किसी भयंकर असुर की जांघ कटकर धरती पर गिरी और देवी ने किसी-किसी के एक बाहु, एक आंख और एक चरण नष्ट कर दिया व किसी के बीच से दो खंड कर दिये ।।६२।। कोई-कोई असुर मस्तक कट जाने से भी पृथ्वी से गिरकर पुनः उठकर कई कबन्ध या धड़ पुनः अस्त्र लेकर देवी से युद्ध करने लगे ।।६३।।

ननृतुश्चापरेतत्रयुद्धे तूर्यलयाश्रिताः ।
कबंधाश्छिन्नशिरसःखड्गशक्त्यृष्टिपाणयः ।।६४
तिष्ठतिष्ठेतिभाषंतोदेवीमन्येमहासुराः ।
रुधिरौघविलुप्तांगाःसंग्रामेलोमहर्षणे ।।६५
पातितैरथनागाश्वैरसुरैश्चवसुंधरा ।
अगम्यासाऽभवत्तत्रयत्राभूत्समहारणः ।।३६
शोणितौघामहानद्यःसद्यस्तत्रविसुस्रुवुः ।
मध्येचासुरसैन्यस्यवारणासुरवाजिनाम् ।।६७
क्षणेनतन्महासैन्यमसुराणांतथांबिका ।
निन्येक्षयंयथावह्निस्तृणदारुमहाचयम् ।।६८
सचसिंहोमहानादमुत्सृजन्धुतकेसरः ।
शरीरेभ्योमरारीणामसूनिवविचिन्वति ।।६९
देव्यागणैश्चतैस्तत्रकृतंयुद्धंमहासुरैः ।
यथैनांतुष्टुवुर्देवाःपुष्पवृष्टिमुचोदिवि ।।७०

अनेक कबन्ध या धड़ नृत्य करने लगे और उस महायुद्ध में अनेक भयङ्कर महादैत्य मस्तक कट जाने पर केवल कबन्ध ही रह गये थे। जो कि हाथों में तलवार, शक्ति और दोनों ओर धार वाली तलवार पुनः लेकर ।।६४।। 'ठहरो, ठहरो !' देवी से कहते थे। जिस क्षेत्र में यह विदारक महा युद्ध हुआ गिरे हुए हाथी, घोड़ों, दानवों और उनके रथों से वह पट सा गया था और ऐसा होगया कि पैर रखने को भी स्थान नहीं था ।।६५-६६।। तत्काल ही उस

स्थान पर युद्ध मे असुर सेनाओ के हाथियो, घोडो व सैनिको के रक्त समूह से रक्त की नदियाँ बहने लगी ॥६७॥ सूखे हुए काष्ठ को अग्नि जिस प्रकार पल-भर मे नष्ट कर देती है, उसी प्रकार उन अम्बिका देवी ने राक्षसो की महा सेनाओ को पल मात्र मे नष्ट किया ॥६८॥ देवी-वाहन सिंह ने भी महानाद करते हुए, अपने बालो को कम्पित करता हुआ अत्यन्त क्रोध पूर्वक सभी दानवो के प्राणो को हरने लगा ॥६९॥ एव घूम घूमकर असुरो के शरीरो से ही जैसे वह प्राणो को ही खोजने लगा। देवी के सम्पूर्ण गणो ने उन भयङ्कर असुरो से पराक्रम पूर्वक युद्ध किया, जिससे देवता प्रसन्न होकर स्वर्ग से उन पर पुष्प-वर्षा करने लगे ॥७०॥

७५--महिषासुर वध

निहन्यमानंतत्सैन्यमवलोक्यामहासुर ।
सैनानीश्चिक्षुर कोपाद्ययौयोद्धुमथाम्बिकाम् ॥१
सदेवीशरवर्षेणववर्षसमरेऽसुर ।
यथामेरुगिरे श्रृ गतोयवर्षेणतोयद ॥२
तस्यच्छित्त्वाततोदेवीलीलयैवशरोत्करान् ।
जघानतुरगान्बाणैर्यंतारंचैववाजिनाम् ॥३
चिच्छेदचधनु सद्योध्वजंचातिसमुच्छ्रितम् ।
विव्याधचैनगात्रेषुच्छिन्नधन्वानमाशुग ॥४
सच्छिन्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथि ।
अभ्यधावततोदेवीखड्गचर्मधरोऽसुर ॥५
सिंहमाहत्यखड्गेनतीक्ष्णधारेणमूर्धनि ।
आजघानभुजेसव्येदेवीमप्यतिवेगवान् ॥६

उस समय असुर सेनाओ को नष्ट हुआ देखकर महिषासुर का सेनाध्यक्ष चिक्षुर युद्ध निमित्त अम्बिका देवी के समीप आया ॥१॥ सुमेरु पर्वत के शिखर

पर बादलों की वर्षा के समान वह महा असुर देवी पर शर-वर्षा करने लगा ॥२॥ देवी ने उसके सभी वाणों को काटकर लीला पूर्वक उसके रथ के घोड़ों और सारथी को अपने वाणों से नष्ट कर डाला ॥३॥ देवी ने तत्काल उस चिक्षुर का धनुष और अत्यन्त उच्च ध्वजा को काट कर उसका शरीर वाण वर्षा से वेध डाला ॥४॥ उसका जब धनुष नष्ट होगया, रथ नष्ट होगया तथा घोड़े व सारथी सभी समाप्त होगये, तो वह दैत्य सेनापति तीव्र तलवार व ढाल लेकर देवी की ओर दौड़ा ॥५॥ और घोर गति से अपनी तीक्ष्ण धार की तलवार से सिंह के माथे पर प्रहार करके देवी के भी बांये हाथ पर प्रहार किया ॥६॥

तस्याःखड्गोभुजंप्राप्यपफालनृपनंदन ।
ततोजग्राहशूलंसकोपादारुणलोचनः ॥७
चिक्षेपचततस्तत्तुभद्रकाल्यांमहासुरः ।
जाज्वल्यमानंतेजोभीरविबिंबमिवांबरात् ॥८
दृष्ट्वातदापतच्छूलंदेवीशूलममुंचत ।
तेनतच्छतधानीतंशूलंसचमहासुरः ॥९
हतेतस्मिन्महावीर्येमहिषस्यचमूपतौ ।
आजगामगजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥१०
सोपिशक्तिंमुमोचाथदेव्यास्तामम्बिकाद्रुतम् ।
हुंकराभिहतांभूमौपातयामासनिष्प्रभाम् ॥११
भग्नांशक्तिंनिपतितांदृष्ट्वाक्रोधसमन्वितः ।
चिक्षेपचामरःशूलंबाणैस्तदपिसाच्छिनत् ॥१२
ततःसिंहःसमुत्पत्यगजकुंभांतरेस्थितः ।
बाहुयुद्धेनयुयुधेतेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥१३
युध्यमानौततस्तौतुतस्मान्नागान्महींगतौ ।
युयुधातेतिसंरब्धौप्रहारैरतिदारुणैः ॥१४

हे नृप ! उस दैत्यराज का खड्ग देवी के हाथ के स्पर्श मात्र से ही टूट गया। फिर क्रोधपूर्ण रक्तिम नेत्रों वाले उस महादानव ने त्रिशूल लेकर ॥७॥

भद्रकाली पर वार किया तो देवी ने तेज से प्रकाशमान एवं आकाश से गिरते हुए सूर्य मण्डल के तुल्य ॥८॥ उस त्रिशूल को देखकर अपना शूल ग्रहण किया देवी द्वारा वार किये गये त्रिशूल से उस असुर के त्रिशूल के सौ टुकड़े होगये एवं दैत्य सेनाधिपति चिक्षुर के भी सौ टुकड़े होगये ॥९॥ महिषासुर का सेनापति महापराक्रमी चिक्षुर के समाप्त होने पर सुरगणों का शत्रु महादानव चामर हाथी पर सवार होकर युद्ध करने के लिऐ देवी के सामने आया ॥१०॥ उस महादानव ने देवी पर लक्ष्य करके शक्ति छोड़ दी, परन्तु वह शक्ति देवी की हुंकार के घोर शब्द से अभिहत व प्रभाहीन होकर धरातल पर गिर पड़ी। शक्ति को इस प्रकार नष्ट हुआ देख असुर चामर ने क्रोधित होकर त्रिशूल चलाया परन्तु देवी ने अपने शरों से उस त्रिशूल को भी भेद दिया ॥१२॥ इसके पश्चात् देवी वाहन सिंह छलांग लगाकर हाथी के मस्तक पर चढ़ गया एवं हाथी की पीठ पर बैठे उस महा असुर से बाहु युद्ध करने लगा ॥१३॥ सिंह एवं असुर चामर दोनों ही युद्ध करते हुए उस गज से नीचे गिरे व अत्यंत क्रोधपूर्वक आपस में भीषण प्रहार करने लगे ॥१४॥

ततोवेगात्खमुत्पत्य निपत्यचमृगारिणा ।
करप्रहारेणशिरश्चामरस्यपृथक्कृतम् ॥१५
उग्रश्च रणेदेव्याशिलावृक्षादिभिर्हत ।
दन्तमुष्टितलैश्चैवकरालश्चनिपातित ॥१६
देवीक्रुद्धागदापातैश्चूर्णयामासचोद्धतम् ।
बाष्कलं भिन्दिपालेनबाणैस्ताम्रं तथांधकम् ॥१७
उग्रास्यमुग्रवीर्यंचतथैवचमहाहनुम् ।
त्रिनेत्राचत्रिशूलेनजघानपरमेश्वरी ॥१८
बिडालस्यासिनाकायात्पातयामासवैशिर ।
दुर्धरदुर्मुखंचोभौशरैर्निन्येयमक्षयम् ।
एवंसंक्षीयमाणेतुस्वसैन्येमहिषासुरः ॥१९
"उग्रदर्शनमत्युग्रं मन्नपातैरताडयत् ।

असिनैवासिलोमानमच्छिदत्सारणोत्सवे ।
गणै सिंहेनदेव्याचजयक्ष्वेडाकृतोत्सवैः" ॥२०
एवंसंक्षीयमाणेतुस्वसैन्येमहिषासुरः ।
माहिषेणस्वरूपेणत्रासयामासतान्गणान् ॥२१

इसके बाद कुछ समय में ही सिंह ने एकदम आकाश में छलांग लगाई और फिर पृथ्वी पर गिर कर अचानक पंजों से आघात करते हुए असुर चामर का मस्तक उसकी देह से अलग कर दिया ॥१५॥ उदग्र नाम असुर को देवी ने पत्थर और वृक्षों की वर्षा करके और असुर कराल को दाँत व मुष्टिका प्रहारों से समाप्त कर डाला ॥१६॥ अत्यन्त कुपित उस देवी ने गदा के आघात से उद्धत नाम के दानव को पीस डाला। फिर भिंदिपाल से असुर बाष्कल एवं ताम्र व अन्धक नामक दो असुरों को शरों से समाप्त कर दिया ॥१७॥ त्रिनेत्रा परमेश्वरी देवी ने त्रिशूल द्वारा उग्रास्य, उग्रवीर्य व महाहनु नामक दानवों को नष्ट कर दिया ॥१८॥ तलवार द्वारा असुर बिडाल के मस्तक काटकर गिरा दिया। बाणों के प्रहार से दुर्द्धर व दुर्मुख नाम के दो दानवों को यमलोक भेज दिया। कालरात्रि ने काल असुर को काल दण्ड से मार दिया ॥१९॥ उग्र खड्ग के आघात से उग्रदर्शन, असि से असिलोमा को समाप्त कर दिया तो सिंह व देवी के गणों ने जय-नाद किया ॥२०॥ इस प्रकार अपनी समस्त सेना को नष्ट होता हुआ विलोक राक्षसराज महिषासुर अपना महिषरूप धारण करके देवी के गणों को भयभीत करने लगा ॥२१॥

कांश्चित्तुण्डप्रहारेणखुरक्षेपैस्तथापरान् ।
लांगूलताडितांश्चान्याञ्छृंगाभ्यांचविदारितान् ॥२२
वेगेनकांश्चिदपरान्नादेनभ्रमणेनच ।
निश्वासपवनेनान्यान्पातयामासभूतले ॥२३
निपात्यप्रमथानीकमभ्यधावतसोसुरः ।
सिंहंहंतुंमहादेव्याःकोपंचक्रेततोम्बिका ॥२४
सोपिकोपान्महावीर्यःक्षुरक्षुण्णमहीतलः ।
शृंगाभ्यांपर्वतानुच्चैश्चिक्षेपचननादच ॥२५

वेगभ्रमणविक्षुण्णमहीतस्यव्यशीर्यत ।
लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धि प्लावयामाससर्वत ॥२६
धुतशृङ्गविभिन्नाश्चखण्ड खण्ड ययुर्घना ।
श्वासानिलास्ता शतशोनिपेतुर्नभसोऽचला ॥२७
इतिक्रोधसमाध्मातमापततमहासुरम् ।
दृष्ट्वासाचण्डिकाकोपतद्वधायतदाकरोत् ॥२८

किसी गण को मुख प्रहार से, किसी पर खुर से आघात करके, किसी को पूँछ के आघात से व्यथित करने लगा ॥२२॥ किसी को तीव्र ध्वनि द्वारा, किसी को घोर गर्जन द्वारा, किसी को भ्रमण द्वारा और किसी को श्वास की वायु से विदारण कर डाला ॥२३॥ इस प्रकार दैत्य-गणों को गिराकर वह दैत्यराज महा देवी के वाहन सिंह को समाप्त करने की आकांक्षा से दौड़ा, तो देवी एकदम क्रोधित हुईं ॥२४॥ महापराक्रमी महिषासुर भी क्रोधपूर्ण होकर खुरों से धरती को कुरेदता हुआ और दोनों तीक्ष्ण सींगों द्वारा उच्चतर पर्वत मालाओं को उखाड़ता हुआ गर्जने लगा ॥२५॥ उसके वेग से इस प्रकार घूमने पर पृथ्वी कोमल होगई और गड्ढे होगये तथा पूँछसे ताड़ित समुद्र भी सभी ओर फैलने लगा ॥२६॥ कँपा देने वाले सींगों से घिरे हुए बादल खण्ड खण्ड होगये और उसके श्वास की तीव्र वायु से अनेकों पर्वत गिर पड़े ॥२७॥ ऐसे क्रोध-पूर्ण उस दैत्यराज को समीप आया देख चण्डिका देवी भी क्रोधित हो उसे मारने को उद्यत हो गई ॥२८॥

साक्षिप्त्वातस्यवैपाशतबबन्धमहासुरम् ।
तत्याजमाहिषरूपंसोपिबद्धोमहामृधे ॥२९
तत सिंहोभवत्सद्योयावत्तस्याम्बिकाशिर ।
छिनत्तितावत्पुरुष खड्गपाणिरदृश्यत ॥३०
ततएवाशुपुरुषदेवीचिच्छेदसायकै ।
तखड्गचर्मणासार्धंतत सोभून्महागज ॥३१
करेणचमहासिंहतचकर्षजगर्जच ।
कर्षतस्तुकरदेवीखड्गेननिरकृतत ॥३२

ततोमहासुरोभूयोमाहिषंवपुराश्रितः ।
तथैवक्षोभयामासत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥३३
ततःक्रुद्धाजगन्माताचंडिकापानमुत्तमम् ।
पपौपुनःपुनश्चैवजहासारुणलोचना ॥३४
ननर्द चासुरःसोपिबलवीर्यमदोद्धतः ।
विषाणाभ्यांचचिक्षेपचंडिकांप्रतिभूधरान् ॥३५

देवी ने पाश फेंका, जिससे महिषासुर को बाँध लिया तथा उस महिषासुर ने भी अपना महिष रूप छोड़ दिया ॥२६॥ और तुरन्त ही उसने सिंह रूप ग्रहण किया, इसके पश्चात् जैसे ही अम्बिका देवी उस दैत्यराज का सिर काटने को आगे बढ़ी, त्योंही वह तलवार हाथ में लेकर पुरुष रूप में दीखने लगा ॥३०॥ तदुपरान्त अपनी तीक्ष्ण बाण वर्षा द्वारा ढाल व तलवार सहित उस पुरुष रूप महिषासुर को बींध डाला, तभी वह अत्यन्त विशाल हाथी बनकर अपनी सूंड से सिंह को खींचता हुआ गर्जना करने लगा। देवी ने सिंह को खींचकर तलवार से हाथी की सूंड़ काट डाली ॥३१-३२॥ इसके पश्चात् महादैत्य पुनर्वार महिष रूप में पहिले के ही प्रकार से वह तीनों लोकों को पुनः त्रसित करने लगा ॥३३॥ तत्पश्चात् विश्व-माता चण्डिका क्रोध पूर्वक उत्तम मधु-पान करने लगी तथा रक्तिम नेत्रों सहित बार-बार हँसने लगी ॥३४॥ तब वह मदमस्त, वीर्यवान् दानव भी गर्जना के साथ दोनों सींगों से चण्डिका देवी पर पर्वत उखाड़ कर फेंकने लगा ॥३५॥

साचतान्प्रहितांस्तेनचूर्णयंतीशरोत्करैः ।
उवाचतंमदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥३६
गर्जगर्जक्षणंमूढमधुयावत्पिबाम्यहम् ।
मयात्वयिहतेत्रैवगर्जिष्यंत्याशुदेवताः ॥३७
एवमुक्त्वासमुत्पत्यसारूढातंमहासुरम् ।
पादेनाक्रम्यकंठेचशूलेनेनमताडयत् ॥३८
ततःसोपिपदाक्रांतस्तयानिजमुखात्ततः ।
अर्द्धनिष्क्रांतएवासीद्देव्यावीर्येणसंवृतः ॥३९

अर्द्ध निष्क्रान्तएवासौयुध्यमानोमहासुरः ।
तयामहासिनादेव्याशिरश्छित्वानिपातित ॥४०
एवमसमहिषोनामससैन्य ससुहृद्गण ।
त्रैलोक्यमोहयित्वातुतयादेव्याविनाशित ॥४१
त्रैलोक्यस्थैस्तदाभूतैर्महिषेविनिपातिते ।
जयेत्युक्त तत सर्वं सदेवासुरमानवै ॥४२
ततोहाहाकृतसर्वं दैत्यसैन्यननाशयत् ।
प्रहर्षंचपरजग्मु सकलादेवतागणा ॥४३
तुष्टुवुस्तांसुरादेवींसहदिव्यैर्महर्षिभि ।
जगुर्गंधर्वपतयोननृतुश्चाप्सरोगणा ॥४४

देवी भी अपनी बाण-वर्षा द्वारा उन समस्त पर्वतो को चूर्ण करके युद्ध करने लगी । उस समय कि मद्य-पान से देवी का शरीर रक्त वर्ण होगया था एव सभी शब्दो का स्पष्ट उच्चारण नही हुआ ॥३६॥ देवी ने कहा—अरे मूर्ख ! जब तक मै मद्य-पीती हूँ, तभी तक तू गर्जना करले फिर मेरे द्वारा तुझे निहत हुआ देख देवतागण यही मेरे स्थान पर गर्जना करेंगे ॥३७॥ ऋषि ने कहा—देवी ऐसा कहकर छलांग लगाकर उस महादानव पर सवार होगई तथा उसे अपने चरणों से दबाकर उस असुर के कठ मे त्रिशूल से प्रहार करने लगी ॥३८॥ इसके पश्चात् उस महादानव की माया प्राय समाप्त होगई और देवी के पैरो से दबा होने से अस्त-सा होगया ॥३९॥ उसके बाद सघर्ष करते हुए उस महादानव का महासि से सिर कलम कर उसे समाप्त कर दिया ॥४०॥ इस प्रकार से वह महिषासुर अपनी सेना और असुरगणो के समेत त्रैलोक्य को भ्रमित कर अन्त मे देवी द्वारा विनाश कर दिया गया ॥४१॥ उस समय महिषासुर के निहत होने पर तीनो लोकों के देवता, मनुष्य और भू-पाताल निवासी बलि आदि सभी ने देवी का जयघोष किया ॥४२॥ उसके पश्चात् देवी ने हाहाकार करती शेष दैत्य सेना को भी नष्ट कर दिया, जिससे कि सुरगण अत्यन्त आनन्दित हुए ॥४३। देवता व ऋषि-मुनिगण देवी का गुण-गान करने लगे । गन्धर्व पति गायन करने लगे एव अप्सरायें नृत्य करने लगी ॥४४॥

७६—शक्रादिकृत देवीस्तव

ततःसुरगणाःसर्वे देव्याइंद्रपुरोगमाः ।
स्तुतिमारेभिरेकर्त्तुं निहतेमहिषासुरे ।।१
शक्रादयःसुरगणानिहतेतिवीर्येतस्मिन्दुरात्मनिसुरारिबलेचदेव्या ।
तांतुष्टुवुःप्रणतिनम्रशिरोधरांसावाग्भिःप्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ।।२
देव्यायाततमिदं जगदात्मशक्त्यानि.शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामंबिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यांभक्त्यानताःस्मविदधातुशुभानिसानः।। ३
यस्याःप्रभावमतुलंभगवाननंतोब्रह्माहरश्चनहिवक्तुमलंबलंच ।
साचंडिकाखिलजगत्परिपालनायनाशायचाशुभभयस्यमतिंकरोतु ।।४
याश्रीःस्वयंसुकृतिनांभवनेष्वलक्ष्मीःपापात्मनांकृतधियांहृदयेषुबुद्धिः ।
श्रद्धासतांकुलजनप्रभवस्यलज्जातांत्वांनताःस्मपरिपालयदेविविश्वम् ।।५
किंवर्णयामतवरूपमचिंत्यमेतत्किंचातिवीर्यमसुरक्षयकारिभूरि ।
किंचाहवेषुचरितानितवाद्भुता नसर्वेषुदेव्यसुरदेवगणादिकेषु ।।६
हेतुःसमस्तजगतांत्रिगुणापिदेवैर्नज्ञायसेहरिहरादिभिरप्यपारा ।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूतमव्याकृताहिपरमाप्रकृतिस्त्वमाद्या ।।७

ऋषि ने कहा—उस काल इन्द्र सहित समस्त सुरगण देवी द्वारा महिषासुर का बध किया जाने से आनन्दित होकर देवी का गुण-गान करने लगे ।।१।। भगवती देवी ने सुरगणों के घोर शत्रु महापराक्रमी दैत्यराज महिषासुर का बध कर दिया तो इन्द्र सहित सम्पूर्ण सुरगणों के सुशोभित बन इस आनन्द से और अधिक पुलकित हो उठे, वे अपने सिर व कन्धों को नवाकर विभिन्न प्रकार से गुण-गान करते हुए दुर्गा की स्तुति करने लगे ।।२।। देवताओं ने कहा—इस प्राणि जगत् को अपने प्रभाव से विस्तार करने वाली, समस्त देवगणों की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रूप में परिणत हुई हैं एवं जो समस्त सुरगणों एवं महामुनियों की पूज्या हैं, हम भक्तिपूर्वक उन अम्बिका देवी को प्रणाम करते हैं, वह हम सबका कल्याण करें ।।३।। अनन्त भगवान्, ब्रह्मा एवं महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने में असमर्थ हैं,

वह देवी चण्डिका समस्त विश्व का पोषण करने के लिए और उसके अहित व भय के नाश के लिए आकांक्षित हो ॥४॥ पुनीत कार्य करने वाले प्राणियों के गृह में लक्ष्मी स्वरूप, पाप-कर्म करने वालों के गृह में दरिद्र स्वरूप, स्वच्छ हृदय से अध्ययन करने वाले के मस्तिष्क में बुद्धि स्वरूप, सद्‌आचरण वालों के लिये श्रद्धा स्वरूप और पवित्र कुल में उत्पन्न प्राणियों की लज्जास्वरूप हैं, उन देवी को नमस्कार करते हैं। हे देवि ! आप जगत् का पोषण करें ॥५॥ आपका अचिन्त्य स्वरूप वर्णन करने में हम असमर्थ हैं। हे देवि ! आपका दानवों का विनाश करने वाला अपरिमित वीर्य एवं दानवों व देवगणों के प्रति रण-क्षेत्र में आपका अनुपम आचरण हम किस प्रकार वर्णन करें ॥६॥ हे देवि ! आप विकारहीन आद्याप्रकृति हैं अब च सत्व, रज एवं तमोगुण वाली होने पर भी आप विश्व के लिए कल्याणकारी हो। राग द्वेष आदि से युक्त विष्णु व महेश आदि भी आपका प्रकृत तत्त्व नहीं जानते, हे देवि ! आप अपार हैं और सभी जगत् पदार्थों की आप आश्रय-स्वरूप हैं, यह विश्व आपका ही अंश स्वरूप है ॥७॥

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवी ।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतुरुच्चार्यसे त्वमत एव जने स्वधा च ॥८
या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्वमभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः ।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैर्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥६
शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम् ।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय वार्तासि सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ॥१०
मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा ।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥११
ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम् ।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥१२
दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकरालमुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः ।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥१३

देविप्रसीदपरमाभवतीभवायसद्योविनाशयसिकोपवतीकुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैवयदस्तमेतन्नीतंबलंसुविपुलंमहिषासुरस्य ॥१४

हे देवि ! आपके नाम उच्चारण से ही सम्पूर्ण यज्ञों में देवतागण तृप्ति प्राप्त करते हैं, चूंकि आप ही ऋषिगण एवं सुरगण को तृप्त करने वाले स्वाहा एवं स्वधा स्वरूप उच्चारण की जाती हो ॥८॥ हे देवि ! आपकी महान् आराधना का विषय अचिन्त्य है और जितेन्द्रिय तत्त्वसार तथा दोष-विहीन, मोक्ष के आकांक्षी ऋषिगण आपको मुक्ति का कारण मानते हैं। हे देवि ! इसलिये आप ही भगवती सर्वश्रेष्ठ मोक्ष विद्या हैं ॥९॥ हे देवि ! आप शब्द युक्त तीन वेद स्वरूप हैं और प्रणव युक्त, अनुपम पद वाले ऋक्, यजु व साम वेदों का आश्रय स्वरूप हैं, आप ही सम्पूर्ण ऐश्वर्य पूर्ण हैं, आप ही विश्व का जीवन-रक्षक कृषि-स्वरूप हैं, हे देवि ! समस्त विश्व की घोर विपत्ति को शमन करने वाली आप ही हैं ॥१०॥ हे देवि ! आप ही बुद्धि स्वरूप हैं, कठिन भव-सागर से निस्तार करने वाली अनुपम नौका स्वरूप हैं, कैटभ शत्रु के वध-कर्त्ता भगवान् विष्णु के हृदय में निवास करने वाली लक्ष्मी आप ही हैं और महादेवजी के बांये अङ्ग पर प्रतिष्ठित गौरी आप ही हैं ॥११॥ इस पर भी आपका मन्द हास्य पूर्ण, स्वच्छ, पूर्ण-चन्द्र तुल्य, सुन्दर वर्ण, कांति युक्त, अनुपम मुख देखकर भी महिषासुर ने कुपित होकर आप पर शस्त्राघात किया, यह आश्चर्यपूर्ण है अर्थात् समस्त त्रिभुवन को मोहित करने वाली आपकी मुख-कांति से भी वह दुष्ट मोहित नहीं हुआ ॥१२॥ हे देवि ! अत्यन्त क्रोधपूर्ण, तनी हुई भ्रकुटि सहित उदित पूर्ण चन्द्र के समान आपके मुख को देखकर भी तुरन्त ही महिषासुर ने प्राण त्याग नहीं किया, यह आश्चर्यपूर्ण है, क्योंकि क्रोध युक्त यमराज को देखकर भी कोई जीवित रह सकता है ? ॥१३॥ हे भगवती ! आप प्रसन्न हों, विश्व का कल्याण करने वाली लक्ष्मी आप ही हैं, हे देवि ! क्रोधित होने पर आप समस्त कुल नाश कर देती हैं, यह हम जान गये हैं क्योंकि आपने महिषासुर और उसकी विशाल असुर सेना को नष्ट किया है ॥१४॥

तेसंमताजनपदेषुधनानितेषांयशांसिनचसीदतिवंधुवर्गः ।
धन्यास्तएवनिभृतात्मजभृत्यदारायेषांसदाभ्युदयदाभवतीप्रसन्ना ॥१५

धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्माण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति ।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादाल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥ १६
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥१७
एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु मत्वेति नूनमहितान्विनिहंसि देवि ॥१८
दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् ।
लोकान्प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥१९
खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्डयोग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥२०
दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥२१

हे दुर्गे ! आप सन्तुष्ट होकर जिनको कल्याण देती हैं, वही राष्ट्र में पूज्य होते हैं, उन्हीं को धन और प्रसिद्धि प्राप्त होती है, उनका धर्म अक्षय रहता है और उनके पुत्र, स्त्री व सेवक सयमी व गम्भीर होते हैं ॥१५॥ हे देवि ! आपके ही प्रसाद से पुण्य कर्म करने वाले व्यक्ति नित्यप्रति पूर्ण आदर सहित धर्मानुरक्त कार्य करते हैं तथा मृत्यूपरान्त आपकी ही कृपा से स्वर्ग प्राप्त करते हैं, इसलिए हे अम्बिका ! आप ही त्रैलोक्य को फलदायक हो ॥१६॥ हे देवि ! त्रसित मनुष्य जब आपका नाम स्मरण करते हैं तो आप उन्हें भयहीन बनाती हैं और स्वस्थ हृदय प्राणि जब आपका स्मरण करते हैं तो आप उन्हें कल्याणदाता बुद्धि प्रदान करती हैं, हे दरिद्रों का दुःख व भय हरण करने वाली ! आपके अतिरिक्त अन्य किस का हृदय सभी के हितार्थ कृपालु अथवा दयापूर्ण रहता है ? ॥१७॥ "समस्त असुरों के निहत होने से विश्व सुखी होवे और नरक प्राप्ति के लिये बहुत अवधि तक पाप कर्म करते हुए रण-क्षेत्र में निहत होकर स्वर्ग को प्राप्त करें" ऐसा सोचकर आप देव शत्रुओं का दमन करती हैं ॥१८॥ आपकी तो दृष्टि मात्र से ही शत्रुगण भस्म हो सकते हैं, किन्तु शत्रुओं को अपने शस्त्र से पवित्र कर स्वर्ग में पहुँचाने के लिये आपने शत्रुओं

पर शस्त्र चलाया निस्संदेह आपकी असुरों का हित करने वाली मति सर्व श्रेष्ठ है ।।१६।। हे देवि ! आपके खड्ग की तीव्र आभा और त्रिशूल के अग्रभाग की कांति से भी उन सभी दैत्यों की दृष्टि समाप्त नहीं हुई, इसका केवल कारण यही है कि आपके शोभायुक्त मुख चन्द्र की आभापूर्ण किरणों से उनके नेत्र अत्यन्त शीतल होगये थे ।।२०।। हे दुर्गे ! आपका स्वभाव दुराचारी मनुष्यों के दुराचार का विनाश करने वाला एवं आपका रूप अतुलनीय व अचिन्त्य है । हे देवि ! आपका वीर्य देवगण के बल को हरने वाले दैत्यों का विनाश करता है, अतएव शत्रुओं पर भी आपकी कृपा पूर्ण स्पष्ट है ।।२१।।

केनोपमाभवतुतेस्यपराक्रमस्यरूपंचशत्रुभयकार्यतिहारिकुत्र ।
चित्तेकृपासमरनिष्ठुरताचदृष्टात्वय्येवदेविवरदेभुवनत्रयेपि ।।२२
त्रैलोक्यमेतदखिलंरिपुनाशनेनत्रातंत्वयासमरमूर्द्धनितेपिहत्वा ।
नीतादिवंरिपुगणाभयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारिभवंनमस्ते २३
शूलेनपाहिनोदेविपाहिखड्गेनचांबिके ।
घंटास्वनेननःपाहिचापज्यानिःस्वनेनच ।।२४
प्राच्यांरक्षप्रतीच्यांचचंडिकेरक्षदक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्यउत्तरस्यांतथेश्वरि ।।२५
सौम्यानियानिरूपाणित्रैलोक्येविचरंतिते ।
यानिचात्यंतघोराणितैरक्षास्मांस्तथाभुवम् ।।२६
खड्गशूलगदादीनियानिचास्त्राणितेम्बिके ।
करपल्लवसंगीनितैरस्मान्रक्षसर्वतः ।।२७
एवंस्तुतासुरैर्दिव्यैःकुसुमैर्नंदनोद्भवैः ।
अर्चिताजगतांधात्रीतथागंधानुलेपनैः ।।२८

हे देवि ! आपका पराक्रम किसी अन्य के साथ तुलना नहीं किया जा सकता । आपका रूप शत्रुओं को भयदाता एवं अत्यन्त अनुपम है । ऐसा अनुपम स्वरूप स्वर्ग, पृथ्वी व पाताल में अन्य किसी का नहीं है । हे अम्बिके ! आपका हृदय दयापूर्ण तो है ही, साथ ही रणक्षेत्र में निष्ठुरता पूर्ण भी है, ऐसी समस्त तीनों लोकों में आप ही हैं ।।२२।। हे देवि ! आपने शत्रुओं का विनाश

करके तीनों लोकों की रक्षा की है, युद्ध क्षेत्र में उन्हीं शत्रुओं को निहत करके स्वर्ग प्रदान किया एवं उन्हीं मद-मत्त दैत्यों के कारण हमारा भय भी समाप्त होगया, हे देवि! आपको नमस्कार है ॥२३॥ हे दुर्गे! शूल द्वारा हमारी रक्षा करें! हे अम्बिके! खड्ग द्वारा हमारी रक्षा करें। हे देवि! घण्टा एवं धनुष प्रत्यञ्चा के शब्द द्वारा हमारी रक्षा करें ॥२४॥ हे चण्डिके! शूल घुमाकर आप हमारी पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण में रक्षा करें ॥२५॥ तीनों लोकों में विचरने वाले आपके जितने सौम्य रूप एवं भयङ्कर रूप हैं, उनके द्वारा हमारी व मर्त्यलोक की रक्षा कीजिये ॥२६॥ हे अम्बिका देवि! अपने कर-कमलों में सुशोभित खड्ग, शूल, गदा आदि अस्त्रों द्वारा चारों ओर हमारी रक्षा करें ॥२७॥ ऋषि ने कहा—सुरगणों ने इस प्रकार उन देवी का गुण-गान किया और नन्दन कानन में उत्पन्न हुए पुष्प, दिव्य गन्ध और धूपादि के द्वारा भक्ति पूर्वक उन जगज्जननी की पूजा की ॥२८॥

भक्त्यासमस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यधूपैःसुधूपिता ।
प्राहप्रसादसुमुखासमस्तान्प्रणतान्सुरान् ॥२९
व्रियतांत्रिदशा सर्वेयदस्मत्तोभिवाञ्छितम् ।
ददाम्यहमतिप्रीत्यास्तवैरेभि सुपूजिता ॥३०
कर्तव्यमपरं यच्चदुष्करं तन्नविद्महे ।
इत्याकर्ण्यवचोदेव्या प्रत्यूचुस्तेदिवौकस ॥३१
भगवत्याकृतसर्वंनकिंचिदवशिष्यते ।
यदयंनिहतः शत्रुरस्माकंमहिषासुरः ॥३२
यदिचापिवरोदेयस्त्वयास्माकंमहेश्वरि ।
संस्मृतासंस्मृतात्वंनोहिंसेथाःपरमापदः ॥३३
यश्चमर्त्यस्स्तवैरेभिस्त्वांस्तोष्यत्यमलानने ।
तस्यवित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसंपदाम् ।
वृद्धयेस्मत्प्रसन्नात्वंभवेथा सर्वदांबिके ॥३४
इतिप्रसादितादेवैर्जगतोर्थेतथात्मनः ।
तथेत्युक्त्वाभद्रकालीवभूवांतर्हितानृप ॥३५

इत्येतत्कथितंभूपसंभूतासायथापुरा ।
देवीदेवशरीरेभ्योजगत्त्रयहितैषिणी ॥३६
पुनश्चगौरीदेहात्सासमुद्भूतायथाभवत् ।
वधायदुष्टदैत्यानांतथाशुंभनिशुंभयो: ॥३७
रक्षणायचलोकानांदेवानामुपकारिणी ।
तच्छृणुष्वमयाख्यातंयथावत्कथयामिते ॥३८

उस समय वर प्रदान करने की इच्छा से उनका मुख मण्डल अत्यन्त शोभायमान होगया और उन्होंने सभी विनीत देवताओं के प्रति कहा ॥२६॥ देवी ने कहा—हे त्रिदशगण ! अपना इच्छित वर मुझसे मांगो, तुम्हारे स्तवन से मैं परम सन्तुष्ट हुई हूं, इसलिये प्रीति सहित वर प्रदान करूँगी ॥३०॥ इस महिषासुर का वध करने के पश्चात् क्या करना है, यह मैं नहीं जानती, अब तुम्हें जो कुछ दुःसाध्य हो, वही मुझे बताओ, देवी के ऐसे वचन सुनकर देवगण बोले ॥३१॥ देवताओं ने कहा—हे भगवती ! आपने हमारे हितार्थ इस प्रबल शत्रु महिषासुर को मार डाला, इससे हमारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होगया है, अब कुछ कार्य शेष नहीं रहा ॥३२॥ फिर भी यदि आप वर देने की इच्छा ही करती हो तो हमें यही वर दीजिये कि जब कभी हम आपका स्मरण करें, तभी आप हमारे सङ्कट को दूर करें ॥३३॥ जो मनुष्य हमारे इस स्तोत्र द्वारा आपकी स्तुति करें, उनकी आप प्रसन्न होकर ज्ञानाधिक्य, ऐश्वर्य युक्त धन, पत्नी आदि की वृद्धि करना, क्योंकि आप सब कुछ देने में समर्थ हैं ॥३४॥ ऋषि ने कहा—हे राजन् ! देवताओं द्वारा विश्व के हितार्थ प्रसन्न की हुई भद्रकाली 'ऐसा ही होगा' कहकर अन्तर्धान होगई ॥३५॥ देवताओं के देह से जिस प्रकार विश्व का हित करने वाली वह देवी पूर्वकाल में आविर्भूत हुई, वह तुमसे वर्णन किया ॥३६॥ अब जिस प्रकार भगवती गौरी के शरीर से उत्पन्न होकर शुम्भ निशुम्भ और अन्य असुरों का नाश ॥३७॥ लोकरक्षार्थ और देवोपकारार्थ किया,उसे यथावत् तुम्हारे प्रति कहता हूँ,श्रवण करो ॥३८॥

७७—देवी से शुंभ के दूत का कथन

पुरा शुंभनिशुंभाभ्यामसुराभ्यां शचीपते ।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात् ॥१
तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम् ।
कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च ॥२
तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च ।
अन्येषां चाधिकारान्स स्वयमेवाधितिष्ठति ।
ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥३
हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः ।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ॥४
तयास्माकं वरो दत्तो यथापत्सु स्मृताखिलाः ।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ॥५
इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥६

ऋषि ने कहा—पुराकाल की बात है, शुंभनिशुंभ नामक दो असुरों ने अपने अहंकार से शचिपति देवेन्द्र से त्रैलोक्य का राज्य और सम्पूर्ण यज्ञ भाग को छीन लिया ॥१॥ उन शुंभ, निशुंभ ने चन्द्र, सूर्य, कुबेर, वरुण के अधिकार को अपने हाथ में लिया और पवन तथा अग्नि का कार्य भी स्वयं करने लगे तथा सभी देवताओं के पदों पर उन्होंने अधिकार कर लिया ॥२॥ फिर उन दोनों घोर असुरों के द्वारा अधिकार से भ्रष्ट और तिरस्कार को प्राप्त हुए, राज्य से हीन एवं पराजित ॥३॥ देवगण उन अपराजिता भगवती का स्मरण करने लगे ॥४॥ देवी ने उन्हें विपद्काल में स्मरण करते ही विपत्ति नष्ट करने का वर दिया था, अब घोर विपत्ति आ गई इसलिये उन्हीं की शरण में जाना उचित है ॥५॥ इस प्रकार विचार करके देवतागण पर्वत श्रेष्ठ हिमालय में जाकर विष्णु की उन माया का स्तव करने लगे ॥६॥

नमोदेव्यैमहादेव्यैशिवायैसततंनमः ।
नमःप्रकृत्यैभद्रायैनियताःप्रणताःस्मताम् ॥७
रौद्रायैनमोनित्यायैगौर्य्यैधात्र्यैनमोनमः ।
नमोजगत्प्रतिष्ठायैदेव्यैकृत्यैनमोनमः ॥८
ज्योत्स्नायैचंद्ररूपिण्यैसुखायैसततंनमः ।
कल्याण्यैप्रणतामृध्यैसिद्धयै कूर्म्यैनमोनमः ॥९
नैऋर्त्यैभूभृतांलक्ष्म्यैशर्वाण्यैतेनमोनमः ।
दुर्गायैदुर्गपारायैसारायैसर्वकारिणि ।
ख्यात्यैतथैवकृष्णायैधूम्रायैसततंनमः ॥१०
अतिसौम्यातिरौद्रायै नमस्तस्यैनमोनमः ।
नमोजत्प्रतिष्ठायैदेव्यैकृत्यैनमोनमः ॥११
यादेवीसर्वभूतेषुविष्णुमायेतिशब्दिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥१३
यादेवीसर्वभूतेषुबुद्धिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥१४

देवताओं ने कहा—देवी को नमस्कार है, महादेवी, शिवा, प्रकृति और भद्रा को बारम्बार नमस्कार है, हम विनीत होकर उन भगवती को बारम्बार नमस्कार करते हैं ॥७॥ रौद्रा नित्या, गौरी, धात्री, जगत्-प्रतिष्ठा और कृत्या को हमारा बारम्बार नमस्कार है ॥८॥ हम उन प्रकाश स्वरूपा, चन्द्ररूपा तथा परमानन्द स्वरूपिणी देवी को नमस्कार करते है, उन कल्याणि, बुद्धि रूपिणी एवं साक्षात् सिद्धि को नमस्कार करते हैं ॥९॥ नैऋर्ति स्वरूपा और राजाओं की गृह लक्ष्मी स्वरूपा देवी को नमस्कार है, शर्वाणि, दुर्गा, दुर्गपारा, सारा, सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रा स्वरूपिणी भगवती को हम नमस्कार करते हैं ॥१०॥ जो अति सौम्य तथा अत्यन्त रौद्र हैं, उनको हम विनय पूर्वक नमस्कार करते हैं, जग-प्रतिष्ठा रूपिणी एवं कृति स्वरूपा देवी को नमस्कार करते हैं ॥११॥ जो सब प्राणियों में विष्णुमाया नाम से प्रसिद्ध है उनको बारम्बार नमस्कार है ॥१२॥ सब प्राणियों में चेतना रूप वाली

देवी को हम नमस्कार करते हैं ॥१३॥ सब प्राणियों में बुद्धि रूप से स्थित रहने वाली भगवती को बारम्बार नमस्कार है ॥१४॥

यादेवीसर्वभूतेषुनिद्रारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥१५
यादेवीसर्वभूतेषुक्षुधारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यै नमोनमः ॥१६
यादेवीसर्वभूतेषुच्छायारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥१७
यादेवीसर्वभूतेषुशक्तिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥१८
यादेवीसर्वभूतेषुतृष्णारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥१९
यादेवीसर्वभूतेषुशान्तिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२०॥
यादेवीसर्वभूतेषुजातिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यै नमोनमः ॥२१

सब प्राणियों में निद्रारूप से स्थित देवी को बारम्बार नमस्कार है ॥१५॥ सब जीवों में क्षुधा रूप से स्थित रहने वाली देवी को बारम्बार नमस्कार है ॥१६॥ जो देवी सब भूतों में छाया रूप से अवस्थित रहती हैं, उनको नमस्कार, नमस्कार है ॥१७॥ सब प्राणियों में शक्ति रूप से विराजमान देवी को अनेक बार नमस्कार ॥१८॥ सब प्राणियों में तृष्णा रूप में प्रतिष्ठित भगवती को बारम्बार नमस्कार ॥१९॥ सब प्राणियों में शान्ति रूप से अवस्थित देवी को नमस्कार ॥२०॥ सब जीवों में जाति रूप से निवास करने वाली देवी को नमस्कार ॥२१॥

यादेवीसर्वभूतेषुलज्जारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२२

यादेवीसर्वभूतेषुशांतिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२३
यादेवीसर्वभूतेषुश्रद्धारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२४
यादेवीसर्वभूतेषुकान्तिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२५
यादेवीसर्वभूतेषुलक्ष्मीरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२६
यादेवीसर्वभूतेषुधृतिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२७
यादेवीसर्वभूतेषुवृत्तिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२८

जो सब प्राणियों में लज्जा रूप से रहती हैं, उन देवी को बारम्बार नमस्कार ॥२२॥ सब प्राणियों में शान्तिरूप से अवस्थान करने वाली देवी को नमस्कार ॥२३॥ सब जीवों में श्रद्धारूप से स्थित भगवती को नमस्कार ॥२४॥ सब प्राणियों में कांतिरूप से विराजमान देवी को नमस्कार ॥२५॥ सब जीवों में लक्ष्मीरूप से प्रतिष्ठित देवी को नमस्कार ॥२६॥ सब जीवों में धृति रूप से अवस्थान करने वाली महामाया को नमस्कार ॥२७॥ सब प्राणियों में वृत्ति रूप से अवस्थित देवी को नमस्कार ॥२८॥

यादेवीसर्वभूतेषुस्मृतिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२९
यादेवीसर्वभूतेषुदयारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३०
यादेवीसर्वभूतेषुतुष्टिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३१
यादेवीसर्वभूतेषुपुष्टिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३२

यादेवीसर्वभूतेषुमातृरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३३
यादेवीसर्वभूतेषु भ्रांतिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३४

सब प्राणियों में स्मृति रूप से अवस्थित देवी को नमस्कार ॥२६॥ सब प्राणियों में दया रूप से अधिष्ठित देवी को नमस्कार ॥३०॥ सब प्राणियों में नीति रूप से स्थित देवी को नमस्कार ॥३१॥ सब जीवों में तुष्टि रूप से स्थित भगवती को नमस्कार ॥३२॥ सब जीवों में पुष्टि रूप से निवास करने वाली देवी को नमस्कार ॥३३॥ सब प्राणियों में मातृ रूप से स्थित देवी को नमस्कार ॥३४॥ सब प्राणियों में भ्रान्ति रूप से अवस्थित देवी को नमस्कार ॥३५॥

इन्द्रियाणामधिष्ठात्रीभूतानांचाखिलेषुया ।
भूतेषुसततंव्याप्त्यैतस्यैदेव्यैनमोनमः ॥३६
चितिरूपेणयाकृत्स्नमेतद्व्याप्यस्थिताजगत् ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३७
स्तुतासुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथासुरेन्द्रेणदिनेशसेविता ।
करोतुसानः शुभहेतुरीश्वरीशुभानिभद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥३८
यासाम्प्रतंचोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशाचसुरैर्नमस्यते ।
याचस्मृतातत्क्षणमेवहन्तिनः सर्वापदोभक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥३९
एवंस्तवाभियुक्तानांदेवानांतत्रपार्वती ।
स्नातुमभ्याययौतोयेजाह्नव्यानृपनन्दन ॥४०
साऽब्रवीत्तान्सुरान्सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्रका ।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥४१
स्तोत्रंममैतत्क्रियतेशुम्भदैत्यनिराकृतैः ।
देवैः समस्तैः समरेनिशुम्भेनपराजितैः ॥४२

सब इन्द्रियों और जीवों की अधिष्ठात्री और सब प्राणियों में व्याप्ति रूप से विद्यमान देवी को नमस्कार ॥३६॥ चैतन्य रूप से सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त

रह कर अधिष्ठान करने वाली भगवती को बारम्बार नमस्कार है ।।३७।। पुराकाल में अपने इच्छित को प्राप्त करके हमने जिन देवी की स्तुति की और जो मंगलों के करने वाली हैं, उन्हीं भगवती को, प्रचण्ड असुरों से पीड़ित हुए हम नमस्कार करते हैं, भक्ति से झुकते हुए देह वाले हम जब आपका स्मरण करते हैं तब जो तुरन्त ही हमारी विपत्ति को दूर करतीं हैं, वह देवी हमारी विपत्ति को नष्ट करके सब प्रकार से हमारा मंगल करें ।।३८-३९।। ऋषि ने कहा—हे नृपपुत्र ! देवगण इस प्रकार से स्तुति कर ही रहे थे, तभी भगवती पार्वती गंगा स्नान को जाने के लिये उनके सम्मुख हुई ।।४०।। शोभित भ्रकुटि वाली वह पार्वतीजी देवताओं से पूछने लगीं—हे देवगण ! तुम किसकी स्तुति कर रहे हो, इतनी वार्ता के साथ ही पार्वतीजी के देह कोश से भगवती शिवा उत्पन्न होकर बोलीं ।।४१।। युद्ध में निशुंभ द्वारा पराजित और शुंभ द्वारा निष्कासित यह देवगण मेरी स्तुति कर रहे हैं ।।४२।।

शरीरकोशाद्यत्तस्याःपार्वत्यानिःसृतांबिका ।
कौशिकीतिसमस्तेषुततोलोकेषुगीयते ।।४३
तस्यांविनिर्गतायांतुकृष्णाभूत्सापिपार्वती ।
कालिकेतिसमाख्याताहिमाचलकृताश्रया ।।४४
ततोंबिकांपरंरूपंबिभ्राणांसुमनोहरम् ।
ददर्शचंडोमुंडश्चभृत्योशुंभनिशुंभयोः ।।४५
ताभ्यांशुंभायचाख्याताअतीवसुमनोहरा ।
काप्यास्तेस्त्रीमहाराभासयंतीहिमाचलम् ।।४६
नैवतादृक्क्वचिद्रूपंदृष्टंकेनचिदुत्तमम् ।
ज्ञायतांकाप्यसौदेवीगृह्यतांचासुरेश्वर ।।४७
स्त्रीरत्नमतिचार्वंगीद्योतयंतीदिशस्त्विषा ।
सातुतिष्ठतिदैत्येन्द्रताभवान्द्रष्टुमर्हति ।।४८
यानिरत्नानिमणयोगजाश्वादीनिवैप्रभो ।
त्रैलोक्येतुसमस्तानिसांप्रतंतानितेगृहे ।।४९

पार्वती जी के देहकोश से उत्पन्न होने के कारण वह शिवा 'कौशिकी'

नाम से प्रसिद्ध हुई ॥४३॥ जब पार्वती जी के देह से वह कौशिकी देवी निकल गई तब उन्होंने कृष्ण वर्ण धारण करके कालिका नाम से प्रसिद्ध होकर हिमाचल में निवास किया ॥४४॥ तदुपरान्त अम्बिका ने अत्यन्त मनोहर रूप धारण किया और शुम्भ निशुम्भ असुरों के भृत्य चण्ड मुण्ड ने उस स्वरूप को देखा ॥४५॥ तब चण्ड मुण्ड शुम्भासुर के पास गये और उनसे बोले—हे महाराज ! एक अत्यन्त रूपवती स्त्री हिमाचल को सुशोभित करती हुई वहाँ रह रही है ॥४६॥ ऐसा श्रेष्ठ स्वरूप किसी ने भी न देखा होगा, इसलिये यह स्त्री कौन है, इसका पता करके, उसे ग्रहण कर लीजिये ॥४७॥ वह सुन्दरागी स्त्रियों में रत्नरूप है हे असुरेन्द्र ! वह स्त्री अपने शरीर की कान्ति से सब दिशाओं को प्रकाशित कर रही है, आपको उसे अवश्य देखना चाहिए ॥४८॥ हे प्रभो ! तीनों लोकों में हाथी, घोड़े, रत्नादिक जो सर्वश्रेष्ठ धन हैं, वह सभी आपके घर में सुशोभित हैं ॥४९॥

ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात् ।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हय ॥५०
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेंगणे ।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोद्‌भुतम् ॥५१
निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात् ।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपंकजाम् ॥५२
छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति ।
तथायं स्यन्दनवरो यः पुरासीत्प्रजापतेः ॥५३
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वयाहृता ।
पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥५४
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः ।
वह्निश्चापि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥५५
एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते ।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥५६

गजरत्न ऐरावत, सुरम्य पारिजातवृक्ष, और उच्चैश्रवाग्रश्व, इन्द्र के यहाँ से लिया गया ।।५०।। विधाता का हंसयुक्त रत्न रूप विमान भी यहाँ लाकर आपके आँगन में स्थित किया गया ।।५१।। महापद्म नाम की यह निधि कुबेर से और किञ्जल्किनि नामक कभी भी न मुरझाने वाली पद्ममाला भी समुद्र से प्राप्त की गई ।।५२।। वरुण का कांचनस्रावि छत्र और प्रजापति का यह श्रेष्ठ रथ भी यहाँ विद्यमान है ।।५३।।यम की मरणदायिनी शक्ति भी आपने छीन ली और आपके भाई निशुंभ के यहाँ वरुण का पाश ।।५४।। और समुद्र से प्राप्त हुए सब रत्न विद्यमान हैं, अग्नि ने उनको पवित्र करके वस्त्र एवं उत्तरीय दिया है ।।५५।। हे असुरेन्द्र ! इस प्रकार यह सभी रत्न आपने ग्रहण किये हैं तो इस स्त्री रत्न को ही ग्रहण क्यों नहीं करते ? ।।५६।।

निशम्येतिवचःशुंभःसतदाचण्डमुण्डयोः ।
प्रेषयामाससुग्रीवदूतंदेव्यामहासुरः ।।५७
इतिचेतिचवक्तव्यासागत्वावचनान्मम ।
यथाचाभ्येतिसंप्रीत्यातथाकार्यंत्वयालघु ।।५८
सतत्रगत्वायत्रास्तेशैलोद्देशेतिशोभने ।
तांचदेवींततःप्राहश्लक्ष्णंमधुरयागिरा ।।५९
देविदैत्येश्वरःशुंभस्त्रैलोक्येपरमेश्वरः ।
दूतोहंप्रेषितस्तेनत्वत्सकाशमिहागतः ।।६०
अव्याहताज्ञःसर्वासुयःसदादेवयोनिषु ।
निर्जिताखिलदैत्यारिःसयदाहश्रृणुष्वतत् ।।६१
ममत्रैलोक्यमखिलंममदेवावशानुगाः ।
यज्ञभागानहंसर्वानुपाश्नामिपृथक्पृथक् ।।६२
त्रैलोक्येवररत्नानिममवश्यान्यशेषतः ।
तथैवगजरत्नंचहृत्वादेवेन्द्रवाहनम् ।।६३

ऋषि ने कहा—चण्डमुण्ड के यह वचन सुनकर महादैत्य शुंभ ने अपने सुग्रीव नामक दूत को देवी के पास भेजा ।।५७।। शुम्भ बोला—तुम वहाँ जाकर

ऐसी बात करना जिससे वह अत्यन्त प्रसन्न होकर शीघ्र ही यहाँ आकर उपस्थित हो जाय ॥५८॥ जिस अत्यन्त सुशोभित पर्वत-प्रान्त में पार्वती जी निवास कर रही थीं, उस स्थान में पहुँच कर वह दूत उनसे बोला ॥५९॥ दूत ने कहा—हे देवि ! दैत्येन्द्र शुम्भ तीनों लोकों के ईश्वर हैं, उन्होंने मुझे अपने दूत रूप से तुम्हारे पास भेजा है इसीलिये मैं यहाँ आया हूँ ॥६०॥ उनकी आज्ञा सब देवताओं को अटल रूप से मान्य है, क्योंकि उन्होंने देवताओं को परास्त कर दिया है, अब उन्होंने जो कहा है उसे मुझसे श्रवण करो ॥६१॥ उन्होंने कहा है—तीनों लोक मेरे हैं, सभी देवता मेरे वश में और मेरे अनुगत हैं, समस्त के यज्ञ भाग को भी मैं ही भोगता हूँ ॥६२॥ तीनों लोकों के सम्पूर्ण रत्न मेरे वशीभूत हैं, सभी श्रेष्ठ हाथी तथा गजरत्न ऐरावत भी मैंने ले लिया है ॥६३॥

क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नममामरैः ।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्यसमर्पितम् ॥६४
यानिचान्यानिदेवेषुगन्धर्वेषूरगेषुच ।
रत्नभूतानिभूतानितानिमय्येवशोभने ॥६५
स्त्रीरत्नभूतांत्वांदेविलोकेमन्यामहेवयम् ।
सात्वमस्मानुपागच्छयतोरत्नभुजोवयम् ॥६६
मांवाममानुजंवापिनिशुम्भमुरुविक्रमम् ।
भजत्वंचञ्चलापाङ्गिरत्नभूतासिवैयतः ॥६७
परमैश्वर्यमतुलंप्राप्स्यसेमत्परिग्रहात् ।
एतद्बुद्ध्यासमालोच्यमत्परिग्रहतांव्रज ॥६८

समुद्र मथन से निकला हुआ उच्चैःश्रवा घोड़ा भी देवताओं ने विनय पूर्वक मुझे भेंट किया है ॥६४॥ देवताओं, गन्धर्वों और नागों के सभी रत्न इस समय मेरे ही हैं ॥६५॥ हे देवी ! लोक में तुम्हें हम स्त्री रत्न मानते हैं, हम सभी रत्नों के भोगने वाले होने से, तुम रत्न स्वरूपा को हमारे घर आना चाहिये ॥६६॥ हे चञ्चल कटाक्ष वाली ! तुम मुझे या मेरे अत्यन्त पराक्रमी भ्राता निशुम्भ को स्वीकार करो, क्योंकि तुम रत्न स्वरूप हो ॥६७॥ मेरी

कामना करने से तुम्हें अतुलनीय परमैश्वर्यों की प्राप्ति होगी, इस बात को बुद्धि से विचार कर मेरा ही चिन्तन करो ॥६८॥

इत्युक्तासातदादेवीगंभीरांतःस्मिताजगौ ।
दुर्गाभगवतीभद्राययेदंधार्यतेजगत् ॥६९
सत्यमुक्तंत्वयानात्रमिथ्याकिंचित्त्वयोदितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिःशुंभोनिशुंभश्चापितादृशः ॥७०
किंत्वत्रयत्प्रतिज्ञातंमिथ्यातत्क्रियतेकथम् ।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञायाकृतापुरा ॥७१
योमांजयतिसंग्रामेयोमेदर्पंव्यपोहति ।
योमेप्रतिबलोलोकेसमेभर्त्ताभविष्यति ॥७२
तदागच्छतुशुंभोत्रनिशुंभोवामहासुरः ।
मांजित्वाकिंचिरेणात्रपाणिंगृह्णातुमेलघु ॥७३
अवलिप्तासिमैवंत्वंदेविब्रूहिममाग्रतः ।
त्रैलोक्येकःपुमांस्तिष्ठेदग्रेशुंभनिशुंभयोः ॥७४

ऋषि ने कहा—दूत की बात सुनकर विश्व को धारण करने वाली भगवती दुर्गा ने गम्भीर भाव पूर्वक कुछ हँस कर कहा ॥६९॥ देवी बोली—हे दूत ! तुम्हारा कथन यथार्थ है, शुम्भ तीनों लोकों के स्वामी हैं और निशुम्भ भी उन्हीं के तुल्य हैं ॥७०॥ किन्तु मैंने एक प्रतिज्ञा की हुई है, उसे किस प्रकार तोड़ दूँ ? अल्प बुद्धि के वश में होकर जो प्रतिज्ञा मैंने की है, उसे श्रवण करो ॥७१॥ जो पुरुष युद्ध में मुझे परास्त करेगा, जो मेरा दर्प खण्डित करेगा और जो मेरे समान बलवान् होगा, वही पुरुष मेरा पति होगा ॥७२॥ अब वह शुम्भ या निशुम्भ यहाँ आकर उनमें जो समर्थ हो, वह मुझे परास्त करके ग्रहण करलें, विलम्ब न करें ॥७३॥ दूत ने कहा—हे देवि ! तुम्हें अत्यन्त गर्व है, मुझसे ऐसा न कहो, शुम्भ निशुम्भ का सामना तीनों लोकों में कौन कर सकता है ? ॥७४॥

अन्येषामपिदैत्यानांसर्वेदेवानवैयुधि ।
तिष्ठन्तिसंमुखादेविकिंपुनःस्त्रीत्वमेकिका ॥७५

इंद्राद्या सकलादेवास्तस्थुर्येषानसंयुगे ।
शुंभादीनांकथंतेषांस्त्रीप्रयास्यसिसंमुखम् ॥७६
सात्वगच्छमयैवोक्तापार्श्वंशुम्भनिशुम्भयोः ।
केशाकर्षणनिर्धूतगौरवामागमिष्यसि ॥७७
एवमेतद्वलीशुम्भोनिशुम्भश्चातिवीर्यवान् ।
किंकरोमिप्रतिज्ञामेयदनालोचितापुरा ॥७८
सत्वगच्छमयैवोक्तं यदेतत्सर्वमादृत ।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्रायसचयुक्तं करोतुतत् ॥७९

शुंभ निशुंभ का तो कहना ही क्या है, उनके अनुचर दैत्यों के सामने ही सब देवता मिलकर भी नहीं ठहर सकते तो तुम स्त्री होकर उनसे किस प्रकार संग्राम करोगी ? ॥७६॥ इसलिये तुम मेरी बात मानकर शुंभ-निशुंभ के पास चलो, अन्यथा मैं ही तुम्हारे केश पकड़ कर घसीट ले चलूँगा, जिससे तुम्हारा सब गर्व चूर्ण हो जायगा ॥७७॥ देवी ने कहा—हे दूत ! शुंभ-निशुंभ दोनों ही निःसंदेह ऐसे महा बलवान् हैं, परन्तु क्या करूँ, पहिले इस बात को न जानकर अल्प बुद्धि से ऐसी प्रतिज्ञा कर बैठी ॥७८॥ इसलिये तुम वहाँ जाकर मैंने जो कहा है, वह आदर पूर्वक उनसे कहो, इसके पश्चात् वह जो कुछ उचित समझें, वह करेंगे ॥७९॥

७८—धूम्रलोचन वध

इत्याकर्ण्यवचोदेव्या सदूतोमर्षपूरितः ।
समाचष्टेसमागम्यदैत्यराजायविस्तरात् ॥१
तस्यदूतस्यतद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट्ततः ।
सक्रोधः प्राहदैत्यानामधिपंधूम्रलोचनम् ॥२
हेधूम्रलोचनाशुत्वंस्वसैन्यपरिवारितः ।
तामानयबलाद्दुष्टांकेशाकर्षणविह्वलाम् ॥३

तत्परित्राणदःकश्चिद्यदिवोत्तिष्ठतेपरः ।
संहन्तव्योमरोवापियक्षोगन्धर्वएववा ॥४
तेनाज्ञप्तस्ततःशीघ्रं सदैत्योधूम्रलोचनः ।
वृतःषष्ट्यासहस्त्राणामसुराणांद्रुतंययौ ॥५
सदृष्ट्वातांततोदेवींतुहिनाचलसंस्थिताम् ।
जगादोच्चैःप्रयाहीतिमूलंशुम्भनिशुम्भयोः ॥६
नचेत्प्रीत्याद्यभवतीमद्भर्त्तारमुपैष्यसि ।
ततोबलान्नयाम्येषकेशाकर्षणविह्वलाम् ॥७

ऋषि ने कहा—देवी के यह वचन सुनकर दूत को अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने दैत्येश्वर के पास जाकर सब वृत्तान्त उन्हें सुनाया ॥१॥ दूत की बात सुनकर दैत्यराज शुंभ ने क्रोध पूर्वक दैत्यों के अधिपति धूम्रलोचन से कहा ॥२॥ हे धूम्र लोचन ! तुम सेना सहित वहाँ जाकर उस दुष्टा के केश पकड़ कर यहाँ घसीट लाओ ॥३॥ यदि कोई उसकी रक्षा में तत्पर हो, तो वह देवता, यक्ष, गन्धर्व कोई भी हो, उसे मार डालो ॥४॥ ऋषि ने कहा—शुंभ की आज्ञा सुनकर धूम्रलोचन साठ हजार दैत्यों को साथ लेकर शीघ्र ही वहाँ पहुँचा ॥५॥ और हिमाचल में बैठी हुई देवी से उस धूम्रलोचन ने उच्च स्वर से कहा—शुंभ निशुंभ के पास चलो ॥६॥ यदि तुम स्वेच्छा से उनके पास न चलोगी तो मैं तुम्हारे केश पकड़ कर बलपूर्वक वहाँ ले चलूँगा ॥७॥

दैत्यश्वरेणप्रहितोबलवान्बलसंवृतः ।
बलान्नयसिमामेवंततःकिंतेकरोम्यहम् ॥८
इत्युक्तःसोभ्यधावत्तामसुरोधूम्रलोचनः ।
हुंकारेणैवतंभस्मसाचकाराम्बिकाततः ॥९
अथक्रुद्धं महासैन्यमसुराणांतथाम्बिका ।
ववर्षसायकैस्तीक्ष्णैस्तथाशक्तिपरश्वधैः ॥१०
ततोधुतसटःकोपात्कृत्वानादंसुभैरवम् ।
पपातासुरसेनायांसिंहोदेव्यास्तुवाहनः ॥११

काँश्चित्करप्रहारेण दैत्यानास्येनचापरान् ।
आक्रम्यचरणेनान्यान्निजघानमहासुरान् ॥१२
केषांचित्पाटयामासनखैः कोष्ठानिकेसरी ।
तथातलप्रहारेणशिरांसिकृतवान्पृथक् ॥१३
विच्छिन्नबाहुशिरस कृतास्तेनतथापरे ।
पपौचरुधिरकोष्ठादन्येषाधुतकेसरः ॥१४

देवी ने कहा—तुम्हें दैत्यों के अधिपति शुम्भ ने यहाँ भेजा है, तुम स्वयं बलवान् और सेना के सहित यहाँ आये हो, यदि तुम बलपूर्वक ले जाना चाहोगे तो भी मैं तुम्हारा क्या कर सकूँगी ? ऋषि ने कहा—देवी की बात सुनते ही धूम्रलोचन उनकी ओर दौड़ा, परन्तु देवी के हुंकार से ही भस्म होगया ॥८-९॥ तब उसकी सेना ने क्रोध करके देवी के ऊपर तीक्ष्ण बाण, परशु और शक्ति की वर्षा की ॥१०॥ यह देखकर देवी के वाहन सिंह ने क्रोध से कम्पायमान होकर भयङ्कर गर्जन किया और असुर-सेना पर टूट पड़ा ॥११॥ उसने किसी को पंजे से, किसी को मुख से, किसी को होठ से आक्रमण पूर्वक मारा ॥१२॥ किसी का हृदय नख से चीर दिया, किसी का मस्तक हथेली के प्रहार से, शरीर से अलग किया ॥१३॥ अनेक असुरों के बाहु और मस्तक छिन्न-भिन्न कर डाले और बहुतों का रक्त-पान कर लिया ॥१४॥

क्षणेनतद्बलंसर्वंक्षयनीतमहात्मना ।
तेनकेसरिणादेव्यावाहनेनातिकोपिना ॥१५
श्रुत्वातमसुरंदेव्यानिहतधूम्रलोचनम् ।
बलचक्षयितंकृत्स्नंदेवीकेसरिणाततः ॥१६
चुकोपदैत्याधिपतिः शुम्भःप्रस्फुरिताधरः ।
आज्ञापयामासचतौचण्डमुण्डौमहासुरौ ॥१७
हेचण्डहेमुण्डबलैर्बहुभि परिवारितौ ।
गच्छतंतत्रगत्वाचसासमानीयतालघु ॥१८
केशेष्वाकृष्यबद्ध्वावायदिवः संशयोयुधि ।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥१९

तस्यःहतायाँदुष्टायांसिंहेचविनिपातिते ।
शीघ्रमागम्यताबद्धागृहीत्वातामथाम्बिकाम् ॥२०

क्षण भर में ही उस सिंह ने असुरों की उस विशाल सेना को नष्ट कर डाला ॥१५॥ धूम्रलोचन का देवी के द्वारा और सम्पूर्ण सेना का उनके वाहन सिंह द्वारा मारा जाना सुनकर ॥१६॥ दैत्येश्वर शुंभ अत्यन्त क्रोध में भर गया, उसके होठ फड़कने लगे और उसने चण्ड-मुण्ड को इस प्रकार आज्ञा दी ॥१७॥ हे चण्ड ! हे मुण्ड ! तुम बहुत-सी सेना लेकर वहाँ जाओ और स्त्री को तुरन्त पकड़ लाओ ॥१८॥ उसके केश पकड़ कर खींच लाओ या उसे बाँध कर ले आओ, यदि ऐसा न कर सको तो पूर्ण बल लगाकर उसका वध कर देना ॥१६॥ उसको और उसके सिंह को मार कर उसी दशा में यहाँ ले आओ ।२०।

७६–चण्डमुण्ड वध

आज्ञप्तास्तेततोदैत्याश्चंडमुण्डपुरोगमाः ।
चतुरंगबलोपेताययुरभ्युद्यतायुधाः ॥१
ददृशुस्तेततोदेवीमीषद्धासांव्यवस्थिताम् ।
सिंहस्योपरिशैलेन्द्रश्रृंगेमहतिकांचने ॥२
तेदृष्ट्वातांसमादातुमुद्यमंचक्रुरुद्यताः ।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्येतत्समीपगाः ॥३
ततःकोपंचकारोच्चैरंबिकातानरीन्प्रति ।
कोपेनचास्यावदनंमषीवर्णमभूत्तदा ॥४
भ्रुकुटीकुटिलात्तस्याललाटफलकाद्द्रुतम् ।
कालीकरालवदनाविनिष्क्रांतासिपाशिनी ॥५
विचित्रखट्वांगधरानरमालाविभूषणा ।
द्वीपिचर्मपरीधानाशुष्कमांसातिभैरवा ॥६

अतिविस्तारवदनाजिह्वाललनभीषणा ।
निमग्नारक्तनयनानादापूरितदिङ्मुखा ॥७

ऋषि ने कहा—शुम्भ की ऐसी आज्ञा प्राप्त होते ही चण्डमुण्ड अपने साथ चतुरंगिणी सशस्त्र सेना लेकर वहां गये और उन्होंने देखा कि हिमालय के स्वर्णिम शिखर पर सिंहारूढ़ देवी मन्द-मन्द मुसकरा रही हैं ॥१-२॥ वह असुर और उनके साथी देवी को इस प्रकार स्थित देख, धनुष खेंच कर और तलवार उठाकर उनको पकड़ने का प्रयत्न करने लगे ॥३॥ तब देवी ने उन सबके प्रति अत्यन्त क्रोध किया, इस कारण देवी का मुख कृष्ण वर्ण का हो गया ॥४॥ फिर देवी ने जैसे ही भृकुटी चढ़ाई, वैसे ही उनके ललाट से खड्ग-पाश धारिणी कराल वदना भयङ्कर काली उत्पन्न हुई ॥५॥ वह विचित्र खट्वांग युक्त, मुण्डमाल से सुशोभित, बाघम्बर धारण किये अत्यन्त शुष्क माँस वाली जिह्वा को लपलपाती हुई, भीतर की ओर घुसे हुए लाल नेत्र वाली उत्पन्न होती भयन नाद शब्द से दिशाओं को परिपूर्ण करने लगी ॥६-७॥

सावेगेनाभिपतितायातयतोमहासुरान् ।
सैन्येतत्रसुरारीणामभक्षयततद्बलम् ॥८
पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहयोधघण्टासमन्वितान् ।
समादायैवहस्तेनमुखेचिक्षेपवारणान् ॥९
तथैवयोधतुरगैरथसारथिनासह ।
निक्षिप्यवक्त्रेदशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥१०
एकंजग्राहकेशेषुग्रीवायामथचापरम् ।
पादेनाक्रम्यचैवान्यमुरसान्यमपोथयत ॥११
तैर्मुक्तानिचशस्त्राणिमहास्त्राणितथासुरैः ।
मुखेनजग्राहरुषादशनैर्मथितान्यपि ॥१२
बलिनातद्बलंसर्वमसुराणांदुरात्मनाम् ।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ॥१३
असिनानिहताःकेचित्केचित्खट्वाङ्गताडिताः ।
जग्मुर्विनाशमसुरादन्ताग्राभिहतास्तथा ॥१४

तदुपरान्त वह देवी दैत्य-सेना के ऊपर वेग सहित टूट पड़ी और सब असुरों को नष्ट करती हुई उनके भक्षण में तत्पर हुई ।।८।। तथा पार्श्व रक्षक, अंकुश हाथ में लिये हुए योद्धा और घंटाओं के सहित ही हाथियों को पकड़-पकड़ कर मुख में डालने लगी ।।९।। तथा अश्व, रथ और सारथी सहित सबको मुख में डाल कर भयङ्कर रूप से चबाने लगी ।।१०।। उस काली ने किसी के केश पकड़े, किसी का कण्ठ दबाया और किसी की छाती पर चढ़ कर पैर की ठोकर से उसे मार डाला ।।११।। उन असुरों के शस्त्रास्त्रों को भी क्रोधपूर्वक मुख में लेकर दाँतों से चबाने लगी ।।१२।। वह काली उन महाबली एवं विशाल शरीर वाले असुरों के दल को मसलते-मसलते किसी को भक्षण कर रही थी और किसी को मार कर भगाती थी ।।१३।। कोई असुर खड्ग के प्रहार से, कोई खट्वांग के द्वारा ताड़ित होने से और कोई दाँतों के अग्रभाग द्वारा चबाये जाने से नष्ट होगये ।।१४।।

क्षणेनतन्महासैन्यमसुराणांनिपातितम् ।
दृष्ट्वाचंडोभिदुद्रावतांकालीमतिभीषणाम् ।।१५
शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षींतांमहासुरः ।
छादयामासचक्रैश्चमुंडक्षिप्तैःसहस्रशः ।।१६
तानिचक्राण्यनेकानिविशमानानितन्मुखम् ।
बभुर्यथार्कबिंबानिसुबहूनिघनोदरम् ।।१७
ततोजहासातिरुषाभीमंभैरवनादिनी ।
कालीकरालवक्त्रांतर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ।।१८
उत्थायचमहासिंहंदेवीचंडमधावत ।
गृहीत्वाचास्यकेशेषुशिरस्तेनासिनाच्छिनत् ।।१९
छिन्नेशिरसिदैत्येंद्रश्चक्रेनादंसुभैरवम् ।।२०

उस असुर-सैन्य के इस प्रकार क्षणभर में नष्ट हो जाने से क्रोधित हुआ चण्ड अत्यन्त वेग पूर्वक काली की ओर दौड़ा ।।१५।। और उसने उन भीमाक्षी देवी पर भीषण बाण-वर्षा की तथा सहस्रों चक्रों को घुमा कर उन्हें आच्छादित कर दिया ।।१६।। वह सभी चक्र देवी के मुख में घुसने लगे और

मेघमण्डल में प्रविष्ट अनेक सूर्यमण्डलों के समान सुशोभित हुए ॥१७॥ फिर घोर निनाद करती हुई काली ने भीषण अट्टहास किया, उस समय वह अपनी दुर्दर्श दन्त-प्रभा से दमकने लगी ॥१८॥ तदनन्तर वह देवी अपने महा वाहन सिंह पर चढ़ी होकर चण्ड की ओर वेग से दौड़ी और उसके बाल पकड़ कर अपने खड्ग से उसका शिर काट डाला ॥१९॥ शीश कटते समय चण्डासुर ने घोर गर्जना की, जिससे तीन लोक त्रसित होगये ॥२०॥

अथमुण्डोऽभ्यधावत्तांदृष्ट्वाचण्डंनिपातितम् ।
तमप्यपातयद्भूमौसाखड्गाभिहतंरुषा ॥२१
हतशेषंततःसैन्यंदृष्ट्वाचण्डंनिपातितम् ।
मुण्डंचसुमहावीर्यंदिशोभेजेभयातुरम् ॥२२
शिरश्चण्डस्यकालीचगृहीत्वामुण्डमेवच ।
प्राहप्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्यचण्डिकाम् ॥२३
मयातवात्रोपहृतौचण्डमुण्डौमहापशू ।
युद्धयज्ञेस्वयंशुम्भंनिशुम्भंचहनिष्यसि ॥२४
तावानीतौततोदृष्ट्वाचण्डमुण्डौमहासुरौ ।
उवाचकालींकल्याणीललितंचण्डिकावचः ॥२५
यस्माच्चण्डंचमुण्डंचगृहीत्वात्वमुपागता ।
चामुण्डेतिततोलोकेख्यातादेवीभविष्यसि ॥२६

चण्ड को मरा हुआ देखकर मुण्ड काली की ओर दौड़ा, तब देवी ने उसे भी खड्गाघात से काट कर गिरा दिया ॥२१॥ फिर बची हुई सेना भी चण्ड-मुण्ड का वध देखकर भयातुर हुई इधर-उधर भाग चली ॥२२॥ फिर वह काली चण्ड-मुण्ड के कटे हुए मस्तक उठाकर चण्डिका के पास गई और प्रचण्ड अट्टहास पूर्वक बोली ॥२३॥ महा पशु चण्ड-मुण्ड नामक दो असुरों को मार कर मेरा उपहार प्रस्तुत है, अब शुंभ निशुंभ का वध आप स्वयं ही करना ॥२४॥ ऋषि ने कहा—उन चण्ड-मुण्ड नामक असुरों को उस दशा में वहाँ देखकर चण्डिका देवी ने काली से कहा—॥२५॥ देवी बोली—तुम चण्ड-मुण्ड

को लेकर यहाँ आई हो, इसलिये लोक में तुम्हारा 'चामुण्डा' नाम प्रसिद्ध होगा ॥२६॥

८०—रक्त बीज वध

चंडेचनिहतेदैत्येमुंडेचविनिपातिते ।
बहुलेषुचसैन्येषुक्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥१
ततःकोपपराधीनचेताःशुम्भःप्रतापवान् ।
उद्योगंसर्वसैन्यानांदैत्यानामादिदेशह ॥२
अद्यसर्वबलैर्दैत्याःषडशीतिरुदायुधाः ।
कंबूनांचतुराशीतिर्निर्यान्तुस्वबलैर्वृताः ॥३
कोटिवीर्याणिपंचाशदसुराणांकुलानिवै ।
शतंकुलानिधूम्राणांनिर्गच्छंतुममाज्ञया ॥४
कालकादौर्हृदामौर्याःकालकेयास्तथासुराः ।
युद्धायसज्जानिर्यान्तुआज्ञयात्वरितामम ॥५
इत्याज्ञाप्यासुरपतिःशुम्भोभैरवशासनः ।
निर्जगाममहासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥६
आयांतंचंडिकादृष्ट्वातत्सैन्यमतिभीषणम् ।
ज्यास्वनैःपूरयामासधरणीगगनांतरम् ॥७

ऋषि ने कहा—चण्ड-मुण्ड के साथ ही समस्त सेना के नष्ट होने के कारण असुरेश्वर ॥१॥ प्रतापी शुंभ ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक सम्पूर्ण असुर सेना को एक साथ वहाँ जाकर युद्ध करने की आज्ञा दी ॥२॥ सम्पूर्ण एक साथ ही लेकर उदायुध नामक छियासी और कम्बु नामक चौरासी दैत्य वहाँ जाँय ॥३॥ कोटिवीर्य नामक पचास कुल के धूम्रवंश नामक एक सौ कुल के असुर मेरी आज्ञा से निकलें ॥४॥ काल, दौहृद मौर्य और कालकेय वंश के असुर भी शीघ्र सज कर संग्राम में पहुंचे ॥५॥ असुरेश्वर शुंभ इस प्रकार आज्ञा देकर सहस्रों की संख्या में महासेना को लेकर स्वयं भी संग्राम के लिये चला ॥६॥

उस अत्यन्त भयङ्कर सैन्य-समूह को आता देखकर चण्डिका ने प्रत्यञ्चा की घोर टङ्कार से पृथिवी-आकाश को भर दिया ॥७॥

ततःसिंहोमहानादमतीवकृतवान्नृप ।
घण्टास्वनेनतन्नादमम्बिकाचाप्यबृंहयत् ॥८
धनुर्ज्यासिंहघण्टानांनादापूरितदिङ्मुखा ।
निनादैर्भीषणैःकाली जिग्येविस्तारितानना ॥९
तन्निनादमुपश्रुत्यदैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ।
देवीसिंहस्तथाकालीसरोषैः परिवारिता ॥१०
एतस्मिन्नन्तरेभूपविनाशायसुरद्विषाम् ।
भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विता ॥११
ब्रह्मेशगुहविष्णूनातथेन्द्रस्यचशक्तय ।
शरीरेभ्योविनिष्क्रम्यतद्रूपैश्चण्डिकांययु ॥१२
यस्यदेवस्ययद्रूपयथाभूषणवाहनम् ।
तद्वदेवहितच्छक्तिरसुरान्योद्धुमाययौ ॥१३
हंसयुक्तविमानस्थासाक्षसूत्रकमण्डलु ।
आयाताब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणीसाभिधीयते ॥१४

हे राजन् ! फिर देवी के वाहन सिंह ने घोर गर्जन किया और देवी ने अपने घंटा के शब्द से उस नाद को द्विगुण कर दिया ॥८॥ प्रत्यञ्चा की टंकार से और सिंह तथा घंटा के नाद से दिशाएँ परिपूर्ण होगई और तब काली ने भी घोर नाद पूर्वक जय-जयकार किया ॥९॥ उस नाद को सुनकर दैत्य-सेना ने चण्डिका, काली और सिंह को चारों से क्रोधपूर्वक घेर लिया ॥१०॥ हे राजन् ! सभी असुरों के नाश और देवताओं के हित के लिये अत्यन्त बल, पराक्रम से युक्त ॥११॥ ब्रह्मा, शिव, विष्णु, कार्तिकेय और इन्द्र की शक्तियाँ उनके देह से प्रकट हो होकर उन्हीं देवताओं का रूप ग्रहण कर चण्डिका के निकट आईं ॥१२॥ जिस देवता का जो स्वरूप और वाहन था, वैसे ही रूप और वाहन आदि से सज्जित हुई शक्तियाँ असुरों से संग्राम करने को उद्यत हुई ॥१३॥

ब्रह्माजी की शक्ति हाथ में अक्ष माला और कमण्डलु धारण किये हंस युक्त विमान पर आरूढ़ होकर वहाँ आई, उस शक्ति का नाम ब्रह्माणी हुआ ॥१४॥

माहेश्वरीवृषारूढात्रिशूलवरधारिणी ।
महाहिवलयाप्राप्ताचन्द्रलेखाविभूषणा ॥१५
कौमारीशक्तिहस्ताचमयूरवरवाहना ।
योद्धुमभ्याययौदैत्यानंबिकागुहरूपिणी ॥१६
तथैववैष्णवीशक्तिर्गरुडोपरिसस्थिता ।
शखचक्रगदाशार्ङ्ग खड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥१७
जज्ञे वाराहमतुलंरूपंयाबिभ्रतीहरेः ।
शक्ति साप्याययौतत्रवाराहींबिभ्रतीतनुम् ॥१८
नारसिंहीनृसिंहस्यबिभ्रतीसदृशवपुः ।
प्राप्तातत्रसटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसहतिः ॥१९
वज्रहस्तातथैवैन्द्रीगजराजोपरिस्थिता ।
सहस्रनयनाप्राप्तायथाशक्रस्तथैवसा ॥२०
ततःपरिवृतस्ताभिरीशानोदेवशक्तिभिः ।
हन्यतामसुराःशीघ्रंममप्रीत्याहचंडिकाम् ॥२१

शिवजी की शक्ति त्रिशूल को धारण किये, चन्द्ररेखा से सुशोभित, नागों के आभूषण धारण करके और बैल पर चढ़ कर आई, वह माहेश्वरी नाम से प्रसिद्ध हुई ॥१५॥ कौमारी शक्ति हाथ में शक्ति धारण किये, सुन्दर मोर पर चढ़ कर आई ॥१६॥ विष्णु की शक्ति वैष्णवी शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनु और खड्ग धारण करके युद्ध के लिये आई ॥१७॥ यज्ञ वाराह-रूपधारी भगवान् विष्णु की शक्ति भी वाराहरूप में वहाँ आई ॥१८॥ नारसिंही शक्ति नृसिंह रूप मे वहाँ आई, उनके सटाक्षेप से नक्षत्रों की पंक्ति चलायमान होगई ॥१९॥ इन्द्र की शक्ति हाथ मे बज्र धारण कर, हाथी पर चढ़ी हुई युद्ध क्षेत्र में आई, उसका नाम ऐन्द्रीशक्ति हुआ ॥२०॥ फिर उन सब देव-शक्तियों के सहित चण्डिकासे भगवान् शंकर ने कहा—मेरी प्रसन्नता के लिये इन सब असुरों का शीघ्र ही वध कर डालो ॥२१॥

ततोदेवीशरीरात्तु विनिष्क्रांतातिभीषणा ।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥२२
साचाहधूम्रजटिलमीशानमपराजिता ।
दूतत्वंगच्छभगवन्पार्श्वंशुम्भनिशुम्भयो ॥२३
ब्रूहिशुम्भनिशुम्भचदानवावतिगर्वितौ ।
येचान्येदानवास्तत्रयुद्धायसमुपस्थिता ॥२४
त्रैलोक्यमिन्द्रोलभतांदेवा सन्तुहविर्भुज ।
यूयंप्रयातपातालंयदिजीवितुमिच्छथ ॥२५
बलावलेपादथचेद्भवतो युद्धकांक्षिण ।
तदागच्छततृप्यन्तुमच्छिवा पिशितेनव ॥२६
यतोनियुक्तोदौत्येनतयादेव्याशिवःस्वयम् ।
शिवदूतीतिलोकेस्मिंस्तत साख्यातिमागता ॥२७॥

फिर देवी के देह म अत्यन्त भयकर सौ शिवाओं के सम्मिलित नाद करने के समान भीषण नाद करती हुई चण्डिका शक्ति प्रकट हुई ॥२२॥ तब उन अपराजिता चण्डिका देवी ने भगवान् शकर से कहा—हे भगवन्! आप शुम्भ निशुम्भ के पास जाकर दौत्य कर्म कीजिये ॥२३॥ वहाँ पहुँचकर शुम्भ निशुम्भ सहित सब युद्धाभिलाषी दैत्यों से कहिये ॥२४॥ हे दैत्यो! इन्द्र तीनों लोकों को पावें, देवता पुन यज्ञ भाग को भोगने वाले हों और तुम यदि जीवन की इच्छा करते हो तो पाताल लोक में जा कर रहो ॥२५॥ अथवा बल से गर्वित हुये तुम यदि युद्ध करना चाहते हो तो आओ, मेरी शिवाएँ तुम्हारे रक्त पान से तृप्त होंगी ॥२६॥ देवी ने शिवजी को दौत्य कर्म में स्वय नियुक्त किया, इसलिए उन्हें 'शिवदूती' कहा गया ॥२७॥

तेपिश्रुत्वावचोदेव्या शर्वाख्यात महासुरा ।
अमर्षापूरिताजग्मुर्यत्रकात्यायनीस्थिता ॥२८
तत प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिभि ।
ववर्षु रुद्धतामर्षास्तांदेवीममरारय ॥२९

साचतत्प्रहितान्बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् ।
चिच्छेदलीलयाध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ।।३०
तस्याग्रतस्तथाकालीशूलपाशविदारितान् ।
खट्वाँगपोथिताँश्चारीन्कुर्वतीव्यचरत्तदा ।।३१
कमंडलुजलाक्षेपहृतवीर्यान्हृतौजसः ।
ब्रह्माणी वाकरोच्छत्रून्येनयेनस्मधावति ।।३२
माहेश्वरीत्रिशूलेनतथाचक्रेणवैष्णवी ।
दैत्याञ्जघानकौमारीतथाशक्त्यातिकोपना ।। ३
ऐन्द्रीकुलिशपातेनशतशोदैत्यदानवाः ।
पेतुर्विदारिताःपृथ्व्यांरुधिरौघप्रवर्षिणः ।।३४
तुंडप्रहारविध्वस्तादंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः ।
वाराहमूर्त्यान्यपतंश्चक्रेणचविदारिताः ।।३५

शिवजी के द्वारा सन्देश प्राप्त करके वह घोर असुर क्रोध पूर्वक उन देवी कात्यायनी के समीप पहुँचे ।।२८।। फिर वे उन देवी के समक्ष बाण, शक्ति और ऋष्टि आदि की भयंकर वर्षा करने लगे ।।२९।। असुरों द्वारा चलाये गये सभी शस्त्रास्त्रों को चण्डिका देवी ने अपने बड़े-बड़े बाणों से लीला पूर्वक काट डाला ।।३०।। तभी उन चण्डिका देवी के सामने काली देवी किसी असुर को शूल से विदीर्ण करती और खट्वांग से मारती हुई घूम रही थी ।।३१।। जिस-जिस ओर शत्रुगण दौड़ रहे थे, उसी-उसी ओर जाकर ब्रह्माणी शक्ति उन पर जल छिड़क कर उन्हें वीर्य और तेज से हीन करने लगी ।।३२।। माहेश्वरी त्रिशूल से, वैष्णवी चक्र से और कौमारी शक्ति के द्वारा ही बहुत से दैत्यों को मार रहीं थीं ।।३३।। ऐन्द्री शक्ति के वज्र-प्रहार से ताड़ित हुए सैकड़ों दैत्य रक्त वमन करते-करते धराशयी होने लगे ।।३४।। वाराह-शक्ति के मुख प्रहार और दंष्ट्रा के अग्रभाग से ताड़ित असुरगण हृदय विदीर्ण होने के कारण पृथिवी पर गिरने लगे ।।३५।।

नखैर्विदारितांश्चान्यान्भक्षयंतीमहासुरान् ।
नारसिंहीचचाराजौनादापूर्णदिगंतरा ।।३६

चण्डाट्टहासैरसुरा शिवदूत्यभिदूषिता ।
पेतु पृथिव्यां पतितास्तांश्चखादाथसातदा ॥३७
इतिमातृगणंक्रुद्धं मर्द्दयंतमहासुरान् ।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिका ॥३८
पलायनपरान्दृष्ट्वादैत्यान्मातृगणार्दितान् ।
योद्धुमभ्याययौक्रुद्धोरक्तबीजोमहासुरः ॥३९
रक्तबिंदुर्यदाभूमौपतत्यस्यशरीरतः ।
समुत्पतति मेदिन्यास्तत्प्रमाणोमहासुर ॥४०
युयुधेसगदापाणिरिंद्रशक्त्यामहासुर ।
ततश्चैन्द्रीस्ववज्रेणरक्तबीजमताडयत् ॥४१
कुलिशेनाहतस्याशुबहुसुस्रावशोणितम् ।
समुत्तस्थुस्ततोयोधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमा ॥४२
यावत पतितास्तस्यशरीराद्रक्तबिंदव ।
तावतःपुरुषाजातास्तद्वीर्यबलविक्रमा ॥४३

नारसिंही शक्ति अपने गर्जन से दिशाओं और आकाश को परिपूर्ण करके दैत्यों को नख से विदारण कर भक्षण करते करते, इस प्रकार वह युद्ध भूमि में घूम रही थी ॥३६॥ शिवदूती के प्रचण्ड अट्टहास से अभिभूत होकर राक्षसगण धराशायी होने लगे और फिर उन गिरे हुये असुरों का वह शिवदूती भी भक्षण करने लगी ॥३७॥ इस प्रकार उन्हें क्रोध पूर्वक मर्दन करते देख कर दैत्य-सेना भाग पड़ी ॥३८॥ उसको भागता हुआ देख कर रक्त बीज नामक दैत्य क्रोधपूर्वक युद्ध के लिये आया ॥३९॥ जैसे ही उस असुर के शरीर से रक्त की एक बूँद पृथिवी पर टपकती वैसे ही उसी के समान एक दैत्य उत्पन्न हो जाता ॥४०॥ गदा ग्रहण पूर्वक वह असुर ऐन्द्री शक्ति के साथ युद्ध करने लगा तब ऐन्द्री शक्ति ने उस पर वज्र-प्रहार किया ॥४१॥ वज्र-प्रहार के कारण रक्तबीज के देह से टपके हुए रक्त से उसी के समान रूप और पराक्रम वाले अनेक वीर उत्पन्न हो गये ॥४२॥ रक्त की जितनी बूँदें टपकी

उतने ही योद्धा उत्पन्न हुए, वे सब योद्धा बल, वीर्य, पराक्रमादि में रक्तबीज के ही समान थे ।।४३।।

तेचापियुयुधुस्तत्रपुरुषारक्तसम्भवाः ।
सममंमातृभिरत्युग्रं शस्त्रपातातिभीषणम् ।।४४
पुनश्चवज्रपातेनक्षतमस्यशिरोयदा ।
ववाहरक्तं पुरुषास्ततोजाताःसहस्रशः ।।४५
वैष्णवीसमरेचैनंचक्रे णाभिजघानह ।
गदयाताडयामासऐन्द्रीतमसुरेश्वरम् ।।४६
वैष्णवीचक्रभिन्नस्यरुधिरस्रावसम्भवैः ।
सहस्रशोजगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ।।४७
शक्त्याजघानकौमारीवाराहीचतथासिना ।
माहेश्वरीत्रिशूलेनरक्तबीजंमहासुरम् ।।४८
सचापिगदयादैत्यः सर्वाएवाहनत्पृथक् ।
मातृःकोपसमाविष्टोरक्तबीजोमहासुरम् ।।४९

रक्त की बूँदों से उत्पन्न हुए योद्धागण उन मातृगणों के साथ अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्रों द्वारा घोर संग्राम करने लगे ।।४४।। जब ऐन्द्री शक्ति ने उसके मस्तक को पुनर्वार छिन्न किया, तब क्षत स्थान से प्रवाहित हुए रक्त से सहस्रों असुर उत्पन्न हो गये ।।४५।। वैष्णवी शक्ति ने उसे चक्र से तथा ऐन्द्री शक्ति ने वज्र से मारा ।।४६।। वैष्णवी शक्ति के चक्र से कट कर उस दैत्य के देह से जो रक्त प्रवाहित हुआ, उससे उसी के समान उत्पन्न हुए सहस्रों विकराल असुरों से यह संसार व्याप्त हो गया ।।४७।। तब उस रक्तबीजासुर को कौमारी अपनी शक्ति से, वाराही खड्ग से और माहेश्वरी त्रिशूल से मारने लगीं ।।४८।। तब वह घोर राक्षस रक्तबीज भी सब मातृगणों पर गदा द्वारा प्रहार करने लगा ।।४९।।

तस्याहतस्यबहुधाशक्तिशूलादिभिर्भुवि ।
पपातयोवैरक्तोघस्तेनासञ्छतशोसुराः ।।५०

तैश्चासुरसृक्सम्भूतैरसुरैः सकलंजगत् ।
व्याप्तमासीत्ततोदेवाभयमाजग्मुरुत्तमम् ॥५१
तान्विषण्णान्सुरान्दृष्ट्वाचण्डिकाप्राहसत्वरा ।
उवाचकालींचामुण्डेविस्तीर्णंवदनंकुरु ॥५२
मच्छस्त्रपातसम्भूतान्रक्तबिन्दून्महासुरान् ।
रक्तबिन्दोःप्रतीच्छत्वंवक्त्रेणानेनवेगिना ॥५३
भक्षयन्तीचररणेतदुत्पन्नान्महासुरान् ।
एवमेषक्षयंदैत्यःक्षीणरक्तोगमिष्यति ।
भक्ष्यमाणास्त्वयाचोग्रानचोत्पत्स्यन्तिचापरे ॥५४
इत्युक्त्वातांततोदेवीशूलेनाभिजघानतम् ।
मुखेनकालीजगृहेरक्तबीजस्यशोणितम् ॥५५

शक्ति शूल आदि विभिन्न प्रकार के अस्त्रों से आहत हुए उस रक्तबीज की देह से पृथिवी पर पतित हुए रक्त बिन्दुओं द्वारा सैकड़ों असुरों की उत्पत्ति हुई ॥५०॥ उनके रक्त से उत्पन्न हुए असुरों से सम्पूर्ण विश्व व्याप्त हो गया, इससे देवगण अत्यन्त भयभीत हुए ॥५१॥ तब देवताओं को भयभीत देख कर चण्डिका ने काली से कहा—हे चामुण्डे ! तुम अपना मुख फाड़ो ॥५२॥ और मेरे द्वारा शस्त्र मारने से गिरती हुई रक्त की बूँदों या उससे उत्पन्न होने वाले असुरों को वेग पूर्वक अपने मुख में लेती जाओ ॥५३॥ तथा उससे उत्पन्न हुए राक्षसों का भक्षण करती हुई युद्ध भूमि में घूमती रहो, इस प्रकार रक्त के क्षीण होने पर ही यह नष्ट हो सकेगा ॥५४॥ इस प्रकार तुम उनका भक्षण प्रारम्भ करोगी तो उनका पुनः उत्पन्न होना रुक जायगा, ऋषि ने कहा—काली के प्रति ऐसा कह कर चण्डिका देवी ने उस असुर को त्रिशूल से आहत किया और उसके गिरे हुए रक्त को काली ने अपने मुख में ग्रहण कर लिया ॥५५॥

ततोसावाजघानाथगदयातत्रचण्डिकाम् ।
नचास्यावेदनांचक्रेगदापातोल्पिकामपि ॥५६

तस्याहतस्यदेहात्तुबहुसुस्रावशोणितम् ।
यतस्ततःस्वक्त्रे णचामुण्डासंप्रतीच्छती ॥५७
मुखेसमुद्गतायेस्यारक्तपातान्महासुराः ।
तांचखादाथचामुण्डापपौतस्यचशोणितम् ॥५८
देवीशूलेनचक्रे णबाणैरसिभिरिष्टिभिः ।
जघानरक्तबीजंतंचामुण्डापीतशोणितम् ॥५६
सपपातमहीपृष्ठेशस्त्रसंहतितोहतः ।
नीरक्तश्चमहीपालरक्तबीजोमहासुरः ॥६०
ततस्तेहर्षमतुलमवापुस्त्रिदशानृप ॥
तेषांमातृगणोमत्तोननर्त्तासृङ्मदोद्धतः ॥६१

फिर उस रक्तबीज ने देवी पर गदा का प्रहार किया, परन्तु उससे देवी को किंचित् भी वेदना नहीं हुई ॥५६॥ इधर रक्तबीज के देह से गिरते हुए रक्त को चामुण्डा अपने मुख में लिये जा रही थी ॥५७॥ काली के मुख में गिरे हुए रक्त से जो असुर उत्पन्न हुए उनका भी उसने भक्षण कर लिया ॥५८॥ जब इस प्रकार चामुण्डा ने रक्तबीज का रक्त पान किया तब चण्डिका ने उसे शूल, चक्र, बाण, खड्ग और ऋषि से मारा ॥५६॥ फिर वह घोर असुर शस्त्रों द्वारा क्षत-विक्षत तथा रक्त-हीन होकर पृथिवी में गिर पड़ा ॥६०॥ हे राजन् ! इस पर देवताओं को महान् हर्ष हुआ और वे मातृगण उन असुरों का रक्त पान करके मदोन्मत्त हुईं नाचने लगीं ॥६१॥

८१–निशुम्भ बध

विचित्रमिदमाख्यातंभगवन्भवतामम ।
देव्याश्चरितमाहात्म्यंरक्तबीजवधाश्रितम् ॥१
भूयश्चेच्छाम्यहंश्रोतुंरक्तबीजेनिपातिते ।
चकारशुम्भोयत्कर्मनिशुम्भश्चातिकोपनः २॥

चक्रारक्तोयमतुलरक्तबीजेनिपातिते ।
शुम्भासुरोनिशुम्भश्चहतेष्वन्येषुचाहवे ॥३
हन्यमानमहासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन् ।
अभ्यधावन्निशुम्भोथमुख्ययासुरसेनया ॥४
तस्याग्रतस्तथापृष्ठे पार्श्वयोश्चमहासुरा ।
सदष्टोष्ठपुटा क्रुद्धाहन्तु देवीमुपाययु ॥५
आजगाममहावीर्य शुम्भोपिस्वबलैर्वृत ।
निहन्तु चण्डिकांकोपात्कृत्वायुद्ध तुमातृभि ॥६
ततोयुद्धमतीवासीद्देव्या शुम्भनिशुम्भयो ।
शरवर्षमतीवोग्र मेघयोरिववर्षतो ॥७

राजा ने कहा—हे भगवन् आपने मुझ से रक्तबीज के वध के विषय में देवी चरित्र के अद्भुत माहात्म्य का वर्णन किया ॥१॥ अत्यन्त क्रोधित शम्भु ने रक्तबीज के मारे जाने पर जो कार्य किया, मैं अब उसे सुनना चाहता हूँ ॥२॥ ऋषि बोले—युद्ध में रक्तबीज के समाप्त होने पर एवं विभिन्न सेनाओं के मारे जाने पर दोनों राक्षस शुम्भ और निशुम्भ बहुत क्रोधित हुए ॥३॥ इस प्रकार उस सभी सेना को मरता देखकर निशुम्भासुर अत्यन्त क्रोध सहित राक्षसों की मुख्य सेना को साथ लेकर देवी के सामने दौड़ा ॥४॥ तथा उस घोर असुर के सम्मुख, पृष्ठ भाग में एवं अगल-बगल बड़े बड़े राक्षस अपने ओठों को भींचते हुए क्रोध सहित देवी को समाप्त करने के लिए आये ॥५॥ तत्पश्चात् महाबलशाली असुर शुम्भ अपनी सेना को साथ लेकर देवी के गणों के साथ युद्ध करते हुए देवी को मारने के निमित्त क्रोधपूर्वक आया ॥६॥ तब दो मेघों के समान अत्यन्त प्रचण्ड बाण-वर्षा करते हुए शुम्भ व निशुम्भ का देवी के साथ भयंकर युद्ध होने लगा ॥७॥

चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यांचण्डिकास्वशरोत्करैः ।
ताडयामासचाङ्गेषुशस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥८

निशुम्भोनिशितंखड्गंचर्मचादायसुप्रभम् ।
अताडयन्मूर्ध्निसिंहंदेव्यावाहनमुत्तमम् ॥९
ताडितेवाहनेदेवीक्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।
निशुम्भस्याशुचिच्छेदचर्मचाप्यष्टचंद्रकम् ॥१०
छिन्नचर्मणिखड्गे चशक्तिंचिक्षेपसोसुरः ।
तामप्यस्यद्विधाचक्रे चक्रे णाभिमुखागताम् ॥११
कोपाध्मातोनिशुम्भोथशूलंजग्राहदानवः ।
आयांतंमुष्टिपातेनदेवीतच्चाप्यचूर्णयत् ॥१२
अथादायगदांसोपिचिक्षेपचंडिकांप्रति ।
सापिदेव्यात्रिशूलेनभिन्नाभस्मत्वमागता ॥१३
ततःपरशुहस्तंतमायांतंदैत्यपुङ्गवम् ।
आहत्यदेवीबाणौघैरपातयतभूतले ॥१४

चण्डिका देवी उन दोनों राक्षसों द्वारा चलाये गये बाणों को अपने बाणों के द्वारा जल्दी से काटकर अपने शस्त्रों से दोनों विकराल असुरों के अंगों पर वार करने लगीं ॥८॥ तेज धार वाली तलवार और चमकती ढाल निशुंभ ने देवी के श्रेष्ठ वाहन सिंह के मस्तक में मारी ॥९॥ वाहन पर आक्रमण हुआ देखकर देवी ने क्षुरप्र नाम के अस्त्र से निशुंभ की तेज तलवार काटकर उसकी अष्टचन्द्रक ढाल भी काट डाली ॥१०॥ तलवार और ढाल के कट जाने पर असुर निशुंभ ने देवी पर शक्ति छोड़ी लेकिन देवी ने चक्र द्वारा उस सम्मुख आती हुई शक्ति के भी दो टुकड़े कर दिये ॥११॥ फिर क्रोध में भरे हुए राक्षस ने शूल लेकर चलाया और देवी ने आक्रमण से शूल को भी घूँसा मारकर चूर्ण कर डाला ॥१२॥ तब उस दानव ने घुमाकर गदा चलाई, किन्तु देवी ने उस गदा को भी अपने त्रिशूल से खण्ड करके भस्म कर दिया ॥१३॥ फिर जब वह महादानव फरसा हाथ में लेकर आया तो देवी ने उसे बाणों से घायल कर धरती पर गिरा दिया ॥१४॥

तस्मिन्निपतितेभूमौनिशुम्भेभीमविक्रमे ।
भ्रातर्यतीवसंक्रुद्धःप्रययौहंतुमम्बिकाम् ॥१५

सरथस्थस्तदात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषवभौनभ ॥१६
समायांततमालोक्यदेवीशङ्खमवादयत् ।
ज्याशब्दं चापिधनुषश्चकारातीवदुःसहम् ॥१७
पूरयामासककुभोनिजघण्टास्वनेनच ।
समस्तदैत्यसैन्यानांतेजोवधविधायिना ॥१८
ततः सिंहोमहानादैस्त्याजितेभमहामदैः ।
पूरयामासगगनंगांतथैवदिशोदश ॥१९
ततः कालीसमुत्पत्यगगनंक्ष्मामताडयत् ।
कराभ्यांतन्निनादेनप्राक्स्वनास्तेतिरोहिता ॥२०
अट्टाट्टहासमशिवंशिवदूतीचकारह ।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपंपरंययौ ॥२१

महाबली भयंकर भाई निशुम्भ को पृथ्वी पर गिरता देख कर राक्षस शुम्भ अत्यन्त क्रोधपूर्वक देवी को मारने आया ॥१५॥ तथा बहुत लम्बी महा-पराक्रमयुक्त अष्टभुजाओं सहित और बड़े-बड़े अस्त्र लेकर रथ में बैठकर वह सम्पूर्ण आकाश में फैला हुआ दीखने लगा ॥१६॥ उसे आता देखकर देवी ने शंख बजाकर अत्यन्त असहनीय शब्द धनुष की प्रत्यंचा से किया ॥१७॥ तथा सम्पूर्ण असुरों की सेना का गतिशील विनाश करने वाले अपने घण्टे की शब्द-ध्वनी से सम्पूर्ण दिशाओं को भर दिया ॥१८॥ अनन्तर सिंह ने भी हाथियों के महामद को नष्ट करने वाले महानाद से आकाश, पृथ्वी एवं दस दिशाओं को पूर्ण कर दिया ॥१९॥ फिर देवी काली ने आकाश से उछलकर अपने दोनों हाथों से पृथ्वी पर आघात किया, जिसकी शब्द-ध्वनि ने पहली समस्त शब्द-ध्वनि मन्द हो गयी ॥२०॥ शिवदूती भी शत्रु राक्षसों का अमंगल करने वाली तेज हंसी में हँसी, उस के शब्द से राक्षस लोग दुखी हुए और शुम्भ अत्यन्त क्रोधित हुआ ॥२१॥

शुम्भेनागत्ययाशक्तिर्मुक्ताज्वालातिभीषणा ।
आयान्तीवह्निकूटाभासानिरस्तामहोल्कया ॥२३

सिंहनादेनशुम्भस्यव्याप्तं लोकत्रयांतरम् ।
निर्घातनिःस्वनोघोरोजितवानवनीपते ॥२४
शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवीशुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ।
चिच्छेदस्वशरैरुग्रैः शतशोथसहस्रशः ॥२५
ततःसाचण्डिकाक्रुद्धाशूलेनाभिजघानतम् ।
सतदाभिहतोभूमौमूर्छितोनिपपातह ॥२६
ततोनिशुंभः सप्राप्यचेतनामात्तकार्मुकः ।
आजघानशरैर्देवींकालींकेसरिणंतथा ॥२७
पुनश्चकृत्वाबाहूनामयुतदनुजेश्वरः ।
चक्रायुतेनदितिजश्छादयामासचण्डिकाम् ॥२८

आकाश में स्थित देवगण तब जय-जय शब्द करने लगे जब अम्बिका ने शुंभ से कहा "दुरात्मन् ! ठहर, ठहर" ॥२२॥ असुर शुंभ ने अत्यन्त भयंकर तेज अग्नि वाली शक्ति छोड़ी, अग्नि के समान आती हुई उस शक्ति को देवी ने महोल्कानाम्नी शक्ति से काट कर दूर फैंक दी ॥२३॥ फिर तीनों लोक शुम्भ दानव के सिंहनाद से पूर्ण हो गये, तब हे अवनीपाल ! आकाश से उत्पन्न विद्युत् की भयानक शब्द-ध्वनि ने शुंभ के नाद पर विजय पाली ॥२३॥ शुंभ द्वारा चलाये गये सौ सहस्र शरों को देवी ने अपने तेज बाणों से काट डाला और देवी द्वारा चलाये गये सैकड़ों सहस्त्रों बाणों को शुंभ ने भी अपने तेज बाणों से काट डाला ॥२५॥ तत्पश्चात् चण्डिका देवी ने क्रोध सहित शूल द्वारा शुंभ को घायल किया और शूल से आहत असुर शुंभ अचेत होकर धरती पर गिर गया ॥२६॥ इसके बाद चेतना आने पर निशुंभासुर धनुष के बाणों से देवी काली और सिंह को आहत करने लगा ॥२७॥ फिर राक्षसराज दैत्य निशुंभ ने दस हजार भुजाऐं धारण कीं और उनसे चक्र व युद्धास्त्रों द्वारा चण्डिका देवी पर छा गया ॥२८॥

ततोभगवतीक्रुद्धादुर्गादुर्गार्त्तिनाशिनी ।
चिच्छेदतानिचक्राणिस्वशरैः सायकाँश्चतान् ॥२९॥

ततोनिशुम्भोवेगेनगदामादायचण्डिकाम् ।
अन्यधावतवैहन्तुं दैत्यसेनासमावृत ॥३०
तस्यापतनएवाशुगदांचिच्छेदचण्डिका ।
खड्गेनशितधारेणसचशूलसमाददे ॥३१
शूलहस्तंतमायान्तंनिशुम्भममरार्दनम् ।
हृदिविव्याधशूलेनवेगाविद्धेनचण्डिका ॥३२
भिन्नस्यतस्यशूलेनहृदयान्निःसृतोपरः ।
महाबलोमहावीर्यस्तिष्ठेतिपुरुषोवदन् ॥३३
तस्यनिष्क्रामतोदेवीप्रहस्यस्वनवत्ततः ।
शिरश्चिच्छेदखड्गेनततोसावपतद्भुवि ॥३४
ततःसिंहश्चखादोग्रदंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ।
असुरांस्तांस्तथाकालीशिवदूतीतथापरान् ॥३५

इससे क्रोधित हुई संकट नाशिनी देवी दुर्गा ने उन सम्पूर्ण बाणों और चक्र को काट डाला ॥२६॥ उसके पश्चात् निशुम्भ दैत्यों की सेना सहित गदा लेकर उन देवी को नष्ट करने के लिए अत्यन्त तेजी से दौड़ा ॥३०॥ तब निशुम्भ राक्षस की उस आती हुई गदा को चण्डिका देवी ने अत्यन्त तेज धार वाली तलवार से काट डाला फिर निशुम्भ ने शूल ले लिया ॥३१॥ फिर शूल लेकर सामने आते हुए असुर निशुम्भ को देवी ने महान् गति से अपना त्रिशूल चलाकर हृदय में बींध बेध दिया ॥३८॥ तो शूल से बिंधे असुर-हृदय में एक दूसरा महाबली और महावीर्यवान् पुरुष देवी से 'ठहर' शब्द कहता हुआ निकला ॥३३॥ तब देवी ने हँसकर नाद करते हुए उस बाहर आये हुए असुर का सिर तलवार से काट डाला और वह धरती पर गिर पड़ा ॥३४॥ इसके बाद सिंह तेज दांतोंसे गर्दन चबाकर असुर का भक्षण करने लगा तथा शिवदूती और काली अन्य दूसरे राक्षसों का भक्षण करने लगीं ॥३५॥

कौमारीशक्तिनिर्भिन्ना.केचिन्नेशुर्महासुराः ।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेनतोयेनान्येनिराकृताः ॥३६

माहेश्वरीत्रिशूलेनभिन्नाःपेतुस्तथापरे ।
वाराहीतुंडघातेनकेचिच्चूर्णीकृताभुवि ॥३७
खंडंखंडंचचक्रेणवैष्णव्यादानवाःकृताः ।
वज्रेणचैंद्रीहस्ताग्रविमुक्तेनतथापरे ॥३८
केचिद्विनेशुरसुराःकेचिन्नष्टामहाहवात् ।
भक्षिताश्चापरेकालीशिवदूतीमृगाधिपैः ॥३९

कई विकराल राक्षस कौमारी-शक्ति के बल से कटकर मरगये। ब्रह्माणी के मंत्रपूत जल को छूने से ही अपने आप अनेक राक्षस समाप्त हो गये ॥३६॥ माहेश्वरी के त्रिशूल की चोट से बहुत से अनेक दानव अलग-अलग होकर गिर पड़े और कोई-कोई दानव वाराही के मुख के आघात से पिसकर भूमि पर गिर गये ॥३७॥ वैष्णवी ने चक्र से अन्य दूसरे असुरों को टुकड़े-टुकड़े कर डाला और ऐन्द्री द्वारा छोड़े गये वज्र से घायल होकर ॥३८॥ उन दानवों में कोई समाप्त हुए और कोई-कोई महायुद्ध से भाग गये। तथा जो बचे, उनका काली, शिवदूती और सिंह ने भक्षण कर लिया ॥३९॥

८२-शुम्भ बध

निशुम्भंनिहतंदृष्ट्वाभ्रातरंप्राणसंमितम् ।
हन्यमानंवलंचैवशुम्भःक्रुद्धोब्रवीद्वचः ॥१
बलावलेपाद्दुष्टेत्वंमादुर्गेगर्वमावह ।
अन्यासांबलमाश्रित्ययुध्यसेयातिमानिनी ॥२
एकैवाहंजगत्यत्रद्वितीयाकाममापरा ।
पश्यैतादुष्टमय्येवविशन्त्योमद्विभूतयः ॥३
ततःसमस्तास्तादेव्याब्रह्माणीप्रमुखालयम् ॥
तस्यादेव्यास्तनौजग्मुरेकैवासीत्तदांबिका ॥४

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता ॥
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ॥५
ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः ।
पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ॥६
शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः ।
तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयङ्करम् ॥७

ऋषि बोले—शुम्भ ने प्राणों के समान भाई निशुम्भ और सेना को मरा देखकर क्रोधपूर्वक कहा ॥१॥ हे दुष्टे दुर्गे ! तू बल का अभिमान न कर, तू दूसरों के बल पर आश्रित होकर मानवों के समान युद्ध करती है ॥२॥ देवी ने कहा—अरे दुष्ट ! इस संसार में केवल एक मैं ही हूँ मेरे अलावा दूसरा कौन है ? देख यह सभी मेरी विभूति मुझ में ही विद्यमान हैं ॥३॥ ऋषि ने कहा—इसके पश्चात् ब्रह्माणी आदि समस्त शक्तियाँ देवी की देह में विलीन हो गईं और तब अकेली अम्बिका ही सम्मुख रह गई ॥४॥ फिर देवी बोली—अरे शुम्भ ! इस स्थान पर मैं अपनी विभूति द्वारा अनेक रूप में विद्यमान थी, अब उन सभी रूपों को नष्ट करके मैं युद्ध-क्षेत्र में अकेली ही रही हूँ तू स्थिर हो ॥५॥ ऋषि ने कहा— तदनन्तर यह सब देखते हुए देवता और दानवों के सामने असुर शुम्भ और देवी दोनों का भयंकर युद्ध होने लगा ॥६॥ फिर देवी और शुम्भासुर में परस्पर बाणवर्षा, शाणित [illegible] दारुण अस्त्रों के प्रहार द्वारा ऐसा युद्ध हुआ जो सम्पूर्ण लोकों में भय उत्पन्न करने वाला था ॥७॥

दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका ।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥८
मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी ।
बभञ्ज लीलयैवोग्रहुङ्कारोच्चारणादिभिः ॥९
ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः ।
सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥१०

छिन्नेधनुषिदैत्येंद्रस्तथाशक्तिमथाददे ।
चिच्छेददेवीचक्रेणतामप्यस्यकरेस्थिताम् ॥११
ततःखड्गमुपादायशतचन्द्रचभानुमत् ।
अभ्यधावततांहंतुदैत्यानामधिपेश्वरः ॥१२
तस्यापततएवाशुखड्गंचिच्छेदचंडिका ।
धनुर्मुक्तैःशितैर्बाणैश्चर्मचार्ककरामलम् ॥१३
अश्वांश्चपातयामासरथंसारथिनासह ।
हताश्वःसतदादैत्यश्छिन्नधन्वाविसारथिः ।
जग्राहमुगदरंघोरमंबिकानिधनोद्यतः ॥१४

अम्बिका द्वारा छोड़े गये शत-शत दिव्य अस्त्रों को उस दैत्यराज शुंभासुर ने उनको काटने वाले अस्त्रों से सभी अस्त्रों को काट डाला ॥८॥ और शुंभसुर द्वारा छोड़े गये सभी दिव्यास्त्रों को देवी चण्डिका ने अपनी लीला से व हुंकार द्वारा तोड़ डाला ॥९॥ फिर उस भयंकर राक्षस ने सैकड़ों बाणों की वर्षा द्वारा देवी को आच्छादित कर दिया। तब देवी ने भी क्रोध से बाणों द्वारा उसका धनुष काट डाला ॥१०॥ धनुष कट जाने पर शुंभ राक्षस ने शक्ति ले ली, किन्तु देवी ने उस शक्ति को भी चक्र से उसके हाथों ही में काट डाला ॥११॥ तब वह दैत्यराज ने दीप्तियुक्त विशिष्ट चन्द्र ढाल और तलवार लेकर देवी पर आक्रमण वाला हुआ ॥१२॥ तब देवीने शुंभ की तलवार एवं सूर्य की किरणों के समान उज्ज्वल ढाल को धनुप से तीक्ष्ण बाण छोड़कर काट डाला ॥१३॥ जब उस राक्षस-राज के रथ के घोड़े निर्जीव हो गये, धनुप खण्डित होगया और सारथी भी नष्ट हो गया, तब वह भयंकर मुगद्र लेकर अम्बिका को मारने के लिये तैयार हुआ ॥१४॥

चिच्छेदापततस्तस्यमुद्गरंनिशितैःशरैः ।
तथापिसोभ्यधावत्तांमुष्टिमुद्यम्यवेगवान् ॥१५
समुष्टिंपातयामासहृदयेदैत्यपुङ्गवः ।
देव्यास्तच्चापिसादेवीतलेनोरस्यताडयत् ॥१६

तलप्रहाराभिहतोनिपपातमहीतले ।
मर्दैत्यराज सहसापुनरेवतथोत्थित ॥१६

उत्पत्यचप्रगृह्योच्चैर्देवीगगनमास्थित ।
तत्रापिसानिराधारायुयुधेतेनचण्डिका ॥१८

नियुद्ध ततदादैत्यश्चण्डिकाचपरस्परम् ।
चक्रतु प्रथमसिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥१६

ततानियुद्ध सुचिरकृत्वातेनाम्बिकासह ।
उत्पात्यभ्रामयामासचिक्षेपधरणीतले ॥२०

सक्षिप्तोधरणीप्राप्यमुष्टिमुद्यम्यवेगित ।
अभ्यधावतदुष्टात्माचण्डिकानिधनेच्छया ॥२१

तब सामने आये दानव का मुद्गर देवी ने तीक्ष्ण बाणों से नष्ट कर दिया किन्तु फिर भी वह महादानव मुष्टिका तानकर तेज गति से देवी पर दौड़ा ॥१५॥ महादानव ने वह मुष्टिका प्रहार देवी के हृदय पर किया। तब देवी ने भी थप्पड़ द्वारा उसके सीने पर आघात किया ॥१६॥ थप्पड़ के आघात से पीड़ित दैत्यराज पृथ्वी पर गिरा और तुरन्त ही पुनः उठा ॥१७॥ इसके पश्चात् उछल कर देवी को लेकर शुम्भ आकाश में पहुँच गया और देवी भी आकाश में निरालम्ब होकर केवल भुजाओं से युद्ध करने लगी ॥१८॥ आकाश में शुम्भ व चण्डिका देवी अद्वितीय और मुनियों को अचम्भे में डालने वाला युद्ध करने लगे ॥१९॥ उस दानव के साथ बिना अस्त्र केवल भुजाओं से युद्ध करके उसे उठाकर ऊपर घुमाया और फिर धरती पर पटक दिया ॥२०॥ धरती पर गिरकर वह दुष्टात्मा दानव मुष्टिका उठाकर चण्डिका को मारने की इच्छा से आक्रामक हुआ ॥२१॥

तमायान्ततोदेवीसर्वदैत्यजनेश्वरम् ।
जगत्यापातयामासभित्त्वाशूलेनवक्षसि ॥२२

सगतासु पपातोर्व्यादेवीशूलाग्रविक्षत ।
चालयन्सकलापृथ्वीसाब्धिद्वीपासपर्वताम् ॥२३

ततःप्रसन्नमखिलंहतेतस्मिन्दुरात्मनि ।
जगत्स्वास्थ्यमतीवापनिर्मलंचाभवन्नभः ॥२४
उत्पातमेघाःसोल्कायेप्रागासंस्तेशमंययुः ।
सरितोमार्गवाहिन्यस्तथासुम्भेनिपातिते ॥२५
ततोदेवगणाःसर्वेहर्षनिर्भरमानसाः ।
बभूवुर्निहतेतस्मिन्गंधर्वाललितंजगुः ॥२६
अवादयँस्तथैवान्येननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
ववुःपुण्यास्तथावाताःसुप्रभोभूद्दिवाकरः ॥२७
जज्वलुश्चाग्नयःशांताःशान्ताःदिग्जनितस्वनाः ॥२८

उस दैत्यराज शुंभ को आक्रामक देख देवी ने अपने शूल से उसका हृदय वेध दिया और उसको पुनः पृथ्वी पर गिरा दिया ॥२२॥ देवी के शूल के अग्र भाग द्वारा शुंभ का हृदय आहत हुआ जब वह निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिरा तो उस समय समुद्र, द्वीप और पर्वतों सहित समस्त पृथ्वी विचलित हो गई ॥२३॥ उस दुरात्मा दानव के मारे जाने पर सभी आनन्दित हुए, संसार बहुत स्वस्थ हुआ और आकाश पूर्णतः स्वच्छ होगया ॥२४॥ शुंभ के रहते हुए जो भी अनिष्टकारी मेघ और उल्कागण विद्यमान थे, वे सब शुंभ के मृत्यूपरान्त अदृश्य होगये और नदियाँ भी अपने समुचित मार्गों में बहने लगीं ॥२५॥ उस दानव के समाप्त होने पर सम्पूर्ण देवगण के चित्त में अत्यन्त हर्ष हुआ और गंधर्व मधुर गान करने लगे ॥२६॥ कोई वाद्य बजाने लगा और अप्सराएँ नाचने लगीं, शीतल मन्द वायु चलने लगी और सूर्य ने भी सुन्दर आभा फैला दी ॥२७॥ यज्ञ की बुझी अग्नि जलने लगी और सभी दिशाओं में शांत शब्द फैला प्रतीत हुआ ॥२८॥

८३—देवी स्तोत्र

देव्याहतेतत्रमहासुरेन्द्रे सेन्द्राःसुरावह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनींतुष्टुवुरिष्टलाभाद्विकासिवक्त्राब्जविकासिताशाः ॥१

देवाऊचु देविप्रपन्नार्तिहरेप्रसीदप्रसीदमातर्जगतोखिलस्य ।
प्रसीदविश्वेश्वरिपाहिविश्व त्वमीश्वरीदेविचराचरस्य ॥२
आधारभूताजगतस्त्वमेकामहीस्वरूपेणयत स्थितासि ।
अपास्वरूपस्थितयात्वयैतदाप्यायतेकृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥३
त्ववैष्णवीशक्तिरनन्तवीर्याविश्वस्यबीजपरमासिदेवि ।
मायासमोहितदेविसमस्तमेतत्त्वंवैप्रसन्नाभुविमुक्तिहेतुः ॥४
विद्या समस्तास्तवदेविभेदा स्त्रियः समस्ता सकलजगत्सु ।
त्वयैकयापूरितमम्बयैतत्काते स्तुतिःस्तव्यपरापरोक्ति ॥५
सर्वभूतायदादेवीभुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।
त्वस्तुतास्तुतयेकावाभवतिपरमोक्तय ॥६
सर्वस्यबुद्धिरूपेणजनस्यहृदिसंस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदेदेविनारायणिनमोस्तुते ॥७

ऋषि ने कहा—देवी ने जब उस महादानव को नष्ट कर दिया, तो समस्त देवता अपने इच्छित फल प्राप्त होने के कारण प्रसन्न मुख कमलों से इन्द्र व अग्नि को आगे कर समस्त दिशाओं को प्रकाशित कर उन कात्यायनी देवी की स्तुति करने लगे ॥१॥ देवता बोले—"हे शरणागत दुःख भंजन देवि ! प्रसन्न हो, हे सम्पूर्ण जगत् की जननी प्रसन्न हो, हे विश्वेश्वरि ! प्रसन्न हो, तुम विश्व की रक्षा करो, हे देवि ! चराचरों की तुम ही ईश्वरी हो ॥२॥ हे देवि ! तुम ही जगत् की आधार रूप हो, क्योंकि पृथ्वी का रूप तुम्हीं मे स्थित है हे देवि ! जल का स्वरूप भी तुम ही धारण करके इस सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करती हो, हे देवि ! तुम्हारा वीर्य उल्लंघन नहीं किया जा सकता ॥३॥ हे देवि ! अनन्त वीर्य वैष्णवी शक्ति तुम ही हो, संसार की हेतुभूत परमलीला तुम ही हो, सम्पूर्ण जगत् को तुमने ही मोहित कर रखा है, हे देवि ! तुम जब प्रसन्न होती हो, तब ही पृथ्वी पर मुक्ति का कारण होती हो ॥४॥ हे देवि तुम्हारी मूर्ति विशेष मे ही समस्त विद्या विद्यमान हैं और त्रिलोक मे समस्त स्त्रियाँ तुम्हारी मूर्ति विशेष हैं, हे जननी ! तुम एक अकेली इस जगत् मे व्याप्त हो तुम स्तुति से पर और तुम्हारी स्तुति ही श्रेष्ठ उक्ति है और अधिक क्या

स्तुति करें ।।५।। समस्त प्राणी-स्वरूप में तुम ही प्रकाशमान हो और स्वर्ग व मुक्ति तुम ही प्रदान करती हो, इसलिये तुम्हारी स्तुति करते हैं, किन्तु हे देवि ! तुम्हारे निर्गुण ब्रह्मस्वरूप की स्तुति के लिए कोई भी उक्ति श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि तुम निर्गुण हो और निर्गुण के गुणों की कीर्त्तन रूप स्तुति किस प्रकार संभव है ? ।।६।। तुम बुद्धि के रूप में सबके हृदय में बसी हो, हे स्वर्ग-मुक्ति दाता ! हे देवि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ।।७।।

कलाकाष्ठादिरूपेणपरिणामप्रदायिनी ।
विश्वस्योपरतौशक्तेनारायणिनमोस्तुते ।।८
सर्वमङ्गलमांगल्येशिवेसर्वार्थसाधिके ।
शरण्येत्र्यंबकेगौरिनारायणिनमोस्तुते ।।९
सृष्टिस्थितिविनाशानांशक्तिभूतेसनातनि ।
गुणाश्रयेगुणमयेनारायणिनमोस्तुते ।।१०
शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरेदेविनारायणिनमोस्तुते ।।११
हंसयुक्तविमानस्थेब्रह्माणीरूपधारिणि ।
कौशांभःक्षीरकेदेविनारायणिनमोस्तुते ।।१२
त्रिशूलचन्द्राहिधरेमहावृषभवाहिनि ।
माहेश्वरीस्वरूपेणनारायणिनमोस्तुते ।।१३
मयूरकुक्कुटवृतेमहाशक्तिधरेनघे ।
कौमारीरूपसंस्थानेनारायणिनमोस्तुते ।।१४

हे विश्व-विनाश में समर्थ ! कला एवं काष्ठादि रूप से तुम जगद् का विधान करती हो अर्थात् क्षण भर में मानवों को अंत प्रदान करती हो, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ।।८।। हे सर्व मंगल-माङ्गल्ये ! हे शिवे ! हे सर्वार्थसाधिके ! हे शरणदाता ! हे त्रिनेत्र वाली ! हे गौरी ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ।।९।। तुम सृष्टि के स्थिति और विनाश की शक्ति रूप हो, हे सनातनि ! गुणाश्रये ! हे गुणमये ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ।।१०।। शरणागत, दीन, आर्त व त्रसितों का उद्धार करने वाली सबका दुःख हरती हो,

हे देवि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥११॥ हंस युक्त विमान में ब्राह्मी रूप धारण कर युद्ध क्षेत्र में कुशाभिमंत्रित जल छिड़कती हो, हे देवि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१२॥ माहेश्वरी रूप में बैल पर सवार होकर अर्द्धचन्द्र और नाग भूषण सहित त्रिशूल आपने धारण किया, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥१३॥ तुमने कौमारी रूप में मयूर और कुक्कुट युक्त होकर महा शक्ति धारण की, हे अनघे ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१४॥

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्ग गृहीतपरमायुधे ।
प्रसीदवैष्णवीरूपेनारायणिनमोस्तुते ॥१५
गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ।
वराहरूपिणिशिवेनारायणिनमोस्तुते ॥१६
नृसिंहरूपेणोग्रे णहन्तु दैत्यान्कृतोद्यमे ।
त्रैलोक्यत्राणसहितेनारायणिनमोस्तुते ॥१७
किरीटिनिमहावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ।
वृत्रप्राणहरेचैन्द्रिनारायणिनमोस्तुते ॥१८
शिवदूतीस्वरूपेणहतदैत्येमहाबले ।
घोररूपेमहारावेनारायणिनमोस्तुते ॥१९
दंष्ट्राकरालवदनेशिरोमालाविभूषणे ।
चामुण्डेमुण्डमथनेनारायणिनमोस्तुते ॥२०
लक्ष्मिलज्जेमहाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधेध्रुवे ।
महारात्रेमहामायेनारायणिनमोस्तुते ॥२१

वैष्णवी रूप में शख, चक्र, गदा एवं शार्ङ्ग धनुष परम आयुधों को तुमने धारण किया, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१५॥ वराह रूप में तुमने हे शिवे ! हे नारायणि ! दाँतों से जल मग्न पृथ्वी को उठाकर महाचक्र ग्रहण किया, तुमको नमस्कार ॥१६॥ नृसिंह रूप में दानवों के नाश को उद्यत हो त्रैलोक्य की रक्षा करने वाली हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१७॥ हे नारायणि ! हे ऐन्द्री ! हजारों नयनों से उज्ज्वल किरीटों के धारण करने वाली एवं महावज्र ग्रहण करने वाली, तुमको नमस्कार ॥१८॥ शिवदूती के रूप में

भयंकर स्वरूप धारण कर हे नारायणि तुमने महाबलि दानवों को समाप्त किया,तुमको नमस्कार ॥१९॥ दंष्ट्रा और कराल मुख के सिरों की माला धारण कर हे नारायणि ! तुमने चण्ड और मुण्ड नाम के दानवों को नष्ट किया, तुमको नमस्कार ॥२०॥ लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, महारात्रि, महामाया, ध्रुवा तुम ही हो, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥२१॥

मेधेसरस्वतिवरेभूतिबाभ्रवितामसि ।
नियतेत्वंप्रसीदेशेनारायणिनमोस्तुते ॥२२
सर्वतःपाणिपादांतेसर्वतोक्षिशिरोमुखे ।
सर्वतःश्रवणघ्राणेनारायणिनमोस्तुते ॥२३
सर्वस्वरूपेसर्वेशेसर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहिनोदेविदुर्गेदेविनमोस्तुते ॥२४
एतत्तेवदनंसौम्यंलोचनत्रयभूषितम् ।
पातुनःसर्वभीतिभ्यःकात्यायनिनमोस्तुते ॥२५
ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलंपातुनोभीतेर्भद्रकालिनमोस्तुते ॥२६
हिनस्तिदैत्यतेजांसिस्वनेनापूर्ययाजगत् ।
साघंटापातुनोदेविपापेभ्योनःसुतानिव ॥२७
असुरासृग्वसापंकचर्चितस्तेकरोज्ज्वलः ।
शुभायखड्गोभवतुचंडिकेत्वांनतावयम् ॥२८

मेधा, सरस्वती, भूति, बाभ्रवी, तामसि तुम ही हो, हे नारायणि ! हे ईशे ! हे नियते ! तुम प्रसन्न हो, तुमको नमस्कार ॥२२॥ सर्वत्र हाथ, पैर, सिर, मुख, कान, नासिका तुम्हारे ही स्वरूप हैं, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥२३॥ सर्वस्वरूप, सर्वेश्वरी, सर्वशक्ति समन्वित हे देवि ! हे दुर्गे ! भय से रक्षा करो, तुमको नमस्कार ॥२४॥ तुम्हारा सौम्य मुख और उस पर विभूषित त्रिनेत्रों वाली हे कात्यायनि ! सबसे रक्षा करो, तुमको नमस्कार ॥२५॥ ज्वाला से भी अधिक कराल बहुत तेज और शेषासुर को नष्ट करने वाला

तुम्हारा त्रिशूल, हे भद्रकालि ! हमारी भय से रक्षा करे, तुमको नमस्कार ॥२६॥ अपनी ध्वनि से विश्व को पूरित कर दानवों के तेज को नष्ट करने वाला तुम्हारा घंटा पुत्रवत् पापों से हमारी रक्षा करे ॥२७॥ असुरगण के लहू और वसा के पंक से चर्चित किरणों के समान उज्ज्वल यह शोभायमान तलवार, हे चण्डिके ! हमारा कल्याण करे ॥२८॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान्सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥२९
एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् ।
रूपैरनेकैर्बहुधात्ममूर्तिं कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥३०
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥३१
रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥३२
विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥३३
देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीतेर्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥३४
प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥३५

प्रसन्न होने पर तुम सभी रोगों को नष्ट करती हो। एवं अप्रसन्न होने पर सभी वांछित वस्तुओं को छीन लेती हो। तुम्हारे आश्रितों पर कभी कोई विपत्ति नहीं रहती और तुम्हारे आश्रित ही अन्य सबको आश्रय देने वाले होते हैं ॥२९॥ अनेक रूप धारण कर तुमने धर्म के विपक्षी घोर असुरों का नाश, यह क्या कोई दूसरी नारी कर सकती है? ॥३०॥ विद्या, सब शास्त्रों, विवेक-दीप और वेदों के आदि वाक्यों के होते हुए भी महा अंधकारमय ममता रूपी गर्त में विश्व को तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कौन बचा सकता है ॥३१॥ जहाँ असुर हैं, विषधर सर्प हैं, शत्रु हैं, चोरों के समूह हैं, दावानल है, तुम वहाँ

और समुद्र में रह कर जगत् की रक्षा करती हो ॥३२॥ तुम जगत् की रक्षा करने वाली विश्वेश्वरी हो, विश्व को धारण करने वाली विश्वात्मिका हो। विश्व-ईश ब्रह्माजी द्वारा वन्दनीया हो और विश्व के आश्रय ब्रह्माजी भी तुम्हारे प्रति भक्ति-नम्र हैं ॥३३॥ हे देवि ! तुमने जैसे दानवों का नाश करके इस समय रक्षा की है उसी प्रकार अब प्रसन्न होकर शत्रु भय से रक्षा करो। समस्त विश्व के पापों का नाश करो और जगत् के उत्पातों से हुई महामारी को तुरन्त शान्त करो ॥३४॥ समस्त जगत् के दुखों को नष्ट करने वाली, प्राणियों पर प्रसन्न होओ और हे त्रिलोकवासियों द्वारा पूजी जाने वाली देवि ! उन सबको वर दो ॥३५॥

वरदाहंसुरगणाःवरंयंमनसेच्छथ ।
तंवृणुध्वंप्रयच्छामिजगतामुपकारकम् ॥३६
सर्वबाधाप्रशमनंत्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेतत्त्वयाकार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥३७
वैवस्वतेंतरेप्राप्तेअष्टाविंशतिमेयुगे ।
शुम्भोनिशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येतेमहासुरौ ॥३८
नंदगोपकुलेजातायशोदागर्भसंभवा ।
ततस्तौनाशयिष्यामिविंध्याचलनिवासिनी ॥३९
पुनरप्यतिरौद्रेणरूपेणपृथिवीतले ।
अवतीर्यहनिष्यामिवैप्रचित्तांस्तुदानवान् ॥४०
भक्षयंत्याश्चतानुग्रान्वैप्रचित्तान्सुदानवान् ।
रक्तादंताभविष्यंतिदाडिमीकुसुमोपमाः ॥४१
ततोमांदेवताःस्वर्गमर्त्यलोकेचमानवाः ।
स्तुवंतोव्याहरिष्यंतिसततंरक्तदन्तिकाम् ॥४२

देवी बोली—हे देवताओ ! मैं वर प्रदान करूँगी, और तुम तीनों लोकों के कल्याण करने वाले जिस वर की आकांक्षा करते हो, वही माँगो और प्रदान करूँगी ॥३६॥ सुरगणों ने कहा—हे अखिलेश्वरि ! तीनों लोकों की सभी प्रकार की विपदाओं को नष्ट करो और इसी प्रकार हमारे

शत्रुओं को नष्ट करती रहो, यही वर हम माँगते हैं ॥३७॥ देवी बोली—वैवस्वत मन्वन्तर के बीच अट्ठाईसवें युग में दो महादानव शुम्भ और निशुम्भ के नाम से जन्म लेंगे ॥३८॥ उस समय मैं यशोदा के गर्भ से गोपनन्द के गेह में जन्म लूँगी और विन्ध्याचलवासिनी होकर उन दोनों को नष्ट करूँगी ॥३९॥ फिर पृथ्वी पर अत्यन्त विकराल रूप में अवतार लेकर वैप्रचित्त नाम के असुरों का विनाश करूँगी ॥४०॥ वैप्रचित्त नाम के भीषण दैत्यों को भक्षण करते हुए मेरी दन्तमुक्तावली कुसुम के समान लाल रंग की हो जायगी ॥४१॥ इसके पश्चात् स्वर्ग में देवगण और मर्त्यलोक में मानव स्तुति करते हुए सर्वदा मुझे "रक्त दन्तिका" के नाम से पुकारेंगे ॥४२॥

भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ॥४३
ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् ।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥४४
ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः ।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टैः प्राणधारकैः ॥४५
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि ।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ।
(दुर्गादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले) ॥४६
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ॥४७
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः ।
भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ॥४८
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ।
तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वासंख्येयषट्पदम् ॥४९
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ।
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ॥५०

इत्थंयदायदावाधादानवोत्थाभविष्यति ।
तदातदावतीर्याहंकरिष्याम्यरिसंक्षयम् ।।५१

फिर जब सौ साल तक वर्षा न होगी तो जल न होने यानी सूखा के कारण ऋषिगण मेरी प्रार्थना करेंगे उस समय मैं विना मनुष्य योनि के ही जन्म लूँगी ।।४३।। उस समय मेरे सौ नेत्र होंगे, जिनसे मुनियों को देखूँगी और मुनिगण मुझे "शताक्षी" कहकर कीर्त्तन करेंगे ।।४२।। तत्पश्चात् जब तक वर्षा का अभाव रहेगा, तब तक हे सुरगण ! स्वकीय-देह उत्पन्न शाक से समस्त लोकों का पालन करूँगी ।।४५।। इसलिए जगत् में मेरा "शाकम्भरी" नाम प्रसिद्ध होगा और वर्षा न होने की उस अवधि में दुर्गम नाम के महादानव को समाप्त करूँगी ।।४६।। और फिर मैं ऋषियों की रक्षा के लिए हिमालय पर विकराल स्वरूप से असुरों का वध करूँगी ।।४७।। उस समय सभी ऋषिगण विनम्र होकर मेरी प्रार्थना करेंगे और मैं भीमा देवी के नाम प्रसिद्ध होऊँगी ।।४८।। जिस काल में अरुण नामक एक महादानव तीनों लोकों में भारी विपत्ति पैदा करेगा,उस समय अनेक षट्पद समन्वित भ्रमरों का रूप ग्रहण कर ।।४९।। तीनों लोकों का उद्धार करने के लिए उस महादानव को मारूँगी, इसलिए प्राणी मेरी 'भ्रामरी' नाम से स्तुति करेंगे ।।५०।। इस तरह जिस काल में असुरों द्वारा विपत्तियाँ पैदा की जाँयगी, उस समय मैं अवतरित होकर उनका नाश करूँगी ।।५१।।

८४—देवताओं को देवी का वरदान

एभिःस्तवैश्चमांनित्यंस्तोष्यतेयःसमाहितः ।
तस्याहंसकलांबाधांनाशयिष्याम्यसंशयम् ।।१
मधुकैटभनाशंचमहिषासुरघातनम् ।
कीर्त्तयिष्यंतियेतद्वद्वधंशुम्भनिशुम्भयोः ।।२
अष्टम्यांचचतुर्दश्यांनवम्यांचैकचेतसः ।
स्तोष्यन्तिचैवयेभक्त्याममर्माहात्म्यमुत्तमम् ।।३

नतेषांदुदुष्कृतंनिचिदुष्कृतोत्थानचापदः ।
नभविष्यतिदारिद्र् यनचैवेष्टवियोजनम् ॥४
शत्रुतोनभयतेषांदस्युतोवानराजतः ।
नशस्त्रानलतोयोघात्कदाचित्सभविष्यति ॥५
तस्मान्ममैतन्माहात्म्यपठितव्यसमाहितैः ।
श्रोतव्यचसदाभक्त्यापरस्वस्त्ययनमहत् ॥६
उपसर्गानशेषांस्तुमहामारीसमुद्भवान् ।
तथात्रिविधमुत्पातमाहात्म्यशमयेन्मम ॥७

देवी ने कहा—इन सभी वचनों से सचेत होकर जो मनुष्य मेरी प्रतिदिन स्तुति करेगा, यह सदेहहीन है कि मैं उन सभी विपत्तियों का विनाश करूँगी ॥१॥ मधुकैटभ, शुंभ निशुंभ और महिषासुर की कथा का उत्तम माहात्म्य जो मनुष्य एक चित्त होकर भक्ति पूर्वक अष्टमी, चतुर्दशी या नवमी तिथि मे सुनें या कहे ॥२॥ तो उनको पाप एवं पाप से पैदा कोई बाधा नहीं रहेगी, दरिद्रता दूर होगी एवं प्रियजनों का वियोग भी न होगा ॥४॥ दुश्मन, चोर और राजा से किसी स्थान पर भय न होगा और शस्त्र, अग्नि व पानी से भी निडर रहेंगे ॥५॥ इसलिए मेरा यह माहात्म्य दत्तचित्त होकर अध्ययन करे और श्रवण करे। मेरा यह माहात्म्य ही मेरी सर्वश्रेष्ठ स्तुति है ॥६॥ यह महामारी जन्य सभी विपदाओं और तीनों प्रकार की विपत्तियों को नाश करता है ॥७॥

यत्रैतत्पठ्यतेसम्यक्नित्यमायतनेमम ।
सदानतद्विमोक्ष्यामिसांनिध्यतत्रमेस्थितम् ॥८
बलिप्रदानेपूजायामग्निकार्येमहोत्सवे ।
सर्वंममैतच्चरितमुच्चार्यंश्राव्यमेवच ॥९
जानताजानतावापिबलिपूजांतथाकृताम् ।
प्रतीच्छिष्याम्यहप्रीत्याबह्निहोमंतथाकृतम् ॥१०
शरत्कालेमहापूजाक्रियतेयाचवार्षिकी ।
तस्यांममैतन्माहात्म्यश्रुत्वाभक्तिसमन्वितः ॥११

सर्वबाधाविनिर्मुक्तोधनधान्यसमन्वितः ।
मनुष्योमत्प्रसादेनभविष्यतिनसंशयः ॥१२
श्रुत्वाममैतन्माहात्म्यमथोत्पत्तीःपृथक्शुभाः ।
पराक्रमांश्चयुद्धेषुजायतेनिर्भयःपुमान् ॥१३
रिपवःसंक्षयंयांतिकल्याणंचोपपद्यते ॥
नन्दतेचकुलंपुंसांमाहात्म्यंममश्रृण्वताम् ॥१४

जिस गृह में यह माहात्म्य समुचित विधि से मनन किया जाता है, मैं सर्वदा उसी गृह में अथवा उसके समीप वास करती हूँ ॥८॥ पूजा-कार्य या बलि के अवसर पर तथा यज्ञ कार्य आदि उत्सवों में मेरी यह समस्त कथा बोलनी और सुननी चाहिए ॥९॥ प्राणीगण जाने या अनजाने जो पूजा करें, बलि दें या अग्नि में आहुति देते हैं, वह सब मैं प्रसन्न होकर स्वीकार करती हूँ ॥१०॥ शरद् ऋतु में वार्षिक महा पूजा के अवसर पर मेरा यह चरित्र भक्ति-पूर्वक सुनने से ॥११॥ मनुष्य मेरा प्रसाद पाकर समस्त बाधाओं से विमुक्त होते हैं और यह संदेह से परे है कि वे धन, सम्पत्ति और पुत्र प्राप्त करते है ॥१२॥ यह माहात्म्य, शुभ उत्पत्ति की कथा एवं युद्ध-कौशल चरित्र सुनने से मनुष्य को भय नहीं रहता ॥१३॥ उसके शत्रुओं का शमन होता एवं उसका कल्याण होता है। और मेरे माहात्म्य का श्रवण करने वाले मनुष्य का परिवार आनन्द-पूर्ण हो जाता है ॥१४॥

शान्तिकर्मणिसर्वत्रतथादुःस्वप्नदर्शने ।
ग्रहपीडासुचोग्रासुमाहात्म्यंशृणुयान्मम ॥१५
उपसर्गाः शमंयांतिग्रहपीडाश्चदारुणाः ।
दुःस्वप्नंचनृभिर्दृष्टंसुस्वप्नमुपजायते ॥१६
बालग्रहाभिभूतानांबालानांशांतिकारकम् ।
संघातभेदेचनृणांमैत्रीकरणमुत्तमम् ॥१७
दुर्वृत्तानामशेषाणांवलहानिकरंपरम् ।
रक्षोभूतपिशाचानांपठनादेवनाशनम् ॥१८
सर्वंममैतन्माहात्म्यंममसंनिधिकारकम् ॥१९

पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्चगन्धदीपैस्तथोत्तमैः ।
विप्राणांभोजनैर्होमैःप्रोक्षणीयैरहर्निशम् ॥२०
अन्यैश्चविविधैर्भोगैःप्रदानैर्वत्सरेणया ।
प्रीतिर्मेक्रियतेसास्मिन्सकृदुच्चरितेश्रुते ॥२१

सभी शान्ति कार्यों, भयानक स्वप्न देखने के अवसर पर और घोर पारिवारिक दु:ख के समय मेरा यह चरित्र सुने ॥१५॥ इसके श्रवण से विपदाएं एवं घोर पारिवारिक दु:ख मिट जाते हैं और वैसे मनुष्य को दु:खद स्वप्न शीघ्र फलदायक बनते हैं, उसी प्रकार तुरन्त उत्तम फल प्रदान करते हैं ॥१६॥ मेरी यह कथा पूतना, डाकिनी, शाकिनी, बालकों पर आयी ग्रहों को शमन करने वाली है और यदि मनुष्यों में आपस में मतभेद व शत्रुता हो जाय तो श्रेष्ठ विधि से पुनः प्रीति कराने वाली है ॥१७॥ यह समस्त दुराचारी व दुष्ट मनुष्यों को निर्बल करता, उनके बल को घटाता है, इसके अध्ययन से असुर, भूत व पिशाच नष्ट हो जाते हैं ॥१८॥ माहात्म्य के अध्ययन से अध्ययन करने वाला मेरे निकट आता है। यह प्रारम्भ, मध्य और समाप्ति पर मुझे सर्व प्रकार प्रसन्न करता है ॥१९॥ उत्तम पशु, फूल, अर्घ्य, धूप, गन्ध, दीप, ब्रह्मभोज, यज्ञ, प्रोक्षणीय एवं ॥२०॥ अन्य दूसरी रीतियों से एक वर्ष पर्यन्त दिन रात पूजा करने वाले से मैं जितनी प्रसन्न हो सकती हूँ, उतनी इस माहात्म्य को सिर्फ एक ही बार श्रवण से प्रसन्न हो जाती हूँ ॥२१॥

श्रुतंहरतिपापानितथारोग्यंप्रयच्छति ।
रक्षांकरोतिभूतेभ्योजन्मनांकीर्तनंमम ॥२२
युद्धेषुचरितंयन्मेदुष्टदैत्यनिबर्हणम् ।
तस्मिञ्छ्रुतेवैरिकृतंभयंपुंसांनजायते ॥२३
युष्माभिःस्तुतयोयाश्चयाश्चब्रह्मर्षिभिःकृताः ।
ब्रह्मणाचकृतायास्ताःप्रयच्छन्तिशुभांमतिम् ॥२४
अरण्येप्रान्तरेवापिदावाग्निपरिवारितः ।
दस्युभिर्वावृतःशून्येगृहीतोवापिशत्रुभिः ॥२५

सिंहव्याघ्रांनुयातोवावनेवावनहस्तिभिः ।
राज्ञाक्रुद्धेनचाज्ञप्तोवध्योबन्धगतोपिवा ॥२६
आघूर्णितोवावातेनस्थितःपोतेमहार्णवे ।
पतत्सुचापिशस्त्रेषुसंग्रामेभृशदारुणे ॥२७
सर्वाबाधासुघोरासुवेदनाभ्यर्दितोपिवा ।
स्मरन्ममैतच्चरितंनरोमुच्येतसंकटात् ॥२८

मेरे माहात्म्य का श्रवण सर्व पापों का हरण-कर्त्ता है और नीरोगता प्रदान-कर्त्ता है, साथ ही मेरे जन्म सम्बन्धी कीर्त्तन करने से भूतों वगैरह से भय जाता रहता है ॥२२॥ घोर दानवों के शमन-युद्ध का वर्णन सुनने से मनुष्य को किसी शत्रु से भय नहीं रहता ॥२३॥ हे देवताओ ! तुम्हारी प्रार्थना और ब्रह्म ऋषियों द्वारा की गई प्राथनाएँ एवं ब्रह्माजी द्वारा मेरे स्तवन, इन सबको अध्ययन करने से शुभ फल प्राप्त होता है ॥२४॥ ऐसे स्थान पर जहाँ अपना प्रिय कोई न हो, वहाँ शत्रुओं द्वारा घेरे जाने पर, चोरों द्वारा घेरे जाने पर और प्रान्तर में दावानल से ग्रसित होने पर ॥२५॥ शेर या व्याघ्र द्वारा वन में घेरे जाने पर, हाथियों से घिरने पर, आग में गिर जाने पर, क्रोधित राजा द्वारा वध का दण्ड देने के कारण कारागार में होने पर ॥२६॥ विशाल समुद्र में किसी छोटी नाव पर बैठे हुए तूफान द्वारा घिर जाने पर, घोर युद्ध के समय अस्त्रों के समाप्त होने पर ॥२७॥ अथवा सभी तरह की आपदाओं में आतंकित या ग्रसित होने पर प्राणी यदि मेरा माहात्म्य या चरित्र का स्मरण करे तो वह समस्त आपदाओं से विमुक्त होता है ॥२८॥

ममप्रभावात्सिंहाद्यादस्यवोवैरिणस्तथा ।
दूरादेवपलायंतेस्मरतश्चरितंमम ॥२९
इत्युक्त्वासाभगवतीचण्डिकाचण्डविक्रमा ।
पश्यतामेवदेवानांतत्रैवांतरधीयत ॥३०
तेपिदेव्यानिरातंकाःस्वाधिकारान्यथापुरा ।
यज्ञभागभुजःसर्वेचक्रुर्विनिहतारयः ॥३१
दैत्याश्चदेव्यानिहतेशुम्भेदेवरिपौयुधि ।

जगद्विध्वंसकेनस्मिन्महोग्रे तुलविक्रमे ।
निशुम्भेचमहावीर्येशेषा पातालमाययु ॥३२
एवभगवतीदेवीसानित्यापि पुन पुन ।
सम्भूयकुरुतेभूपजगत परिपालनम् ॥३३
तयैतन्माह्यतेविश्वसैवविश्वप्रसूयते ।
सायाचिताचविज्ञानतुष्टार्ऋद्धिप्रयच्छति ॥३४

मेरे चरित्र को बार-बार मनन करने वाले प्राणी को देखकर ही मेरे प्रभाव म सिह जैसे हिंसक पशु चोर और शत्रु भी पलायन कर जाते हैं ।।२६।। ऋषि ने कहा—ऐसा उपदेश देती हुई महा पराक्रमी चण्डिका देवी सुरगण के सम्मुख एकदम अन्तर्धान होगई ।।३०।। तत्पश्चात् शत्रुओ के भय से निर्भीक सुरगण यज्ञ भाग भोजन करते हुए अपने-अपने कार्यो मे व्यस्त होगये ।।३१।। विश्व का विनाश करने वाले महा पराक्रमी व देवताओ के शत्रु शुभ एव महाबली निशु भ को जब रण स्थल म चण्डिका ने नष्ट कर दिया तो शेष असुरगण पाताल को चले गये ।।३२।। हे राजा ! वह भगवती देवी नित्या होकर भी अनेक बार पृथ्वी पर प्रकट होकर इस विश्व का पोषण करती है ।।३३।। उसी भगवती की माया से यह जगत् मोहित है वही इस जगत् की सृष्टि-कर्त्ता है और उसके समीप स्तुति करने पर वह प्रसन्न होकर तत्त्वज्ञान एव धन-धान्य प्रदान करती है ।।३४।।

व्याप्ततयैतत्सकलब्रह्माण्ड मनुजेश्वर ।
महाकाल्यामहाकालेमहामारीस्वरूपया ॥३५
सैवकालेमहामारीसैवसृष्टिर्भवत्यजा ।
स्थितिकरोतिभूतानासैवकालेसनातनी ॥३६
भवकालेनृणासैवलक्ष्मीर्वृद्धिप्रदागृहे ।
सैवाभावेतयालक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥३७
स्तुतासपूजितापुष्पैर्गंधधूपादिभिस्तथा ।
ददातिवित्तपुत्राश्चमतिधर्मेगतिशुभाम् ॥३८

हे मनुजेश्वर ! समस्त ब्रह्मांड उन देवी से युक्त है और प्रलय के समय में यह ब्रह्माण्ड महामारी के रूप में महाकाली से युक्त होता है ।।३५।। वही, जब समय आता है तो महामारी बन जाती है, तथा जगत् की उत्पत्ति के अवसर पर वही सृष्टि का स्वरूप हो जाती है और रक्षा के समय वही देवी सनातनी रूप में मनुष्यों की रक्षा करती है ।।३६।। आनन्द के समय वही प्राणियों के गेह में विभिन्न ऐश्वर्य प्रदान करती है और जब वह नहीं होती तो लक्ष्मी रूपी ऐश्वर्य चला जाता है व विनाश हो जाता है ।।३७।। उस देवी की प्रार्थना जो करे और सुगन्ध, धूप, पुष्प, दीप वगैरह से पूजा जो करे उसे ऐश्वर्य, पुत्र और धर्म भक्ति की प्राप्ति होती है ।।३८।।

८५—सुरथ और वैश्य को देवी का वरदान

एतत्ते कथितंभूपदेवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवंप्रभावासादेवीययेदंधार्यतेजगत् ।।१
विद्यातथैवक्रियतेभगवद्विष्णुमायया ।
तथात्वमेषवैश्यश्चतथैवान्येविवेकिनः ।
मोह्यंतेमोहिताश्चैवमोहमेष्यंतिचापरे ।।२
तामुपैहिमहाराजशरणंपरमेश्वरीम् ।
आराधितासैवनृणांभोगस्वर्गापवर्गदा ।।३
इतितस्यवचःश्रुत्वासुरथःसनराधिपः ।
प्रणिपत्यमहाभागंतमृषिंसंशितव्रतम् ।।४
निर्विण्णोतिममत्वेनराज्यापहरणेनच ।
जगामसद्यस्तपसेसचवैश्योमहामुने ।।५
सदर्शनार्थमंबाया नदीपुलिनसंस्थितः ।
सचवैश्यस्तपस्तपेदेवीसूक्तंपरंजपन् ।।६
तौतस्मिन्पुलिनेदेव्याः कृत्वामूर्तिमहीमयीम् ।
अर्हणांचक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ।।७

ऋषि ने कहा—हे नृप ! आपको मैंने यह सर्वोत्तम माहात्म्य देवी का वर्णन किया। वह देवी जो इस विश्व को धारण करने वाली विष्णु माया भगवती की कृपा ऐसी है कि वही मनुष्य को तत्वज्ञान प्रदान करती हैं और वही तुम्हें इस वैश्य को एवं अन्य दूसरे बुद्धिमान् व्यक्तियों को भी मोहित किये हुए है, साथ ही भविष्य में भी मनुष्य उनके ही द्वारा मोहित रहेंगे ॥१॥ हे राजा ! ऐसी परमेश्वरी भगवती की शरणागत होओ जिनकी पूजा करने से ही यह प्राणी को आनन्द स्वर्ग एवं मुक्ति प्राप्त होती है ॥३॥ मार्कण्डेय ने कहा—"हे महर्षि ! भारी ममता एवं राज्य के हरण होने से बहुत दुःखी वह कठोर व्रत करने वाला सुरथ मुनि के इन वचनों को सुनकर वह उन मुनि को प्रणाम करके तुरन्त तपस्या करने चला गया एवं वह वैश्य भी तपस्या करने चला गया ॥४-५॥ तत्पश्चात् राजा व वैश्य दोनों नदी के तट पर पहुँचे और वहाँ देवी के दर्शनों के लिए सर्वोत्तम देवी–सूक्त जपते हुए तपस्या में लीन होगये ॥६॥ वहीं दोनों ने मिट्टी से देवी की मूर्ति स्थापित की और पुष्प सुगन्ध, धूप, यज्ञ एवं तर्पण से उनकी आराधना की ॥७॥

निराहारौयताहारौतन्मनस्कौसमाहितौ ।
ददतुस्तौबलिंचैवनिजगात्रासृगुक्षितम् ॥८
एवंसमाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ।
परितुष्टाजगद्धात्रीप्रत्यक्षंप्राहचण्डिका ॥९
यत्प्रार्थ्यतेत्वयाभूपत्वयाचकुलनन्दन ।
मत्तस्तत्प्राप्यतांसर्वंपरितुष्टाददामितत् ॥१०
ततोवव्रेनृपोराज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ।
अत्रैवचनिजंराज्यंहतशत्रुबलंबलात् ॥११
सोपिवैश्यस्ततोज्ञानंवव्रेनिर्विण्णमानसः ।
ममेत्यहमितिप्राज्ञःसङ्गविच्युतिकारकम् ॥१२
स्वल्पैरहोभिर्नृपतेस्वराज्यंप्राप्स्यतेभवान् ।
हत्वारिपूनस्खलितंतवतत्रभविष्यति ॥१३

मृतश्चभूयः संप्राप्यजन्मदेवाद्विवस्वतः ।
सावर्णिकोनाममनुर्भवान्भुविभविष्यति ॥१४
वैश्यवर्यत्वयास्मत्तोवरोयश्चाभिवांछितः ।
तंप्रयच्छामिसंसिद्ध्यै तवज्ञानंभविष्यति ॥१५
इतिदत्त्वातयोर्देवीयथाभिलषितंवरम् ।
बभूवांतर्हितासद्योभक्त्याताभ्यामभिष्टुता ॥१६
एवंदेव्यावरंलब्ध्वासुरथः क्षत्रियर्षभः ।
सूर्याज्जन्मसमासाद्यसावर्णिर्भवितामनुः ॥१७

वे दोनों आहार बिना अथवा सूक्ष्म आहार लेकर आराधना में लीन हुए और उन्होंने अपने शरीरों से रक्त की बलि दी ॥८॥ इस तरह तीन वर्ष पर्यन्त एकाग्र-चित्त से तपस्या करने पर जगत् उद्धारक चण्डिका ने प्रसन्न हो उनसे सम्मुख आकर कहा ॥९॥ देवी ने कहा—हे राजा ! और हे श्रेष्ठ कुल वैश्य ! तुम जो मेरी आराधना करते हो, तुम मेरे समीप होकर सभी इच्छित फल प्राप्त करोगे, मैं प्रसन्न होकर तुम्हें प्रदान करती हूं ॥१०॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—इसके पश्चात् नृप ने वर मांगा कि द्वितीय जन्म में अखंड-राज्य और इस जन्म में बल द्वारा अपने शत्रुओं को नष्ट कर अपना राज्य पुनः पा सकूँ ॥११॥ पीड़ित मन वाले विवेकी वैश्य ने 'यह मेरा' और 'मैं' के मोह नाश करने वाला ज्ञान माँगा ॥१२॥ देवी ने कहा—हे राजा ! कुछ ही समय में तुम शत्रुओं का शमन करके अपने राज्य को पुनः प्राप्त करोगे एवं भविष्य में तुम्हें अपने राज्य का त्याग नहीं करना होगा ॥१३॥ फिर मरने के बाद तुम उत्पत्ति लाभ प्राप्त करके पृथ्वी पर सावर्णि नामक प्रसिद्ध मनु होओगे ॥१४॥ हे वैश्य ! तुमने जो वर मुझसे माँगा है, उसकी सिद्धि के लिए तुमको वर प्रदान करती हूँ ॥१५॥ मार्कण्डेय ने कहा—इस प्रकार उन दोनों को इच्छित वरदान प्रदान कर तुरन्त ही वह अन्तर्धान होगई उससे पूर्व उन्होंने पूर्ण भक्ति से देवी की स्तुति की ॥१६॥ अतः क्षत्रिय में श्रेष्ठ राजा सुरथ देवी से वर प्राप्त करके सूर्यदेव से उत्पत्ति लाभ प्राप्त कर पृथ्वी पर सावर्णि नामक मनु होंगे ॥१७॥

८६—पाँच मन्वन्तर कथन

सावर्णिकमिदमस्यक्प्रोक्त मन्वन्तरतव ।
तथैवदेवीमाहात्म्यमहिषासुरघातनम् ॥१
उत्पत्तयश्चयादेव्यामातृणाञ्चमहाहवे ।
तथैवसम्भवोदेव्याश्चामुण्डायायथाभव ॥२
शिवदूत्याश्चमाहात्म्यवध शुम्भनिशुम्भयो. ।
रक्तबीजवधश्चं वसर्वमेतत्तवोदितम् ॥३
श्रूयतांमुनिशार्दूलसावर्णिकमथापरम् ।
दत्तपुनश्चसावर्णिर्भावीयोनवमोमनु ॥४
कथयामिमनोस्तस्ययेदेवामुनयोनृपा ।
पारामरीचिभर्गाश्चसुधर्माणस्तथासुरा ॥५
एतेत्रिधाभविष्यन्तिसर्वेद्वादशवागणा ।
तेषामिन्द्रोभविष्यन्तुसहस्राक्षोमहावल ॥६
साम्प्रतकार्तिकेयोमावह्निपुत्र षडानन ।
अद्भुतोनामदाक्षाऽसौभावीतस्यान्तरेमनो· ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे ऋषि श्रेष्ठ ! यह सावर्णिक का मन्वन्तर आपने वर्णन किया एव इसी सदर्भ म देवी माहात्म्य, महिषासुर-दमन ॥१॥ और रण म मातृगणा एव देवी की उत्पत्ति, चामुण्डा देवी की उत्पत्ति ॥२॥ शिवदूती माहात्म्य, शुभ निशुभ और रक्त बीज वध इन सभी को उचित प्रकार म आपस कहा ॥३॥ हे ऋषिवर ! अब नवे दक्ष-पुत्र सावर्णिक के मन्वन्तर का वर्णन सुनो ॥४॥ उसमे मनु के मानव-काल मे जो देवता, मुनि और राजा होंगे, वह सुनो । पारापर, मरीचि, भर्ग और सुधर्मा देवताओं ‍हे ॥५॥ यह तीन गण एव प्रत्येक गण म बारह गण्य देवगण हैं । वर्तमान वह्नि पुत्र षडानन कार्तिकेय, इस भविष्य के मन्वन्तर मे महा पराक्रमी सहस्राक्ष इन्द्र होंगे ॥६ ७॥

मेधातिथिर्वसुःसत्योज्योतिष्मान्द्युतिमांस्तथा ।
सप्तर्षयोऽन्यःसबलस्तथान्योहव्यवाहनः ॥८
धृष्टकेतुर्बर्हकेतुःखड्गहस्तोनिरामयः ।
पृथुश्रवास्तथार्चिष्मान्भूरिद्युम्नोबृहद्भयः ॥९
एतेनृपसुतास्तस्यदक्षपुत्रस्यवैनृपाः ।
मनोस्तुदशमस्यान्यच्छृणुमन्वन्तरंद्विज ॥१०
मन्वन्तरेचदशमेब्रह्मपुत्रस्यधीमतः ।
सुखासीनानिरुद्धाश्चद्विप्रकाराःसुराःस्मृताः ॥११
शतसंख्याहितेदेवाभविष्याभाविनोमनोः ।
यत्पुत्राणांशतंभावितद्देवानांतदाशतम् ॥१२
शान्तिरिन्द्रस्तथाभावीसर्वैरिन्द्रगुणैर्युतः ।
सप्तर्षीस्तान्निबोधत्वंयेभविष्यन्तिवैतदा ॥१३
आपोमूर्तिर्हविष्मांश्चसुकृतीसत्यएवच ।
नाभागोऽप्रतिमश्चैववासिष्ठश्चैवसप्तमः ॥१४

उस समय मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सबल एवं हव्य-वाहन ऋषि होंगे ॥८॥ धृष्टकेतु, बर्हकेतु, पञ्चहस्त, निरामय, पृथुश्रवा, अर्चिष्मान्, भूरिद्युम्न एवं बृहद्भय ॥९॥ दक्ष-पुत्र सावर्णिक मनु के पुत्र नृप होंगे। हे ब्राह्मण ! तत्पश्चात् दशम मनु के दूसरे मन्वन्तर को श्रवण करो ॥१०॥ इस मन्वन्तर में महा बुद्धिमान् ब्रह्माजी के पुत्र दशम मनु होंगे और उनके मानव-काल में सुखासीन एवं निरुद्धादि नाम के तीन तरह के सुरगण होंगे ॥११॥ भविष्यत मनु के मन्वन्तर में भावी सुरगण सौ होंगे, इस मानव-काल में प्राणियों की संख्या भी सौ और सुरगण की संख्या भी सौ होगी ॥१२॥ इन्द्र के समस्त गुणों से पूर्ण शान्ति उस समय इन्द्र होंगे और सप्त मुनियों के संबंध में भी मेरा कथन सुनो ॥१३॥ सप्त मुनियों के नाम आपोमूर्त्ति, हविष्मान्, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिम एवं सप्तम वसिष्ठ हैं ॥१४॥

सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्चभूरिषेणश्चवीर्य्यवान् ।
शतानीकोऽथवृषभोह्यनमित्रोजयद्रथः ॥१५

भूरिद्युम्न सुपर्वाचतस्यैतेतनयामनोः ।
भविष्याधर्मपुत्रस्यसावर्णस्यान्तरम्शृणु ॥१६
विहगमा कामगाश्चनिर्माणरतयस्तथा ।
त्रि प्रकारास्भविष्यन्तिएकैकस्मिन्त्रिशकोगण ॥१७
मासर्तु दिवसायेतुनिर्माणपतयस्तुते ।
विहङ्गमारात्रयोऽथमौहूर्ताःकामगागणाः ॥१८
इन्द्रोवृषाख्योभवितालेपाख्यातविक्रमः ।
हविष्माश्चवरिष्ठश्च ऋष्टिरन्यस्तथारुणि. ॥१९
निश्चरश्चानघश्च वविष्टिश्चान्योमहामुनिः ।
सप्तर्षयोऽन्तरेतस्मिन्नग्नितेजाश्चसप्तम ॥२०
सर्वत्रग सुशर्माचदेवानीक पुरूद्वहः ।
हेमधन्वादृढायुश्चभाविनस्तत्सुतानृपा ॥२१

सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूरिषेण, वीर्यवान्, शतानीक, वृषभ, अनमित्र, जयद्रथ ॥१५॥ भूरिद्युम्न और सुपर्वा इस पुत्र उत्तम मनु के हैं, अन्य मनु धर्म पुत्र सावर्ण का मन्वन्तर इस प्रकार है ॥१६॥ विहगम, काम मन एवं निर्माण पति तीन गण देवताओं के हैं और प्रत्येक गण में तीस सुर होंगे ॥१७॥ मास, ऋतु एवं दिवस निर्माण-पति हैं, रात्रि विहङ्गमदेव और सम्पूर्ण मुहूर्त जन्य विषय-कामग सुरों के गण हैं ॥१८॥ महा पराक्रमी वृषाख्य इन्द्र होंगे । इस मन्वन्तर की अवधि में हविष्मान्, वरिष्ठ, अरुणतनय ॥१९॥ निश्चर, अनघ, विष्टि एवं सप्तम अग्निदेव, सप्तर्षि होंगे ॥२०॥ सर्वत्रग, सुशर्मा, देवानीक, पुरूद्वह, हेमधन्वा व दृढायु उन मनु के पुत्र होंगे और राजा होंगे ॥२१॥

द्वादशेरुद्रपुत्रस्यप्राप्तेमन्वन्तरेमनो ।
सावर्णाख्यास्यदेवांमुनयश्चशृणुष्वतान् ॥२२
सुधर्माण सुमनसोहरितोरोहितस्तथा ।
सुवर्णाश्चसुरास्तत्रपञ्चैतेदशकागणा ॥२३
तेषामिन्द्रश्चविज्ञेयऋतधामामहाबल ।
सर्वैरिन्द्रगुणैर्युक्ता सप्तर्षीनपिमेशृणु ॥२४

ध्र तिस्तपस्वीसुतपास्तपोमूर्तिस्तपोनिधिः ।
तपोरतिस्तथैवान्यःसप्तमस्तुतपोधृतिः ।।२५
देववानुपदेवश्चदेवश्रेष्ठोविदूरथः ।
मित्रवान्मित्रविन्दश्चभाविनस्तत्सुतानृपाः ।।२६

सावर्ण मनु के द्वादश मन्वन्तर के बीच जो देव और ऋषि होंगे, अब उनका वर्णन सुनो ।।२२।। उनके मन्वन्तर में सुधर्मा, सुमना, हरित, रोहित एवं सुवर्ण इस प्रकार के देवता होंगे और प्रत्येक गण में दश देवगण होंगे ।।२३।। इंद्र के समस्त गुणों से युक्त पराक्रमी ऋतधामा इंद्र होंगे । सप्तर्षियों का वर्णन सुनो ।।२४।। सप्तर्षियों के नाम हैं, धृति,तपस्वी,सुतपा:,तपोमूर्ति, तपोनिधि, तपोरति एवं सप्तम तपोधृति ।।२५।। देववान्' उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान् एवं मित्रविन्द उन मनु के पुत्र एवं भावी नृप होंगे ।।२६।।

अथोदशस्यपर्य्यायेरौच्याख्यस्यमनोःसुरान् ।
सप्तर्षींश्चनृपांश्चैवगदतोमेनिशामय ।।२७
सुधर्माणःसुरास्तत्रसुकर्माणस्तथापरे ।
सुशर्माणःसुराह्येतेसमस्तामुनिसत्तम ।।२८
महाबलोमहावीर्य्यस्तेषामिन्द्रोदिवस्पतिः ।
भविष्यानथसप्तर्षीन्गदतोमेनिशामय ।।२९
धृतिमानव्ययस्चैवतत्त्वदर्शीनिरुत्सुकः ।
निर्मोहःसुतपाश्चान्योनिष्प्रकम्पश्चसप्तमः ।।३०
चित्रसेनोविचित्रश्चनियतिर्निर्भयोदृढः ।
सुनेत्र.क्षत्रबुद्धिश्चसुव्रतश्चैवतत्सुताः ।।३१

अब मैं रौच्य नाम के तृयोदश मनु के मन्वन्तर में जो सप्तर्षि और उनके पुत्र राजा होंगे, उनका वर्णन सुनो ।।२७।। हे ऋषि श्रेष्ठ ! उनके मन्वन्तर में सुधर्मा और सुकर्मा देवता होंगे ।।२८।। महापराक्रमी दिवस्पति इन्द्र होंगे । साथ ही सप्तर्षियों के विषय में भी सुनो ।।२९।। धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा एवं सप्तम निष्प्रकम्प सप्तर्षि होंगे ।।३०।। एवं रौच्य

मनु के पुत्र चित्रसेन, विचित्र नियति, निर्भय, दृढ, सुनेत्र, क्षत्रबुद्धि और सुव्रत नामक पुत्र होंगे ॥३१॥

८७-रुचि को पितरों का गार्हस्थ्य उपदेश

रुचि प्रजापति पूर्वनिर्ममोनिरहङ्कृत. ।
यनास्तमितशायीचचचारपृथिवीमिमाम् ॥१
अनग्निमनिकेतन्तमेकाहारमनाश्रमम् ।
विमुक्तसङ्गं तद्दृष्ट्वाप्रोचुर्स्तत्पितरोमुनिम् ॥२
वत्सकस्मात्त्वयापुण्योनकृतोदारसंग्रह ।
स्वर्गापवर्गहेतुत्वाद्बन्धस्तेनानिशंविना ॥३
गृहीसमस्तदेवानांपितृणाञ्चतथार्हणाम् ।
ऋषीणामतिथीनाञ्चकुर्वंल्लोकानुपाप्नुते ॥४
स्वाहोच्चारणतोदेवान्स्वधोच्चारणत पितृन् ।
विभजत्यन्नदानेनभूतान्यानतिथीनपि ॥५
सत्वदेवार्हणाद्बन्धबन्धमस्महृणादपि ।
मावाप्नोपिमनुष्यापिभूतेभ्यश्चदिनेदिने ॥६
अनुत्पाद्यसुतान्देवानसन्तर्प्यपितॄंस्तथा ।
भूतादींश्चकथंमौढ्यात्सुगतिगन्तुमिच्छसि ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—प्राचीन काल की बात है कि प्रजापति रुचि ने समस्त ममता का त्याग कर दिया और अहङ्कार रहित होकर जहाँ भी सूर्यास्त हो जाय, वहीं सो जाते थे. इस प्रकार से पृथिवी में भ्रमण करने लगे ॥१॥ उनके पितरों ने जब उन्हें अग्नि रहित, गृह-रहित, एकाहारी, निराश्रय और सग त्यागी के रूप मे देखा तो इस प्रकार बोले ॥२॥ पितरों ने कहा—हे वत्स ! तुमने स्त्री का पाणिग्रहण क्यों नहीं किया, क्योंकि वह स्वर्ग और मोक्ष का कारण है, विवाह के न होने से तो सभी बन्धन हैं ॥३॥ ऋषी, देवता, पितर,

ऋषि, अतिथि आदि का सत्कार करके ही गृहस्थ स्वर्गादि लोकों के सुख भोगते हैं ॥४॥ स्वाहा कह कर देवताओं की, स्वधा कहकर पितरों की और अन्न देकर अतिथि की सेवा रूपी यह तीन ऋणों को चुका कर ही पुरुष गृहस्थ होता है, तुम इस प्रकार दिनों दिन देवता, पितर, मनुष्य और सब जीवों के ऋण में बन्धन को प्राप्त हो रहे हो ॥५-६॥ पुत्र को उत्पन्न किये बिना, देवताओं और पितरों का तर्पण किये बिना तथा कर्मों का अनुष्ठान किये बिना श्रेष्ठ गति पाने की किस प्रकार आशा करते हो ? ॥७॥

क्लेशमेवंहिकंपुत्रमन्यामोऽभवेत्तव ।
मृतस्यनरकंतद्वत्क्लेशमेवान्यजन्मनि ॥८
परिग्रहोऽतिदुःखायपापायाधोगतेस्तथा ।
भवत्यतोमयापूर्वनकृतोदारसंग्रहः ॥९
आत्मनःसंयमोयोऽयंक्रियतेक्षनियन्त्रणात् ।
समुक्तिहेतुर्नभवत्यसावपिपरिग्रहात् ॥१०
प्रक्षाल्यतेऽनुदिवसंयदात्मानिष्परिग्रहैः ।
ममत्वपङ्कदिग्धोऽपिविद्याम्भोभिर्वरहितत ॥११
अनेकभवसभूतकर्मपङ्काङ्कितोबुधैः ।
आत्मासद्वासनातोयैःप्रक्षाल्योनियतेन्द्रियैः ॥१२
युक्त प्रक्षालनंकर्तु मात्मनोनियतेन्द्रियैः ।
किन्तुलेपायमार्गोऽयंयत्त्वंपुत्रवर्तसे ॥१३
पंचर्णादीनैरशुभंनुद्यतेऽनभिसन्धितैः ।
फलैस्तथोपभोगैश्चपूर्वकर्मशुभाशुभैः ॥१४

हे पुत्र ! तुमको जिस-जिस क्लेश की प्राप्ति होगी, उस-उस को हम भले प्रकार जानते है, जैसे मरने के पश्चात् नरक भोगने वाला दुःख पाता है, वैसे ही तुम्हें जन्मजन्मान्तर में दुःख भोगने होगे ॥८॥ रुचि ने कहा—स्त्री का ग्रहण अत्यन्त दुःख का देने वाला और पाप का कारण ही है, उसी से अधोगति होती है, इसी कारण मैंने स्त्री परिग्रह नहीं किया ॥९॥ इन्द्रियों का दमन करने के लिये आत्म संयम करना ही मोक्ष का कारण है, दार परिग्रह कभी भी मोक्ष

का कारण नहीं हो सकता ॥१०॥ ममता रूपी कीचड़ में लिप्त होने वाले आत्मा को जो परिग्रह होन पुरुष नित्यप्रति चित्त रूपी जल से धोते हैं वही पुरुष श्रेष्ठ हैं ॥११॥ अनेक जन्मों में उत्पन्न कर्मरूपी कीचड़ में सने हुए आत्मा को सद्वासना रूपी जल से स्वच्छ करना ही बुद्धिमानों को उचित है ॥१२॥ पितर बोले—यह ठीक है कि संयतेन्द्रिय पुरुषों को आत्मा को स्वच्छ करना चाहिए, परन्तु हे वत्स ! तुम जिस मार्ग पर चल रहे हो, क्या वह मार्ग मोक्ष प्राप्ति कराने वाला है ? ॥१३॥ जैसे निष्काम दान से अमंगल का नाश होता है, वैसे ही शुभ अशुभ फल के भोग से पूर्व जन्म के संचित कर्म का नाश होता है ॥१४॥

एवनबन्धोभवतिकुवत कारणात्मक ।
नचबन्धायतत्कमभवत्यनभिसन्धितम् ॥१५
पूर्वकर्मकृतभोगैः क्षीयतेऽहर्निशंतथा
सुखदुःखात्मकंवेत्सपुण्यापुण्यात्मकंनृणाम् ॥१६
एवंप्रक्षाल्यतेप्राज्ञैरात्माबन्धाच्चरक्ष्यते ।
नत्वेवमविवेकेनपापपङ्केनलिप्यते ॥१७
अविद्यापठ्यतेवेदे कर्ममार्ग पितामहा ।
नत्वथकर्मणामार्गेभवन्तोयोजयन्तिमाम् ॥१८
अविद्यासत्यमेवैतत्कर्मनैतन्मृषावच ।
किन्तुविद्यापरिप्राप्तीहेतु.कर्मनसशय ॥१९
विहिताकरणात्पु भिरसद्भि क्रियतेतुय ।
सयमामुक्तयनासोप्रत्युताधोगतिप्रद ॥२०
प्रक्षालयामीतिभवान्यदात्मानन्तुमन्यते ।
विहिताकरणोद्भूतैः पापैस्त्वन्तुविलिप्यसे ॥२१
अविद्याप्युपकारायविषवज्जायतेनृणाम् ।
अनुष्ठिताप्युपायेनबन्धायान्यायतोहिमा ॥२२
तस्माद्वत्सकुरुष्वत्वविधिवद्दारसग्रहम् ।
माजन्मनिष्फलतस्तुप्रसम्प्राप्यनुलोकिरम् ॥२३

अनभि संधि के कर्म बन्धन का कारण न होने से कर्म करने वालों को ही संसार के बन्धन में नहीं पड़ना होता ।।१५।। हे पुत्र ! सुख, दुःख के रूप में भोगे जाने वाले भोग से ही पूर्व जन्म के संचित पुण्य पाप युक्त कर्म दिन रात क्षीण होते रहते हैं ।।१६।। बुद्धिमान् मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अविवेक रूप पाप के कीचड़ में निमग्न न हों और आत्मा को इस प्रकार स्वच्छ करें तथा बन्धन से अपने को बचावें ।।१७।। रुचि ने कहा—हे पितरगण ! वेद में कर्म मार्ग को ही अविद्या कहा गया है, फिर आप मुझे कर्म मार्ग में क्यों प्रवृत्त करना चाहते हैं ।।१८।। पितरों ने कहा—कर्ममार्ग को अविद्या कहा है, वह यथार्थ है, परन्तु कर्म के द्वारा यह वचन असत्य हो जाता है, क्योंकि कर्म से ही तो विद्या की प्राप्ति होती है ।।१६।। सभी करने योग्य कार्यों के न करने से असत् पुरुष मोक्ष के लिये जो संयमादि करते हैं, अन्त में वह अधोगति को प्राप्त होते हैं ।।२०।। हे पुत्र ! तुम समझते हो कि मैं आत्मा को धो रहा हूं, परन्तु यह निश्चय समझो कि विहित कर्म के न करने से उसके पाप में जलते हैं ।।२१।। जैसे अपकार करने वाला विष औषधि रूप में मनुष्य का उपकार करने वाला होता है, वैसे ही यह अविद्या भी मनुष्य के लिये उपकारिणी होती है, अन्य गुण वाला होने पर भी अनुष्ठित कार्य उचित उपाय के द्वारा हमारे लिये कल्याण-प्रद होता है ।।२२।। हे पुत्र ! इसलिये तुम अब विवाह कर लो, जिससे सांसारिक धर्म की प्राप्ति न होने से तुम्हारा जन्म असफल न हो ।।२३।।

८८—रुचिकृत पुत्रस्तव

सतेनपितृवाक्येनभृशमुद्विग्नमानसः ।
कन्याभिलाषीविप्रर्षिःपरिबभ्राममेदिनीम् ।।१
कन्यामलभमानोऽसौपितृवाक्याग्निदीपितः ।
चिन्तामवापमहतीमतीवोद्विग्नमानसः ।।२
किंकरोमिक्वगच्छामिकथंमेदारसंग्रहः ।
क्षिप्रंभवेत्पितृणांयोममभ्युदयकारकः ।।३

इति चिन्तयतस्तस्य मतिर्जाता महात्मनः ।
तपसाराधयाम्यन ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥४
ततो वर्षशतं दिव्यं तपस्तेपे सुवर्चसम् ।
दिदृक्षुर्मुनिरव्यग्रः परं नियममास्थितः ॥५
ततः स्वदर्शयामास ब्रह्मा लोकपितामहः ।
उवाच तं प्रसन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवाञ्छितम् ॥६
ततोऽसौ प्रणिपत्याह ब्रह्माणं जगतां गतिम् ।
पितृणां वचनात्तेन यत्कर्तुमभिवाञ्छितम् ।
ब्रह्मा चाह रुचिं विप्रं ज्ञात्वा तस्याभिवाञ्छितम् ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—ब्रह्मर्षि रुचि ने पितरों का ऐसा मन्तव्य सुन कर उद्विग्न चित्त से कन्या की इच्छा की ओर इसके लिए पृथिवी में विचरण करने लगे ॥१॥ पितरों की वाणी रूपी अग्नि में तपने के पश्चात् कन्या प्राप्त न होने से उन्हें बड़ी चिन्ता हुई ॥२॥ पितरों का अभ्युदय करने वाला मेरा विवाह कार्य किस प्रकार से शीघ्रता पूर्वक सम्पन्न हो ? इसके लिये मुझे क्या करना और कहाँ जाना चाहिये ? ॥३॥ इस प्रकार चिन्ता करते करते उन्होंने निश्चय किया कि 'मुझे तपस्या के द्वारा भगवान् ब्रह्माजी की आराधना करनी चाहिए ॥४॥ ऐसा निश्चय कर ब्रह्माजी को प्रसन्न करने के लिये विधिवत् दिव्य सौ वर्ष तक तप किया ॥५॥ तब ब्रह्माजी उनके समक्ष साक्षात् रूप में प्रकट हुए और रुचि से उन्होंने कहा—मैं प्रसन्न हुआ हूँ तुम अपना इच्छित वर माँगो ॥६॥ यह सुनकर रुचि ने ब्रह्माजी को प्रणाम किया और पितरों के आदेशानुसार जो कामना की है वह उनसे निवेदन की, तब रुचि की इच्छा जान कर ब्रह्माजी बोले ॥७॥

प्रजापतिस्त्वं भविता स्रष्टव्या भवता प्रजाः ।
सृष्ट्वा प्रजाः सुतान्विप्र समुत्पाद्य क्रियास्तथा ॥८
कृत्वा कृताधिकारस्त्वं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ।
स त्वं यथोक्तं पितृभिः कुरु दारपरिग्रहम् ॥९

कामंचेममभिध्यायक्रियतांपितृपूजनम् ।
तएवतुष्टाःपितरःप्रदास्यन्तितवेप्सितान् ।
पत्नींसुतांश्चसन्तुष्टाः किनदद्युःपितामहाः ॥१०
इत्यृषेर्वचनंश्रुत्वाब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
नद्याविविक्तेपुलिनेचकारपितृतर्पणम् ॥११
तुष्टावचपितृन्विप्रःस्तवैरेभिस्तथादृतः ।
एकाग्रःप्रयतोभूत्वाभक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥१२
नमस्येऽहंपितृञ्छ्राद्धेयेवसन्त्यधिदेवताः ।
देवैरपिहितर्प्यन्तेयेचश्राद्धेस्वधोत्तरैः ॥१३
नमस्तेऽहंपितृन्स्वर्गेयेतर्प्यन्तेमहर्षिभिः ।
श्राद्धेर्मनोमयैर्भक्त्याभुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥१४

उन्होंने कहा—हे ब्रह्मन् ! तुम प्रजा को उत्पन्न करने वाले प्रजापति जब तुम प्रजा की सृष्टि और सन्तानोत्पत्ति करके समस्त क्रिया ॥८॥ करके अधिकार से च्युत होजाओगे, तब तुम्हें सिद्धि की प्राप्ति होगी इसीलिये पितर गण तुम्हें विवाह करने का आदेश देते हैं ॥६॥ इसे अपना कर्त्तव्य मानकर पितरों का पूजन करो, वह सन्तुष्ट होकर तुम्हें इच्छित पत्नी और पुत्र देंगे ? सन्तुष्ट हुए पितर गण क्या नहीं दे सकते ? ॥१०॥ मार्कंडेयजी ने कहा—अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी का ऐसा आदेश पाकर रुचि ने नदी के निर्जन तट पर पितरों का तर्पण किया ॥११॥ उन्होंने अत्यन्त आदर पूर्वक, एकाग्रचित्त से, भक्तिभाव के द्वारा मस्तक झुका कर स्तोत्र के द्वारा पितरों को प्रसन्न किया ॥१२॥ रुचि ने कहा—श्राद्ध काल में जो अधिदेवता रूप से निवास करते हैं और श्राद्ध में देवगण भी स्वाहा कह कर जिनका तृप्ति-विधान करते हैं, उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूं, ॥१३॥ जिन्हें महर्षि गण भुक्ति-मुक्ति की कामना युक्त श्राद्ध में तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥१४॥

नमस्येऽहंपितृन्स्वर्गेसिद्धाःसन्तर्पयन्तियान् ।
श्राद्धेपुदिव्यैःसकलैरुपहारैरनुत्तमैः ॥१५

नमस्येऽहं पितृन्मर्त्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
श्राद्धेषु श्रद्धयाभीष्टलोकप्राप्तिप्रदायिनः ॥१७
नमस्येऽहं पितृन्विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिनः ॥१८
नमस्येऽहं पितृन्ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः ।
वन्यैः श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकिल्बिषैः ॥१९
नमस्येऽहं पितृन्विप्रैर्नैष्ठिकव्रतचारिभिः ।
ये संयतात्मभिर्नित्यं सन्तर्प्यन्ते समाधिभिः ॥२०
नमस्येऽहं पितृञ्छ्राद्धै राजन्यास्तर्पयन्ति यान् ।
कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकद्वयफलप्रदान् ॥२१

जिन पितरों को सिद्ध स्वयं में श्राद्ध के समय सभी दिव्य उपहारों से तृप्त करते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूं ॥१५॥ जिन पितरों का मत्युत्कृष्ट समृद्धि की कामना वाले गुह्यकगण भक्ति से तन्मय होकर पूजन करते हैं, उन पितरों को मेरा नमस्कार है ॥१६॥ मर्त्यलोक के निवासी मनुष्यगण इच्छित लोकों के दाता जिन पितरों की श्राद्ध में श्रद्धा सहित पूजा करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥१७॥ जो पितरगण प्राजापत्य पद प्रदान करने वाले हैं, वे ब्राह्मणों के द्वारा इच्छित विषय की प्राप्ति के निमित्त पूजे जाते हैं, मैं उन्हें नमस्कार करता हूं ॥१८॥ जिन वन वासियों के पाप मिताहार और तपस्या के कारण क्षीण होगये हैं, वे वन्य श्राद्ध द्वारा जिन पितरों को तृप्त करते हैं, उन्हें मेरा नमस्कार है ॥१९॥ संयतात्मा नैष्ठिक ब्रह्मचारी विप्र जिन पितरों को समाधि द्वारा तृप्त करते हैं, उन्हें मेरा नमस्कार है ॥२०॥ तीनों लोकों में फल देने वाले जिन पितरों को क्षत्रियगण श्रद्धा पूर्वक कव्य देकर तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥२१॥

नमस्येऽहं पितृन्वैश्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
स्वकर्माभिरतैर्नित्यं पुष्पधूपान्नवारिभिः ॥२२
नमस्येऽहं पितृञ्छ्राद्धे यैः शूद्रैरपि भक्तितः ।
सन्तर्प्यन्ते जगत्यत्र नाम्ना ज्ञाताः सुकालिनः ॥२३

नमस्येऽहंपितृञ्छ्राद्धैःपातालेयेमहासुरैः ।
सन्तर्प्यन्तेस्वधाहारास्त्यक्तदम्भमदैःसदा ॥२४
नमस्येऽहंपितृञ्छ्राद्धैरर्च्यन्तेयेरसातले ॥
भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैःकामानभीप्सुभिः ॥२५
नमस्येऽहंपितृञ्छ्राद्धैःसर्पैःसन्तर्पितान्सदा ।
तत्रैवविधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैः ॥२६
पितृन्नमस्येनिवसन्तिसाक्षाद्येदेवलोकेचतथान्तरिक्षे ।
महीतलेयेचसुरादिपूज्यास्तेमेप्रतीच्छन्तुमयोपनीतम् ॥२७
पितृन्नमस्येपरमात्मभूतायेवैविमानेनिवसन्तिमूर्त्ताः ।
यजन्तियानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥२८

अपने कर्म में लगे हुए वैश्य जिन पितरों को पुष्प, धूप, अन्न और जल के द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२२॥ इस संसार में जिन सुकालीन नामक प्रसिद्ध पितरों को शूद्रगण श्रद्धा भक्ति पूर्वक तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥२३॥ जिन स्वधाहारी पितरों को, पातालवासी महाअसुर दम्भ और मद का त्याग करके श्राद्ध के द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥२४॥ काम की अभिलाषा वाले नागवंशीय रसातल में जिन पितरों को अशेष भोग और श्राद्ध से सदा तृप्त करते हैं, उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२५॥ जिन पितरों को वे सर्पगण मन्त्र, भोग और सम्पत्ति से युक्त होकर श्राद्ध द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार करता हूँ ॥२६॥ जो पितरगण देवलोक और अन्तरिक्ष में प्रत्यक्ष-रूप से रहते हैं और भूतल में देवताओं द्वारा जिनका अर्चन किया जाता है, उनको नमस्कार है, वह मेरी प्रार्थना स्वीकार करें ॥२७॥ जो परम आत्मभूत पितर विमान में साक्षात् रूप से निवास करते हैं, तथा जिन पितरों की क्लेश नाशिनी वाणी द्वारा यज्ञ में आराधना करते हैं, उन्हें प्रणाम करता हूँ ॥२८॥

पितृन्नमस्येदिवियेचमूर्त्ताःस्वधाभुजःकाम्यफलाभिसन्धौ ।
प्रदानशक्ताःसकलेप्सितानांविमुक्तिदायेऽनभिसंहितेषु ॥२९

तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितर समस्ताइच्छावतायेप्रदिशन्तिकामान् ।
सुरत्वमिन्द्रत्वमतोऽधिकवासुतान्पशून्स्वानिवलगृहाणि ॥३०
सोमस्ययेरश्मिपुयेऽर्कविम्बेशुक्लेविमानेचसदावसन्ति ।
तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैगंन्धादिनापुष्टिमितोव्रजन्तु ॥३१
येषाहुतेऽग्नौहविपाचतृप्तिर्येभुञ्जतेविप्रशरीरसस्था ।
येपिण्डदानेनमुदप्रयान्तितृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयै ॥ ३२
कव्यान्यशेषाणिचयान्यभीष्टान्यतीवतेषाममरार्चितानाम् ॥३३
तेषातुमान्निध्यमिहास्तुपुष्पगन्धान्नभोज्येपुमयाकृतेपु ॥३४
दिनेदिनेयेप्रतिगृह्णतेऽर्चामासातपूज्याभुवियेऽष्टकासु ।
येवत्सरातेऽभ्युदयेचपूज्या प्रयान्तुतेमेपितरोऽत्रतृप्तिम् ॥३५॥

जो स्वर्ग में मूर्तिमान् रहकर काम्यफल के निमित्त स्वधा का आहार करते हैं और प्राणियों को इच्छित प्रदान करने में समर्थ हैं तथा निष्काम कर्म में मोक्ष प्रदान करते हैं, उन पितरों को प्रणाम है ॥२६॥ जो प्राणियों को वांछित वस्तु प्रदान करते हैं और जो देवत्व, इन्द्रत्व अथवा इससे भी बढ़ कर तथा जो पुत्र, पशु, धन, बल, घर आदि कामना के अनुसार देते हैं, वह पितरगण मेरे इस पूजन से तृप्ति को प्राप्त हों ॥३०॥ जो पितरगण सोम-किरणों, सूर्य-बिम्ब और श्वेत विमान में निवास करते हैं, वह मेरे द्वारा तृप्त किये हुए अन्न, जल, गन्धादि से पुष्टि को प्राप्त हों ॥३१॥ जो अग्नि में घृत की आहुति देने से तृप्ति को प्राप्त होते हैं। जो ब्राह्मण के देह में प्रविष्ट होकर भोजन-ग्रहण करते हैं तथा जो पिण्डदान से सतुष्ट होते हैं, वह पितरगण इस अन्न और जल के द्वारा सन्तुष्ट हों ॥३२-३३॥ देवताओं द्वारा पूजित उन पितरों के लिए जो कव्य अभीष्ट हैं, उन्हीं पुष्प, गन्ध, अन्नादि पदार्थों का मैंने संग्रह किया है, वह इनके निकट आवें ॥३४॥ जो नित्यप्रति पूजा ग्रहण करते और प्रतिमास अष्टका में पूजे जाते हैं, तथा वर्ष के अन्त में जिनका पूजन होता है, वह पितरगण मेरे इस पूजन द्वारा तृप्त हों ॥३५॥

पूज्याद्विजानांकुमुदेन्दुभासोयेक्षत्रियाणांचनवार्कवर्णाः ।
तथाविशांयेकनकावदातानीलोनिभाःशूद्रजनस्ययेच ॥३६
तेऽस्मिन्समस्ताममपुष्पगंधधूपान्नतोयादिनिवेदनेन ।
तथाग्निहोमेनचयांतुतृप्तिंसदापितृभ्यःप्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३७
येदेवपूर्व्वाण्यतितृप्तिहेतोरश्नन्तिकव्यानिशुभाहुतानि ।
तृप्ताश्चयेभूतिसृजोभवंतितृप्यन्तुतेस्मिन्प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३८
रक्षांसिभूतान्यसुरांस्तथोग्रान्निर्नाशयन्तस्त्वशिवंप्रजानाम् ।
आद्याःसुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यंतुतेऽस्मिन्प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३९
अग्निष्वात्तार्बहिषदआज्यपाःसोमपास्तथा ।
व्रजंतुतृप्तिंश्राद्धेऽस्मिन्पितरस्तर्पितामया ॥४०
अग्निष्वात्ताःपितृगणाःप्राचींरक्षन्तुमेदिशम् ।
तथार्बहिषदःपान्तुयाम्यांयेपितरःस्मृताः ॥४१
प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपिसोमपाः ।
रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः ॥४२

जो पितरगण श्वेत वर्ण वाले और प्रभा से सम्पन्न होकर देवताओं के द्वारा पूजनीय होते हैं तथा नवोदित सूर्य के समान रक्त वर्ण वाले होकर क्षत्रियों के द्वारा पूजित होते हैं जो स्वर्ण जैसी कान्ति वाले होकर वैश्यों द्वारा पूजे जाते हैं और नीलिमा रूप होकर शूद्रों द्वारा पूजनीय होते हैं ॥३६॥ वह सभी पितरगण मेरे द्वारा किये गये पुष्प, धूप, अन्न तथा जलादि की भेंट और अग्निहोत्र से तृप्त हों, उन पितरों को मेरा प्रणाम है ॥३७॥ जो अत्यन्त तृप्ति के लिये देवताओं के समक्ष होमे गये सब श्रेष्ठ अन्न रूप कव्य का आहार करके तृप्त होते और अणिमादि आठों सिद्धियाँ प्रकट करते हैं, वह मेरे द्वारा तृप्ति को प्राप्त हों, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ ॥३८॥ जो पितरगण राक्षस, भूत और विकराल असुरों को नष्ट करने वाले और अमंगल को मिटाने वाले हैं तथा जो देवताओं के आदि पुरुष और इन्द्र के पूजनीय हैं, वह पितरगण मेरे द्वारा तृप्त हों, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ ॥३९॥ अग्निष्वात्ता, बर्हिषद,

आज्यपा और सोमपा पितरगण मेरे द्वारा तपण को प्राप्त होकर इस श्राद्ध म तृप्त हो ॥४०॥ अग्निष्वात्ता पितर पूर्व दिशा म मेरी रक्षा करें और बर्हिषद पितृ दक्षिण दिशा म रक्षा करें ॥४१॥ आज्यपा पितर पश्चिम दिशा म तथा सोमपा पितृ उत्तर दिशा म राक्षस, भूत, पिशाच और असुरो द्वारा उत्पन्न किय उपद्रव स रक्षा करें ॥४२॥

मर्वतश्चाधिपस्तषायमोरक्षाकरोतुमे ।
विश्वोविश्वभुगाराध्योधर्म्मोधन्य शुभानन ॥४३
भूतिदोभूतिकृद्भूतिपितृणायगणानव ।
कल्याण कल्यताकर्त्ताकल्य कल्पतराश्रय ॥४४
कल्पताहेतुरनघ पडिमेनेगणा स्मृता ।
वरोवरेण्योवरद पुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा ॥४५
विश्वपातातथाधातासप्त ह्येततथागणा ।
महान्महात्मामहितोमहिमावान्महावल ॥४६
गणा पञ्चतथैवंतेपितृणांपापनाशना ।
सुखदोधनदश्चान्योधर्मदोऽन्यश्चभूतिद ॥४७
पितृणांकथ्यतेचैतत्तथागणचतुष्टयम् ।
एकत्रिंशत्पितृगणायैर्व्याप्तमखिलजगत् ।
तमेऽनुतृप्तास्तुष्यन्तुयच्छन्तुचसदाहितम् ॥४८

जिन पितरो के विश्व, विश्वभुक आराध्य धर्म, धन्य, शुभानन भूतिद, भूतिकृत् और भूति यह नौ सम्यक गण हैं उनके अधिपति यम मेरी सब ओर से रक्षा करें कल्याण कल्यता, कर्त्ता कल्य, कल्पतराश्रय ॥४३-४४। कल्पता हेतु और अनघ यह छ प्रकार के गण जिन पितरो के हैं तथा जि पितरो के वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद ॥४५॥ विश्वपाता और धाता यह सात प्रकार के गण हैं तथा महान्, महात्मा, महित, महिमावान् महाबल ॥४६॥ यह पाँच प्रकार के गण जिन पितरों के हैं एवं सुखद, धनद, धर्म और भूतिदाता यह चार प्रकार के पितरो के गण हैं यह सब मिलाक

इकत्तीस पितरगण सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त किये हुए हैं, वह सभी मेरे द्वारा तृप्ति को प्राप्त होकर मेरी कामनाएं पूर्ण करें और मेरे लिये सदैव हितकारी हों ।।४८।।

८६—रुचि को पितरों का वरदान

एवंतुस्तुवतस्तस्यतेजसोराशिरुच्छ्रतः ।
प्रादुर्बभूवसहसागगनव्याप्तिकारकः ।।१
तद्दृष्ट्वासुमहत्तेजःसमासाद्यस्थितं जगत् ।
जानुभ्यामवनिंगत्वारुचिःस्तोत्रमिदंजगौ ।।२
अमूर्त्तानांचमूर्त्तानांपितॄणांदीप्ततेजसाम् ।
नमस्यामिसदातेषांध्यानिनांदिव्यचक्षुषाम् ।।३
इन्द्रादीनांचनेतारोदक्षमारीचयोस्तथा ।
सप्तर्षीणांतथान्येषांतान्नमस्यामिकामदान् ।।४
मन्वादीनांमुनीन्द्राणांसूर्याचन्द्रमसोस्तथा ।
तान्नमस्याम्यहंसर्वान्पितरश्चार्णवेषुये ।।५
नक्षत्राणांग्रहाणांचवाय्वग्न्योर्नभसस्तथा ।
द्यावापृथिव्योश्चतथानमस्यामिकृतांजलिः ।।६
देवर्षीणांग्रहाणांचसर्वलोकनमस्कृतान् ।
अक्षय्यस्यसदादातॄन्नमस्येऽहंकृतांजलिः ।।७

मार्कण्डेय जी कहा—रुचि के द्वारा इस प्रकार स्तवन किये जाने पर उनके समीप उच्च शिखायुक्त और आकाश व्यापी तेज सहसा प्रकट हुआ ।।१।। उस तेज को सम्पूर्ण विश्व को आच्छादित करके अवस्थित देखा तो रुचि ने जानु से पृथिवी को स्पर्श करके इस स्तोत्र का कीर्तन किया ।।२।। रुचि बोले—उन ध्यान सम्पन्न, दिव्य नेत्र, दीप्त तेज, निराकार एवं पूजितपितरों को मैं

नमस्कार करता हूँ ॥३॥ दक्ष, मरीचि, सप्तर्षि तथा इन्द्रादि के नेता स्वरूप काम के देने वाले पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४॥ मनु इत्यादि मुनीश्वरों तथा सूर्य-चन्द्रमा के नेता और काम के प्रदान करने वाले, समुद्र और जल में अवस्थित उन सभी पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥ नक्षत्र, ग्रह वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग और पृथिवी के नेता तथा काम प्रदायक पितरों को हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ ॥६॥ देवर्षियों के उत्पत्ति कर्त्ता, अक्षय फल के दाता और सब लोकों द्वारा नमस्कार किये जाने वाले पितरों को करबद्ध प्रणाम करता हूँ ॥७॥

प्रजापते कश्यपायसोमायवरुणायच ।
योगेश्वरेभ्यश्चसदानमस्यामिकृतांजलि ॥८
नमोगणेभ्य सप्तभ्यस्तथालोकेषुसप्तसु ।
स्वयभुवेनमस्यामिब्रह्मणेयोगचक्षुषे ॥९
सोमाधारान्पितृगणान्योगमूर्तिधरांस्तथा ।
नमस्यामितथासोमपितरजगतामहम् ॥१०
अग्निरूपांस्तथवान्यान्नमस्यामिपितृनहम् ।
अग्नीषोममयविश्वयतएदशेषत. ॥११
येतुतेजसियेचैतेसोमसूर्य्याग्निमूर्त्तयः ।
जगत्स्वरूपिणश्चैवतथाब्रह्मस्वरूपिण ॥१२
तेभ्योऽखिलेभ्योयोगिभ्य पितृभ्योयतमानस. ।
नमोनमोनमस्तेमेप्रसीद तुस्वधाभुजः ॥१३

प्रजापतियों म कश्यप और सोम, वरुण तथा योगेश्वर स्वरूप हैं, उन पितरों को मैं हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हू ॥८॥ जो सात लोकों मे सात गणों के मध्य स्थित हैं, उन्हें तथा जो योग-चक्षु स्वयम् ब्रह्मा स्वरूप हैं, उन पितरों को प्रणाम करता हू ॥९॥ जो पितर सोम के आधार, योगमूर्ति, सोम-रूप एवं जगत्पिता हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१०॥ जिन अशेष पितरों के द्वारा अग्नि सोम और जगत् उत्पन्न हुआ है, उन अग्नि रूपी अन्यान्य

सभी पितरगण को मैं प्रणाम करता हूँ ॥११॥ जो चन्द्र, सूर्य, अग्नि रूपी तेज में स्थित होकर विश्व स्वरूप और ब्रह्मस्वरूप हैं उन समस्त योगी पितरों को मैं अपने संयत मन के द्वारा वारम्वार नमस्कार करता हूं, वे स्वधा का आस्वादन करने वाले पितर मुझ पर प्रसन्न हों ॥१२-१३॥

एवंस्तुतास्ततस्तेनतेजसामुनिसत्तम ।
निश्चक्रमुस्तेपितरोभासयन्तोदिशोदश ॥१४
निवेदितंचयत्तेनपुष्पगंधानुलेपनम् ।
तद्भूषितानथसतान्ददृशेपुरतःस्थितान् ॥१५
प्रणिपत्यपुनर्भक्त्यापुनरेवकृतांजलिः ।
नमस्तुभ्यंनमस्तुभ्यमित्याहपृथगादृतः ॥१६
ततःप्रसन्नाःपितरस्तमूचुर्मुनिसत्तमम् ।
वरंवृणीष्वेतिसतानुवाचानतकंधरः ॥१७
सम्प्रतसर्गकर्तृत्वमादिष्टंब्रह्मणामम ।
सोऽहंपुत्रीमभीप्सामिधन्यांदिव्यांप्रजावतीम् ॥१८
अद्यैवसद्यःपत्नीतेभवत्वतिमनोरमा ।
तस्यांचपुत्रोभविताभवतोमनुरुत्तमः ॥१९
मन्वन्तराधिपोधीमांस्त्वन्नाम्नैवोपलक्षितः ।
रुचेरौच्यइतिख्यातियोयास्यतिजगत्त्रये ॥२०
तस्यापिवहवःपुत्रामहाबलपराक्रमाः ।
भविष्यन्तिमहात्मानःपृथिवीपरिपालकाः ॥२१

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे मुनिवर ! रुचि के द्वारा इस प्रकार स्तवन किये जाने पर दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए पितरगण प्रकट हुए ॥१४॥ फिर उन्हें जो पुष्प, गंध कव्यादि अर्पण किया गया था, उससे विभूषित हुए पितरों को रुचि ने अपने सामने आते हुए देखा ॥१५॥ तब वह भक्ति सहित हाथ जोड़ कर प्रणाम पूर्वक सब को नमस्कार करने लगे ॥१६॥ फिर पितरों ने प्रसन्न होकर मुनिवर रुचि से कहा—वर माँगो, इस पर रुचि ने ग्रीवा नीची

करके उनसे निवेदन किया ॥१७॥ रुचि बोले—मुझे ब्रह्माजी ने सृष्टि उत्पन्न करने का आदेश दिया है, इसलिए मैं अब सन्तानोत्पत्ति के निमित्त भार्या प्राप्त करना चाहता हू ॥१८॥ पितरो ने कहा—हे वत्स ! तुम्हें अभी इसी स्थान में मनोहारिणी भार्या की प्राप्ति होगी उसके गर्भ से तुम्हारे श्रेष्ठ मनु पुत्र की उत्पत्ति होगी ॥१९॥ हे रुचे ! तुम्हारा वह पुत्र बुद्धिमान् मन्वन्तराधिपति होगा और तुम्हारे नाम के अनुसार ही उसकी ख्याति होगी अर्थात् वह 'रौच्य' नाम से विश्व मे विख्यात होगा ॥२०॥ फिर उस रौच्य के भी महाबली, पराक्रमी, पृथिवी का पालन करने वाले बहुत से महात्मा पुत्र उत्पन्न होवे ॥२१॥

त्वचप्रजापतिर्भूत्वाप्रजा सृष्ट्वाचतुर्विधा ।
क्षीणाधिकारोधर्मज्ञतत सिद्धिमवाप्स्यसि ॥२२
स्तोत्रेणानेनचनरोऽस्मांस्तोष्यतिभक्तित ।
तस्यतुष्टावयभोगानात्मज्ञानतयोत्तमम् ॥२३
शरीरारोग्यमर्थंचपुत्रपौत्रादिकन्तथा ।
प्रदास्यामोनसदेहोयच्चान्यदभिवाञ्छितम् ॥२४
तस्मात्पुण्यफललोकेवाञ्छद्भि सततनरं ।
पितृणाचाक्षयातृप्तिस्तव्या स्तोत्रेणमानवै ॥२५
वाञ्छद्भि सततस्तव्या स्तोत्रेणानेनवैयत ।
श्राद्धेवयइमभक्त्याअस्मत्प्रीतिकरस्तवम् ॥२६
पठिष्यतिद्विजाग्याणांभु जतामपुरत स्थित ।
स्तोत्रश्रवणसप्रीत्यासन्निधानेपरेकृते ॥२७
अस्माकमक्षयश्राद्ध तद्भविष्यत्यसशयम् ।
यद्यप्यश्रोत्रियश्राद्ध यद्यप्युपहतभवेत् ॥२८

तुम भी प्रजापति होकर चार प्रकार की प्रजा उत्पन्न करोगे और जब धर्म ज्ञाता तथा अधिकार से क्षीण होगे तब तुम्हें सिद्धि की प्राप्ति होगी ॥२२॥ जो मनुष्य इस स्तोत्र के सहित भक्ति भाव पूर्वक हमारा स्तवन करेगे, हम

उन पर संतुष्ट होंगे और उन्हें भोग तथा श्रेष्ठ आत्मज्ञान प्रदान करेंगे ॥२३॥ जो शरीर की आरोग्यता, धन, पुत्र-पौत्रादि की कामना अथवा अन्यान्य अभिलाषा करेंगे वह इस स्तोत्र के द्वारा हमारी स्तुति करने पर, हम से अभीष्ट पदार्थ प्राप्त करेंगे ॥२४॥ इसलिए संसार में पुण्यफल प्राप्ति की कामना वाले मनुष्यों को इस स्तोत्र के द्वारा पितरों की अक्षय तृप्ति करनी उचित है ॥२५॥ जो हमें प्रसन्न करना चाहें, वह इस स्तोत्र का निरन्तर पाठ करें, श्राद्ध के समय भोजन करते हुए ब्राह्मणों के समक्ष स्थित होकर जो मनुष्य हमारी प्रीति उत्पन्न करने वाले ॥२६॥ इस स्तोत्र को भक्तिपूर्वक पाठ करेगा और स्तोत्र सुनने से उत्पन्न हुई प्रीति के द्वारा निकट में स्थित को इष्ट मानेगा, उसके द्वारा हमारा अक्षय श्राद्ध अवश्य ही सम्पन्न होगा। यदि श्राद्ध श्रोत्रिय रहित अथवा दोष युक्त हो ॥२७॥

अन्यायोपार्त्तवित्तेन यदि वा कृतमन्यथा ।
अश्राद्धार्हैरुपहृतैरुपहारैस्तथाकृतम् ॥२९

अकालेऽप्यथवाऽदेशे विधिहीनमथापि वा ।
अश्रद्धया वा पुरुषैर्दम्भमाश्रित्य वा कृतम् ॥३०

अस्माकं तृप्तये श्राद्धं तथाप्येतदुदीरणाद् ।
यत्र तत्र पठते श्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम् ॥३१

अस्माकं जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी ।
हेमन्ते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत्प्रयच्छति ॥३२

शिशिरे द्विगुणाब्दां च तृप्तिं स्तोत्रमिदं शुभम् ।
वसन्ते षोडश समास्तृप्तये श्राद्धकर्मणि ॥३३

ग्रीष्मे च षोडशैवैतत्पठितं तृप्तिकारकम् ।
विकलेऽपि कृते श्राद्धे स्तोत्रेणानेन साधिते ॥३४

वर्षासु तृप्तिरस्माकमक्षया जायते रुचे ।
शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति ॥३५

अस्माकमेतत्पुरुषस्तृप्तिर्वचदशाब्दिकीम् ।
यस्मिन्गृहेचलिखितमेतत्तिष्ठतिनित्यदा ॥३६

सन्निधानकृतेश्राद्धे तत्रास्माकभविष्यति ।
तस्मादेतत्त्वयाश्राद्धे विप्राणांभुञ्जतपुरः ॥३७

या अन्याय द्वारा उत्पादित धन के द्वारा किया जाय या असमय में, विपरीत स्थान मे या अविधि से, अश्रद्धा पूर्वक अथवा दूषित उपहार से इंभी मनुष्यो के द्वारा सम्पन्न किया जाय ॥२८-२९-३०॥ तो भी इस स्तोत्र का पाठ होने से यह श्राद्ध मे तृप्ति देने वाला होगा, जिस श्राद्ध मे हमे सुखी करने वाले इस स्तोत्र का पाठ होता है ॥३१॥ उस श्राद्ध से हमें बारह वर्ष तक तृप्ति रहती है, या हमन्त काल में यह स्तोत्र हमे बारह वर्ष तक तृप्ति देने वाला होता है ॥३२॥ शिशिर ऋतु मे यह स्तोत्र चौबीस वर्ष तक और बसंत ऋतु मे करने पर सोलह वर्ष तक तृप्ति दायक होता है ॥३३॥ ग्रीष्मकाल में इस स्तोत्र के पाठ पूर्वक श्राद्ध करने से सोलह वर्ष तक तृप्ति रहती है, किसी कारणवश श्राद्ध दूषित हो तो इस स्तोत्र के पाठ से श्रेष्ठ हो जाता है ॥३४॥ हे रुचे ! वर्षाऋतु मे श्राद्ध के समय इस स्तोत्र के पढने से हमारी अक्षय तृप्ति होती है, यदि शरद् ऋतु मे इस स्तोत्र के पाठ सहित श्राद्ध का द्रव्य अर्पण करे तो पन्द्रह वर्ष तक तृप्ति होती है, जिस घर मे यह स्तोत्र लिखा हुआ श्रेष्ठ स्थान पर रखा रहता है, उस घर में श्राद्ध करने से हमारी सन्निधि प्राप्त होती है, अर्थात् हम उस घर मे उस समय उपस्थित रहते हैं, इसलिये तुम श्राद्ध मे भोजन करते हुए ब्राह्मणो के सम्मुख हमारे इस स्तोत्र को पढ़ कर सुनाओ। इससे हमारी पुष्टि होगी। इस प्रकार रुचि को समझा कर पितृगण स्वर्ग को चले गये ॥३५-३८॥

९०—रौच्य मनु का जन्म

ततस्तस्मान्नदीमध्यात्समुत्तस्थौमनोरमा ।
प्रम्लोचानामतन्वङ्गीतत्समीपेवराप्सरा ॥१

साचोवाचमहात्मानंरुचिंसुमधुराक्षरम् ।
प्रश्रयावनतासुभ्रूःप्रम्लोचावैवराप्सराः ॥२
अतीवरूपिणीकन्यामत्सुतातपतांवर ।
जातावरुणपुत्रेणपुष्करेणमहात्मना ॥३
तांगृहाणमयादत्तांभार्य्यार्थेवरवर्णिनीम् ।
मनुर्महामतिस्तस्यांसमुत्पत्स्यतितेसुतः ॥४
तथेतितेनसाऽप्युक्तातस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम् ।
उज्जहारततःकन्यांमालिनींनामनामतः ॥५
नद्याश्चपुलिनेतस्मिन्सरुचिर्मुनिसत्तमः ।
जग्राहपाणिविधिवत्समानाय्यमहामुनीन् ॥६
तस्यांतस्यसुतोजज्ञेमहावीर्योमहामतिः ।
रौच्योऽभवत्पितुर्नाम्नाख्यातोऽत्रवसुधातले ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर उस नदी में से प्रम्लोचना नाम की एक अप्सरा बाहर आई और उन रुचि नामक मुनि से कहने लगी—हे महात्मन् ! मेरी मालिनी नामक एक कन्या है जो वरुण देव के पुत्र श्रीमान् पुष्कर द्वारा उत्पन्न की गई है। उस अत्यन्त रूपवती सुशील कन्या रत्न को मैं आपको अर्पित करती हूं। आप उसे भार्या रूप में ग्रहण करके गृहस्थी बनिये (उसके गर्भ से आपका जो पुत्र उत्पन्न होगा वही आगामी मन्वन्तर में मनु बनेगा। (१ से ४) मार्कण्डेयजी कहने लगे कि उस अप्सरा के ऐसे वचन सुनकर रुचि ने उसे स्वीकार कर लिया और उसी नदी के तट पर महामुनियों को एकत्र करके उस मालिनी कन्या से विधिवत् विवाह कर लिया। कुछ काल उससे जो महापराक्रमी और वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ वह अपने पिता के नाम के अनुसार रौच्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥७॥

तस्यमन्वन्तरेदेवास्तथासप्तर्षयश्चये ।
तनयाश्चनृपाश्चैवतेसम्यक्कथितास्तव ॥८
धर्मवृद्धिस्तथारोग्यंधनधान्यसुतोद्भवः ।
नृणांभवत्यसन्दिग्धमस्मिन्मन्वंतरेश्रुते ॥९

पितृस्तर्वतथाश्च स्वापितृणांचतथागणान् ।
सर्वान्कामानवाप्नोतितत्प्रसादान्महामुने ॥१०

इस रोच्य नामक मन्वन्तर के देवता, सप्तर्षि और समस्त राजाओं तथा उनके पुत्रों के विषय में पहले बतलाया जा चुका है ॥८॥ इस मन्वन्तर की कथा सुनने से धर्म की वृद्धि होती है, आरोग्य, धन, धान्य और पुत्र की प्राप्ति होती है। जो पितरों की स्तुति और उनके गुणों को श्रद्धा पूर्वक श्रावण करता है उनकी सभी अभिलाषायें पूरी होती हैं ॥९-१०॥

९१—भौत्य मन्वन्तर आरम्भ

ततः परं तुभौत्यस्यसमुत्पत्तिनिशामय ।
देवानृषीस्तथापुत्रांस्तथैववसुधाधिपान् ॥१
बभूवाङ्गिरसः शिष्योभूतिर्नाम्नातिकोपनः ।
चण्डशापप्रदोऽल्पेऽप्यपराधेमुनिरागस्यसौम्यवाक् ॥२
तस्याश्रमेमातरिश्वानववावतिनिष्ठुरम् ।
नातितापरविश्चक्रेपर्जन्योनातिकर्दमम् ॥३
नातिशीतकरीतासुःपरिपूर्णोऽपिरश्मिभिः ।
चकारभीत्याहीतस्यकोपनस्यातितेजसः ॥४
ऋतवश्चक्रमंतयस्त्वावृणोत्याश्रमजन्मसु ।
तस्यपुष्पफलनम्रा तयासार्वकालिकम् ॥५
कुरुरापश्च छन्देनतस्याश्रमसमीपगाः ।
चमण्डलुगताश्चैवतस्यभीताम्हात्मनः ॥६
नातिक्लेशसहोविप्र सोऽभवत्कोपनोभृशम् ।
अपुत्रश्चमहाभाग सतपस्यकरोन्मनः ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—"ततःपरम्" भौत्य नामक मनु के उत्पन्न होने और उनके मन्वन्तर के सुरगण, ऋषि और उनके नृप पुत्रों का वर्णन सुनो ॥१॥

महर्षि अङ्गिरा के भूति मुनि शिष्य थे, जो कि क्रोधी और क्षणिक अपराध पर ही घोर शाप देते थे एवं अनजाने ही निरपराधी को उनके कटु वचनों का सामना करना पड़ता था ॥२॥ उन क्रोधी और तेजस्वी का ऐसा भय छाया हुआ था कि उनके आश्रम में वायु सरल स्वभाव बहती थी, सूर्य असहनीय ऊष्णता नहीं देते थे, इन्द्र अनपेक्षित वर्षा नहीं करते थे ॥३॥ पूर्ण चन्द्रमा अपनी चाँदनी से शीत प्रदान नहीं करता था एवं उनके भय से असहनीय शीत नहीं होता था ॥४॥ ऋतुऐं भी उनकी आज्ञा का पालन करते हुए सभी ऋतुओं में सभी प्रकार के फल पुष्प उनके आश्रम की वृक्षावलियों में उत्पन्न करती थीं ॥५॥ ऋषि भूति के भय से आश्रम के समीप बहता हुआ जल भी उनकी इच्छानुसार क्षणमात्र में उनके कमण्डलु में आ जाता था ॥६॥ हे ब्राह्मण ! वह महा क्रोधी ऋषि किसी बाधा को सहन नहीं करते थे, चूंकि उनके पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ इस कारण वह तपस्या में लीन हुए ॥७॥

पुत्रकामोयताहारःशीतवातानलाहतः ।
तपस्यामिविचिन्त्येतितपस्येवमनोदधे ॥८
तस्येन्दुर्नातिशीतांशुर्नातितापायभास्करः ।
अभवन्मातरिश्वाचववौनातिमहामुने ॥९
आपीड्यमानोद्वन्द्वैश्चसभूतिर्मुनिसत्तमः ।
अनवाप्याभिलाषंतंतपसःसन्न्यवर्त्तत ॥१०
तस्यभ्रातासुवर्च्चाऽभूद्यज्ञेतेनाभिमन्त्रितः ।
यियासुःशान्तिनामानंशिष्यमाहमहामतिम् ॥११
प्रशान्तमक्षप्रतिमंविनीतंगुरुकर्मणि ।
सदोद्युक्तंशुभाचारमुदारंमुनिसत्तमम् ॥१२
अहंयज्ञंगमिष्यामिभ्रातुःशान्तेसुवर्च्चसः ।
तेनाहूतस्त्वयाचेहयत्कर्त्तव्यंश्रृणुष्वतत् ॥१३
अतिजागरणंवह्नेस्त्वयाकार्य्यंममाश्रमे ।
तथातथाप्रयत्नेनयथाग्निर्नशमंव्रजेत् ॥१४

पुत्र की इच्छा से तपस्या करने वाले उन महात्मा ने संयत आहार एवं शीत, वायु व अग्नि की वेदना सहकर भी तपस्या करने का व्रत लिया और अन्तत तपस्या में ही चित्त लगाया ॥८॥ हे महर्षि ! उनके तपस्या-काल मे भी भयभीत चन्द्रमा शीत एवं सूर्य असहनीय उष्णता नहीं देते थे तथा वायु भी समता में मन्द-मन्द मे स्वाभाविक बहती थी ॥९॥ वह ऋषि श्रेष्ठ भूति शीत एवं ताप दोनों ही से पीड़ित रहकर अपनी मनोकामना प्राप्त न कर सके, तो उन्होंने तपस्या त्याग दी ॥१०॥ उनके एक भाई सुवर्चा ने उनको यज्ञ में आमन्त्रित किया उस समय भाई के यहाँ जाने की इच्छा कर उन्होंने अपने शिष्य शान्तिनाम को बुलाया अपने नाम के अनुकूल वह गुरु के कार्य में सदैव तत्पर और उदार-चित्त एवं सदाचारी थे ॥१२॥ भूति बोले—हे शान्ते ! अपने भाई सुवर्चा के आमन्त्रण पर मैं यज्ञ में जाता हू, अब तुम्हे आश्रम में रहकर जो कार्य करने हैं, वह ध्यान से सुनो ॥१३॥ मेरे आश्रम में प्रतिदिन अग्नि प्रज्वलित रखना, वह बुझे नहीं ऐसे यत्नशील रहना ॥१४॥

इत्याज्ञाप्यतथेत्युक्तोगुरु.शिष्येणशान्तिना ।
जगामयज्ञ तभ्रातुराहूतःसयवीयम ॥१५
सचशान्तिर्वनाद्यावत्समित्पुष्पफलादिकम् ।
उपानयतिभूत्यर्थंगुरोस्तस्यमहात्मन ॥१६
अन्यच्चकुरुतेकर्मगुरुभक्तिवशानुग ।
प्रशान्तस्तावदनलोयोऽसौभूतिपरिग्रहः ॥१७
तद्दृष्ट्वासोऽनलशान्तशान्तिरत्यन्तदु खित ।
भीतश्चभूतेर्बहुधाचिन्तामापमहामति ॥१८
किं करोमिकथं वात्रभवितागमनगुरो ।
मयाद्यप्रतिपत्तव्यंकिंकृतेसुकृतभवेत् ॥१९
प्रशान्ताग्निमिमंधिष्ण्ययदिपश्यतिमेगुरुः ।
तन्मेमाविपमेह्यव्यसनेनियोक्ष्यति ॥२०
यद्यन्यमग्निमत्राहमग्निस्थानेकरोमितत् ।
सद्यःप्रत्यक्षदृग्भस्ममोऽवश्यमाकरिष्यति ॥२१

मार्कण्डेयजी ने कहा—शिष्य शान्ति ने गुरु की आज्ञा को 'इसी प्रकार होगा' कहकर शिरोधार्य किया। तब भूति अपने भाई के यहाँ यज्ञ में गये ॥१५॥ तदनन्तर अपने गुरु की अग्नि प्रज्वलित रखने के लिए जंगल से समिधा, पुष्प, फल आदि एकत्रित कर लाते ॥१६॥ साथ ही गुरु-भक्ति में वशीभूत शान्ति अन्य दूसरे कार्य भी करने लगे, उसी समय भूति द्वारा प्रज्वलित रखी गई, अग्नि किसी प्रकार बुझ गई ॥१७॥ बुद्धिमान् मुनि शान्ति उस अग्नि को बुझी हुई देखकर दुखी हुए और अपने गुरु भूति के भय से चिन्ताग्रस्त होगये ॥१८॥ वह विचारने लगे कि क्या किया जाय ? इस समय क्या उचित कर्म हो, जिससे भला हो सके, अब गुरु किस प्रकार आयेंगे ? ॥१९॥ मेरे गुरु यदि आश्रम में अग्नि को बुझी हुई देखेंगे तो तत्काल मुझे दण्ड देकर दुःख देंगे ॥२०॥ और यदि मैं पुनः अग्नि प्रज्वलित करता हूँ, तो वह सर्वज्ञानी गुरु मुझे निश्चय ही भस्म कर देंगे ॥२१॥

सोऽहंपापोगुरोस्तस्यनिमित्तंकोपशापयोः ।
तथास्मानंनशोचामियथापापंकृतंगुरोः ॥२२
दृष्ट्वाप्रशान्तमनलंनूनंशप्स्यतिमांगुरुः ।
यथावापावकःक्रुद्धस्तथावीर्य्योहिसद्विजः ॥२३
यस्यप्रभावाद्बिभ्यन्तोदेवास्तिष्ठन्तिशासने ।
कृतागसंसमांयुक्त्याकयानोधर्षयिष्यति ॥२४
बहुधैवंविचिन्त्यासौभीतस्तस्यसदागुरोः ।
ययौमतिमतांश्रेष्ठःशरणंजातवेदसम् ॥२५
सचकारतदास्तोत्रंसप्रच्चेर्यतमानसः ।
सचैकचित्तोमेदिन्यांन्यस्तजानुःकृताञ्जलिः ॥२६

मैं पापात्मा उन गुरु के क्रोध और शाप का वैसा शोक नहीं कर सकता जिस तरह गुरु के समीप हुए पाप का शोक होता है ॥२२॥ गुरु जब आयेंगे तो अग्नि को बुझी देखकर अवश्य घोर रूप में क्रोधित होकर मुझे शाप देंगे अथवा उनसे भयभीत अग्नि भी मुझे शाप दे सकती है, क्योंकि मेरे गुरु का

वीर्य ही ऐसा है ॥२३॥ जिनसे भयभीत होकर सुरगण भी उनके पराधीन हो गये हैं,वह मुझ अपराधी को देखकर किस प्रकार दण्डित करेंगे ? ॥२४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—अपने गुरु से भयभीत विवेकी शिष्य शान्ति इस प्रकार चिन्तित हुए जातवेदा अग्नि की शरण में पहुँचे ॥२५॥ इसके पश्चात् वह शान्त संयत चित्त होकर धरती में घुटने नवा एवं हाथ जोड़ सप्तशिखा युक्त अग्नि-स्तोत्र का पाठ करने लगे ॥२६॥

ओंनमःसर्वभूतानासाधनायमहात्मने ।
एकद्विपञ्चधिष्ण्यायराजसूयेषडात्मने ॥२७
नमःसमस्तदेवानावृत्तिदायसुवर्च्चसे ।
शुक्ररूपायजगतामशेषाणांस्थितिप्रद. ॥२८
त्वं मुखंसर्वदेवानात्वयात्तं भगवन्हविः ।
प्रीणयस्यखिलान्देवास्त्वत्प्राणासर्वदेवताः ॥२९
हुतहविस्त्वय्यनलमेघत्वमुपगच्छति ।
ततश्चजलरूपेणपरिणाममुपैतियत् ॥३०
तेनाखिलौषधीजन्मभवत्यनिलसारथे ।
औषधीभिरशेषाभिः सुखंजीवन्तिजन्तवः ॥३१
वितन्वतेनरायज्ञास्त्वत्सृष्टास्वोषधीषु च ।
यज्ञैर्देवास्तथादैत्यास्तद्वद्रक्षांसिपावक ॥३२
आप्याय्यन्तेचतेयज्ञास्त्वदाधाराहुताशन ।
अतःसर्वस्ययोनिस्त्वं वह्ने सर्वमयस्तथा ॥३३
देवतादानवायक्षादैत्यागन्धर्व्वराक्षसाः ।
मानुषाःपशवोवृक्षामृगपक्षिसरीसृपाः ॥३४
आप्याय्यन्तेत्वयासर्वेसंवर्ध्यन्तेचपावक ।
त्वत्तएवोद्भवयान्तित्वय्यन्तेचतथालयम् ॥३५

शान्ति बोले—समस्त प्राणियों के साधन, महात्मा, दो पञ्च रूप एवं राजसूय यज्ञ में षण्मूर्ति धारण करने वाले, उनको नमस्कार ॥२७॥ सम्पूर्ण सुरगण को वृत्ति प्रदान-कर्त्ता सुवर्चा और सम्पूर्ण विश्व को स्थिति प्रदान करने

वाले शुक्र रूप तुमको नमस्कार ॥२८॥ हे सम्पूर्ण देवगण के मुख-स्वरूप ! ईश्वर तुम्हारे द्वारा ही घृत पान कर देवगण को सन्तुष्ट करते हैं एवं तुम ही समस्त देव गण के प्राण रूप हो ॥२६॥ तुम ही में हविः हुत होकर अमल मेघ्यत्व प्राप्त करती है और फिर उसका जल स्वरूप हो जाता है ॥३०॥ हे अनिलसार ! तुम से ही सभी औषधियों की उत्पत्ति होती है और उन औषधियों से ही प्राणिगण सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं ॥३१॥ हे पावक ! तुम्हारे द्वारा उत्पन्न औषधियों से प्राणी जो यज्ञ करते हैं, ऐसे यज्ञों से ही सुर, दैत्य और असुर ॥३२॥ तृप्त होते हैं। हे हुताशन ! उन सभी यज्ञों के तुम आधार रूप हो। इसलिए हे वह्ने ! तुम सभी के उत्पन्न करने वाले और सर्व व्यापी हो ॥३३॥ हे पावक ! सुर, असुर, यक्ष, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, मानव, पशु,वृक्ष,मृग,आपही से तृप्त व पोषित होते हैं एवं तुम से ही उत्पन्न अन्त में तुम ही में मिल जाते हैं ॥३४॥

अपःसृजसिदेवत्वंत्वमत्सिपुनरेवताः ।
पच्यमानास्त्वयाताश्चप्राणिनांपुष्टिकारणम् ॥३६
देवेषुतेजोरूपेणकान्त्यासिद्धेष्ववस्थितः ।
विषरूपेण नागेषुवायुरूपः पतत्त्रिषु ॥३७
मनुजेषुभवान्क्रोधोमोहःपक्षिमृगादिषु ।
अवष्टम्भोऽसितरुषुकाठिन्यं त्वं महींप्रति ॥३८
जलेद्रवस्त्वं भगवाञ्जवरूपीतथाऽनिले ।
व्यापित्वेनतथैवाग्नेनभसित्वं व्यवस्थितः ॥३६
त्वमग्नेसर्वभूतानामन्तश्चरसिपालयन् ।
त्वामेकमाहुःकवयस्त्वामाहुस्त्रिविधंपुनः ॥४०
त्वयासृष्टमिदंविश्वं वदन्तिपरमर्षयः ॥४१
त्वामृतेहिजगत्सर्वं सद्योनश्येद्धुताशन ।
तुभ्यं कृत्वाद्विजःपूजांस्वकर्मविहितांगतिम् ॥४२

हे देव ! तुम ही जल के उत्पादक हो और फिर उसको पान करते हो, तथा तुम्हारे द्वारा ही उसका पाचन होता है, जो प्राणियों को पुष्टिकारक

बनाता है ॥३६॥ देवगण में तुम्ही तेज स्वरूप' सिद्धो में कान्ति स्वरूप, नागो मे विष स्वरूप एवम् पक्षियो मे वायु स्वरूप हो ॥३७॥ मनुष्यों में कोप रूप में पक्षी व मृगादि मे मोह रूप मे, वृक्षो मे जड रूप मे, पृथिवी में कठोर रूप मे ॥३८॥ जल मे द्रव रूप मे तुम ही स्थित हो और वायु को गति रूप मे और आकाश को व्याप्त रूप मे आत्मा द्वारा अवस्थित किया है ॥३९॥ हे अग्ने ! पोषण करते हुए तुम ही उन प्राणियो के अन्तर मे विचरते हो। यद्यपि कवि तुम्हारा निर्देश एक से ही करते हैं, फिर भी तुम त्रिविध कहलाती हो ॥४०॥ कविगण तुम्हारी अष्टधा के रूप मे कल्पना करके आप यज्ञ की कल्पना करते हैं, तुम से ही विश्व की उत्पत्ति हुई है, ऐसा महान् ऋषियो ने कहा है ॥४१॥ हे हुताशन ! समस्त विश्व तुम्हारे नष्ट होने पर विनाश होता है ॥४२॥

प्रयातिहव्यकव्याद्यं स्वधास्वाहाभ्युदो रणात् ।
परिणामात्मवीर्याणिप्राणिनाममराचित ॥४३
दहन्तिसर्वभूतानिततोनिष्क्रम्यहेतय' ।
जातवेदस्त्वयैवेदविश्व सृष्ट महाद्युते ॥४४
तवैववैदिककर्मसर्वभूतात्मकजगत् ।
नमस्तेऽनलपिगाक्षनमस्तेऽस्तुहुताशन ॥४४
पावकाद्यनमस्तेऽस्तुनमस्तेहव्यवाहन ।
त्वमेवसर्वभूतानापावनाद्विश्वपावन ।
त्वमेवभुक्तपीतानापाचनाद्विश्वपाचक ॥४६
सस्यानापाककर्त्तात्वपोष्टात्वजगतस्तथा ।
त्वमेवमेघस्त्ववायुस्त्ववीजसस्यहेतुकम् ॥४७
पोषायसर्वभूतानाभूतभव्यभवोह्यसि ।
त्वज्योति सर्वभूतेपुत्वमादित्योविभावसु: ॥४८
त्वमहस्त्वंतथारात्रिरभेसन्ध्येतथाभवान् ।
हिरण्येतास्त्वंवह्न हिरण्योद्भवकारणम् ॥४९

विप्रगण हव्य कव्यादि द्वारा तुम्हारी आराधना करके 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करके स्वकर्म विहित गति प्राप्त करते हैं। हे अमरार्चित अर्थात् सुरगण द्वारा पूजित ! प्राणियों के परिणामात्मा वीर्य स्वरूप ॥४३॥ तुम से उत्पन्न सम्पूर्ण अग्निशिखाएँ भूतगणों को भस्म करती हैं, हे महाद्युते जातवेदः ! सम्पूर्ण विश्व के तुम सृष्टि-कर्त्ता हो ॥४४॥ हे अनल ! सर्वभूतात्मक यह विश्व एवम् वैदिक कर्म तुम्हारे अधीन हैं। हे पिङ्गाक्ष अनल ! तुमको नमस्कार, हे हुताशन ! तुमको प्रणाम ! ॥४५॥ हे आद्य ! हे पावक तुमको प्रणाम, तुम ही भोज्य एवम् पेय को पचाने वाले विश्व-पावन हो, हे विश्व पावन ! तुम सर्व भूत पवित्रकर्त्ता हो ॥४५॥ अन्न को पकाने वाले तुम विश्व को पुष्टिकरण एवं तुम ही मेघ, वायु व सस्य उत्पादन के लिए बीज रूप भी हो ॥४७॥ सभी का पोषण करने वाले तुम ही भूत, भविष्य और वर्त्तमान रूप हो। तुम ही सम्पूर्ण प्राणियों में ज्योति का स्वरूप और आदित्य सूर्य हो ॥४८॥ दिन, रात्रि और सन्ध्या तुम ही हो। हे वह्ने ! रेता एवम् हिरण्य की उत्पत्ति कारक तुम ही हो ॥४९॥

हिरण्यगर्भश्चभवान्हिरण्य सदृशप्रभः ।
त्वंमुहूर्त्तक्षणश्चत्वंत्वंत्रुटिस्त्वंतथालवः ॥५०
कलाकाष्ठानिमेषादिरूपेणासिजगत्प्रभो ।
त्वमेतदखिलंकालःपरिणामात्मकोभवान् ॥५१
याजिह्वाभवतःकालीकालनिष्ठाकरीप्रभो ।
तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५२
करालीनामयाजिह्वामहाप्रलयकारणम् ।
तयानःपापिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५३
मनोजवाचयाजिह्वालघिमागुणलक्षणा ।
तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५४
करोतिकामंभूतेभ्योयातेजिह्वासुलोहिता ।
तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५५

सधूम्रवर्णायाजिह्वाप्राणिनांरोगदायिका ।
तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ।।५६

तुम ही हिरण्य गर्भ एवं हिरण्य के समकक्ष कान्तिमान् हो। मुहूर्त, क्षण, त्रुटि एवं लव तुम ही हो ॥५०॥ हे जगत्प्रभो! कलाकाष्ठा और निमेषादि के रूप में तुम ही परिणामात्मक अन्तकाल हो ॥५१॥ हे प्रभो! अपनी कालनिम्ना पूर्ण काली जीभ द्वारा पाप, भय एवं ऐहिक भय से हमारी रक्षा करो ॥५२॥ करानी नामक जो जीभ तुम्हारी महाप्रलय के समय में है, उसके द्वारा हमारी ऐहिक भय और पापों में रक्षा करो ॥५३॥ अपनी लघिमागुण युक्त मनोज्ञा जीभ से हमारी ऐहिक भय और पापों से रक्षा करो ॥५४॥ प्राणियों की कामना पूर्ण करने वाली अपनी सुलोहिता नामक जीभ से हमारी ऐहिक भय और पापों से रक्षा करो ॥५५॥ प्राणियों के रोगों का शमन करने वाली, सधूम्रवर्ण जीभ से ऐहिक भय और पापों से हमारी रक्षा करो ॥५६॥

स्फुलिंगिनीचयाजिह्वायतसंकलपुद्गला ।
तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ।।५७
यातेविश्वसृजाजिह्वाप्राणिनांशर्मदायिनी ।
तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ।।५८
पिङ्गाक्षलोहितग्रीवकृष्णवर्महुताशन ।
त्राहिमामखिदोषेभ्य ससारागदुद्धरेहमाम् ।।५९
प्रसीदवह्ने सप्तार्चि कृशानोहव्यवाहन ।
अग्निपावकशुक्रादिनामाष्टभिरदीरित ।।६०
अग्नेऽग्रे सर्वभूतानासमुत्पत्तिविभावसो ।
प्रसीदहव्यवाहाख्यअभिष्टुतमयाव्यय ।।६१
त्वमक्षयोवह्निरचिन्त्यरूप समृद्धिमन्दुष्प्रसहोऽतितीव्रः ।
तवाव्ययभीमभशेपलोक संवर्धकहन्त्ययवातिवीर्य्यम् ।।६२
[illegible] ।
[illegible] ।।६३

आत्मा एवं देह को उत्पन्न करने वाले स्फुलिङ्गिनी जीभ से ऐहिक महाभय और पापों से हमारी रक्षा करो ॥५७॥ प्राणियों को मङ्गल दाता विश्वा नामक अपनी जीभ से ऐहिक भय और पापों से हमारी रक्षा करो ॥५८॥ हे हुताशन ! तुम्हारे नेत्र पिंगल वर्ण, ग्रीवा लोहित वर्ण और तुम्हारी देह कृष्ण वर्ण है। तुम सर्व प्रकार के दोषों से मेरी रक्षा करो और इस विश्व से उद्धार कीजिये ॥५९॥ हे वह्ने ! आठ नामों वाले, हो सप्तार्चि, हव्यवाहन, कृशानु, अग्नि, पावक, शुक्र नाम से विख्यात तुम प्रसन्न होओ ॥६०॥ हे अग्ने ! समस्त भूतों से तुम उत्पन्न हो। हे विभावसो ! हे अव्यय हव्यवाह ! मैं तुम्हारी आराधना करता हूँ उससे तुम मुझ पर प्रसन्न होओ ॥६१॥ हे वह्ने ! तुम अक्षय हो, तुम्हारा अचिन्त्य रूप है, तुम समृद्धिमान्, आश्रयदाता एवं अत्यन्त तीव्रतापूर्ण हो और अक्षय व भीम तुम्हारे मूर्तिमान् रूप अत्यन्त बलशाली एवं समस्त विश्व का भी विनाश करने वाले हैं ॥६२॥ हे हुताशन ! तुम श्रेष्ठ सत्त्व और समस्त जीवों के हृदय-कमल सदृश हो और तुम उन सबके पूज्य अनन्त ब्रह्म रूप हो। उस ब्रह्म स्वरूप से तुमने इस प्राणी जगत् को परिपूर्ण कर रखा है। इसलिए तुम एक होकर भी अनेक रूप में इस विश्व में स्थिति करते हो ॥६३॥

त्वमक्षयःसगिरिवनावसुन्धरानभःससोमार्कमहर्दिवाखिलम् ।
महोदधेर्जठरगतश्चवाडवोभवान्विभुःपिबतिपयांसिपावक ॥६४
हुताशनस्त्वमितिसदाभिपूज्यसेमहाक्रतौनियमपरैर्महर्षिभिः ।
अभिष्टुतःपिबसिचसोममध्वरेवषट्कृतान्यपिचहवींषिभूतये ॥६५
त्वांविप्रैःसततमिहेज्यसेफलार्थंवेदाङ्गेष्वथसकलेषुगीयसेत्वम् ।
त्वद्धेतोर्यजनपरायणाद्विजेन्द्रावेदाङ्गान्यधिगमयन्तिसर्वकाले ६६
त्वंब्रह्मायजनपरस्तथैवविष्णुर्भूतेशःसुरपतिरर्यमाजलेशः ।
सूर्येन्दूसकलसुरासुराश्चहव्यैःसन्तोष्याभिमतफलान्यथाप्नुवन्ति ६७
अर्चिर्भिःपरममहोपघातदुष्टंस्पष्टंतवशुचिजायतेसमस्तम् ।
स्नानानांपरममतीवभस्मनासत्सन्ध्यायांमुनिभिरतीवसेव्यसेतत् ६८

तत्कृत्वा त्रिदिवमवाप्नुवन्तिलोकाः ।
मद्भक्त्यासुसनियता सभूहीतम् ॥६६
प्रसीदवह्ने शुचिनामधेयप्रसीदवायोविमलातिदीप्ते ।
प्रसीदमेपावककवैद्युताग्नप्रसीदहव्याशनपाहिमात्वम् ॥७०
यत्तं वह्ने शिवरूपयेचरोसप्तहेतय ।
तैः पाहिन.स्तुतोदेवापितापुत्रमिवात्मजम् ॥७१

हे अनल ! तुम अक्षय हो, एवं सूर्य सहित पृथ्वी तुम्हारे ही स्वरूप और चन्द्रमा एवं सूर्य सहित आकाश स्वरूप तुम ही हो, दिन और रात रूप में निखिल कामस्वरूप हो, तुम ही महा समुद्र के अन्तर्गत बड़वाग्नि और परम विभूति से समस्त किरणों में विद्यमान हो ॥६४॥ हे हुताशन ! तुम्हारा भोजन हुतहवि है इसीलिए नियम परायण परम मुनिगण यज्ञों में तुम्हारा सदैव पूजा करते हैं और उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर विश्व के कल्याणार्थ सोमरस और वषटकारसहित हवि. सेवन करते हो ॥६५॥ सम्पूर्ण वेदांग तुम्हारा गायन है और यज्ञ परायण हेतु श्रेष्ठ ब्राह्मण सदैव वेदांग अध्ययन करते हैं ॥६६॥ यजन परायण ब्रह्मा, विष्णु, भूतनाथ महादेव तुम ही हो देवराज इन्द्र, अर्यमा, जलेश्वर वरुण, सूर्य एवं चन्द्रमा तुम ही हो, सुर एवं असुर हव्य द्वारा तुम्हें सन्तुष्ट कर इच्छित फल प्राप्त करते हैं ॥६७॥ महा उपघात से दूषित समस्त वस्तुएँ तुम्हारी लौ के स्पर्श मात्र से पवित्र होती हैं अनेक स्नानों में भस्म द्वारा ही स्नान उत्तम माना जाता है, अतएव मुनिगण सन्ध्या समय यही स्नान करते हैं ॥६८॥ इस प्रकार करने वाले मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करते हैं और सच्ची भक्ति से सर्व सुख प्राप्त करते हैं ॥६९॥ हे वह्ने ! इसीलिए ही तुम्हारा नाम शुचि है, आप उसी रूप में मुझ पर प्रसन्न होवें तुम स्वच्छ एवं प्रबल वायु स्वरूप, उसी रूप में मुझ पर प्रसन्न होवें। पावक ! तुम वैद्युताग्नि आदि नामों से कीर्तिमान् हो, उसी रूप में मुझ पर प्रसन्न होओ। हे हव्याशन ! तुम प्रसन्न होकर मेरी रक्षा करो ॥७०॥ वह्ने ! तुम मङ्गलमय रूप हो। जो सप्तहेति ज्वालाएँ हैं, उनसे हे देव

स्तुति से प्रसन्न होकर जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्र की रक्षा करता है, उसी प्रकार मेरी रक्षा करो ।।७१।।

९२-सर्व मन्वन्तर श्रवण फल कथन

एवंस्तुतस्ततस्तेनभगवान्हव्यवाहनः ।
ज्वालामालावृततनुस्तस्यासीदग्रतोमुने ।।१
देवोविभावसुःप्रीतस्तोत्रेणानेनवै द्विज ।
तंशान्तिमाहप्रणतंमेघगम्भीरवागथ ।।२
परितुष्टोऽस्मितेविप्रभक्त्याभातेस्तुतिःकृत्वः ।
वरददामिभवतेप्रार्थ्यतांयत्तवेप्सितम् ।।३
भगवन्कृतकृत्योऽस्मियत्त्वांपश्यामिरूपिणम् ।
तथापिभक्तिनम्रस्यभवताश्रूयतांमम ।।४
भ्रातृयज्ञं गतोदेवममाचार्योनिजाश्रमात् ।
आगतश्चाश्रमंधिष्ण्यंत्वत्सनाथंसपश्यतु ।।५
ममापराधात्सन्त्यक्तं धिष्ण्यंयत्तेविभावसो ।
तत्त्वयाधिष्ठितंसोऽद्यपूर्ववत्पश्यतुद्विजः ।।६
तथान्यदपिमेदेवप्रसादं कुरुषेयदि ।
पुत्रोविशिष्टोभवतुतदपुत्रस्यमेगुरोः ।।७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे ऋषि ! शांति की ऐसी स्तुति पर भगवान् हव्यवाहन ज्वालामाला सहित उनके समक्ष प्रकट हुए ।।१।। हे ब्राह्मण ! विभावसु देव ने स्तोत्रों से सन्तुष्ट होकर उन प्रणत तपस्वी शांति से मेघ सम गंभीर शब्दों में कहा ।।२।। अग्नि ने कहा—"हे ब्राह्मण मैं तुम्हारी भक्तिपूर्ण स्तुति से प्रसन्न हुआ हूं । तुम अपने इच्छित वर की प्रार्थना करो, मैं वर देता हूं ।।३।। शांति बोले—हे भगवन् ! आपके स्वरूप को देख कर मैं

कृतकृत्य हुआ हू। फिर भी नम्रता एव भक्तिपूर्वक मेरा वचन सुनिये ॥४॥ हे देव! मेरे गुरु अपने इस आश्रम से भाई के यहाँ यज्ञ मे गये हैं। आश्रम में आकर वह अग्निकुण्ड मे अग्नि प्रज्वलित देखें ॥५॥ हे विभावसो जिस अग्निकुण्ड को तुमने मेरे अपराध के कारण वचित किया है वह द्विज श्रेष्ठ गुरु आने पर पहिले की भाँति ही प्रज्वलित देखें ॥६॥ हे देव! यदि तुम मुझसे प्रसन्न हो, तो दूसरा निवेदन है कि मेरे पुत्रहीन गुरु के गुणवान् पुत्र उत्पन्न हो ॥७॥

तथाचमैत्रींतनयेसकरिष्यतिमेगुरुः ।
तथासमस्तसत्त्वेपुभवत्वस्यमनोमृदु ॥८
यश्चत्वास्तोष्यतेऽनेनप्रीतियातोऽसिमेऽव्यय ।
स्तोत्रेणतस्यवरदोभवेथामत्प्रसादितः ॥९
एतच्छ्रुत्वावचस्तस्यतमाहद्विजसत्तमम् ।
स्तोत्रेणराधितस्तेनगुरुभक्त्याचपावकः ॥१०
गुरोरर्थयतोब्रह्मन्याचितंमेवरद्वयम् ।
नात्मार्थंतेनमेप्रीतिरत्वय्यतीवमहामुने ॥११
भविष्यत्येतदखिलगुरोर्यत्प्रार्थितंत्वया ।
मैत्रीसमस्तभूतेपुपुत्रश्चास्यभविष्यति ॥१२
मन्वन्तराधिपपुत्रश्चभौत्योनामभविष्यति ।
महाबलोमहावीर्य्योमहाप्राज्ञोगुरुस्तव ॥१३
अनेनयश्च स्तोत्रेणस्तोष्यतेमासमाहित ।
तस्याभिलषितसर्वपुण्यचास्यभविष्यति ॥१४

अपने उस प्रेम से मेरे आचार्य जिस प्रकार प्रीति करें, उसी प्रकार समस्त प्राणियों से प्रीति और कोमल व्यवहार करने वाले हो ॥८॥ हे अव्यय! मुझ पर इस प्रकार तुम्हें प्रसन्न हुआ देख कर जो प्राणी भविष्य में तुम्हारी आराधना करें, उनके लिए भी, तुम मेरे लिए प्रसन्न होकर, वर प्रदान करने वाले हो ॥९॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—गुरु भक्ति एव इस स्तोत्र द्वारा प्रसन्न

अग्नि देव द्विज शांति की प्रार्थना सुन कर बोले ॥१०॥ अग्नि ने कहा—हे ब्राह्मण ! तुमने अपने निज के लिए वर न मांगकर केवल अपने गुरु के लिए वर की प्रार्थना की, हे महर्षि ! इस कारण मैं तुम से अत्यधिक प्रसन्न हूं ॥११॥ गुरु के हेतु तुम्हारी प्रार्थना पूर्ण होगी, सम्पूर्ण जीवों के प्रति उनकी प्रीति होगी और उनको पुत्र-प्राप्ति होगी ॥१२॥ तुम्हारे गुरु अत्यन्त मेधावी हैं, उनके महापराक्रमी, वीर्यवान् भौत्य नाम का पुत्र होगा, जो मन्वन्तराधिपति होगा ॥१३॥ साथ ही जो मनुष्य एकचित्त होकर मेरे इस स्तोत्र से मेरी आराधना करेगा, उसकी सम्पूर्ण मन की इच्छाऐं पूरी होंगी और पुण्य का भागी भी होगा ॥१४॥

यज्ञेषुपर्वकालेषुतीर्थेज्याहोमकर्मसु ।
धर्मायपठतामेतन्ममपुष्टिकरंपरम् ॥१५
अहोरात्रकृतपापंश्रु तमेतत्सकृद्द्विज ।
नाशयिष्यत्यसन्दिग्धंममतुष्टिकरंपरम् ॥१६
अहोमकालदोषादीनयोग्यैरपितत्कृतैः ।
येदोषास्तानिदंसद्यःशमयिष्यतिसंश्रु तम् ॥१७
पौर्णमास्याममावास्यांपर्वस्वन्येषुचस्तवः ।
ममैषसंश्रु तोमर्त्यं भवितापापनाशनः ॥१८
इत्युक्त्वाभगवानग्निःपश्यतस्तस्यवैमुने ।
बभूवादर्शनःसद्योदीपस्थोऽस्निवृ तोयथा ॥१९
सचशान्तिर्गतेवह्नौपरितुष्टेनचेतसा ।
हर्षरोमाञ्चिततनुःप्रविवेशाश्रमंगुरोः ॥२०
जाज्वल्यमानंतत्रासौगुरुधिष्ण्येहुताशनम् ।
ददर्शपूर्ववत्प्रापततःसपरमांमुदम् ॥२१

यज्ञ, पर्वकाल, तीर्थ यज्ञ, धर्मार्थ, व यज्ञ-कर्म में यह बलदाता स्तोत्र जप करने अथवा केवल एक बार सुनने से ही दिन रात के सम्पूर्ण पापों का बिना सन्देह विनाश होगा। हे ब्राह्मण मेरा यह स्तोत्र अत्यन्त संतुष्टि दायक

है ॥१६॥ यज्ञकाल के व्यतीत होने पर यज्ञ करने एवं अनधिकारी पुरुष द्वारा यज्ञादि करने पर जो दोष होता है, वह सभी इस स्तोत्र के श्रवण से ही तुरन्त नष्ट होगा ॥१७॥ यह उत्तम स्तोत्र पूर्णिमा, अमावस्या या अन्य किसी पर्व के अवसर पर श्रवण करने से प्राणियों के पापों का शमन होगा ॥१८॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—हे ऋषिवर ! किसी दीपक की लौ जिस प्रकार अचानक बुझ जाती है, उसी प्रकार वे अग्नि भगवान् यह वर देकर उन शान्ति मुनि के सामने अन्तर्धान हो गये ॥१९॥ पावक के अन्तर्धान होने पर शान्ति मुनि सन्तुष्ट हृदय एवं आनन्द से पूर्ण होकर अपने गुरु के आश्रम में पहुँचे ॥२०॥ तदनन्तर शान्ति मुनि अग्निकुण्ड में उसी प्रकार अग्नि को प्रज्वलित देख कर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥२१॥

एतस्मिन्नन्तरेसोऽपिगुरुस्तस्यमहात्मनः ।
भ्रातुर्यवीयसोयज्ञादाजगामस्वमाश्रमम् ॥२२
तस्याग्रतश्चशिष्योऽसोचक्रेपादाभिवन्दनम् ।
गृहीतासनपूजश्चतमाहसतदागुरुः ॥२३
वत्सभाति हार्द त्वयिमेतथान्येपुचजन्तुपु ।
नवेद्मिकिमिद त्वञ्चेद्वेत्स्येतत्कथयाशुभे ॥२४
तत सशान्तिस्तत्सर्वमाचाख्यायमहामुने ।
अग्निनाशादिकविप्र समाचष्टेयथातथम् ॥२५
तच्छ्रुत्वासपरिष्वज्यस्नेहार्द्रनयनोगुरुः ।
शिष्यायप्रददौवेदान्साङ्गोपाङ्गान्महामुने ॥२६
भौत्योनाममनुस्तस्यपुत्रोभूतेरजायत ।
तस्यमन्वन्तरेदेवानृपीन्भूपाश्चमेशृणु ॥२७
भविष्यस्यभविष्यास्तुगदतोममविस्तरात् ।
देवेन्द्रोयश्चभवितातस्यविख्याततकर्मणः ॥२८

उसी समय शान्ति के गुरु वह ऋषि श्रेष्ठ छोटे भाई के यहाँ से यज्ञ में से अपने आश्रम में वापिस आये ॥२२॥ तब सम्मुख आकर शिष्य शान्ति ने

उनको चरण-वंदना की। उसके पश्चात् गुरु पूजा वन्दन पूर्ण कर आसन ग्रहण कर शांति से बोले ॥२३॥ हे वत्स ! तुम्हारे व अन्य दूसरे जीव प्राणियों के प्रति मेरे हृदय में प्रीति उत्पन्न हुई है, ऐसा कैसे हुआ, मैं अनभिज्ञ हूं। हे वत्स ! कदाचित्, यदि तुम्हारे ज्ञान में हो, तो मुझ से वर्णन करो ॥२४॥ हे महर्षि ! तब विप्र शांति ने अग्नि सुमसे आदि की सम्पूर्ण विमल कथा गुरु से कही ॥२५॥ हे महर्षि ! गुरु ने समस्त घटना सुनकर प्रेम से आर्द्र नेत्रों से शिष्य शांति को आलिंगन बद्ध कर लिया और उसे साङ्गोपाङ्ग सम्पूर्ण वेद भी प्रदान किये ॥२६॥ इस प्रकार उस भूति ऋषि के पुत्र भौत्य मनु ने जन्म लिया। उन मनु के मन्वन्तर के बीच जो देवगण, ऋषि, राजा और इन्द्रादि होंगे उनका विस्तार पूर्वक वर्णन सुनो ॥२७-२८॥

चाक्षुषाश्चकनिष्ठाश्चपवित्राभ्राजिरास्तथा ।
धारावृकाश्च स्येतेवै पञ्चदेवगणाःस्मृताः ॥२६
शुचिरिन्द्रस्तदातेषांत्रिदशानांभविष्यति ।
महाबलोमहावीर्य्यःसर्वै रिन्द्रगुणैर्यु तः ॥३०
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्चशुचिर्मु क्तोऽथमाधवः ।
शुक्रोऽजितश्चसप्त तेतदासप्तर्षयःस्मृताः ॥३१
गुरुर्गभीरोब्रध्नश्चभरतोऽनुग्रहस्तथा ।
श्रीमानीचप्रतीरश्चविष्णुःसंक्रन्दनस्तथा ॥३२
तेजस्वीसुवलश्च वभौत्यस्यैतेमनोःसुताः ।
चतुर्द शमयैतत्तेमन्वन्तरमुदाहृतम् ॥३३
श्रु त्वामन्वन्तराणीत्थंक्रमेणमुनिसत्तम ।
पुण्यमाप्नोतिमनुजस्तथाऽक्षीणांचसन्ततिम् ॥३४
श्रु त्वामन्वन्तरपूर्वंधर्ममाप्नोतिमानवः ।
स्वारोचिषस्यश्रवणात्सर्वकामानवाप्नुते ॥३५

चाक्षुष, कनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिर और धारावृक प्रकार ये देवगण होंगे ॥२६॥ उस काल में इन्द्र के समस्त गुणों से पूर्ण महापराक्रमी वीर्यवान्

"शुचि" उनके इन्द्र होंगे ॥३०॥ उस मन्वन्तर में अग्निध्र, अग्निबाहु, शुचि, मुक्त, माधव, शुक्र और अजित नामक सप्त महर्षि होंगे ॥३१॥ गुरु, गभीर, ब्रध्न, भरत, अनुग्रह, श्रीमानि, प्रतीर, विष्णु, संक्रमण तथा ॥३२॥ तेजस्वी सुबल नामक पुत्र भौत्य मनु के होंगे। इस प्रकार मैंने आप से चौदह मन्वन्तरों के विषय में कहा ॥३३॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह समस्त मन्वन्तरों का क्रम-बद्ध वर्णन सुनने से मनुष्य पुण्य-लाभ प्राप्त करते हैं एवं उनका परिवार सदैव प्रफुल्ल रहता है ॥३४॥ प्रथम मन्वन्तर का वर्णन सुन कर धर्म में आस्था बढ़ती है और दूसरे मन्वन्तर के श्रवण से उनकी समस्त मन की इच्छाएँ पूरी होती हैं ॥३५॥

औत्तमे धनमाप्नोति ज्ञानमाप्नोति तामसे ।
रैवते चश्रुते बुद्धिमुरूपा विन्दते स्त्रियम् ॥३६
आरोग्यं चाक्षुषे पुंसाम् श्रुते वैवस्वते बलम् ।
गुणवत्पुत्रपौत्रांस्तु सूर्यसावर्णिके श्रुते ॥३७
माहात्म्यं ब्रह्मसावर्णे धर्मं सावर्णिके शुभाम् ।
मतिमाप्नोति मनुजो रुद्रसावर्णिके जयम् ॥३८
ज्ञातिश्रेष्ठो गुणैर्युक्तो दक्षसावर्णिके श्रुते ।
निपातयत्यरिबलं रौच्ये च श्रुते नरोत्तम ॥३९
दैवप्रसादमाप्नोति भौत्ये मन्वन्तरे श्रुते ।
तथाग्निहोत्रपुत्रांश्च गुणयुक्तानवाप्नुते ॥४०
सर्वाण्यनुक्रमाद्यश्च शृणोति मुनिसत्तम ।
मन्वन्तराणि तस्यापि श्रूयतां फलमुत्तमम् ॥४१

तृतीय मन्वन्तर औत्तम के श्रवण से धन व चतुर्थ तामस मन्वन्तर के श्रवण से ज्ञान प्राप्ति होती है। पंचम रैवत मन्वन्तर के श्रवण से बुद्धिमान् एवं रूपवती भार्या मिलती है ॥३६॥ षष्ठ मन्वन्तर चाक्षुष के श्रवण से मनुष्य नीरोग रहते हैं, सप्तम मन्वन्तर वैवस्वत के श्रवण से पराक्रम एवं अष्टम सूर्य सावर्णिक मन्वन्तर के श्रवण से गुणी पुत्र एवं पौत्र प्राप्त होते हैं ॥३७॥

नवम ब्रह्म सावर्णि मन्वन्तर के श्रवण से माहात्म्य, दशम धर्म सावर्णिक मन्वन्तर के श्रवण से कल्याण और ग्यारहवें रुद्रसावर्णिक मन्वन्तर के श्रवण से सुबुद्धि और विजय प्राप्त होती है ।।३८।। हे नर श्रेष्ठ ! बारहवें मन्वन्तर दक्ष सावर्णिक के श्रवण से पुरुष जाति में सर्वोत्तम और गुणवान् होता है, तेरहवें मन्वन्तर रौच्य के श्रवण से शत्रुओं का बल शमन करने की समर्थता प्राप्त होती है ।।३९।। चौदहवें मन्वन्तर भौत्य के श्रवण से भगवान् का प्रसाद, अग्निहोत्र फल एवं गुणवान् पुत्र की प्राप्ति होती है ।।४०।। हे ऋषि श्रेष्ठ ! प्रथम मन्वन्तर से क्रमबद्ध सभी मन्वन्तरों का श्रवण करने वाले मनुष्यों को किस प्रकार श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है, इसका वर्णन सुनो ।।४१।।

तत्रदेवानृषीनिन्द्रान्मनूंस्तत्तनयान्नृपान् ।
श्रुत्वावंशांश्चसर्वेभ्यःपापेभ्योप्रमुच्यते ।।४२
देवर्षीन्द्रनृपाश्चान्येयेतन्मन्वंन्तराधिपाः ।
तेप्रीयन्तेतथाप्रीताःप्रयच्छन्तिशुभांमंतिम् ।।४३
ततःशुभांमतिप्राप्यकृत्वांकर्मतथाशुभम् ।
शुभांगतिमवाप्नोतियांवदिन्द्राश्चतुर्दश ।।४४
सर्वेस्युर्ऋतवःक्षेम्याःसर्वेसौम्यास्तथाग्रहाः ।
भवन्त्यसंशयंश्रुत्वांक्रमान्मन्वन्तरस्थितिम् ।।४५

हे ब्राह्मण ! उन मन्वतरों के देवगण, सम्पूर्ण ऋषिगण, मनु के नृप पुत्रगण एवं उनकी वंशावलि वर्णन का श्रवण करने पर मनुष्य समस्त पापों से विमुक्त हो जाते हैं ।।४२।। देवगण, मुनिगण, इन्द्र, नृपतिगण एवं उस मन्वन्तर के अधिपति अपर, वे सब सन्तुष्ट होते हैं एवं सन्तुष्ट होने पर सद्बुद्धि प्रदान करते हैं ।।४३।। इस प्रकार सद्बुद्धि प्राप्त कर शुभ कार्य करने से जब तक चौदह इन्द्र रहेंगे, तब-तब सद्बुद्धि मनुष्य प्राप्त करते रहेंगे ।।४४।। क्रम-बद्ध मन्वन्तरों का वर्णन श्रवण करने सम्पूर्ण ऋतुऐं सहनीय होती हैं और निस्सन्देह सम्पूर्ण ग्रह भी शांत हो जाते हैं ।।४५।।

६३—राज वंशानुकीर्तन

भगवन्कथितामम्यक्त्वयामन्वन्तरस्थितिः ।
क्रमाद्विस्तरतस्त्वत्तोमयाचेवावधारिता ॥१
ब्रह्माद्यमखिलवंशभूभुजांद्विजसत्तम ।
श्रोतुममेच्छत सम्यग्भगवन्प्रब्रवीहिमे ॥२
शृणुवत्समनूपाणांत्वमशेषाणांसमुद्भवम् ।
चरितंचजगन्मूलमादौकृत्वाप्रजापतिम् ॥३
अयहिवंशोभूपालैरनेकक्रतुकर्तृभिः ।
संग्रामजिद्भिर्धर्मज्ञैः शतसस्यैरलंकृत ॥४
श्रुत्वाचंपांनरेन्द्राणांचरितानिमहात्मनाम् ।
उत्पत्तयश्चपुरुष सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५
मनुर्यत्रतथेक्ष्वाकुरनरण्योभगीरथः ।
अन्येचशतशोभूपा सम्यक्पालितभूमय ॥६
धर्मज्ञायज्विन शूरा परमार्थार्थवेदिनः ।
श्रुतेतस्मिन्पुमाग्वंशेपापौघाद्विप्रमुच्यते ॥७

क्रोष्टुकि बोले—हे महाराज ! मन्वन्तरों के विषय में आपने भली प्रकार वर्णन किया है और मैंने भी उसे विस्तारपूर्वक श्रवण किया है ॥१॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! मैं अधिपतियों की ,सम्पूर्ण वंशावलि ब्रह्माजी से प्रारम्भ कर सुनने का इच्छुक हूँ । हे महाराज ! वह मुझ से सम्यक् प्रकार से कहिये ॥२॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—हे विश्वाधार ब्रह्माजी से प्रारम्भ होकर सम्पूर्ण अधिपतियों की जन्म-गाथा एवं चरित्र का वर्णन सुनो ॥३॥ यह वंश यज्ञ करने वाले, रण विजेता, धर्मज्ञ सैकड़ों विविध नृपों से अलंकृत है ॥४॥ इन महान् नृपतियों के जन्म और चरित्र के विषय में सुनकर मनुष्य सम्पूर्ण पापों से विमुक्त होता है ॥५॥ मनु, इक्ष्वाकु, अनरण्य, भगीरथ, एवं अन्य दूसरे

शतशः ।।६।। धर्मात्मा, यज्ञ कर्त्ता, और ब्रह्मज्ञानी नृपों ने जिस वंश में जन्म लेकर पृथ्वी का पोषण किया, उस वंश का वर्णन श्रवण करने से मनुष्य समस्त पापों से बिमुक्त हो जाता हैं ।।७।।

तदयंश्च यतोवंशोयतोवंशाःसहस्रशः ।
भिद्यन्तेमनुजेन्द्राणामवरोहायथावटात् ।।८
ब्रह्माप्रजापतिःपूर्व सिसृक्षुर्विविधाःप्रजाः ।
अ गुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षमसृजद्द्विजसत्तम ।।९
वामङ्गुष्ठाच्चतत्पत्नींजगत्सूतिकरोविभुः ।
ससर्जभगवान्ब्रह्माजगतांकारणंपरम् ।।१०
अदितिस्तस्यदक्षस्यकन्याजायतशोभना ।
तस्यांचकश्यपोदेव मार्तंडसमजीजनत् ।।११
ब्रह्मास्वरूपंजगतामशेषाणांवरप्रदम् ।
आदिमध्यान्त भूतंचसर्गस्थित्यंतकर्मसु ।।१२
यतोऽखिलमिदंयस्मिन्नशेषंचस्थितंद्विज ।
यत्स्वरूपंजगच्चेद सदेवासुरमानुषम् ।।१३
यःसर्वभूतःसर्वात्मापरमात्मासनातनः ।
आदित्यामभवद्भास्वान्पूर्व माराधितस्तया ।।१४

एक बटवृक्ष के एक अ कुर से ही एक अलग पूर्ण वृक्ष खड़ा हो जाता है, उसी तरह मनुजेन्द्रों के सहस्रों वंश उत्पन्न होगये, वह सुनिये ।।८।। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! पूर्व समय में विभिन्न प्रजा उत्पन्न करने की आकांक्षा से प्रजापति ब्रह्माजी ने अपने दाहिने हाथ के अ गूठे से दक्ष अधिपति को जन्म दिया ।।९।। विश्व के जन्मदाता भगवान् ब्रह्माजी ने विश्व सृष्टि के लिए अपने बांये हाथ के अ गूठे से दक्ष की पत्नी को जन्म दिया ।।१०।। अदिति नाम की एक सुन्दर कन्या ने दक्ष के यहाँ जन्म लिया। उस कन्या और कश्यप से मार्तण्ड देव उत्पन्न हुए ।।११।। हे ब्राह्मण ! ब्रह्म स्वरूप जो अशेष इस विश्व को वरदाता हैं, सृष्टि स्थिति एवं प्रलय के कार्य में प्रारम्भ व अन्त स्वरूप

हैं ॥१२॥ समस्त विश्व के जन्म दाता, जिनमें समस्त विश्व विद्यमान है सुर, असुर और मनुष्यो सहित यह विश्व उनका स्वरूप है ॥१३॥ जो सर्व प्राणी स्वरूप और सर्वात्मा सनातन परमात्मा हैं, अदिति द्वारा स्तुति करने पर उन्हीं भास्कर सूर्य ने उसके गर्भ से जन्म ग्रहण किया ॥१४॥

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामियत्स्वरूपविवस्वत ।
यत्कारणश्चादिदेव सोऽभवत्कश्यपात्मज ॥१५
यथाचाराधितोदेव्यासोऽदित्याकश्यपेनच ।
आराधितेनचोक्त यत्तेनदेवेनभास्वता ॥१६
प्रभावश्चावतीर्णस्ययथावन्मुनिसत्तम ।
भवताकथितसम्यक्छ्रोतुमिच्छाम्यशेषत ॥१७
विस्पष्टापरमाविद्याज्योतिर्भाशाश्वतीस्फुटा ।
कैवल्यज्ञानमाविर्भूं प्राकाम्यसंविदेवच ॥१८
बोधश्चावगतिश्चं वस्मृतिविज्ञानमेवच ।
इत्येतानीहरूपाणितस्याद्रूपस्यभास्वत ॥१९
श्रूयताचमहाभागविस्तराद्वदतोमम ।
यत्पृष्टवानसिरवेराविर्भावोयथाभवत् ॥२०

क्रोष्टुकी बोले—हे महाराज ! भास्वान् सूर्य के स्वरूप जिसके कारण वह आदि देव कश्यप के पुत्र के रूप मे उत्पन्न हुए उसका वर्णन सुनना चाहता हूँ ॥१५॥ एव अदिति व कश्यप ने जिस प्रकार आराधना की और आराधना से प्रसन्न सूर्यदेव ने जो कहा ॥१६॥ एव गृहीत जन्मा सूर्य का प्रभाव जैसे पहले आपने वर्णन किया है प्रभु ! वह सभी सम्यक् प्रकार से श्रवण करने की इच्छा है ॥१७॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—विस्पष्टा, परमा, विद्या, ज्योति, शाश्वती, दीप्ति, कैवल्य, ज्ञान, आविर्भाव, प्राकाम्य, संवित् ॥१८॥ बोध, अव- गति, स्मृति एव विज्ञान आदि सभी सूर्यदेव के स्वरूप हैं । हे महाभाग ! रवि के आविर्भाव के विषय मे विस्तारपूर्वक श्रवण करो ॥२०॥

निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोके सर्वतस्तमसावृते ।
बृहद्दण्डमभूदेकमक्षरकारणपरम् ॥२१

तद्विभेदतदर्न्तःस्थोभगवान्प्रपितामहः ।
पद्मयोनिःस्वयंब्रह्मायःस्रष्टाजगतांप्रभुः ॥२२
तन्मुखादोमितिमहानभूच्छब्दोमहामुने ।
ततोभूस्तुभुवस्तस्मात्ततश्चस्वरनन्तरम् ॥२३
एताव्याहृतयस्तिस्रःस्वरूपंतद्विवस्वतः ।
श्रोमित्यस्मात्स्वरूपात्तुसूक्ष्मरूपंरवेःपरम् ॥२४
ततोमहरितिस्थूलंजनंस्थूलतरंततः ।
ततस्तपस्ततःसत्यमितिमूर्तानिसप्तधा ॥२५
स्थितानितस्यरूपाणिभवन्तिनभन्तिच ।
स्वभावभावयोर्भावंयतोगच्छन्तिसंक्षयम् ॥२६
श्राद्यन्तंयत्परंसूक्ष्ममरूपंपरसंस्थितम् ।
श्रोमित्युक्तंमयाविप्रतत्परंब्रह्मतद्वपुः ॥२७

सृष्टि के पूर्व, जब यह विश्व आभाहीन, अन्धकारमय था तब क्षय रहित एक विशाल अण्ड उत्पन्न हुआ ॥२१॥ उसी समय जगत् के जन्मदाता प्रपितामह ब्रह्मा पद्म-योनि में विद्यमान थे, उन्हीं ने स्वयं इस अण्डे को भेद दिया ॥२२॥ हे महर्षि ! ब्रह्माजी के मुखारविन्द से उस समय ॐ शब्द हुआ। श्रोंकार शब्द से पहले भू, भुवः एवं तत्पश्चात् स्वः उत्पन्न हुआ ॥२३॥ यह व्याहृति भगवान् भास्कर का स्वरूप है । ॐ शब्द के स्वरूप से सूर्य का अत्यन्त सूक्ष्म रूप हुआ है ॥२४॥ उससे स्थूल रूप 'महः' तत्पश्चात् स्थूल रूप 'जन' फिर स्थूल रूप 'तपः' अनन्तर स्थूल रूप 'सत्य' उत्पन्न होगया । सूर्य का संपूर्ण रूप स्थूल है । विवस्वान् सूर्य के स्थूलों के सूक्ष्म भेद से श्रोंकार के सप्त रूप उत्पन्न हुए ॥२५॥ सूर्य भगवान् के सप्त रूप भी कभी-कभी सम्मुख होते हैं श्रौर कभी छिपे रहते हैं, क्योंकि उनके स्वभाव एव प्रकृति का अस्तित्व संशयात्मक होता है ॥२६॥ हे ब्राह्मण ! इस जगत् के प्रारम्भ व अन्त में निराकार परम सूक्ष्म परमात्मा विद्यमान हैं, ॐ कार से मेरा अभिप्राय उन्हीं से है । हे ब्राह्मण ! वह ब्रह्मस्वरूप ही मार्कण्ड देव की देह है ॥२७॥

६४—वेदमय-मार्तण्ड की उत्पत्ति

तस्मादण्डाद्विभिन्नात्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन. ।
ऋचोबभूवु प्रथमप्रथमाद्वदनान्मुने ॥१
जपापुष्पनिभा सद्यस्तेजोरूपाह्यसहता ।
पृथक्पृथग्विभिन्नाश्चरजोरूपवहास्तत ॥२
यजूंषि दक्षिणाद्वक्त्रादनिरुद्धानिकानिचित् ।
यादृग्वर्णंनथावर्णान्यसहतिधराणिच ॥३
पश्चिमयद्विभोर्वक्त्र ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
आविर्भूं तानिमामानितत्च्छन्दामितासितान्यथ ॥४
अथर्वणामशेपचभृङ्गाञ्जनचयप्रभम् ।
यावद्घोरस्वरूपतदाभिचारिकशान्तिकम् ॥५
उत्तराप्रकटीभूतवदनात्तस्यवेधम ।
सुखसत्त्वतम प्रायसौम्यासौम्यस्वरूपवत् ॥६
ऋचारजोगुणा सत्त्वयजुपात्रगुणामुने ।
तमोगुणानिसामानितम सत्त्वमथर्वमु ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा— हे ऋषि ! उस अण्डे के भेदन पर अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजी साकार हुए और उनके मुख से निकले वचनों से ऋग्वेद की रचना हुई ॥१॥ वह जपापुष्प तुल्य तेजस्वरूप और पृथक् विभिन्न रजो रूप धारण करने वाला था ॥२॥ ब्रह्माजी के दक्षिण मुख से स्वर्ण तुल्य वर्णयुक्त असहति ग्रहण करने वाले समस्त यजु की अनिरुद्ध भाव से रचना हुई ॥३॥ तदनन्तर परमात्मा ब्रह्माजी के पश्चिम मुख से साम की रचना हुई, सम्पूर्ण साम छन्द पूर्ण था ॥४॥ ब्रह्माजी के उत्तर मुख से भृंग व अञ्जन के समूह के समान भासापूर्ण कृष्ण वर्ण, आभिचारिक, शान्तिकर्त्ता, सुख, सत्व, तम से युक्त सौम्य और असौम्य अशेष अथर्व की रचना हुई ॥५-६॥ हे ऋषि ! सम्पूर्ण ऋक् में रजोगुण, सम्पूर्ण यजु में सत्व गुण, सम्पूर्ण साम में तमोगुण एवं सम्पूर्ण अथर्व में सत्व एवं तमोगुण है ॥७॥

एतान्युज्ज्वलमानानितेजसाऽप्रतिमेनवै ।
पृथक्पृथगवस्थानंभाञ्जिपूर्वमिवाभवन् ॥८
ततस्तदाद्यंयत्तेजओमित्युक्त्वाभिक्षब्दयते ।
तस्यस्वभावाद्यत्तेजस्तत्समावृत्यसंस्थितम् ॥९
अथायजुर्मयंतेजस्तद्वत्साम्नांमहामुने ।
एकत्वमुपयातानिपरेतेजसिसंश्रये ॥१०
शान्तिकंपौष्टिकंचैवतथाचैवाभिचारिकम् ।
ऋगादिषुलयंब्रह्मन्नितयंत्रिष्वथागमत् ॥११
ततोविश्वमिदंसद्यस्तमोनाशात्सुनिर्मलम् ।
विभावनीयंविप्रर्षेतिर्य्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥१२
ततस्तन्मण्डलीभूतंछान्दसंतेजउत्तमम् ।
परेणतेजसाब्रह्मन्नेकत्वमुपगम्यतत् ॥१३
आदित्यसंज्ञामगमदादावेवयतोऽभवत् ।
विश्वस्यास्यमहाभागकारणञ्चाव्ययात्मकम् ॥१४

इन सभी ने अद्वितीय तेज से प्रकाशवान् होकर पृथक्-पृथक् भाव से स्थिति की ॥८॥ उसके पश्चात् प्रथम का वह तेज, जिसके लिये ॐ शब्द प्रयुक्त हुआ है, उससे उत्पन्न जो तेज है, उसे वह अपने में समेट कर स्थित हुआ ॥९॥ हे महर्षि ! इस प्रकार साम युक्त तेज एवं यजुर्युक्त तेज को भी अपने में समेट लिया, इस प्रकार सम्पूर्ण तेज उस ॐ स्वरूप परम तेज में आवृत होकर एक होगये ॥१०॥ हे विप्र ! इसके बाद ऋक्, साम, यजुः तीनों वेदों में, शांति युक्त, पौष्टिक, आभिचारिक इन तीनों में अथर्व वेद भी मिल गया ॥११॥ हे ब्रह्मर्षे ! अन्धकार नष्ट होने पर समस्त जगत् तुरन्त स्वच्छ होगया, जिससे उसका ऊर्ध्व, अध और तिर्यक् अथवा पार्श्व देश प्रकाश में आये ॥१२॥ हे विप्र ! तत्पश्चात् वह परम छन्दस तेज मंडलीभूत हो फिर श्रेष्ठ ॐ कार तेज में लीन होकर एक होगया ॥१३॥ इस प्रकार इस तेज को आदि में उत्पन्न होने के कारण 'आदित्य' की संज्ञा दी गई। हे महाभाग ! यही इस जगत् का अव्ययात्म कारण है ॥१४॥

प्रातर्म्मध्यन्दिनेचैवतथाचैवापराह्निके ।
त्रयीतपतिसाकालेऋग्यजु सामसज्ञिता ॥१५
ऋचस्तपतिपूर्वाह्णे मध्याह्ने चयजू पिवै ।
सामानिचाराह्णे वैतपन्तिमुनिसत्तम॥१६
शान्तिकमृक्षुपूर्वाह्णे यजु ष्वेवचपौष्टिकम् ।
विन्यस्तसाम्निसायाह्णे ह्याभिचारिकमन्तत ॥१७
मध्यन्दिनेऽपराह्णे चसमेचैवाभिचारिकम् ।
अपराह्णे पितृणान्तुमाम्नाकार्य्याणितानिवै ॥१८
विसृष्टौऋङ्मयोब्रह्मास्यितौविष्णुर्यजुर्मयः ।
रुद्र सामनयान्तेचतस्मात्तस्याशुचिध्वनिः ॥१९
तदेवभगवान्भास्वान्वेदात्मावेदसस्थित ।
वेदविद्यात्मकश्चैवपर पुरुषउच्यते २०
सर्गस्थित्यन्तहेतुश्चरज सत्वादिकान्गुणान् ।
आश्रित्यब्रह्मविष्ण्वादिसज्ञामभ्येतिशाश्वत ॥२१
देवै सदेड्य सतुवेदमूर्तिरमूर्तिराद्योऽखिलमर्त्यमूर्ति. ।
विश्वाश्रयज्योतिरवेद्यधर्मावेदान्तगम्य परम.परेश ॥२२

ऋक् यजु और साम तीनो सज्ञाऐं प्रात, मध्याह्न एव अपराह्न काल मे तपती हैं ॥१५॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उनम ऋक् प्रात काल, यजु मध्याह्न में और साम अपराह्न मे तपता है ॥१६॥ पूर्वाह्न-काल ऋक् मे शान्ति कार्य, मध्याह्न मे यजु मे पौष्टिक एव अपराह्न काल मे साम मे सम्पूर्ण आभिचारिक कर्म निहित हैं ॥१७॥ मध्याह्न और अपराह्न समय मे ही अभिचारिक-कर्म करे एव साम द्वारा केवल अपराह्न मे ही पितरो का कार्य सम्पन्न करे ॥१८॥ सृष्टि के समय मे ब्रह्मा ऋक्मय, स्थितिकाल मे विष्णु यजुर्मय एव शमन काल मे रुद्र साम मय होते हैं, इसलिये अपराह्न काल को अशुचि कहते हैं ॥१९॥ इस कारण उपर्युक्त प्रकार मे वेदात्मा, वेद सस्थित एव वेद विद्यायुक्त भगवान् भास्वान् परम पुरुष नाम उच्चारण किया गया है ॥२०॥ सृष्टि के आदि, स्थिति व प्रलयकर्ता यह शाश्वत आदित्य सत्व रज एव तमोगुण को आश्रय कर ब्रह्मा, विष्णु और महेश नाम प्राप्त होते हैं ॥२१॥ देवताओं द्वारा सदैव आराध्य

वेदमूर्ति, निराकार, सम्पूर्ण प्राणि स्वरूप एवं ज्योति स्वरूप आदि पुरुष भगवान् आदित्य विश्व के आश्रयदाता अवेद्य धर्मा, वेदान्तगम्य एवं उत्तम से भी परमोत्तम हैं ॥२२॥

६५—ब्रह्मकृत रविस्तव

तेस्यसन्ताप्यमानेतुतेजसोर्द्ध मधस्तथा ।
सिसृक्षुश्चिन्तयामासपद्मयोनिःपितामहः ॥१
सृष्टिःकृतापिमेनाशंप्रयास्यत्यभितेजसा ।
भास्वतःसृष्टिसंहारस्थितिहेतोर्महात्मनः ॥२
अप्राणाःप्राणिनःसर्वआपःशुष्यन्तितेजसा ।
नचाम्भसाविनासृष्टिर्विश्वस्यास्यभविष्यति ॥३
इतिसञ्चिन्त्यभगवान्स्तोत्रंभगवतोरवेः ।
चकारतन्मयोभूत्वाब्रह्मालोकपितामहः ॥४
नमस्येयन्मयंसर्वमेतत्सर्वमयश्चयः ।
विश्वमूर्तिःपरंज्योतिर्यत्तद्ध्यायन्तियोगिनः ॥५
यऋङ्मयोयोयजुषांनिधानंसाम्नांचयोयोनिरचिन्त्यशक्तिः ।
त्रयीमयःस्थूलतयार्धमात्रापरस्वरूपोगुणपारयोग्यः ॥६
त्वांसर्वहेतुं परमंचवेद्यमाद्यं परंज्योतिरवेद्यरूपम् ।
स्थूलञ्चदेवात्मतयानमस्येभास्वन्तमाद्यं परमंपरेभ्यः ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—उसके पश्चात् आदित्य के तेज से ऊर्ध्व एवं अधः संतापित होने पर सृष्टि की रचना के इच्छुक ब्रह्मा चिन्तित होने लगे ॥१॥ कि सृष्टि की रचना करने पर भी उसका नाश भगवान् भास्कर की तीव्र किरणों के तेज से होगा ॥२॥ उन भास्कर के तेज से सम्पूर्ण जीवधारी प्राणविहीन एवं जल सूख जाता है, फिर जलहीन इस जगत् की सृष्टि भी नहीं होगी ॥३॥ जगत् पितामह ब्रह्माजी इस प्रकार चिन्तित हुए तल्लीन होकर भगवान् भास्कर

की स्तुति करने लगे ॥४॥ ब्रह्माजी ने कहा—जो समस्त जगत् के आत्मा रूप और इस जगत् में विद्यमान हैं, विश्व जिनका मूर्त्त रूप है एवं योगी भी जिस अनिन्द्रयग्राह्य श्रेष्ठ ज्योति की आराधना करते हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥ ऋग्वेद युक्त अचिन्त्य शक्ति, यजुर्वेद के आधार साम की रचना के कारण, स्थूलता प्रमुक्त तीनों में निहित, अर्द्धमात्रा स्वरूप, परमब्रह्म रूप और महान् गुणी हैं ॥६॥ सर्व प्रथम उन्हीं सर्वाधार रूपी परम पूज्य, परमेश्वर, अवह्निरूप, परमज्योति, देवात्मता के लिये स्थूल रूप एवं श्रेष्ठों से श्रेष्ठतम आदि पुरुष भगवान् भास्कर को नमस्कार करता हूँ ॥७॥

सृष्टिकरामियदहत्वशक्तिराद्यातत्प्रेरितोजलमहीपवनाग्निरूपाम् ।
तद्देवतादिविषयाप्रणवाद्यशेपानात्मेच्छयास्थितिलयावपितद्वदेव ॥८
वह्निस्त्वमेवजलशोपगत पृथिव्या सृष्टिकरापिजगताचतथाद्यपाकम् ।
व्यापीत्वमेवभगवन्गगनस्वरूपत्वपञ्चधाजगदिदपरिपामिविश्वम् ॥९
यज्ञै यंजन्तिपरमात्मविदोभवन्त विष्णुस्वरूपमखिलेष्टिमयविवस्वन् ।
ध्यायन्तिचापियतयोनियतात्मचित्ता सर्वेश्वरपरमात्मविमुक्तिकाम १०
नमस्तेदेवरूपायऋग्यजुःसामरूपायतेनम ।
परब्रह्मस्वरूपायचिन्त्यमानाययोगिभि ॥११
उपसहरतेजोयत्तेजस सहतिस्तव ।
सृष्टेर्विघातायविभोसृष्टौचाहसमुद्यत ॥१२
इत्येवसस्तुतोभास्वान्ब्रह्मणासर्गकर्तृ णा ।
उपसहृतवान्तेज परस्वल्पमधारयत् ॥१३
चकारचतत सृष्टिजगत पद्मसम्भव ।
तथातेशुमहाभाग पूर्वकल्पान्तरेपुवै ॥१४
देवासुरादीन्मर्त्याश्चपश्वादीन्वृक्षवीरुध ।
ससर्जपूर्ववद्ब्रह्मानरकांश्चमहामुने ॥१५

हे देव ! आपकी ही शक्ति नित्य है, क्योंकि मैं उससे प्रेरणा पाकर ही, जल, पृथ्वी, वायु और अग्नि देवतादि एवं प्रणवादि अशेष की सृष्टि करता हूँ । इस प्रकार स्थिति और प्रलय भी स्वेच्छा से नहीं करता, यह सब भी

आपकी प्रेरणा से ही करता हूं ॥८॥ हे भगवन्‌ ! तुम वह्निरूप भी हो। जिस समय धरती से तुम जल शुष्क करते हो तब मैं विश्व-सृष्टि एवं प्रथम पाक सम्पन्न करता हूँ, सर्वव्यापी आकाश स्वरूप आप ही हो, पञ्चरूप इस जगत्‌ के रक्षक भी आप ही हो ॥९॥ हे भास्कर ! परमात्मविद सकल यज्ञमय विष्णु स्वरूप में यज्ञ द्वारा आपकी आराधना करते हैं, आत्म-मोक्ष के आकांक्षी जितेन्द्रिय यति भी आपको परम सर्वेश्वर मानकर आपका मनन करते हैं ॥१०॥ आप देवरूप हैं, आपको प्रणाम करता हूं, आप ही यज्ञरूप और परब्रह्म स्वरूप मानकर योगी आपका चिन्तन करते हैं, आपको प्रणाम करता हूं ॥११॥ हे प्रभो ! आप तेज को त्यागें, मैं सृष्टि की रचना के लिये उद्यत हूं, आपका तीव्र तेज सृष्टि की रचना में बाधा है ॥१२॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—भगवान्‌ भास्कर ने सृष्टि के रचियता ब्रह्माजी की आराधना से प्रसन्न होकर अपना तीव्र तेज त्याग दिया और केवल सामान्य तेज धारण किया ॥१३॥ फिर महाभाग ब्रह्माजी ने पूर्व कल्पान्त कल्प में विश्व की सृष्टि रचना की ॥१४॥ हे महर्षि ! ब्रह्माजी ने पूर्व की भाँति सुर, असुर, मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि एवं समस्त नरक की रचना की ॥१५॥

९६—कश्यप प्रजापति की सृष्टि

सृष्ट्वाजगदिदंब्रह्माप्रविभागमथाकरोत्‌ ।
वर्णाश्रमसमुद्राद्रिद्वीपानांपूर्ववद्यथा ॥१
देवदैत्योरगादीनांरूपस्थानानिपूर्ववत्‌ ।
वेदेभ्यएवभगवानकरोत्कमलोद्भवः ॥२
ब्रह्मणस्तनयोयोऽभून्मरीचिरितिविश्रुतः ।
कश्यपस्तस्यपुत्रोऽभूत्काश्यपोनामनामतः ॥३
दक्षस्यतनयाब्रह्मंस्तस्यभार्यास्त्रयोदश ।
बह्वस्तत्सुताश्चासन्देवदैत्योरगादयः ॥४

अदितिर्जनयामासदेवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ।
दैत्यान्दितिर्दनुश्चोग्रान्दानवानुरुविक्रमान् ॥५
गरुडारुणौचविनतायक्षरक्षांसिवैखसा ।
कद्रू सुपावनागाश्चगन्धर्वान्सुषुवेमुनि ॥६
क्रोधायाजज्ञिरेकुल्यारिष्टायाश्चाप्सरोगणा ।
ऐरावतादीन्मातङ्गानिराचसुषुवद्विज ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्रह्माजी ने विश्व की रचना करके पूर्व की भाँति वर्ण, आश्रम, समुद्र, गिरि और सम्पूर्ण द्वीपों का विभाजन किया ॥१॥ भगवान् ब्रह्माजी ने देवगण दैत्य एवं उरगगण का रूप तथा स्थिति देवगणों से प्रारम्भ कर पूर्व की भाँति ही निर्दिष्ट किए ॥२॥ ब्रह्माजी के मरीचि नामक पुत्र से कश्यप नामक एक विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए थे जो कि कश्यप नाम से ही विख्यात हुए ॥३॥ हे विप्र ! दक्ष की तेरह कन्याएं उनकी पत्नियाँ हुई, जिनके गर्भ से देव, दैत्य और उरग आदि अनेक पुत्र उत्पन्न हुए ॥४॥ अदिति ने त्रिभुवनेश्वर देवताओं को जन्म दिया, दिति ने दैत्यों और दनु ने महापराक्रमी क्रोधी दानवों को जन्म दिया ॥५॥ विनता ने गरुण व अरुण, खसा ने यक्ष व राक्षस, कद्रू ने नाग एवं मुनि ने गन्धर्वों को जन्म दिया ॥६॥ हे ब्राह्मण ! क्रोधा से कुल्यागण, रिष्टा से अप्सराएं और ईरा से ऐरावत इत्यादि हथिनियों ने जन्म लिया ॥७॥

ताम्राचसुषुवेश्येनीप्रमुखा कन्यकाद्विज ।
यासाप्रसूता स्वगमा श्येनभासशुकादय ॥८
इलाया पादपाजाता प्रधायायादमागणा ।
आदित्यायासमुत्पन्नाकश्यपस्येतिसन्तति ॥९
तस्याश्चपुत्रदौहित्रै पौत्रदौहित्रिकादिभि ।
व्याप्तमेतज्जगत्सूत्याऽतेपातासाश्चवैमुने ॥१०
तेषाकश्यपपुत्राणाप्रधानादेवतागणा ।
सात्त्विकाराजसास्त्वेते तामसाश्चमुनेगणा ॥११

देवान्यज्ञभुजश्चक्रेतथात्रिभुवनेश्वरान् ।
ब्रह्मब्रह्मविदांश्रेष्ठःपरमेष्ठीप्रजापतिः ॥१२
तानबाधन्तसहिताः स पत्नादैत्य दानवाः ।
राक्षसाश्चतथायुद्धं तेषामासीत्सुदारुणम् ॥१३
दिव्यंवर्षसहस्रन्तुपराजीयन्तदेवताः ।
जयिनश्चाभवन्विप्रबलिनोदैत्यदानवाः ॥१४

ताम्रा से श्येनी आदि कन्याऐं उत्पन्न हुईं। इन कन्याओं से ही श्येन, भास एवं शुकादि खेचरगण उत्पन्न हुए ॥८॥ इला ने पादपगणों एवं प्रधा से पतङ्ग गणों ने जन्म लिया। हे ऋषिवर ! अदिति के गर्भ से उत्पन्न कश्यप की जो सन्तानें थीं ॥९॥ उनके पुत्र, खेवते और नाती, खेवते आदि एवं उनकी सन्तानें समस्त विश्व में व्याप्त हो गईं ॥१०॥ हे ऋषि ! कश्यप के पुत्रों में देवता ही प्रमुख हैं, उनके त्रिविधगण, सात्विक, राजस एवं तामस हैं ॥११॥ परमेष्ठ एवं ब्रह्मज्ञ श्रेष्ठ प्रजापति ब्रह्माजी देवतागणों को त्रिभुनेश्वर एवं यज्ञ-भुक् किया था ॥१२॥ किन्तु विमाताओं से उत्पन्न दैत्य, दानव और राक्षस मिलकर देवतागणों के प्रति शत्रुता का आचरण करते हुए बाधा पैदा करते थे, इसलिये उनका देवगणों के साथ हजारों वर्षों तक विकराल युद्ध हुआ। हे ब्राह्मण ! इस महायुद्ध में देवगणों की पराजय हुई और बलवान् दैत्य व दानव जीत गये ॥१३-१४॥

ततोनिराकृतान्पुत्रान्दैतेयैर्दानवैस्तथा ।
हृतत्रिभुवनान्दृष्ट्वाह्यदितिर्मुनिसत्तम ॥१५
आच्छिन्नयज्ञभागांश्चक्षुधार्सपीडिताभृशम् ।
आराधनायसवितुः परंयत्नंप्रचक्रमे ॥१६
एकाग्रानियताहारापरंनियममास्थिता ।
तुष्टावतेजसांराशिंगगनस्थंदिवाकरम् ॥१७
नमस्तुभ्यंपरांसूक्ष्मांसौवर्णीविभ्रतेतनुम् ।
धामधामवतामीशधाम्नाधारशाश्वत ॥१८

जगतामुपकारायतथापस्तवगोपते ।
आददानस्ययद्रूपतीव्र तस्मैनमाम्यहम् ॥१९
ग्रहीतुमष्टमासेनकालेनेन्दुमयरसम् ।
बिभ्रतस्तवयद्रूपमतितीव्र नतास्मितत् ॥२०
तमेवमुञ्चत सर्वरसवेवर्षणाययत् ।
रूपमाप्यायनभास्वस्तस्मैमेघायतेनमः ॥२१

हे ऋषिश्रेष्ठ ! तदुपरान्त दैत्य दानवों द्वारा त्रिभुवन का हरण किया गया एवं इस प्रकार अपने पुत्रों को पराजित हुआ एवं यज्ञ भागों से वंचित किये हुए देखकर, अदिति शोक एवं पीडा सहित भगवान् भास्कर देव की स्तुति करने लगी ॥१५-१६॥ एकचित्त, नियताहार एवं उत्तम नियम परायणता का पालन करती हुए आकाश मंडल में विद्यमान तेज राशि भगवान् सूर्यदेव की आराधना करने लगी ॥१७॥ अदिति बोली—हे शाश्वत ! आप सुन्दर सूक्ष्म सुवर्ण तन धारक हो आप ज्योति स्वरूप, ज्योतिष्कगणों में मुख्य एवं ज्योति के आधार हो, आपको नमस्कार ॥१८॥ हे गोपते ! विश्व का कल्याण करने के लिये जल ग्रहण करने वाली आपकी तीव्र मूर्ति को नमस्कार ॥१९॥ आठ महीने की अवधि पर्यन्त इन्दुमय रस ग्रहण करने वाली आपकी अत्यन्त तीव्र मूर्ति को प्रणाम करती हूँ ॥२०॥ हे भगवन् ! उस एकत्रित सम्पूर्ण रस को परित्याग कर वर्षा करने के लिये आप जो तृप्ति कारक मेघ रूप धारण करते हो, उस मेघरूप आपकी मूर्ति को प्रणाम ॥२१॥

वायुंतसर्गविनिष्पन्नमशेषस्यौषधीगणम् ।
पाकायतवयद्रूपभास्करतनमाम्यहम् ॥२२
यत्तरूपनवातीतहिमोत्सर्गादिशीतलम् ।
तत्कालमस्यपोषायतरणेतस्यतेनम ॥२३
नाति तीव्र चयद्रूपनातिशीतचयत्तव ।
वसन्तर्त्तौरवेसौम्यतस्मैदेवनमोनमः ॥२४
आप्यायनमशेषाणांदेवानाचतथापरम् ।
पितृणाचनमस्तस्मैमस्यानाशाय्हेनते ॥२५

यद्र पंजीवनायैकंवीरुधाममृतात्मकम् ।
पीयतेदेवपितृभिस्तस्मैसोमात्मनेनमः ॥२६
आप्यायदाहरूपाभ्यांरूपंविश्वमयन्तव ।
समेतमग्नीषोमाभ्यांनमस्तस्मैगुणात्मने ॥२७
यद्र पमृग्यजुःसाम्नामैक्येनतपतेतव ।
विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञंनमस्तस्मैविभावसो ॥२८

जल वर्षा से उत्पन्न अशेष औषधियों को पकाने के लिये जो भास्कर मूर्ति आप धारण करते हो, उस मूर्ति को प्रणाम ॥२२॥ हे तरणे ! शस्य-पोषण हेतु हिमवर्षा इत्यादि के लिये घोर शीतपूर्ण आपका जो रूप है, आपकी उस मूर्ति को प्रणाम ॥२३॥ हे रवे ! बसन्त ऋतु काल में न अत्यन्त तेज और न अत्यन्त शीतपूर्ण आपकी जो सौम्य मूर्ति है, हे देव ! आपकी उस मूर्ति को नमस्कार ॥२४॥ अशेष देवता एवं पितृगण को तृप्ति प्रदान करने वाले अन्न को पकाने वाली आपकी जो मूर्ति है, उसको नमस्कार करती हूं ॥२५॥ संपूर्ण गुल्मलता के जीवन का आधार आपका जो अमृतमय रूप है, जिसे देवता और पितर भी पान करते हैं, ऐसे सोम स्वरूप आपको नमस्कार ॥२६॥ अग्नि एवं सोम दोनों रूपों के मिलन से आपका जो जगत्मय स्वरूप बना है, ऐसे आप गुणात्मा को नमस्कार ॥२८॥

यत्तु तस्मात्परंरूपमोमित्युक्त्वाभिशब्दितम् ।
अस्थूलानन्तममलंनमस्तस्मैसदात्मने ॥२९
एवंसानियतादेवीचक्रेस्तोत्रमहर्निशम् ।
निराहाराविवस्वन्तमारिराधयिषुर्मुने ॥३०
ततःकालेनमहताभगवांस्तपनोऽम्बरे ।
प्रत्यक्षतामगादस्यादाक्षायण्याद्विजोत्तम ॥३१
सादर्दशमहाकूटंतेजसोऽम्बरसंश्रितम् ।
जगादमेप्रसीदेतिनत्वांपश्यामिगोपते ॥३२
यथाहष्टत्वतीपूर्वमम्बरस्थंसुदुर्दृशम् ।
निराहाराविवस्वन्तंतपन्तंतदनन्तरम् ॥३३

यथा न तेजसो ज्ञातं दृष्टं पश्यामि भूतले ।
प्रसादं कुरु पश्येयं यद्रूपं ते दिवाकर ।
भक्तानुकम्पक विभो भक्ताहं पाहि मे सुतान् ॥३४

इसके अतिरिक्त आपका जो उत्तम सूक्ष्म, अनन्त एवं स्वच्छ आकार रूप कहा जाता है, उस नित्यस्वरूप को नमस्कार ॥२९॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुनिवर ! अदिति देवी इस प्रकार नियमपरायण एवं निराहार जीवन पालन कर भास्कर भगवान् की आराधना करने की आकांक्षा से दिन रात उनकी स्तुति करने लगी ॥३०॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इसके पश्चात् बहुत समय व्यतीत होने पर भगवान् सूर्य गगन स्थित हुए दक्ष-सुता के समक्ष दिखाई देने लगे ॥३१॥ जो एकदम चमकने वाली अंशुमाला द्वारा आकाश मंडल में भी स्पष्ट दर्शनीय नहीं थे, उन्हीं तेजराशि स्वरूप रवि भगवान् को अदिति ने पृथ्वी के तल पर विद्यमान देखा । उन्हें देखकर अदिति बहुत भयभीत हुई और बोली—"हे गोपते ! आप मुझ पर प्रसन्न होवें, मैं आपको देख नहीं सकती ॥३२॥ आरम्भ में निराहार होकर आकाश में विद्यमान असहनीय सूर्यदेव का जिस प्रकार तपस्या प्रदान करते देखा, अब इस धरातल पर भी मैं उसी प्रकार तीव्र तेजवान् मूर्ति को देख रही हूँ । हे दिवाकर ! मुझ पर प्रसन्न होवें, जिससे मैं आपको स्वाभाविक स्वरूप का दर्शन कर सकूँ । हे प्रभो ! आप नतों पर कृपा करते हैं, मैं आपकी भक्त हूँ, आप मेरे पुत्रों की रक्षा करें ॥३३-३४॥

त्वं धाता विसृजसि विश्वमेतत्त्वं पासि स्थितिकरणाय सम्प्रवृत्तः ।
त्वय्यन्ते लयमखिलं प्रयाति तस्मात्त्वत्तोऽन्या नहि गतिरस्ति सर्वलोके ॥३५
त्वं ब्रह्मा हरिरजसंज्ञितस्त्वमिन्द्रो वित्तेशः पितृपतिरप्पतिः समीरः ।
सोमोऽग्निर्गगनपतिर्महीधरोऽब्धिः ।
किं स्तव्यं सकलजगत्स्वरूपधाम्नः ॥३६
यज्ञेशं त्वामनुदिनमात्मकर्मयुक्ताः ।
स्तुवन्तो विविधपदैर्द्विजा यजन्ति ।
ध्यायन्तस्त्वां नियतचेतसो नवन्तो योगस्था परमपदं प्रयान्ति मर्त्याः ॥३७

तपसिपच्चसिविश्वं पासिभस्मीकरोषि,
प्रकटयसिमयूखैर्ह्लादयस्यम्बुगर्भैः ।
सृजसिकमलजन्मापालयस्य,
च्युताख्यःक्षपयसिचयुगान्तेरुद्ररूपस्त्वमेकः ॥३८

आप ब्रह्मा के रूप में इस जगत् के जन्मदाता हैं, जगत् की सृष्टि के पश्चात् स्थिति काल में इसका पोषण करते हैं एवं प्रलय काल में सम्पूर्ण तत्व आप में ही विलीन होते हैं। इसलिए सभी लोगों में आपके अतिरिक्त अन्य कोई मति नहीं है ॥३५॥ आप ब्रह्मा, हरि, अजसंज्ञित शिव, इन्द्र, धनपति कुबेर, यम, वरुण एवं समीर हैं और आप ही अग्नि, आकाश, पृथ्वी का आधार एवं सागर हैं। आप ही समस्त तेज पदार्थों के आत्मरूप हैं, अधिक आपकी क्या स्तुति करूँ? ॥३६॥ हे यज्ञेश ! आपके कर्मोंमें लीन ब्राह्मण लोग प्रतिदिन विभिन्न छन्दों द्वारा स्तुति करके आपकी पूजा करते हैं। एकाग्रचित्त योगी पुरुष आपका ध्यान करते हुए परमधाम प्राप्त करते हैं ॥३७॥ विश्व को ऊष्णता प्रदान कर्त्ता तुम ही जगत् को रक्षित, भस्म किरणों द्वारा प्रकाशित करते हो एवं जल गर्भ को भेदने वाली किरणों के समूह से आह्लादित एवं पुनः उत्पन्न करते हो, देवगण व मनुष्य सदैव आपको प्रणाम करते हैं और पापी मनुष्य एकचित्त होने पर भी आपको प्राप्त नहीं कर सकते ॥३८॥

६७—अदिति के गर्भ से आदित्य का जन्म

ततःस्वतेजसस्तस्मादाविर्भूतोविभावसुः ।
अदृश्यततदादित्यस्तप्तताम्रोपमप्रभः ॥१॥
अथतांप्रणतांदेवींतस्यसंदर्शनान्मुने ।
प्राहभास्वान्वृणुष्वेष्टवरंमत्तोयमिच्छसि ॥२
प्रणताशिरसासाचजानुपीडितमेदिनी ।
प्रत्युवाचविवस्वन्तंवरदंसमुपस्थितम् ॥३

देवप्रसीदपुत्राणांहृतत्रिभुवनमम ।
यज्ञभागाश्चदैत्यैश्चदानवैश्चवलाधिकैः ॥४
तन्निमित्तप्रसादत्वंकुरुष्वममगोपते ।
अंशेनतेषांभ्रातृत्वंगत्वानाशयतद्रिपून् ॥५
यथामत्तनयाभूयोयज्ञभागभुज प्रभो ।
भवेयुरधिपाश्चैवत्रैलोक्यस्यदिवाकर ॥६
तथानुकम्पापुत्राणामुप्रसन्नोरवेमम ।
कुरुप्रपन्नातिहरःर्त्यातिकर्त्तात्वमुच्यसे ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—पश्चात् भगवान् अपने तेज मण्डल के बीच तपे हुए ताँबे के समान चमकते हुए प्रकट हुए ॥१॥ हे द्विजवर ! उनको विलोक कर अदिति देवी ने उनको प्रणाम किया तो सूर्य भगवान् ने कहा—आपकी जो अभिलाषा हो वही अभीष्ट वर मुझ से मांगो ॥२॥ अदिति अपने घुटने पृथ्वी पर टेक कर शीश नवा कर प्रणाम करते हुए वर प्रदान करने को उद्यत भगवान् सूर्य से बोली—हे देव ! आप मुझ पर प्रसन्न होवें, घोर बलशाली दैत्य और दानवों ने मेरे पुत्रों का त्रिभुवन एवं यज्ञ भाग हर लिया है ॥३-४॥ हे गोपते ! इस अभिप्राय से आप मुझ पर प्रसन्न होकर और अपने अंश से मेरे पुत्रों के भाई बन कर शत्रु दैत्य और दानवों का दमन कीजिये ॥५॥ हे दिनकर प्रभो ! जिससे कि मेरे पुत्रगण पुनः यज्ञ भाग के अधिकारी एवं त्रिभुवन के अधिपति बनें ॥६॥ हे रवे ! मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे पुत्रों को ऐसा अनुग्रहीत कीजिये पीड़ितों के त्राता । आपको लोक-पालक कहते हैं ॥७॥

ततस्तामाहभगवान्भास्करोवारितस्कर ।
प्रणतामदितिंविप्रप्रसादसुमुखोविभुः ॥८
सहस्रांशेनतेगर्भेसम्भूयाहमशेषतः ।
त्वत्पुत्रशत्रून्दितिजान्नाशयाम्याशुनिर्वृत ॥९
इत्युक्त्वाभगवान्भास्वानन्तर्द्धानमुपागमत् ।
निवृत्तासापितपसःसम्प्राप्ताखिलवाञ्छिता ॥१०

ततोरश्मिसहस्रात्तु सौसुम्नाख्यो रवेःकरः ।
विप्रावतारंसंचक्रे देवमातुरथोदरे ॥११
कृच्छ्रचान्द्रायणादीनिसाचचक्रे समाहिता ।
शुचिःसंधारयामासदिव्यंगर्भमितिद्विज ॥१२
ततस्तांकश्यपःप्राहकिञ्चित्कोपप्लुताक्षरम् ।
किम्मारयसिगर्भाण्डमितिनित्योपवासिनी ॥१३
साचतंप्राहगर्भाण्डमेतत्पश्येतिकोपना ।
नमारितंविपक्षाणांमृत्यवेतद्भविष्यति ॥१४

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे ब्राह्मण ! उसके पश्चात् जल शुष्क करने वाले भगवान् भास्कर प्रसन्नतापूर्वक नतमस्तक अदिति से बोले ॥८॥ हे अदिते ! सहस्रांशु तुम्हारे गर्भ से मैं जन्म लूँगा और तुम्हारे पुत्रगण के शत्रु समस्त दैत्य व दानवों को समूल नष्ट करूँगा । तुम्हारे पीड़ित पुत्र तुरन्त ही सुखी होंगे ॥९॥ इस प्रकार वर देकर भगवान् भास्कर अदिति के सामने से अंतर्धान हो गये और अदिति ने भी मनोवांछित वर प्राप्त करके तपस्या त्याग दी ॥१०॥ हे ब्राह्मण ! तदुपरान्त सूर्य की सौ पुत्र किरण सहस्रांशु से अदिति के गर्भ से अवतरित हुई ॥११॥ हे ब्राह्मण ! वह अदिति सावधानी पूर्वक कृच्छ्रचांद्रायण आदि व्रत व अनुष्ठान करती हुई पवित्रता पूर्वक दिव्य गर्भ धारण करने लगी । तब कश्यप जी ने क्रोधित हो कहा—तुम प्रतिदिन उपवास करके अपने इस गर्भ को नष्ट करोगी ॥१३॥ अदिति बोली—"हे कुपित स्वभाव, मैं इस गर्भ को नष्ट नहीं कर, रही, यह तो शत्रु दैत्य और दानवों का शमन करने वाला होगा ॥१४॥

इत्युक्त्वातंतदागर्भमुत्ससर्ज्जसुरारणिः ।
जाज्वल्यमानंतेजोभिःपत्युर्वचनकोपिता ॥१५
तंदृष्ट्वाकश्यपोगर्भमुद्यद्भास्करवर्चसम् ।
तुष्टावप्रणतोभूत्वाऋग्भिराद्याभिरादरात् ॥१६
संस्तूयमानःसतदागर्भाण्डात्प्रकटोऽभवत् ।
पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसाव्याप्तदिङ्मुखः ॥१७

अथान्तरिक्षादाभाष्यकश्यपमुनिसत्तमम् ।
मनोयमेघगम्भीरवाग्वाचाशरीरिणी ॥१८
मारिततेयत प्रोक्तमेतदण्डत्वयामुने ।
तस्मान्मुनेसुतस्तेऽयमार्त्तण्डाख्योभविष्यति ॥१९
सूर्याधिकारञ्चविभुर्जगत्येषकरिष्यति ।
हनिष्यत्यसुराश्चायंयज्ञभागहरानरीन् ॥२०
देवानिशम्येतिवचोगगनात्समुपागमन् ।
प्रहर्षमतुलयातादानवाश्चहतौजस. ॥२१

मार्कण्डेय जी ने कहा—इस प्रकार वह देवमाता अदिति पति के वचनों को सुनकर तेज एवं जाज्वल्य गर्भ को परित्याग किया ॥१५॥ उगते हुए सूर्य के तुल्य प्रभावान् उस गर्भ को देख कर कश्यप आदर सहित नत-मस्तक होकर मन्त्रोच्चारण द्वारा स्तुति करने लगे ॥१६॥ कश्यप की स्तुति को सुन कर वह भास्कर तेजस्वी किरणों को दिशाओं में फैलाते हुए पद्मपत्र तुल्य वर्णयुक्त होकर गर्भाण्ड से प्रकट हुए ॥१७॥ इसके पश्चात् जलपूर्ण मेघ के समान अन्तरिक्ष के मध्य कोई विदेह वाणी ऋषिवर कश्यप को सम्बोधित करते हुए कहने लगी ॥१८॥ हे ऋषि, आपने इस अण्ड को 'मारित' कहा, इसलिए आपके इससे उत्पन्न पुत्र का नाम मार्तण्ड होगा ॥१९॥ यह महा-पुरुष, विश्व में सूर्य की भाँति तेजस्वी होंगे एवं आपके देव पुत्रों के यज्ञ भाग हरने वाले दैत्य, दानव और असुरों का विनाश करेंगे ॥२०॥ अन्तरिक्ष वाणी के इन वचनों को सुन कर देवगण अत्यन्त हर्षित होकर आकाश से आये एवं दैत्य, दानवगण तेज विहीन हो गये ॥२१॥

ततोयुद्धायदैतेयानाजुहावशतक्रतु ।
सहदेवैर्मु दायुक्तोदानवाश्चसमभ्ययु ॥२२
तेषायुद्धमभूद्घोरदेवानामसुरै सह ।
शस्त्रास्त्रदीप्तिसंदीप्तसमस्तभुवनान्तरम् ॥२३
तस्मिन्युद्धे भगवतामार्त्तण्डेननिरीक्षिता. ।
तेजसादह्यमानास्तेभस्मीभूतामहासुराः ॥२४

ततःप्रहर्षमतुलंप्राप्ताः सर्वेदिवौकसः ।
तुष्टुवुस्तेजसांयोनिमार्त्तण्डमदितितथा ॥२५
स्वाधिकारांस्तथाप्राप्तायज्ञभागांश्चपूर्ववत् ।
भगवानपिमार्तण्डःस्वाधिकारमथाकरोत् ॥२६
कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोर्ध्वचरश्मिभिः ।
वृत्ताग्निपिण्डसदृशोदग्धे नातिस्फुरद्वपुः ॥२७

उसके पश्चात् सुरगण सहित इन्द्र ने दैत्यों को युद्ध के लिये आमन्त्रित किया तो वे उत्साहपूर्वक आये ॥२२॥ उस समय दानवों से सुरगण का भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया और त्रिभुवन सुरों व असुरों के शस्त्रास्त्रों की चमक से भी उसी प्रकार तेजपूर्ण हो गया ॥२३॥ उस महाभयंकर संघर्ष में तमोगुण युद्ध में असुरगण भगवान् मार्तण्ड के तेज द्वारा नष्ट हो गये और देवगण शक्तिमान् होकर हर्ष मनाने लगे उन्होंने सूर्य भगवान् और अदिति की स्तुति की ॥२४-२५॥ अब देवता अपने अधिकार को पुनः प्राप्त करके यज्ञ भाग पाने लगे और सूर्य भगवान् और भी अधिक प्रकाशमान होकर आकाश में कदम्ब पुष्प की तरह स्थित होकर सर्वांग तेजोमयी किरणों का प्रसार करने लगे ॥२६:२७॥

६८—भानुतन लेखन

अथतस्मैददौकन्यांसंज्ञांनामविवस्वते ।
प्रसाद्यप्रणतोभूत्वाविश्वकर्मा प्रजापतिः ॥१
वैवस्वतस्तुसम्भूतोमनुस्तस्यांविवस्वतः ।
पूर्वमेवतथाख्यातंतत्स्वरूपंविशेषतः ।
भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामिमार्त्तण्डस्यमहात्मनः ।
चरितंहंतियत्पापंकलौसंश्रृण्वतांनृणाम् ॥२
त्रीण्यपत्यान्यसौतस्यांजनयामासगोपतिः ।
द्वौपुत्रौसुमहाभागौकन्याञ्चयमुनांमुने ॥३

मनुर्वैवस्वतोज्येष्ठ श्राद्धदेव प्रजापति ।
ततायमोयमीचैवयमलौसवभूवतु ॥४
यत्तेजोऽभ्यधिकतस्यमार्तंडस्यविवस्वत ।
तेनातिनापयामासत्रीन्लोकान्सचराचरान् ॥५
गोलाकारन्तुतद्दृष्ट्वमज्ञारूपविवस्वतः ।
असहन्तीमहत्तेज स्वाच्छायाप्रेद्रयसाऽब्रवीत् ॥६
अहयास्यामिभद्र तेत्स्वमेवभवनपितु ।
निर्विकारस्त्वयाप्यत्रस्थेयमच्छासनाच्छुभे ॥७
इमौचवालकौमह्य कन्याचवरवर्णिनी ।
सभाव्यौनैवचाख्येयमिद भगवतेत्वया ॥८

मार्कण्डेय जी ने कहा—तदनन्तर प्रजापति विश्वकर्मा ने सूर्य नारायण ने सम्मुख प्रणत होकर उन्हें प्रसन्न किया और अपनी 'सज्ञा' नाम की कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया सज्ञा के गर्भ से जिन 'वैवस्वत मनु, का जन्म हुआ उनका वर्णन विस्तार पूर्वक पहले ही किया जा चुका है। यह सुनकर कौष्टिक ने प्रार्थना की कि उसके पश्चात् मार्तण्ड का जो गुण और चरित्र हो उसको भी मैं सुनना चाहता हूँ, क्योंकि उनका पुण्य चरित्र कलि-काल के पापो को मिटाने वाला है। मार्कण्डेय जी कहने लगे कि संज्ञा से सूर्य-भगवान् के तीन सन्तानें उत्पन्न हुई, वैवस्वत मनु तथा यम नामक दो पुत्र और यमुना नाम की पुत्री इनमें से वैवस्वत मनु ज्येष्ठ हैं और उनके पश्चात् यम और यमी जुड़वां भाई-बहिन उत्पन्न हुए। उस समय का सूर्य का तेज बहुत अधिक था जिससे वह तीनो लोको को बहुत अधिक तप्त करते थे। उनकी पत्नी सज्ञा उस महान् तेज को सहन करने में असमर्थ हुई और उसने अपनी छाया से एक बार कहा—हे शुभे ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं अपने पिता के घर जाती हूँ। तुम मेरी आज्ञानुसार यहीं रह कर मेरी इन तीनो सन्तानों को प्रेमपूर्वक पालन करती रहना और इस वृतान्त को सूर्य भगवान् को कभी मालूम न होने देना ॥१-८॥

आकेशग्रहणाद्दे विप्राशापान्नैवकर्हिचित् ।
आख्यास्यामिमतंतुभ्यंगम्यतांयत्रवाञ्छितम् ॥९
इत्युक्ताछाययासञ्ज्ञाजगामपितृमन्दिरम् ।
तत्रावसत्पितुर्गेहेकञ्चित्कालंशुभेक्षणा ॥१०
भर्तुःसमीपंयाहीतिपित्रोक्तासापुनःपुनः ।
अगच्छद्वडवाभूत्वाकुरुन्विप्रोत्तरांस्ततः ॥११
तत्रतेपेतपःसाध्वीनिराहारामहामुने ।
पितुःसमीपंयातायाःसंज्ञायावाक्यतत्परा ॥१२
तद्रूपधारिणीछायाभास्करंसमुपस्थिता ।
तस्यांचभगवान्सूर्यःसंज्ञेयमितिचिन्तयन् ॥१३
तथैवजनयामासद्वौसुतौकन्यकांतथा ।
पूर्वजस्यमनोस्तुल्यःसावर्णिस्तेसोऽभवत् ॥१४
यस्तयोःप्रथमंजातःपुत्रयोर्द्विजसत्तम ।
द्वितीयोयोऽभवत्तान्यःसग्रहोऽभूच्छनैश्चरः ॥१५

छाया ने कहा—जब तक सूर्य भगवान् जब तक दण्ड देने के भाव से मेरे केश नहीं पकड़ेंगे अथवा शाप देने को उद्यत न होंगे तब तक मैं इस रहस्य को कदापि प्रकट न होने दूँगी। यह सुन कर संज्ञा अपने पिता के घर चली गई और कुछ समय तक वहीं निवास करती रही। इसके पश्चात् जब उसके पिता विश्वकर्मा ने उससे पति के घर जाने का कहा तो वह बड़वा (घोड़ी) का रूप धारण करके उत्तर कुरु प्रदेश में जाकर निराहार तपस्या करने लगी। इस बीच में छाया संज्ञा सूर्य भगवान् की सेवा करती रही और उन्होंने उसे अपनी पत्नी संज्ञा ही समझकर उससे भी दो सन्तानें उत्पन्न कीं इनमें से एक सावर्णि मनु और दूसरे शनिश्चर (ग्रह) थे ॥९–१५॥

कन्याभूत्तपतीयातांवव्रे सवरणोनृपः ।
संज्ञातुपार्थिवीतेषामात्मजानांयथाऽकरोत् ॥१६
स्नेहान्नपूर्वजातानांतथाकृतवतीसती ।
मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्यायमश्चास्यानचक्षमे ॥१७

यहृशोयाच्यमानस्तुपितु पत्न्यासदु सित ॥
सवरोपाञ्चवाल्याच्चभाविनोऽर्थस्यवैवलात् ॥१८
पद्मामन्तर्जयामासछायासज्ञायमोमुने ॥
तत शशापचयमसज्ञामामर्पिणीभृशम् ॥१६
पद्मातर्जयसेयस्मात्पितृभार्य्यागरीयसीम् ।
तस्मात्तवैवचरण पतिष्यतिनसशय ॥२०

छाया के गर्भ से एक 'तपती' नाम की कन्या भी हुई जिसका विवाह यथा समय सवरण नामक नृप से किया गया । छाया-संज्ञा अपनी सन्तानों से जितना अधिक स्नेह करती थी उतनो प्रथम पत्नी की तीनो सन्तानों मे नहीं करती थी । उसके इस पक्षपात पूर्ण व्यवहार को देखकर वैवस्वत मनु ने तो कुछ न कहा पर यम के दूत उसे सहन न कर सके और एक बार उन्होंने रोष पूर्वक तथा होनहार के वशीभूत होकर छाया सज्ञा को डाट कर मारने के लिये पैर उठाया । इस पर छाया को बडा क्रोध आया और उसने कहा—"कि मैं तुम्हारे पूजनीय पिता की पत्नी हू, फिर भी तुमने मुझे मारने को लात उठाई इसके फल स्वरूप तुम्हारा यह पैर कट कर गिर जायगा" ॥१६-२०॥

यमस्तुतेनशापेनभृशपीडितमानस ।
मनुनासहधर्मात्मासर्वंपित्रेन्यवेदयत् ॥२१
स्नेहेनतुल्यमस्मासुमातादेवनवर्तते ।
विसृज्यज्यायसोऽप्यस्मान्कनीयासौबुभूर्षति ॥२२
तस्यामयोद्यत पादोनतुदेहेनिपातित ।
बाल्याद्वायदिवामोहात्तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥२३
शप्तोऽहतातमापेनजनन्यातनयोयत ।
ततोनमन्येजननीमिमावैतपतावर ॥२४
विगुणेष्वपिपुत्रेषुनमाताविगुणापित ।
पादस्तेपततापुत्रकथमेतत्प्रवक्ष्यति ॥२५
तवप्रमादाच्चरणोनपतेद्भगवन्यथा ।
मातृशापादयमेऽद्यतथाचिन्तयगोपते ॥२६

इस शाप को सुनकर यम बड़े दुःखी हुए और पिता के पास जाकर सब वृतान्त उनको सुनाया और कहा कि हे देव ! माता हमारी अपेक्षा छोटे भाई-बहिनों का अधिक स्नेह और पालन-पोषण करती है। इससे असन्तुष्ट होकर बाल-स्वभाव वश अथवा भूल से मैंने उसकी ओर लात उठाई, पर मारा नहीं। फिर भी मैं उस अपराध को आपसे क्षमा चाहता हूँ॥ यम ने फिर कहा—पिता जी ! यदि कोई पुत्र दुष्ट, दुराचारी होता है तो भी माता उसका कभी अहित नहीं करती। पर उसने क्रोध करके 'तुम्हारा पैर गिर जाय' ऐसा जो शाप दे डाला इससे मुझे वह अपनी माता नहीं जान पड़ती। अब आप ऐसी कृपा करें कि माता के क्रोध पूर्वक दिये शाप के कारण मेरा यह पैर न गिरे ॥२१-२६॥

असंशयमिदंपुत्रभवि्ष्यत्यत्रकारणम् ।
येनत्वामाविशत्क्रोधोधर्मज्ञं सत्यवादिनम् ॥२७
सर्वेषामेवशापानांप्रतिघातोहिविद्यते ।
नतुमात्राभिशप्तानांक्व चिच्छापनिवर्तनम् ॥२८
नशक्यमेतन्मिथ्यातुकर्तुं मातुर्वचस्तव ।
किञ्चित्तवविधास्यामिपुत्रस्नेहादनुग्रहम् ॥२९
कृमयोमांसमादायप्रयास्यन्तिमहीतलम् ।
कृतंतस्यावच.सत्यंत्वंचत्रातोभविष्यसि ॥३०
आदित्यस्त्वब्रवीच्छायांकिमर्थंतनयेषुवै ।
तुल्येष्वप्यधिकःस्नेहएकत्रक्रियतेत्वया ॥३१
नूनंनैषांत्वंजननीसंज्ञाकापित्वमागता ।
विगुणेष्वप्यपत्येषुकथंमाताशपेत्सुतम् ॥३२

सूर्य भगवान् ने कहा—पुत्र ! तुम धर्मज्ञाता और सत्य परायण होकर भी जब क्रोध के वशीभूत हो गये तो उसका यह कुपरिणाम होना संभव है। और सब शापों से छुटकारा मिल सकता है पर माता के शाप से बच सकने का कोई मार्ग नहीं है। इसलिये तुम्हारी माता के वचनों को मिथ्या करने में तो असमर्थ हूँ पर तुम्हारी विनय के कारण कोई अन्य उपाय बतलाऊँगा। जिस

से तुम्हारी माता की बात पूरी हो जाय और तुम्हारा पैर भी बच जाय। इसलिये ऐसा होगा कि कृमि तुम्हारे पैर का माँस लेकर पृथ्वी तल पर डाल देंगे—ऐसा होने पर तुम्हारी माता का शाप पूरा हो जायगा और फिर तुम्हारा पैर भी ठीक हो जायगा। इसके पश्चात् सूर्य भगवान् ने छाया से कहा कि—तुम्हारे लिये सभी सन्तान समान रूप से प्रिय होनी चाहिये। पर ऐसा न करके तुम किसी के प्रति कम और किसी से अधिक स्नेह करती हो। इससे मालूम पड़ता है कि तुम इनकी माता नहीं हो, यदि माता होती तो पुत्र को ऐसा शाप नहीं दे सकती थी" ॥ २७-३२ ॥

सातत्परिहरन्तीचनाचचक्षेविवस्वतः ।
सचात्मानसमाधाययुक्तस्तत्त्वमपश्यत ॥३३
तशप्त मुद्यतदृष्ट्वाछायासज्ञादिवस्पतिम् ।
भयेनकम्पिताब्रह्मन्यथावृत्तन्यवेदयेत् ॥३४
विवस्वांस्तुततोक्रुद्धश्च त्वाष्ट्रमुरमभ्यगात् ।
सचापितयथान्यायमर्चयित्वादिवाकरम् ।
निर्दग्धुकामरोपेणसान्त्वयामासमुव्रत. ॥३५
तवातितेजसाव्याप्तमिदरूपसुदुसहम् ।
असहन्तीतत सज्ञावनेचरतिवैतप ॥३६
द्रक्ष्यतेताभवानद्यस्वभार्यांशुभचारिणीम् ।
रूपार्थं भवतोऽरण्येचरन्तीसुमहत्तप ॥३७
स्मृतंमेब्रह्मणोवाक्ययदितेदेवरोचते ।
रूपनिवर्तयाम्येतत्तथकान्तदिवस्पते ॥३८
यतोहिभास्वतोरूपप्रगासीत्परिमण्डलम् ।
ततस्तथेतितप्राहत्वष्टारमगवान्रवि ॥
भिरत्वष्टमात्वनुज्ञातश्शाकद्वीपेविवस्वत ।
अभिमारोप्यतरोज शातनायोपचक्रमे ॥४०

तब छाया राणा ने सत्य बात छिपा कर कुछ बहाना बना दिया इस पर सूर्य भगवान् ने समाधिस्थ दृष्टि से समस्त घटना की वास्तविकता जान ली और

वे छाया-संज्ञा को शाप देने के लिये उद्यत हुये। इस पर छाया-संज्ञा भयभीत होकर काँप उठी और जो कुछ घटना घटी थी वह सब खोल कर सुनादी। सारा हाल जान कर सूर्य को बड़ा क्रोध पैदा हुआ और मन में आया समस्त विश्व को दग्ध कर दें। तब विश्व-कर्मा ने उनकी यथाविधि पूजा करके उनको शान्त किया और कहा कि तुम्हारे इस अत्यन्त दुःसह तेज को सहन न कर सकने से संज्ञा तप करने चली गई है। उसे अब भी एकान्त वन में तपस्या और संयम का पालन करते देख सकते हैं। अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं आपके वर्तमान रूप और आकार को सौम्य और दर्शनीय रूप में परिवर्तन करूँ। सूर्य भगवान् ने विश्व की बातों से संतुष्ट और प्रसन्न होकर कहा—'ऐसा ही करो।' तब भगवान् भास्कर शाकद्वीप में चले गये और विश्व कर्मा उन्हें खराद के समान घुमाकर नवीन सौम्य रूप देने लगे ॥ ३३-४० ॥

भ्रमताऽशेष जगतां नाभिभूतेनभास्वता ।
समुद्राद्रिवनोपेतासारूरोहमहीनभः ॥४१
गगनञ्चाखिलंब्रह्मन्सचन्द्रग्रह तारकम् ।
अधोगतंमहाभागबभूवाक्षिप्तमाकुलम् ॥४२
विक्षिप्त सलिलाःसर्वेबभूवुश्चतथाऽब्धयः ।
व्यभिद्यन्तमहाशैलाःशीर्णसानुनिबन्धनाः ॥४३
ध्रुवाधाराण्यशेजाणिधिष्ण्यानिमुनिसत्तम ।
त्रुट्यद्रश्मिनिबन्धानिह्यधोजग्मुःसहस्रशः ॥४४
वेगभ्रमण संजातवायुक्षिप्ताःसमन्ततः ।
व्यशीर्यन्तमहामेघाघोर रावविराविणः ॥४५
भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तंभूम्याकाशरसातलम् ।
जगादाकुलमत्यर्थतदासीन्मुनिसत्तम ॥४६
त्रैलोक्येसकलेविप्रभ्रममाणेसुरर्षयः ।
देवाश्चब्रह्मणासार्द्धभास्वन्तमभितुष्टुवुः ॥४७
आदिदेवोऽसिदेवानांज्ञातमेतत्स्वरूपतः ।
स्वर्गस्थित्यन्तकालेषुत्रिधाभेदेनतिष्ठसि ॥४८

स्वस्तितेऽस्तुजगन्नाथघर्मवर्षाहिमाकर ।
जुपस्वशान्ति लोकाना देवदेवदिवाकर ॥४९
इन्द्रश्चागत्यतदेवलिख्यमानमयथाऽस्तुवत् ।
जयदेवजगद्व्यापिञ्जयाशेप जगत्पते ॥५०

मार्कण्डेय जी कहने लगे—समस्त विश्व के नाभि स्वरूप भगवान् भास्कर के घूमने से समुद्र, पर्वत, वन, जलस्रोत, पृथ्वी, आकाश आदि अस्थिर होने लगे। उस समय चन्द्रमा, ग्रह, तारागण आदि के सहित सम्पूर्ण गगन-मण्डल ही नीचे गिरता हुआ सा जान पडने लगा। समस्त सागर, नदी, जला-शयों की जलराशि में हलचल पैदा होगई और महापर्वतों के शिखर-बिखरने लगे। ध्रुव अपने स्थान से च्युत होने लगा और इससे समस्त आकाशस्थ पिंडों की स्थिति उलटी-पलटी होने लगी। सब नीचे गिरने लगे। वायु भी महा भयङ्कर वेग से चक्कर काटने लगी और महामेघ घोर शब्द करने लगे। इस प्रकार सूर्य भगवान् के घूम जाने पर पृथ्वी, आकाश और रसातल में सर्वत्र विशृंखलता, गडबडी उत्पन्न होकर समस्त विश्व में आकुलता फैल गई। इस प्रकार त्रिलोक घूम जाने से सर्वत्र सङ्कट आया देखकर देवर्षि, देवगण, ब्रह्मा आदि भगवान् आदित्य की स्तुति, प्रार्थना करने लगे—आप समस्त देवों में आदि देव हैं, आपकी महिमा सर्वत्र विदित है, आप ही स्वर्ग आदि समस्त लोकों और अखिल भुवनों की स्थिति का कारण है, आप ही सबकी रक्षा और कल्याण करने वाले हैं। हे जगन्नाथ! आप ही ग्रीष्म, वर्षा और शीत स्वरूप हैं। हे सब देवों में महान् दिवाकर देव! प्रसन्न होकर त्रिलोक की व्याकुलता को दूर करो। स्वर्गाधिपति इन्द्र ने भी आकर सूर्य भगवान् की स्तुति की—हे देव! आप ही सर्वत्र व्याप्त है, आपकी जय हो, हे अखिल जगत् पति आपकी जय हो ॥४१ से ५०॥

ऋषयश्चतत सप्तर्षिषाग्निपुरोगमा ।
तुष्टुवुर्विविधं स्तोत्रं स्वस्तिस्वस्तीतिवादिन ॥५१
वेदोक्ताभिरथाग्र्याभिर्वालखिल्याश्चतुष्टुवु ।
भास्वन्तमृग्भिराद्याभिर्लिख्यमानंमुदायुता ॥५२

त्वंनाथमोक्षिणांमोक्षोध्येयस्त्वंध्यानिनांपरः ।
त्वंगतिःसर्वभूतानांकर्मकाण्डेऽपिवर्ततांम् ॥५३
शंप्रजाभ्योऽस्तुदेवेशशन्नोऽस्तुजगताम्पते ।
शन्नोऽस्तुद्विपदेनित्यंशन्नश्चास्तुचतुष्पदे ॥५४
ततोविद्याधरगणायक्षराक्षसपन्नगाः ।
कृताञ्जलिपुटाःसर्वेशिरोभिःप्रणतारविम् ॥५५
ऊचुस्त्वं विधावाचो मनः श्रोत्रसुखावहाः ।
सह्य भवतुतेतेजोभूतानांभूतभावन ॥५६

इसके पश्चात् वसिष्ठ, अत्रि आदि सातों ऋषियों ने स्वस्ति वचन उच्चारण करके सूर्य भगवान् की अनेक प्रकार से स्तुति की। बालखिल्य ऋषि भी ऋग्वेद के ग्राह्य वचनों द्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगे—"हे भगवन्! आप ही मुमुक्षजनों को मोक्ष प्रदान करने वाले, ध्यानी पुरुषों के ध्येय और कर्मकाण्ड वालों को शुभ फल देने वाले तुम्हीं हो। हे देव! हे जगन्नाथ! आप समस्त प्रजा का, हमारा और हमारे द्विपद तथा चतुष्पद जीवों का कल्याण करो। फिर विद्याधर, यक्ष, राक्षस, पन्नग आदि सब हाथ जोड़कर सूर्य भगवान् को प्रणाम करके कहने लगे—हे भगवन्! आपका तेज समस्त छोटे-बड़े जीवों के सहन करने योग्य हो। सब कोई उससे सुखी हो सकें ॥५१ से ५६॥

ततोहाहाहूहूश्चैवनारदस्तुम्बुरुस्तथा ।
उपगायितुमारब्धागान्धर्वकुशलारविम् ॥५७
षड्जमध्यमगान्धारग्रामत्रयविशारदाः ।
मूर्च्छनाभिश्चतानैश्चसंप्रयोगैःसुखप्रदम् ॥५८
विश्वाचीचघृताचीचउर्वश्यथतिलोत्तमा ।
मेनकासहजन्याचरम्भाचाप्सरसांवरा ॥५९
ननृतुर्जगतामीशेलिख्यमानेविभावसो ।
भावभावविलासाढ्यान्कुर्वन्तोऽभिनयान्बहून् ॥६०

प्रावाद्यन्ततस्तत्रवेणुवीणादिझर्झराः ।
पणवा पुष्कराश्चैवमृदङ्गा पटहानकाः ॥६१
देवदुन्दुभय शङ्खा.शतशोऽथसहस्रश. ।
गायद्भिश्च वगाधर्वैनृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः ॥६२
तूर्यवादित्रघोपैश्चसर्वकोलाहलीकृतम् ।
तत कृताञ्जलिपुटाभक्तिनम्रात्ममूर्तय ॥६३
लिख्यमानसहस्रांशु प्रणेमु सर्व देवताः ।
तत कोलाहलेतस्मिन्सर्व देवसमागमे ।
तेजस शातनञ्चक्रे विश्वकर्माशनै शनै ॥६४
इति हिमजलघर्मकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ।
तनुपरिलिखननिशम्यभानोर्व्रजतिदिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ॥६५

इसके अनन्तर सगीत शास्त्र मे निपुण हाहा-हूहू, तुम्बरु, नारद आदि षड्ज, मध्यम और गान्धार तीनों ग्रामो तथा मूर्च्छना, ताल आदि के नियमानुसार सूर्य भगवान के सम्मुख श्रेय गायन करने लगे ॥५७-५८॥ उसी अवसर पर विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सहजन्या, रम्भा आदि स्वर्ग की अप्सराएँ भी सूर्य भगवान् के नवीन रूप से प्रसन्न होकर हाव-भाव पूर्वक तरह तरह के नृत्यो का प्रदर्शन करने लगीं ॥५९-६०॥ देवगन्द द्वारा वेणु, वीणा, दुर्दुर पणव, पुष्कर, मृदङ्ग, पटह, आनक, दुन्दभी, शख आदि हजारो वाद्यों की ध्वनि होने लगी। इस प्रकार गन्धर्वो के सगीत, अप्सराओ के नृत्य और देवगणों के बाद्यो के शब्द द्वारा उस समय समस्त जगत् महान् ध्वनि से भर गया। फिर सब किसी ने अत्यन्त भक्ति और विनय सहित भगवान् भास्कर को नमस्कार किया। उसी कोलाहल के बीच विश्वकर्मा धीरे-धीरे सूर्य के तेज को कम करते गये ॥६१—६४॥ जो सूर्य भगवान् जाडा, वर्षा और ग्रीष्म आदि ऋतुओ के उत्पादक हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी जिनकी स्तुति करते उनकी यह तनुलिखन की कथा भक्ति पूर्वक सुनने से भानुलोक में सद्गति प्राप्त होती है ॥६५॥

६६–विश्वकर्मा द्वारा सूर्यस्तवन

लिख्यमानेततोभानौविश्वकर्माप्रजापतिः ।
उद्भूतपुलकःस्तोत्रमिदंचक्रे विवस्वतः ॥१
विवस्वतेप्रणतहितानुकम्पिनेमहात्मनेसमजवसप्तसप्तये ।
सुतेजसेकमलकुलावबोधिनेनमस्तमःपटलपटावपाटिने ॥२
पावनातिशयपुण्यकर्मणेनैककामविषयप्रदायिने ।
भास्वरानलमयूखशायिनेसर्वलोकहितकारिणे नमः ॥३
अजायलोकत्रयकारणायभूतात्मनेगोपतयेवृषाय ।
नमोमहाकारुणिकोत्तमायसूर्य्यायचक्षुःप्रभवालयाय ॥४
विवस्वतेज्ञानभृतेन्तरात्मनेजगत्प्रतिष्ठायजगद्धितैषिणे ।
स्वयम्भुवेलोकसमस्तचक्षुषेसुरोत्तमायामिततेजसेनमः ॥५
क्षणमुदयाचलमौलिमणिःसुरगणमहितहितोजगतः ।
त्वंमयूखसहस्रवपुर्जगतिविभासितमासिनुदन् ॥६
भवतिमिरासवपानमदाद्भवतिविलोहितविग्रहता ।
मिहिरविभासियतः सुतरांत्रिभुवनभावनभानिकरैः ॥७

मार्कण्डेय जी कहने लगे—जिस समय विश्वकर्मा जी सूर्य भगवान् के तेज को क्षीण करके सहन योग्य बना रहे थे, उस समय उसके नवीन रूप के दर्शन से पुलकित होकर उन्होंने उस मूर्ति का स्तवन किया। विश्वकर्मा जी बोले—जो जीव आपके सम्मुख प्रणत हो रहे हैं। उन सबका आप कल्याण और कृपा करने वाले हैं। आप ही सम वेग वाले, सप्त अश्व वाले, कमलों को खिलाने वाले और अन्धकार को दूर करने वाले हैं, आपको नमस्कार हो। अत्यन्त पवित्र, पुण्य शाली, कामनाओं की पूर्ति करने वाले, अत्यन्त तीव्र किरणों से युक्त और समस्त लोकों के हितकारी भगवान् भास्कर को नमस्कार हो तीनों लोकों को उत्पन्न क ने वाले, पंचभूतों के मूल, रश्मि पति, धर्म स्वरूप, कृपालु और नेत्रों को प्रकाश देने वाले सूर्य भगवान् को नमस्कार हो। जगत् के आधार अन्तरात्मा के प्रकाश, स्वयम्भू, अखिल विश्व को दृष्टि शक्ति

देने वाले, देवों में श्रेष्ठ, महान् तेजस्वी सूर्य भगवान् को नमस्कार हो। हे भगवन्! तुम ही जगत् के हितकारी और उदयाचल के शिखर के माला स्वरूप हो, तुम ही सहस्रों रूप ग्रहण करके जगत् को प्रकाशित करते हो। तुम्हीं तिमिर रूपी आसव को पान करने के निमित्त लोहित मूर्ति धारण करके किरणों द्वारा दीप्तिमान् होते हो ॥१-७॥

रथमधिरुह्यसमावयवचारुविकंपितमुरुरुचिरम् ।
सततमखिन्नहयैःसंचरसिजगद्धितायविततम् ॥८
अमृतमयेनरसेनसमविबुधपितॄनपितर्पयसे ।
अरिगणसूदनतेनतवप्रणतिमुपैत्यलिखामिवपुः ॥९
शुकसमवर्णहयप्रथितंतवपदपांसुपवित्रतमम् ।
नतजनवत्सलमाप्रणतत्रिभुवनपावनपाहिरवे ॥१०
इतिमयसप्रभूतिभूतत्रिभुवनभावनधामहेतुमेकम् ।
रविमखिलजगत्प्रदीपभूतंत्रिदशवरप्रणतोऽस्मिसर्वदात्वाम् ॥११

हे सूर्य नारायण! जिस रथ पर चढ़कर सात घोड़ों के द्वारा जगत् के हितार्थ तुम विचरण करते हो वह समान अवयव वाला, आश्चर्यक विस्तार युक्त और किंचित् काँपने वाला है। हे शत्रुहन्ता! तुम देवता और पितरों को एक ही साथ जीवन प्रदायक सुधा प्रदान करते हो। इसी निमित्त जगत् को हित कामना से मैंने प्रथम ही आपको प्रणाम करके आपके देह को लिखा है (तपाया) है। हे भक्तवत्सल! हे त्रिभुवन को पवित्र करने वाले! मैं आपकी ही इस हरी-भरी सृष्टि के कारण विख्यात हुआ हूँ और तुम्हारी चरण-रज के प्रताप से अत्यन्त पवित्र माना जाता हूँ आप मेरी रक्षा करें। इस तरह मैं सर्वदा संसार के कारण रूप, त्रिभुवन को पवित्र बनाने वाले, तेज के भण्डार, जगत् के प्रकाशक और निर्माणकर्त्ता भगवान् सूर्य को नमस्कार करता हूँ ॥८-११॥

१००—रविमाहात्म्य वर्णन

एवंसूर्य्यस्तवंकुर्वन्विश्वकर्मादिवस्पतेः ।
तेजसःषोडशभागंमण्डलस्थमधारयत् ॥१
शातितस्तेजसोभागैर्दशभिःपञ्चभिस्तथा ।
अतीवकान्तिमच्चारुभानोरासीत्तदावपुः ॥२
शातितंचास्ययत्तेजस्तेनचक्रंविनिर्मितम् ।
विष्णोःशूलंचशर्वस्यशिविकाधनदस्यच ॥३
दंडःप्रेतपतेःशक्तिर्हेमसेनापतेस्तथा ।
अन्येषांचैवदेवानामायुधानिसविश्वकृत् ॥४
चकारतेजसाभानोर्भासुराण्यरिशान्तये ।
इतिशातिततेजाःसशुशुभेनातितेजसा ॥५
वपुर्दधारमार्त्तण्डःसर्वावयवशोभनम् ।
सददर्शसमाधिस्थःस्वांभार्य्यांवडवाकृतिम् ॥६
अधृष्यांसर्वभूतानांतपसानियमेनच ।
उत्तरांश्चकुरून्गत्वाऽश्वोभानुरागमत् ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—विश्वकर्मा जी इस प्रकार सूर्य नारायण की स्तुति करके उनके तेज का पंद्रह अंश निकाल कर सोलहवाँ भाग शेष रहने दिया । इससे सूर्य का कलेवर अत्यन्त सुन्दर, सौम्य और कांति वाला बन गया जो पंद्रह अंश तेज निकाला गया था उसके द्वारा विश्वकर्मा ने विष्णु का चक्र, शिव का त्रिशूल, कुबेर की पालकी, यम का दण्ड, कार्तिकेय की शक्ति और अन्य कितने ही अमोघ अस्त्र निर्माण किये जिनसे देवगण शत्रुओं को जीत सकें । इस प्रकार मार्तण्ड का तेज नियन्त्रित हो जाने पर उनकी शोभा बहुत बढ़ गई और जगत् के हितार्थ उनका कलेवर अत्यन्त उत्तम बन गया । इस प्रकार परमोपयोगी आकार पाकर वे अपने स्थान पर स्थित हुए और फिर ध्यान लगाकर अपनी पत्नी को घोड़ी के रूप में देखा जो कुरु प्रदेश में उनके हितार्थ अत्यन्त संयम नियम सहित तपस्या कर रही थी । तब सूर्यदेव भी घोड़े का स्वरूप रखकर उसके पास पहुँचे ॥१-७॥

साचदृष्ट्वातमायान्तपरपु सोविशङ्कया ।
जगामसमुखेतस्यपृष्ठरक्षणतत्परा ॥८
ततश्चनासिकायोगतयोस्तत्रसमेतयो ।
वडवायाचतेत्तं जोनासिकाभ्याविवस्वत ॥९
देवौतत्रसमुत्पन्नावश्विनौभिपजावरौ ।
नासत्यदस्रौतनयावश्विवक्त्राद्विनिर्गतौ ॥१०
मार्त्तण्डस्यसुतावेतावश्वरूपधरस्यहि ।
रेतसोऽन्तेचरेवन्त खड्गीधन्वीतनुत्रधृक् ॥११
अश्वारूढ समुद्भूतोवाणतूणसमन्वित ।
तत स्वरूपममलदर्शयामासभानुमान् ॥१२
तस्यशान्तसमालोक्यसारूपमुदमाददे ।
स्वरूपधारिणीचेमामनिनायनिजालयम् ॥१३
सज्ञाभार्य्याप्रीतिमतीभास्करोवारितस्कर ।
तत पूर्वसुतोयोऽस्यासोऽभूद्वैवस्वतोमनु ॥१४

उनको समीप आते देखकर सज्ञा को अपने सतीत्व रक्षा की चिन्ता हुई और वह उनके सामने मुँह करके खड़ी हुई। जब दोनो की नासिकायें मिली तो सूर्य भगवान् का तेज नाक के मार्ग से ही घोडी के भीतर प्रविष्ट हुआ और उससे दोनों अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए जो देवगण के वैद्य बने। उनके मुख से निकले तेज से 'नासत्य' और 'दस्र' की उत्पत्ति हुई और शेष भाग से 'रेवन्त' का जन्म हुआ जो रक्षा आवरण, खड्ग और धनुष धारी हैं। फिर जब सूर्य भगवान् ने अपना निर्मल शान्त रूप दिखाया तो सज्ञा परम प्रसन्न हुई और अपना वास्तविक रूप ग्रहण करके उनके साथ स्वगृह में आगये ॥८-१४॥

द्वितीयश्चयम शापाद्धर्मदृष्टिग्नुग्रहात् ।
यमस्तुतेनशापेनभृशपीडितमानस ॥१५
धर्मोभिरोचतेयस्माद्धर्मराजस्तत स्मृत ।
कृमयोमासमादायपादतस्तेमहीतलम् ॥१६

पतिष्यन्तीतिशापान्तंतस्यचक्रे पितास्वयम् ।
धर्मदृष्टिर्यतश्चासौसमोमित्रेतथाऽहिते ॥१७
ततोनियोगेतंयाम्येचकारतिमिरापहः ।
तस्मैददौपिताविप्रभगवाँल्लोकपालताम् ॥१८
पितृणामाधिपत्यञ्चपरितुष्टोदिवाकरः ।
यमुनांचनदींचक्रे कलिंदान्तरवाहिनीम् ॥१९
अश्विनौदेवभिषजौकृतौपित्रामहात्मना ।
गुह्यकाधिपतित्वेचरेवन्तोविनियोजितः ॥२०

संज्ञा के ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनु की पदवी पर अधिष्ठित हुए, उनसे छोटे यम धर्म के ज्ञाता होने से धर्मराज बने। वे धर्म और सत्य पर स्थिर रहकर प्रत्येक प्राणी के साथ न्याय युक्त व्यवहार करते थे, इसे उन्हें जीवों के कर्मों का फल देने का कार्य दिया गया। उनको छाया-संज्ञा ने जो शाप दिया था उसके फलस्वरूप उनके पैर का माँस कृमि पृथ्वी तल पर ले गये। सूर्य भगवान् ने उनको लोकपाल और पितरों का अधिकार भी दिया। पुत्री यमुना को कलिन्द देश में बहने वाली नदी बनाया गया। अश्विनी कुमारों को देवताओं का वैद्य, रेवन्त को गुह्यकों का शासक नियुक्त किया ॥१५-२०॥

एवमप्याहचततोभगवाँल्लोकभावितः ।
त्वमप्यशेषलोकस्यपूज्योवत्सभविष्यसि ॥२१
अरण्यादिमहादाववैरिदस्युभयेषुच ।
त्वांस्मरिष्यन्तियेमर्त्यामोक्ष्यन्तेतेमहापदः ॥२२
क्षेमंबुद्धिसुखंराज्यमारोग्यंकीर्तिमुन्नतिम् ।
नराणांपरितुष्टस्त्वंपूजितःसंप्रदास्यसि ॥२३
छायासंज्ञासुतश्चापिसावर्णिःसुमहायशाः ।
भाव्यःसोऽनागतेकालेमनुःसावर्णिकोऽष्टमः ॥२४
मेरुपृष्ठेतपोघोरमद्यापिचरतिप्रभुः ।
भ्राताशनैश्चरस्तस्यग्रहोऽभूच्छासनाद्रवेः ॥२५

यवीयसीतुयाकन्याऽदित्यस्याभूद्द्विजोत्तम ।
अभवत्सासरिच्छ्रेष्ठातपतीलोकपावनी ॥२६
यस्तुज्येष्ठोमहाभाग सर्गोयस्येहसाम्प्रतम् ।
विस्तरतस्यवक्ष्यामिमनोर्वैवस्वतस्यह ॥२७
इदयोजन्मदेवानाशृणुयाद्वापठेतवा ।
विवस्वतस्तूनूजानारवेर्माहात्म्यमेवच ॥२८
आपदप्राप्यमुच्येतप्राप्नुयाच्चमहायश. ।
अहोरात्रकृतपापमेतच्छमयतेश्रुतम् ।
माहात्म्यमादिदेवस्यमार्तण्डस्यमहात्मन ॥२६

भगवान् सूर्य नारायण ने रेवन्त से कहा कि तुम सब लोकों में पूजनीय होंगे और जो कोई अग्नि, शत्रु, चोर आदि के भय से आक्रान्त होकर तुम्हारा स्मरण करेगा तो तुम विपत्ति मे उनकी रक्षा करने में समर्थ होगे। छाया सज्ञा के पुत्र सावर्ण मेरु पर्वत पर तपस्या म निरत हैं और वे आगामी 'सावर्णक' नाम के मन्वन्तर म मनु होकर महान् यशस्वी होंगे। उनके भ्राता शनैश्चर को प्रमुख ग्रह नियत किया। यमुना जी को भी नदियो मे श्रेष्ठ स्थान दिया गया और वे लोकपावनी प्रसिद्ध हुई। वैवस्वत मनु का मन्वन्तर समय मे चल रहा है। उनके वश का विस्तार और वर्णन मन्वन्तर किया जायगा। इस प्रकार जो व्यक्ति सूर्य भगवान् का माहात्म्य और उनकी सन्तानो की कथा श्रद्धा पूर्वक श्रवण करते हैं वे सब प्रकार की आपत्तियो से छुटकारा पाकर सुख सौभाग्य के अधिकारी बनते हैं और उनके समस्त पाप दूर हो जाते हैं ॥२१-२६॥

१११—राज्य वर्द्धन की आयुवृद्धि

भगवन्कथित सम्यग्भानो मन्ततिसभव ।
माहात्म्यमादिदेवस्यस्वरूपञ्चातिविस्तरात् ॥१
भूयोऽपिभाष्वत सम्यङ्माहात्म्यमुनिसत्तम ।
श्रोतुमिच्छाम्यहतन्मेप्रसन्नोवक्तुमर्हसि ॥२

श्रू यतामादिदेवस्यमाहात्म्यंकथयामिते ।
विवस्वतोयच्चकारपूर्वमाराधितोजनैः ॥३
दमस्यपुत्रोविख्यातोराजाभूद्राज्यवर्धनः ।
ससम्यक्पालनंचक्रे पृथिव्याःपृथिवीपतिः ॥४
धर्मतःपाल्यमानंतुतेनराष्ट्रं महात्मना ।
ववृधेऽनुदिनंविप्रजनेनचधनेनच ॥५
हृष्टपुष्टमतीवासीत्तस्मिन्राजन्यशेषतः ।
निर्भयःसकलश्चोर्व्यांपौरजानपदोजनः ॥६
नोपसर्गोनचव्याधिर्नचव्यालोद्भवंभयम् ।
नचावृष्टिभयन्तत्रदमपुत्रमहीपतौ ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हे भगवन् ! सूर्य के माहात्म्य को मैं पुनः श्रवण करना चाहता हूँ, आप मुझ पर प्रसन्न होकर उसे मुझे सुनाइये ॥१-२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—आदि देव भगवान् सूर्य ने पुराकाल में आराधित होकर जो कुछ किया, वह सब तुम्हारे प्रति वर्णन करता हूं ॥३॥ दम के पुत्र राज्यवर्द्धन नाम से प्रसिद्ध हुए और उन्होंने भले प्रकार से पृथ्वी का पालन किया ॥४॥ हे ब्रह्मन् ! उन्होंने अपने धर्म का पालन करते हुए प्रजा की रक्षा की, इसलिये उनके शासन काल में धन, जन से राष्ट्र की नित्य वृद्धि होने लगी ॥५॥ उनके राज्यारूढ़ होने पर अन्य राजा पुरजन और सम्पूर्ण पृथिवी अत्यन्त पुष्ट हुई ॥६॥ उन राजा राज्यवर्द्धन के राज्य में कोई उपसर्ग, रोग हिंसक जीवों का तथा अनावृष्टि का भय आदि नहीं था ॥७॥

सईजेचमहायज्ञैर्ददौदानानिचार्थिनाम् ।
सुधर्मस्याविरोधेनबुभुजेविषयानपि ॥८
तस्यैवंकुर्वतोराज्यंसम्यक्पालयतःप्रजाः ।
सप्तवर्षसहस्राणिजग्मुरेकमहर्यथा ॥९
विदूरथस्यतनयादाक्षिणात्यस्यभूभृतः ।
तस्यपत्नीवभूवाथमानिनीनाममानिनी ॥१०

कदाचित्तस्यसासुभ्रू शिरसोऽभ्यञ्जनाद्दता ।
पश्यतोराजलोकस्यमुमोचाश्रू णिमानिनी ॥११
तदश्रु विन्दवोगात्रेयदातस्यमहीपते ।
तदावीक्ष्याश्रु वदनातामपृच्छन्तमाननीम् ॥१२
किमेतदितिपप्रच्छमाननीराज्यवर्धनः ॥१३
पृष्टासातुततस्तेनभर्त्राप्राहमनस्विनी ।
नकिंचिदितिताभूय पप्रच्छसमहीपति ॥१४

वह महायज्ञो का अनुष्ठान करते अभ्यर्थियो को दान देते और विषयों का भोग भी धर्म सहित करते थे ॥८॥ इस प्रकार राज्य शासन चलाते और भले प्रकार प्रजा पालन करते हुए उनका सात सहस्र वर्ष का समय एक दिन के समान व्यतीत होगया ॥६॥ उनका विवाह दक्षिण देश के राजा विदूरथ की पुत्री मानिनी से हुआ था ॥१०॥ एक समय राजपुरुषो के समक्ष रानी मानिनी राजा के सिर पर तल मल रही थी, तभी उसके नेत्र से आँसू टपक पड़ा ॥११॥ जब वह आँसू राजा के शरीर पर पड़ा, तब उन्होंने उसके अश्रु पूर्ण नेत्र देखकर उसका कारण पूछा ॥१२॥ परन्तु,उसने कोई उत्तर नहीं दिया और वह बिना शब्द किये रुदन करने लगी, यह देखकर राजा ने पूछा—तुम क्यों रो रही हो ? ॥१३॥ रानी ने राजा के प्रश्न का उत्तर 'कोई बात नहीं' कहकर दिया ॥१४॥

बहुश पृच्छतस्तस्यभूभृत सासुमध्यमा ।
नकिंचिदितिहोवाचसाभूयोराज्यवर्धनम् ।
किमेतदितिपप्रच्छमानिनीपार्थिवःपुन ।
बहुश प्रेरितातेनसाभर्त्रातिभामिनी ।)
दर्शयामासपलितकेशभारान्तरोद्भवम् ॥१५
पौराणांचमहीपालकिमन्यन्मन्युकारणम् ।
ममातिमन्दभाग्यायाजरामाथनृपस्तत ॥१६
सविस्म्याहतापत्नीशृण्वतासर्वभूभृताम् ।
पौराणांचमहीपालायेतत्रामन्समागता ॥१७

शोकेनालंविशालाक्षिरोदितव्यंनतेशुभे ।
जन्मर्द्धिपरिणामाद्याविकाराःसर्वजन्तुषु ॥१८
अधीताःसकलावेदाइष्टायज्ञाःसहस्रशः ।
दत्तांद्विजानांपुत्राश्चसमुत्पन्नावरानने ॥१९
भुक्ताभोगास्त्वयासार्द्धंयेमर्त्यैरतिदुर्लभाः ।
सम्यक्चपालितापृथ्वीशौर्ययुद्धेष्वनुष्ठितम् ॥२०
मित्रैःसहेष्टैर्हसितंविहृतंचवनान्तरे ।
किमन्यन्नकृतंभद्रेपलितेभ्योबिभेषियत् ॥२१

राजा के पुनः अनेक बार प्रश्न करने पर भी जब रानी ने कोई उत्तर नहीं दिया, तो राजा का आग्रह बढ़ा और उनके बारम्बार पूछने पर रानी ने उनके बालों के बीच में एक श्वेत बाल दिखाया ॥१५॥ और बोली—हे महाराज ! क्रोधित होने का कोई कारण नहीं है, आप इसे देखिये, यह मेरा मन्द भाग्य ही है, रानी की यह बात सुनकर राजा बड़े जोर से हँस पड़े ॥१६॥ उन्होंने हँसते-हँसते ही राजपुरुषों और पुरजनों के समक्ष ही रानी मानिनी से कहा ॥१७॥ हे कल्याणी ! हे विशाल नेत्र वाली ! तुम रोओ मत, क्योंकि सभी जीवों में जन्म, वृद्धि और परिणामादि विकार उत्पन्न होते रहते हैं,इसलिये इस विषय में शोक नहीं करना चाहिये ॥१८॥ मैंने सभी वेदों का अध्ययन, हजारों यज्ञों का अनुष्ठान, ब्राह्मणों को दान और पुत्रोत्पादन ॥१९॥ मनुष्यों के लिये दुर्लभ सुखों का तुम्हारे साथ उपभोग, भले प्रकार पृथिवी-पालन, न्याय पूर्वक संग्राम ॥२०॥ तथा मित्रों के साथ हास-परिहास और वन-विहार आदि सभी कार्य किये हैं, ऐसा कौन-सा कार्य मेरे द्वारा होने से रह गया है, जिसके लिये तुम मेरा पका हुआ बाल देखकर डर रही हो ॥२१॥

भवन्तुकेशाःपलितावलयःसन्तुमेशुभे ।
शैथिल्यमेतुमेकायःकृतकृत्योऽस्मिमानिनि ॥२२
मूर्ध्नियद्दर्शितंभद्रेभवत्यापलितंमम ।
चिकित्सामेवतस्याहंकरोमिवनसंश्रयात् ॥२३

बाल्येबालक्रियापूर्वंतद्वत्कौमारकेचया ।
यौवनेचापियायोग्यावार्द्धकेवनसश्रया ॥२४
एवमत्पूर्वजैभद्रे कृतस्त्वत्पूर्वजैश्चयत् ।
अतोनतेश्रु पातस्यकिंचित्पश्याभिकारणम् ॥२५
अलन्तेमन्युनाभद्रे नन्वभ्युदयकारिमे ।
दर्शनपलितस्यास्यमारोद्धीनिष्प्रयोजनम् ॥२६
तत प्रणम्यतभूपा पौराश्चवसमीपगा ।
साम्नाप्रोचुर्महीपालामहर्षेराज्यवर्धनम् ॥२७
नरोदितव्यमनयातवपत्न्यानराधिप ।
रोदितव्यमिहास्माभिरथवासर्वजन्तुभि ॥२८

हे शुभे ! चाहे मेरे बाल पक गये हों, चाहे देह शिथिल हो जाय, इसमें अब मैं कोई हानि नहीं समझता, क्योंकि मैं अब धन्य होगया हूँ ।।२२।। तुमने मेरे सिर में जो पका हुआ बाल देखा है, उसकी चिकित्सा वन कर आश्रय लेकर करूँगा ।।२३।। बाल्यकाल में बाल क्रीडा, कौमारावस्था में उसके अनुरूप कार्य और युवावस्था में भोगादि तथा वृद्धावस्था के प्राप्त होने पर वन का ही आश्रय लेना चाहिये ।।२४।। मेरे पूर्व पुरुषों ने तथा उनके भी पूर्व पुरुषों ने इसी प्रकार किया है, इसलिये मैं तुम्हारे रुदन को व्यर्थ ही समझता हूँ, इसलिये शोक को छोड़ दो ।।२५।। मेरे इस श्वेत केश का दिखायी देना, मेरा भाग्योदय होना ही है, इसलिये रुदन नहीं करना चाहिये ।।२६।। मार्कण्डेय जी ने कहा—हे महर्षे ! फिर पास में बैठे हुए राज पुरुषों और पुरवासियों ने महाराज राज्यवर्द्धन को प्रणाम करके विनय पूर्वक कहा ।।२७।। हे राजन् ! आपकी भार्या का रुदन व्यर्थ है, परन्तु अब हमारे अथवा अन्य सब प्राणियों के रोने का समय आगया है ।।२८।।

त्वयत्रयीगियियानायवनवासाश्रितवच ।
पतन्तिनेनन प्राणालालितानास्त्वयानृप ॥२९
सर्वेयास्यामहेभूपयदियातिभवान्वनम् ।
ततोऽस्तेपक्रियाहानि सर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥३०

भविष्यतिनसन्देहस्त्वयिनाथवनाश्रये ।
साचधर्मोपघाताययदितत्प्रविमुच्यताम् ॥३१
सप्तवर्षसहस्राणित्वयेयंपालितामही ।
तत्समुत्थंमहापुण्यमालोकयनराधिप ॥३२
वनेवसन्महाराजत्वंकरिष्यसियत्तपः ।
तन्महीपालनस्यास्यकलांनार्हतिषोडशीम् ॥३३
सप्तवर्षसहस्राणिमयेयंपालितामही ।
इदानींवनवासस्यममकालोयमागतः ॥३४
ममापत्यानिजातानिदृष्टामेऽपत्यसन्ततीः ।
स्वल्पैरेवमहोभिर्मेह्यन्तकोनसहिष्यति ॥३५

हे नाथ ! आप हमारा प्रति पालन करने वाले हैं, आपके मुख से वन का आश्रय ग्रहण करने की बात सुनकर हमारे प्राण ही निकले जा रहे हैं ॥२६॥ यदि आप वन को जाते है, तो हम सभी आपके साथ चलेंगे, क्योंकि आपके वनवासी होने पर मनुष्यों की सभी क्रिया नष्ट हो जायगी ॥३०॥ यदि आप इससे धर्म की हानि समझें तो अपने वनाश्रयी होने के विचार को छोड़ दीजिये ॥३१॥ हे राजन् ! आपको इस पृथिवी का पालन करते हुए सात सहस्र वर्ष हुए हैं, इतने काल में कितने महा-पुण्य की उपलब्धि हुई है, इस पर विचार कीजिये ॥३२॥ हे राजन् ! वन में निवास करके वहाँ आप जितनी तपस्या करेंगे, उसका फल इस पृथिवी पालन रूप कर्म के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं होगा ॥३३॥ राजा बोले—मैं सात सहस्र वर्ष से इस पृथिवी का पालन कर रहा हूं, अब वनवास करने का उपयुक्त अवसर मेरे समक्ष उपस्थित है ॥३४॥ मेरे पुत्र उत्पन्न हो चुके हैं, उन पुत्रों की जो सन्तान होगी, उसे देखकर यमराज अब कुछ समय के लिये भी मेरा जीवित रहना सहन नहीं करेंगे ॥३५॥

यदेतत्पलितंमूर्ध्नितद्विजानीतनागराः ।
दूतभूतमनार्य्यस्यमृत्योरत्युग्रकर्मणः ॥३६

सोऽहं राज्येसुतंकृत्वाभोगास्त्यक्त्वावनाश्रयः ।
तपस्तप्स्येसमायान्तिनयावद्यमसैनिका ॥३७
ततोयियासु र्वनदेवज्ञानवनीपतिः ।
पुत्रराज्याऽभिषेकायदिनलग्नान्यपृच्छत ॥३८
श्रुत्वाचतेतुनृपतेर्वचोव्याकुलचेतसः ।
दिनलग्नंचहोराश्चनविदुः शास्त्रदृष्टयः ॥३९
ऊचुश्चतंमहीपालंदेवज्ञावाष्पगद्गदम् ।
ज्ञानानिनः प्रणष्टानिश्रुत्वैतद्भवचोनृप ॥४०
ततोऽन्यनगरेभ्यश्चभृत्येराष्ट्रेभ्यएवच ।
ततस्तस्माच्चनगरात्प्राचुर्येणाभ्युपागमन् ॥४१
समुत्पत्यमहीपालंतंयियासुं मुनेवनम् ।
प्रकम्पिशिरसोभूत्वाप्रोचुर्ब्राह्मणसत्तमाः ॥४२

हे नागरिको ! मेरे शिर में जो श्वेत केश देखा गया है, उसी केश को उग्र कर्म वाली मृत्यु का दूत समझो ॥३६॥ इसलिये मैं पुत्र का राज्याभिषेक करके और सम्पूर्ण भोगों को छोड़ कर वन में निवास करता हुआ यम सैनिकों के आने तक तप करूँगा ॥३७॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर राजा ने वन में जाने का दृढ़ निश्चय कर ज्योतिषियों से पुत्र के राज्याभिषेक दिन और लग्न दिखवाया ॥३८॥ राजा के वचन को सुनकर वे शास्त्रदर्शी ज्योतिषी भी व्याकुल हृदय होगये और इस कारण लग्नादि देखने में असमर्थ रहकर ॥३९॥ गद्गद स्वर में राजा के प्रति बोले—हे राजन् ! आपकी बात सुनकर हमारा सभी ज्ञान लुप्त होगया है ॥४०॥ हे मुने ! इसके पश्चात् जो अन्यान्य राज्य उन महाराज के आधीन हुए थे, उनसे तथा उसी राजधानी के अन्य नगरों से अनेकानेक वृद्ध ब्राह्मण वहाँ ॥४१॥ आये और उन्होंने अपने शिर को कम्पित करते हुए राजा से इस प्रकार कहा ॥४२॥

प्रसीदपाहिनोराजन्पालिताः स्मयथापुरा ।
सीदिष्यत्यखिलोलोकस्त्वयिभूपवनाश्रये ॥४३
त्वंकुरुष्वतथाराजन्यथानोसीदतेजगत् ।

यावज्जीवामहेवीरस्वल्पकालमिमेवयम् ।
नेच्छामश्चभवच्छून्यंद्रष्टुं सिंहासनंविभो ॥४४
इत्येवंलैस्तथान्यैश्चद्विजैःपौरपुरःसरैः ।
भूपैर्भृत्यैरमात्यैश्चराजाप्रोक्तःपुनःपुनः ॥४५
वनवासविनिर्बन्धंनोपसंहरतेयदा ।
क्षमिष्यत्यन्तकोनेतिददौसचतदोत्तरम् ॥४६
ततोऽमात्याश्चभूपाश्चपौरवृद्धास्तथाद्विजाः ।
समेत्यमन्त्रयामासुःकिमत्रक्रियतामिति ॥४७
तेषांमन्त्रयतांविप्रनिश्चयोऽयमजायत ।
अनुरागवतांतत्रमहीपालेऽतिधार्मिके ॥४८
सम्यग्ध्यानपराभूत्वाप्रार्थयामःसमाहिताः ।
तपसाराध्यभास्वन्तमायुरस्यमहीपतेः ॥४९

हे राजन् ! प्रसन्न होइये, हम पर अनुग्रह करते हुए पहिले के समान ही हमारा पालन कीजिये, हे महाराज ! आपके वन में जाने से सभी जीव अत्यन्त दुःखित होंगे ॥४३॥ इसलिये, जिस प्रकार यह विश्व दुःखी न हो वैसा ही कार्य करिये, हमारा जीवन अल्पकाल का ही रह गया है, इतने समय में हम इस सिंहासन को सूना नहीं देखना चाहते ॥४४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—उन विप्रगण, राजागण, प्रजाजन, मंत्रिगण और भृत्यों के द्वारा बारंबार अनुरोध किये जाने पर भी ॥४५॥ उन्होंने वनवास की इच्छा को नहीं छोड़ा और उन सबको यही उत्तर दिया कि 'यम मुझे क्षमा नहीं करेंगे' ॥४६॥ तब, ब्राह्मणों, वृद्ध पुरवासियों, मन्त्रियों और भृत्यों ने परस्पर विचार करना प्रारंभ किया कि 'अब क्या करें ?' ॥४७॥ हे ब्रह्मन् ! राजा के प्रति स्नेह रखने वाले उन विप्रादि ने यही निश्चय किया कि ॥४८॥ हम भले प्रकार ध्यान पूर्वक तप के द्वारा भगवान् सूर्य का आराधन करें और इन राजा की आयु के लिये प्रार्थना करें ॥४९॥

तत्रैकनिश्चयाःकार्य्येकेचिद्गेहेचभास्करम् ।
सम्यगर्घोपचाराद्यैरुपहारैरपूजयन् ॥५०

अपरेमौनिनोभूत्वाऽऽग्जापेनतथाऽपरे ।
यजुषामथसाम्नाचतोषयाञ्चक्रिरेरवम् ॥५१
अपरेचनिराहारानदीपुलिनशायिन ।
तपांसिचक्रुरिच्छन्तोभास्कराराधनद्विजाः ॥५२
अग्निहोत्रपराश्चान्येरविसूक्तान्यहर्निशम् ।
जेपुस्तथापरेतस्थुर्भास्करेन्यस्तदृष्टय ॥५३
इत्येवमतिनिर्बन्धभास्कराराधनप्रति ।
बहुप्रकारचक्रुस्तेततविधिमुपाश्रिता ॥५४
तथातुयततांतेषांभास्कराराधनप्रति ।
सुदामानामागन्धर्वउपगम्येदमब्रवीत् ॥५५
यद्याराधनमिष्टवोभास्करस्यद्विजातय ।
तदेतत्क्रियतायेनभानु प्रीतिमुपैष्यति ॥५६

ऐसा निश्चय करके सब सूर्य की पूजा करने लगे, किसी ने अर्घ्य देकर और किसी ने अन्य विधि से सूर्य भगवान् का पूजन किया ॥५०॥ किसी ने मौनावलम्बन कर ऋक् मन्त्र से, किसी ने सामवेद के मन्त्रों से और किसी ने यजुर्वेद के विधान से भगवान् भास्कर को सन्तुष्ट किया ॥५१॥ कोई नदी तट पर निराहार रह कर और कोई कठिन तप करके सूर्य को प्रसन्न करने लगे ॥५२॥ किसी ने अग्निहोत्र परायण होकर दिन रात्रि निरन्तर रविसूक्त का जप किया और कोई भगवान् सूर्य की ओर देखते हुए ही खड़े रहे ॥५३॥ इस प्रकार वे सब अपनी अपनी विधि से भास्कर की आराधना में निश्चय पूर्वक लग गये ॥५४॥ उन्हें इस प्रकार सूर्य के आराधन में दृढ़ता से लगे हुए देखकर एक सुदामा नामक गन्धर्व वहाँ आया और उन आराधकों से कहने लगा ॥५५॥ हे विप्रगण ! यदि सूर्य की ही आराधना आपका लक्ष्य है तो, इस प्रकार से आराधना करो जिससे वह प्रसन्न हो सकें ॥५६॥

तस्माद्गुरुविशालाख्यवनसिद्धनिषेवितम् ।
कामरूपेमहाशैलेगम्यतातत्रवैलघु ॥५७

तस्मिन्नाराधनंभानोःक्रियतांसुसमाहितैः ।
सिद्धक्षेत्रंहितंतत्रसर्वकामानवाप्स्यथ ॥५८
इतितेतद्वच:श्रुत्वागत्वातत्काननंद्विजाः ।
ददृशुर्भास्वतस्तत्रपुण्यमायतनंशुभम् ॥५९
तत्रतेनियताहाराबर्णाविप्रादयोद्विज ।
धूपपुष्पोपहाराद्यांपूजांचक्रुरतन्द्रिताः ॥६०
पुष्पानुलेपनाद्यैश्चधूपगन्धादिकैस्तथा ।
जपहोमान्नदानाद्यैःपूजनंतेसमाहिताः ।
कुर्वन्तस्तुष्टुवुर्ब्रह्मन्विवस्वन्तंद्विजातयः ॥६१

कायरूप महापर्वत में एक गुह विशाल नामक वन है, जो सिद्धों द्वारा सेवित है, तुम उसी वन में जाकर ॥५७॥ सावधान चित्त से सूर्य का आराधनं करो, इससे आपके इच्छित कार्य की सिद्धि होती है, क्योंकि ऐसे कार्यों के अनुष्ठान में सिद्ध क्षेत्र ही अधिक फल देने वाला होता है ॥५८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! गन्धर्व की यह बात सुनकर सब आराधक ब्राह्मण उस वन में पहुँचे, वहाँ उन्हें भगवान् सूर्य का पवित्र मन्दिर दिखायी दिया ॥५९॥ ब्राह्मणादि सभी वर्णों ने वहाँ नियत आहार का अवलम्बन करके, प्रमाद रहित हो गन्ध-पुष्पादि के द्वारा सूर्य का पूजन किया ॥६०॥ हे विप्र ! गन्ध, पुष्प, अनुलेप, धूप, दीप, नैवेद्य पूर्वक जप, होमादि करते हुए सावधान चित्त से सभी आराधक ब्राह्मण सूर्य की स्तुति करने लगे ॥६१॥

देवदानवयक्षाणांग्रहाणांज्योतिषामपि ।
तेजसाभ्यधिकंदेवंब्रजामशरणंरविम् ॥६२
दिविस्थितंचदेवेशंद्योतयन्तंसमन्ततः ।
वसुधामन्तरिक्षंचव्याप्नुवन्तंमरीचिभिः ॥६३
आदित्यंभास्करंभानुंसवितारंदिवाकरम् ।
पूषाणमर्यमाणंचस्वर्भानुंदीप्तदीधितिम् ॥६४

चतुर्युगान्तवातग्निदुष्प्रेक्ष्यप्रलयान्तगम् ।
योगीश्वरमनन्तचरक्तपीतसितासितम् ॥६५
ऋषीणामग्निहोत्रेषुयज्ञदेवेष्ववस्थितम् ।
अजामदारणदेवतेजोराशितमच्युतम् ।
अक्षरपरमगुह्य मोक्षद्वारमनुत्तमम् ॥६६
छन्दोभिरश्वरूपैश्चसकृद्युक्तं विहङ्गमम् ।
उदयास्तमनेयुक्त सदामेरो प्रदक्षिणे ॥६७
अनृतचऋतचैवपुण्यतीर्थपृथग्विधम् ।
विश्वस्थितिमचिन्त्यचप्रपद्या स्मप्रभाकरम् ॥६८

ब्राह्मणों ने कहा—देवता दैत्य, यक्ष और ज्योतिष-ग्रहों में अत्यधिक तेज सम्पन्न भगवान् भास्कर की शरण में हम आये हैं ॥६२॥ जो देवेश्वर आकाश में रह कर सभी दिशाओं को प्रकाशित तथा अपनी रश्मियों से सम्पूर्ण पृथिवी और अन्तरिक्ष को व्याप्त कर रहे हैं ॥६३॥ जो आदित्य, भास्कर, भानु, सविता देव, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, स्वर्भानु, दीप्त, दीधिति ॥६४॥ और योगीश्वर कहे जाते हैं और चतुर्युगी के अन्त में दुष्प्रेक्ष्य कालाग्नि के समान होते हैं अथवा जो अनन्त, लाल, पीत, श्वेत और कृष्ण हैं ॥६५॥ जो ऋषियों के अग्निहोत्र के समय यज्ञदेव के रूप में अवस्थित होते हैं, जो अक्षर, परमगुह्य, सर्वत श्रेष्ठ मुक्तिद्वार रूप ब्रह्म हैं, जो एक बार युक्त हुए छन्द रूप अश्व पर आरूढ होकर आकाश में स्थित हैं, उदय और अस्त तक गमनशील और सुमेरु की प्रदक्षिणा में सदा तत्पर रहते हैं ॥६६-६७॥ जो असत्य, सत्य, पुण्यतीर्थ तथा पृथक् रूप से विश्व में अवस्थित हैं, उन अदिति-पुत्र अचिन्त्य स्वरूप आदिदेव भास्कर प्रभाकर की हमने शरण ग्रहण की है ॥६८॥

यो ब्रह्मायोमहादेवोयाविष्णुर्य प्रजापति ।
वायुर्गावाशमापश्चपृथिवीगिरिसागरा. ॥६६
ग्रहनक्षत्रचन्द्राद्यावानस्पत्यद्रु मौषधम् ।
व्यक्ताव्यक्तेषुभूतेषुधर्माधर्मप्रवर्त्तक ॥७०

ब्राह्मीमाहेश्वरीचैववैष्णवीचैवतेतनुः ।
त्रिधायस्यस्वरूपन्तुभानोर्भास्वान्प्रसीदतु ॥७१
यस्यसर्वमयस्येदमङ्गभूतंजगत्प्रभोः ।
सनःप्रसीदतांभास्वाञ्जगतांयश्चजीवनम् ॥७२
यस्यैकमक्षरंरूपंप्रभामण्डलदुर्द्दशम् ।
द्वितीयमैन्दवंसौम्यसनोभास्वान्प्रसीदतु ॥७३
ताभ्यांचतस्यरूपाभ्यामिदंविश्वंविनिर्मितम् ।
अग्नीषोममयंभास्वान्सनोदेवःप्रसीदतु ॥७४
इत्थंस्तुत्यातदाभक्त्यासम्यक्पूजाविधानतः ।
तुतोषभगवान्भास्वांस्त्रिभिर्मासैर्द्विजोत्तम ॥७५
ततःसमण्डलादुद्यन्निर्जबिबसमप्रभः ।
अवतीर्यददौतेभ्योदुर्द्दशोदर्शनंरविः ॥७६
ततस्तेस्पष्टरूपंतंसवितारमजजनाः ॥
पुलकोत्कम्पिनोविप्राभक्तिनम्राःप्रणेमिरे ॥७७
नमोनमस्तेस्तुसहस्ररश्मेसर्वस्यहेतुस्त्वमशेषकेतुः ।
पातात्वमीड्योऽखिलयज्ञधामध्येयस्तथायोगविदांप्रसीद ॥७८

जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु प्रजापति, वायु, आकाश, जल, पृथिवी, पर्वत और सागर हैं ॥६६॥ जो ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, वृक्ष, वनस्पति, औषधि स्वरूप हैं तथा जो व्यक्त और अव्यक्त भूतों के धर्म और अधर्म का प्रवर्त्तन करने वाले हैं ॥७०॥ तथा ब्राह्मी, माहेश्वरी और वैष्णवी के भेदसे जिनका स्वरूप तीन प्रकार का हुआ है, वह सूर्यनारायण हम पर प्रसन्न हों ॥७१॥ जिन अनादि जगदीश्वर के अंक में विश्व के सभी पदार्थ स्थित हैं और जो विश्व के प्राणरूप हैं वह भगवान् भास्कर हम पर प्रसन्न हों ॥७२॥ जिनका प्रकाशमान प्रभामण्डल दुर्दशा एवं अद्वितीय है और जिन के दिवा कर तथा सुधाकर दो रूप हैं, वह भास्कर हम पर प्रसन्न हों ॥७३॥ जिनके उन्हीं विख्यात दो स्वरूपों से इस अग्निसोममय संसार की रचना हुई है, वही भगवान् प्रसन्न हों ॥७४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! इस प्रकार स्तोत्र-पाठ पूर्वक

जब उन्होंने तीन महीने तक पूजन किया, तब भगवान् प्रसन्न हुए ।।७५।। तथा स्वयं दुर्दर्श होकर भी उन्होंने आकाश मंडल में प्रकट होकर अपनी उदयकालीन प्रभा सहित उन्हें दर्शन दिया ।।७६।। उनके प्रत्यक्ष स्वरूप का दर्शन करके पुलकायमान हुए उन मनुष्यों ने भक्ति से विनम्र होकर उन अनादि सवितादेव को प्रणाम करते हुए कहा ।।७७।। हे सहस्ररश्मे ! आपको नमस्कार है, आप सभी भूतों के कारण और अखिल विश्व के पताकारूप हो, हे अखिल यज्ञधाम ! आप ही सब यज्ञों के आश्रय और योगियों के ध्यान योग्य हो, आप हम पर प्रसन्न हों ।।७८।।

६२—राजा और प्रजा की आयु वृद्धि

ततःप्रसन्नोभगवान्भानुराहाखिलाञ्जनान् ।
प्रियतांयदभिप्रेतमत्त प्राप्तु द्विजादय ।।१
ततस्तेप्रणिपत्योचुर्विप्रक्षत्रादयोजनाः ।
समाश्वसमहीतामुमवलोक्यपुरःस्थितम् ।।२
भगवन्यदिनोभक्त्याप्रसन्नस्तिमिरापह ।।३
दशवर्षसहस्राणिततोनोजीवतान्नृप ।
निरामयोजितारातिः सुकोशः स्थिरयौवन ।।४
तथेत्युक्त्वाजनान्भास्वानदृश्योऽभून्महामुने ।
तेऽपिलब्धवराद्दृष्टा समाजग्मुर्जनेश्वरम् ।।५
यथावृत्तं चतेतस्मैनरेन्द्रायन्यवेदयन् ।
यथालब्ध्वासहस्रांशोः सकाशाद्गिरिन्द्विज ।।६
तच्छ्रुत्वाजरस्तयेनस्यमापत्नीमानिनीद्विजा ।
(प्रहर्षपरमयाताहर्षोद्गततनूरुहा)
गत्वराजाचिरदध्यौनार्हनिचिवतजनम् ।।७

मार्कण्डेय जी ने कहा—फिर भगवान् सूर्य ने प्रसन्न होकर उन सब

से कहा—हे ब्राह्मणो ! तुम मुझ से जो प्राप्त करना चाहते हो, वह मुझ से माँगो ।।१।। तब उन ब्राह्मणों ने उनको अपने सामने देख कर उन्हें प्रणाम किया और उन वरदायक भगवान् से बोले ।।२।। विप्र प्रजागण ने कहा—हे भगवन् हे अन्धकार का नाश करने वाले प्रभो ! यदि आप हमारी भक्ति के कारण हम पर प्रसन्न हुए हैं ।।३।। हमारे महाराज राज्यवर्द्धन रोग-रहित, शत्रुओं के विजेता और स्थिर यौवन वाले होकर दश सहस्र वर्ष तक जीवित रहें ।।४।। मार्कण्डेयजी ने कहा—हे महा मुने ! भगवान् सूर्य ने उनसे 'ऐसा ही होगा' कहा और अन्तर्धान होगये तब वे सभी ब्राह्मण वर प्राप्ति से प्रसन्न-चित्त होकर राजा के पास पहुँचे ।।५।। हे ब्रह्मन् ! सहस्र रश्मि वाले भगवान् सूर्य से वर प्राप्त होने इत्यादि का सम्पूर्ण वृत्तान्त उन ब्राह्मणों ने राजा को बताया ।।६।। उस वृत्तान्त को सुन कर राजमहिषी मानिनी अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुई, जिससे उसका देह पुलकित हो गया, परन्तु राजा मौन रह कर बहुत समय तक विचार करते रहे ।।७।।

ततःसामानिनीभूपंहर्षापूरितमानसा ।
दिष्टयाऽऽयुषामहीपालवर्द्धस्वेत्याहतंपतिम् ।।८
तथातयामुदाभर्त्तामानिन्याथसभाजितः ।
नाहकिंचिन्महीपालश्चिन्ताजडमनाद्विज ।।९
सापुनःप्राहभर्त्तारंचिन्तयानमधोमुखम् ।
कस्मान्नहर्षमभ्येपिपरमाभ्युदयेनृप ।।१०
दशवर्षसहस्राणिनीरुजःस्थिरयौवनः ।
भावीत्वमद्यप्रभृतिकिंतथापिनतृप्यसे ।।११
किन्नुतत्कारणंब्रू हियच्चिन्ताकृष्टमानसः ।
परमाभ्युदयेऽपित्वंसंप्राप्तेपृथिवीपते ।।१२
कथमभ्युदयोभद्रे किंसभाजयसेचमाम् ।
प्राप्तोदुःखसहस्राणांकिंसभाजनमिष्यते ।।
दशवर्षसहस्राणिजीविष्याम्यहमेककः ।
नत्वंतवविपत्तौमेकिन्नुःदुःखभविष्यति ।।१४

फिर मानिनी ने प्रसन्नचित्त होकर अपने स्वामी से कहा—हे महाराज ! इस बढ़ी हुई आयु के द्वारा आप वृद्धि को प्राप्त हो ॥८॥ प्रसन्न चित्त वाली मानिनी के सत्कृत वचन सुनकर भी राजा ने चिन्तित चित्त के कारण कुछ उत्तर नहीं दिया ॥९॥ चिन्ता से नतमस्तक किये हुए राजा को देखकर मानिनी ने उनसे कहा—हे महाराज ! ऐसे आनन्द के समय भी आप प्रसन्न क्यों नहीं हैं ? ॥१०॥ अब आप निरामय और स्थिर यौवन हो कर दस सहस्र वर्ष तक और जीवित रहेंगे फिर आप प्रसन्न क्यों नहीं हैं ? ॥११॥ हे राजन् ! ऐसे आनन्द का समय आ गया है, तो भी आप चिन्ता में व्याकुल हैं, इसका क्या कारण है यह मुझे बताइये ॥१२॥ राजा ने कहा—हे भद्रे ! मेरा कौन-सा भाग्योदय हुआ है ? तुम मेरा सत्कार सत्कार किस लिये कर रही हो ? सहस्रों दुःखों को प्राप्त होकर भी मैं किस आनन्द का उपभोग करूँगा ? ॥१३॥ मैं एकाकी ही दस सहस्र वर्ष जीवित रहूँगा, परन्तु तुम जीवित नहीं रहोगी, फिर क्या तुम्हारे न रहने का मुझे दुःख नहीं होगा ॥१४॥

पुत्रान्पौत्रान्प्रपौत्रांश्च तथान्यान्निजबान्धवान् ।
पश्यतो मे मृतान्दुःखं किमल्पं हि भविष्यति ॥१५
भृत्येषु चातिभक्तेषु मित्रवर्गे तथा मृते ।
भद्रे दुःखमपारं मे भविष्यति तु सन्ततम् ॥१६
यैर्मदर्थं तपस्तप्तं कृशैर्धमनिसन्ततैः ।
तेषु म्रियत्स्वहं भोगी जीविष्यामीति धिक्करम् ॥१७
सेयमापद्गरा हि प्राप्ता नाभ्युदया मम ।
कथं यामन्यसे न त्वं यत्सभाजयसेऽद्य माम् ॥१८
महाराज यथात्थ त्वं तथैतन्नात्र संशय ।
मया पौरैश्च दोषोऽयं प्रीत्या नालोकितस्तव ॥१९
एवं गतेऽत्र किं कार्य्यं नरनाथ विचिन्त्यताम् ।
नान्यथा भावि यत्प्राह प्रसन्नो भगवान्भवि ॥२०
उपकारः कृतः पौरैः प्रीत्या भृत्यैश्च यो मम ।
कथं भोक्ष्याम्यहं भोगांस्तानवाप्य मनिर्वृतिम् ।२१

पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, तथा प्रिय बान्धवादि को मरते हुए देख कर क्या मुझे कुछ कम दुःख होगा ? ॥१५॥ हे भद्रे ! अत्यन्त भक्ति वाले भृत्यों और मित्रों की मृत्यु होने पर मुझे सदा ही महान् दुःख भोगना पड़ेगा ॥१६॥ जिन्होंने मेरी आयु के निमित्त अपने तन को सुखा कर तप किया है, वे भी मर जायेंगे, परन्तु मैं जीवित रह कर सुख भोगूँगा, क्या मेरे ऐसे जीवन को धिक्कार नहीं है ? ॥१७॥ मेरी यह दश सहस्र वर्ष की परमायु वृद्धि क्या हुई, यह तो मेरे लिये विपत्ति बन गयी है, यह भाग्योदय नहीं हुआ, सब बातों का विचार किये बिना ही तुम मुझे हर्षित करना चाहती हो ॥१८॥ मनिनी ने कहा—हे महाराज ! यथार्थ ही यह इतना दुःख कर होगा, इस बात पर मैंने पुरवासियों ने आपकी प्रीति के कारण ध्यान नहीं दिया था ॥१९॥ अब, ऐसा हो गया है, तो क्या करना चाहिये, इस पर विचार कीजिये, भगवान् सूर्य ने जो कुछ कहा है, वह कदापि मिथ्या नहीं हो सकता ॥२०॥ राजा ने कहा—पुरवासियों और भृत्यों ने मेरा जो उपकार किया है, उसके विपरीत परिणाम को रोक कर किस प्रकार सुख को भोगूँ ? ॥२१॥

सोऽहमद्यप्रभृत्यद्रिगत्वानियतमानसः ।
(पौरलोकहितार्थंचतोषयिष्यामिभास्करम् ।
यथापौराममकृतेबान्धवाश्चसमन्ततः ।
आराधनायदेवेशतथाहमपिसांप्रतम्) ।
तपस्तप्स्येनिराहारोभानोराराधनोद्यतः ॥२२
दशवर्षसहस्राणियथाहंस्थिरयौवनः ।
तस्यप्रसादाद्देवस्यजीविष्यामिनिरामयः ॥२३
तथायदिप्रजाःसर्वाभृत्यास्त्वंचसुताश्रमे ।
पुत्राःपौत्राःप्रपौत्राश्चसुहृदश्चवरानने ॥२४
जीवन्त्येतंप्रसादंचकरोतिभगवान्रविः ।
ततोऽहंभविताराज्येभोक्ष्येभोगांस्तथामुदा ॥२५
नचेदेवंकरोत्यर्कस्तदाद्रौतत्रमानिनि ।
तपस्तप्स्येनिराहारयावज्जीवितसंचयः ॥२६

इत्युक्त्वा स तदा तेन तथेत्याह नराधिपम् ।
जगाम तेन च समं सासपि तं धरणीधरम् ॥२७
स तदायतनं गत्वा भार्यया सह पार्थिव. ।
भानोराराधनं चक्रे सुश्रूषानिरतो द्विज ॥२८

इससे तो यही उचित है कि मैं अब प्रभृति पर्वत पर जाकर पुरवासियों के लिये घोर तप करूँ, जिस प्रकार उन्होंने मेरे हितार्थ आराधन किया है, उसी प्रकार मैं भी उनके हितार्थ भगवान् सूर्य की आराधना के उद्देश्य से निराहार रह कर तपस्या करूँगा ॥२२॥ जैसे उनकी कृपा से मैं स्थिर यौवन और रोग रहित होकर दस सहस्र वर्ष तक जीवित रहूँगा, वैसे ही मेरी सम्पूर्ण प्रजा, भृत्य, तुम पुत्री, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और सभी सुहृदगणादि जीवित रहें, यदि भगवान् भास्कर मुझ पर कृपा करेंगे तभी मैं प्रसन्न चित्त पूर्वक राज्य का भार वहन करता हुआ सुख भोग करूँगा ॥२३-२५॥ परन्तु, यदि भगवान् सूर्य ने ऐसी कृपा नहीं की तो, जब तक मेरा यह जीवन रहेगा, तब तक निराहार कर उसी पर्वत में तप करता रहूँगा ॥२६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—महाराज की बात सुन कर राजमहिषी भामिनी ने उनका अनुमोदन किया और वह अपने पति के साथ उसी पर्वत में चली गई ॥२७॥ हे ब्रह्मन् ! अपनी पत्नी सहित राजा उसी मंदिर में पहुँचे और तपस्या पूर्वक भगवान् सूर्य की उत्कट आराधना में तत्पर हुए ॥२८॥

निराहारा कृशा साच यथासौ पृथिवीपति. ।
तेपे च परमं तद्वच्च शीतवातातपक्षमा ॥२९
तस्य पूजयतो भानुं तप्यतश्च तपो महत् ।
साग्रे संवत्सरे यातं ततः प्रीतो दिवाकर. ॥३०
समस्तभृत्यपौरादिपुत्राणां चाप्ततो द्विज ।
ददौ यथाभिलषितं वरं द्विजवरोत्तम ॥३१
लब्ध्वा वरं स नृपतिः समभ्येत्यात्मनः पुरम् ।
चकार मुदितो राज्यं प्रजा धर्मेण पालयन् ॥३२

ईजेयज्ञान्सचबहुन्ददौदानान्यहर्निशम् ।
मानिन्यासहितोभोगान्बुभुजेचसधर्मवित् ।।३३
दशवर्षसहस्राणिपुत्रपौत्रादिभिःसह ।
भृत्यैःपौत्रैःप्रमुदितःसोऽभवत्स्थिरयौवनः ।।३४
तस्येतिच्चरितंदृष्ट्वाप्रमतिर्नामभार्गवः ।
विस्मयाकृष्टहृदयोगाथामेतामगायत ।। ५

जैसे निराहार रहने के कारण राजा दिनों दिन कृश होते जा रहे थे, वैसे ही रानी भी शीत, वायु, उष्णतादि के कष्टों को सहती हुई क्षीण देह होने लगी और तपस्या में लगी रही ।।२६।। हे द्विजश्रेष्ठ ! जब उन्होंने इस प्रकार भगवान् सूर्य की उपासना में एक वर्ष से अधिक काल व्यतीत कर दिया, तब भगवान् ने प्रसन्न होकर ।।३०।। समस्त भृत्य, पुरजन और पुत्रादि के सहित वाला मनोवांछित वर उन्हें प्रदान किया ।।३१।। वर प्राप्त करके राजा पत्नी के सहित अपने घर को लौटे और प्रसन्नचित्त से धर्मपूर्वक प्रजा का पालनादि करते हुए राज्य करने लगे ।।३२।। वह धर्मात्मा महाराज अपनी राजमहिषी के सहित अनेक यज्ञानुष्ठान करते और सत्पात्रों को दान देते हुए सुख भोगने लगे ।।३३।। इस प्रकार उन्होंने अपने पुत्र, पौत्र, भृत्य, पुरवासी आदि के सहित स्थिर यौवन और प्रसन्न चित्तता लाभ करके दश सहस्र वर्ष व्यतीत किये ।।३४।। उस समय भृगुवंशी महर्षि प्रमति ने उनका ऐसा चरित्र देख कर विस्मय युक्त होकर इस प्रकार गाथा कीर्तन की थी ।।३५।।

भानुभक्तेरहोशक्तिर्यद्राजाराज्यवर्द्धनः ।
आयुषोवर्द्धनेजातःस्वजनस्यतथात्मनः ।।३६
इतितेकथितंविप्रयत्पृष्टोऽहंत्वयोदितः ।
आदिदेवस्यमाहात्म्यमादित्यस्यविवस्वतः ।।३७
विप्रैतदखिलंश्रुत्वाभानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
पठञ्मुच्यतेपापैःसप्तरात्रकृतैर्नरः ।।३८
अरोगीधननानाढ्यःकुलेमहतिधीमताम् ।
जायतेचमहाप्राज्ञोयश्चैतद्धारयेद्बुधः ।।३९

(यजतेचमहायज्ञैःसमाप्तवरदक्षिणै. ।
श्रुत्वाचरितमेतद्धिसमानलभतेफलम् ॥)
मन्त्राश्चयेऽत्राभिहिताभास्वतोमुनिसत्तम ।
जप.प्रत्येकमेतेपात्रिसंध्यपातकापहः ॥४०
समस्तमेतन्माहात्म्ययत्रायतनेरवेः ।
पठ्यतेतत्रभगवान्सान्निध्यनविमुञ्चति ॥४१
तस्मादेतत्त्वयाब्रह्मन्भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
धार्य्यमनसिजाप्यञ्चमहत्पुण्यमभीप्सता ॥४२
सुवर्णशृङ्गीमतिशोभनाङ्गीपयस्विनीगाप्रददातियोहि ।
शृणोतिचैतञ्यहमात्मवान्नर समतयोःपुण्यफलद्विजन्य ॥४३

भगवान् भास्कर की कितनी आश्चर्यमय शक्ति है, जिसके प्रभाव से राजा राज्यवर्द्धन ने अपनी और अपने आत्मीयजनों की आयु वृद्धि की ॥३६॥ हे ब्रह्मन्! तुमने आदि देव सूर्य के जिस माहात्म्य के विषय में प्रश्न किया था वह तुम्हारे प्रति कहा गया ॥३७॥ सूर्य के इस उत्तम माहात्म्य को ब्राह्मण के मुख से सुनने और पाठ करने वाले मनुष्य सप्तरात्र के किये हुए पापों से मुक्त होते हैं ॥३८॥ उन सूर्य के माहात्म्य को जो बुद्धि पूर्वक रखते हैं, वह धनी, नीरोग और महान् विद्वान् होकर जन्म लेते हैं ॥३६॥ तथा महान् दक्षिणा वाले यज्ञों के अनुष्ठाता होते और इस चरित्र को सुन कर समान फल को प्राप्त करते है, मूर्ख व्यक्ति, पाप कर्म करके भी यदि सूर्य के इस माहात्म्य का जप करते हैं, उनके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥४०॥ जिस देव-मन्दिर में सूर्य के इस माहात्म्य का पाठ होता है, उसके सामीप्य से भगवान् नहीं हटते ॥४१॥ इसलिये, हे ब्रह्मन्! तुम भी महान् पुण्य की कामना में सूर्य के इस माहात्म्य को हृदय में धारण कर जप करो ॥४२॥ जो मनुष्य सोने से सींगो को मढ़ाकर दूध वाली गौ का दान करते और जो सयत चित्त से तीन दिन तक इस माहात्म्य को सुनते हैं उन दोनों को समान फल की प्राप्ति होती है ॥४३॥

६६—सूर्य वंशानुक्रम

एवंप्रभावोभगवाननादिनिधनोरविः ।
यस्यत्वंक्रौष्टुकेभक्त्यामाहात्म्यंपरिपृच्छसि ॥१
परमात्मासयोगिनांयु जतांचेतसांलयम् ।
क्षेत्रज्ञःसांख्ययोगानांयज्ञे शोयज्विनामपि ॥२
सूर्याधिकारंवहतोविष्णोरीशस्यवेधसः ।
मनुस्तस्याभवत्पुत्रश्छिन्नसर्वार्थसंशयः ॥३
मन्वन्तराधिपोविप्रयस्यसप्तममन्तरम् ।
इक्ष्वाकुर्नाभगोरिष्टोमहाबलपराक्रमः ॥४
नरिष्यन्तोऽथनाभागःपृषध्रोधृष्टएवच ।
एतेपुत्रामनोस्तस्यपृथग्राज्यस्यपालकाः ॥५
विख्यातकीर्त्त यःसर्वेसर्वेशस्त्रास्त्रपारगाः ।
विशिष्टतरमन्विच्छन्मनुःपुत्रं तथापुनः ॥६
मित्रावरुणयोरिष्टिंचकारकृतिनांवरः ।
यत्रचापहुतेहोतुरपचाराग्महामुने ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे क्रौष्टुकि ! तुमने जिन भगवान् भास्कर का माहात्म्य भक्ति सहित पूछा था, वह भगवान् ऐसे प्रभाव वाले हैं ॥१॥ वह सयतचित्त योगियों के ईश्वर, सांख्य योग वालों के क्षेत्रज्ञ और याज्ञिकों के यज्ञेश्वर हैं ॥२॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव स्वरूप सूर्याधिकार के वहन करने वाले उन भगवान् भास्कर के संशय रहित एक पुत्र 'मनु' नाम से हुआ ॥३॥ जिस मनु का सातवाँ मन्वन्तर इस समय चल रहा है, महाबली एवं पराक्रमी इक्ष्वाकु, नाभाग, रिष्ट ॥४॥ नरिष्यन्त, नाभाग, पृषध्र और धृष्ट नामक यह सभी मनु-पुत्र पृथक् पृथक् राज्यों के परिपालन करने ॥५॥ सभी प्रसिद्ध यश वाले, शास्त्रों में पारंगत और अस्त्र-विद्या के ज्ञाता हुए, उन मनु ने उसके पश्चात् अत्यन्त विशिष्ट पुत्र की अभिलाषा से ॥६॥ मित्रावरुण का यजन किया, परन्तु वह यज्ञ होता के अपचार से अंगहीन हो गया ॥७॥

इलानामसमुत्पन्नामनो कन्यासूमध्यमा ।
तादृष्ट्वाकन्यकातत्रसमुत्पन्नाततोमनु ॥८
तुष्टावमित्रावरुणौवाक्यचेदमुवाचह ।
भवत्प्रसादात्तनयोविशिष्टोमेभवेदिति ॥९
कृतेमखेसमुत्पन्नातनयाममधीमत ।
यदिप्रसन्नौवरदौतदियत्तनयामम ॥१०
प्रसादाद्भ्रवतो पुत्रोभवत्वतिगुणान्वित. ।
तथेतिचाभ्यामुक्ते तुदेवाभ्यासैवकन्यका ॥११
इलासमभवत्सद्य सुद्यु म्नइतिविश्रु त ।
पुनश्च भ्रश्कोपनमृगयामटतावने ॥१२

इस कारण इला नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई, उस यज्ञ से उत्पन्न हुई कन्या को देख कर ॥८॥ मनु ने मित्रावरुण की स्तुति की और उनसे निवेदन किया कि आपकी कृपा से मुझे एक असाधारण पुत्र की प्राप्ति ॥९॥ इसी कामना से मैंने यह यज्ञ किया, जिससे इस कन्या की प्राप्ति हुई है, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं, तो आपकी कृपा से मेरी यह कन्या ही ॥१०॥ अत्यन्त गुण सम्पन्न पुत्र हो जाय, इस पर दोनो देवताओ ने 'ऐसा ही हो' कहा और वह कन्या ॥११॥ उसी समय पुत्र होगई, जिसका नाम सुद्युम्न हुआ, यह मेधावी मनु पुत्र एक दिन वन म आखेट के लिये गये और ईश्वर के क्रोधित होने से यह पुन स्त्री हो गय ॥१२॥

स्त्रीत्वमासादिततेनमनुपुत्रेणधीमता ।
पुरूरवसमनामानचक्रवर्तिनमूर्जिम् ॥१३
जनयामासतनययत्रसोमसुतावुधः ।

॥१४

सुद्यु म्नस्यत्रय.पुत्राउत्कलोविनियोगय ॥१५
पुरुषत्वेमहावीर्य्यायज्विन पृथुलोजस ।
पुरुषत्वेतुयेजातास्तस्यराजस्त्रय सुता ॥१६

बुभुजुस्तेमहीमेतांधर्मेनियतचेतसः ।
स्त्रीभूतस्यतुयोजातस्यराज्ञःपुरूरवाः ॥१७
नसलेभेमहीभागंयतोबुधसुतोहिसः ।
सतोवसिष्ठवचनात्प्रतिष्ठानंपुरोत्तमम् ।
तस्मैदत्त सराजाभूत्तत्रातीवमनोहरे ॥१८

ऐसा होते ही चन्द्रमा के पुत्र बुध ने उसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न किया जो पुरूरवा नामक चक्रवर्ती राजा हुआ, उस पुत्र के उत्पन्न होने के पश्चात् अश्वमेध का अनुष्ठान करने से ॥१३-१४॥ उन सुद्युम्न को पुरुषत्व की प्राप्ति हुई, जब वे पुरुष राजा हुए तब उनके उत्कल, विनय और गय नामक ॥१५॥ तीन अत्यन्त वीर, यज्ञ करने वाले और विपुल तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए, वे तीनों पुत्र ॥१६॥ राज्य को प्राप्त करके धर्म पूर्वक पृथिवी का पालन करने लगे और राजा जब स्त्री हुए थे, तब उनके जो पुरूरवा नामक पुत्र हुए थे ॥१७॥ वह बुध के पुत्र होने के कारण भू भाग प्राप्त नहीं कर सके, परन्तु वसिष्ठ ऋषि की आज्ञा से उन्हें प्रतिष्ठान नामक एक श्रेष्ठ नगर दिया गया, जहाँ के वह राजा हुए ॥१८॥

१००—पृषध्रोपाख्यान

पृषध्राख्योमनोःपुत्रोमृगयामगमद्वनम् ।
तत्रचंक्रममाणोऽसौविपिनेनिर्जनेवने ॥१
नाससादमृगंकञ्चिद्भानुदीधितितापितः ।
क्षुत्तृट्तापपरीताङ्गइतश्चेतश्चचंक्रमन् ॥२
सददर्शतदातत्रहोमधेनुं मनोहराम् ।
लतान्तर्देहछिन्नार्धांब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ॥३
समन्यमानोगवयमिषुणातामताडयत् ।
पपातसापितद्बाणविभिन्नहृदयाभुवि ॥४

ततोऽग्निहोत्रिण पुत्रोब्रह्मचारीतपोरति- ।
भ्रभ्रवान्सपितुर्दृष्ट्वाहोमधेनु निपातिताम् ॥५
गोपाल प्रेषित पुत्रोबाभ्रव्योनामनामतः ।
कोपामर्षपराधीनचित्तवृत्तिस्ततोमुने ॥६
चुकोपविगलत्स्वेदजललोलाविलेक्षण ।
तक्रद्ध प्रेक्ष्यसनृप पृषध्रोमुनिदारकम् ॥७
प्रसीदेतिजगोयस्माच्छूद्रवत्कुरुपेरुषम् ।
नक्षत्रियोनवावैश्यएवक्रोधमुपैतिवै ।
यथात्वशूद्रवज्जातोविशिष्टे ब्रह्मण कुले ॥८

मार्कण्डेय जी ने वर्णन किया कि किसी समय मनु के पुत्र राजा पृषध्र शिकार के लिये जंगल में गये। वहाँ उनको शिकार योग्य पशु नहीं मिला और वे चलते-चलते भूख प्यास से अत्यन्त व्याकुल होगये ॥१-२॥ वहाँ उन्होंने किसी अग्निहोत्री ऋषि की छोटी गाय पेड़ों के भीतर छिपी देखी। राजा ने उसे जंगली गवय समझ कर बाण चला दिया जिससे गाय का प्राणान्त होगया ॥३-४॥ जब उस अग्निहोत्री के पुत्र 'बाभ्रव्य' ने गौ को इस प्रकार मरकर पृथ्वी पर गिरते देखा तो वह अत्यन्त क्रोधित हुआ और शरीर में पसीना तथा नेत्रों से अश्रु बहाता हुआ राजा को शाप देने लगा ॥५-६॥ राजा ने उसकी ऐसी दशा देखकर कहा—क्रोध को छोड़ कर प्रसन्न होइये। इस प्रकार क्रोध करना तो शूद्र का लक्षण है। आप उत्तम ब्राह्मण कुलोत्पन्न होकर ऐसा शूद्र सदृश आचरण क्यों करते हैं? इस प्रकार तो कोई क्षत्रिय या वैश्य भी क्रोध के वशीभूत नहीं होते? ॥७-८॥

इतिनिर्भर्सितस्तेनमराज्ञामोलिन सुन ।
नशापतदुरात्मानशूद्रएवभविष्यसि ॥९
प्रयास्यतिक्षयब्रह्मन्यत्तेऽधीतगुरोर्मुखात् ।
होमधेनुर्ममगुरोर्यदियहिंसितात्वया ॥१०
एवशप्तोनृप क्रुद्धस्तच्छापपरिपीडित ।
प्रतिशापपरोविप्रतोयजग्राहपाणिना ॥११

सोऽपिराज्ञोविनाशायकोपंचक्रे द्विजोत्तमः ।
तमभ्येत्यत्वरायुक्तोवारयामासवैपिता ॥१२
वरसालमलमत्यर्थंकोपेनातीववैरिणा ।
ऐहिकामुष्मिकहितःशमएवद्विजन्मनाम् ॥१२
कोपस्तपोनाशयतिक्रुद्धोभ्रश्यत्यथायुषः ।
क्रुद्धस्यगलतेज्ञानंक्रुद्धश्चार्थाच्चहीयते ॥१४
नधर्मःक्रोधशीलस्यनार्थंचाप्नोतिरोषरणः ।
नालंसुखायकामाप्तिःकोपेनाविष्टचेतसाम् ॥१५

राजा के मुख से अपने लिये ऐसे भर्त्सनायुक्त वाक्य सुनकर वे 'मौलि' नायक ऋषि के पुत्र रोष में आगये और शाप दिया कि तुम 'शूद्र ही हो जाओगे और गाय का वध करने के कारण तुम्हारी पढ़ी हुई समस्त विद्या नष्ट हो जायगी ॥९-१०॥ इस शाप को सुनकर राजा भी बड़ा दुःखी और कोपित हुआ और ऋषि-बालक को प्रतिशाप देने के उद्देश्य से हाथ में जल लिया ।११। इस पर 'वाभ्रव्य' और भी क्रोध में आ गया और राजा को नष्ट करने के लिये दूसरा शाप देने को उद्यत हुआ । पर उसी समय उसके पिता वहाँ आ पहुँचे और उसे रोकते हुए समझाने लगे—पुत्र ! इस प्रकार का क्रोध अन्त में अपने लिये ही अहितकारी होता है । ब्राह्मण का धर्म तो शान्ति ही है और उसी से लोक तथा परलोक में उसका कल्याण होता है ॥१२-१३ यह क्रोध हर प्रकार से अनुचित है । इससे तपस्या का नाश, आयु का क्षय, ज्ञान का लोप, औ धन का नाश होता है । क्रोध के वशीभूत होने वाला धर्म, अर्थ, काम सबसे वंचित हो जाता है और बहुत दुःख पाता है ॥१४-१५॥

यदिराज्ञाहताधेनुरियंविज्ञानिनासता ।
युक्तमत्रदयांकर्तुमात्मनोहितवोधिना ॥१६
अथवाऽज्ञानताधेनुरियंव्यापादितामम ।
करकथंशापयोग्योऽयंदुष्टंनास्यमनोयतः ॥१७
आत्मनोहितमन्विच्छन्वाधतेयोऽपरंनरः ।
कर्तव्यामूढविज्ञानेदयातत्रदयालुभिः ॥१८

अज्ञानत कृतेदण्डपातयन्तिवुधायदि ।
वुधेभ्यस्तमहमन्येवरमज्ञानिनोनरा ॥१९
नाद्यशापस्त्वयादेय पार्थिवस्यास्यपुत्रक ।
स्वकर्मणैवपतितागौरेपादु खमृत्युना ॥२०
नृपश्चोऽपिमुने पुत्रप्रणम्यानम्रकन्धर ।
प्रसीदेतिजगादोच्चै रज्ञानाद्धातितेतिच ॥२१
मयागवयबुद्धचागौरवध्याघातितामुने ।
अज्ञानाद्धोमधेनुस्तेप्रसीदत्वचनोमुने ॥२२

ऋषि ने फिर कहा—हे पुत्र अगर राजा ने गाय का वध जान कर किया है अपना हित चाहने वाले को इन पर दया ही करनी चाहिये। यदि यह कार्य अनजान मे भूलवश हो गया तो शाप देने का कोई कारण हो ही नही सकता,क्योंकि मन म किसी प्रकार पाप की भावना नही होती ॥१६–१७॥ दयालु पुरुष तो उन व्यक्तियो का भी अहित नही करते जो जान बूझकर उनके दु ख का कारण होते हैं, फिर भूल से होने वाले अपराध पर दण्ड देना तो अज्ञानियो क लिए भी अनुचित है ॥१८–१९॥ मैं जानता हूँ कि अपने भाग्य-वश ही इस दुर्घटना म ग्रस्त हुई है, उसके लिये राजा को शाप देना उचित नही ॥२०॥ राजा न भी ऋषि पुत्र के सम्मुख मस्तक झुका कर प्रार्थना की—हे मुनि,श्रेष्ठ ! प्रसन्न होइये, मैंने भूल से ही इस धेनु पर बाण चलाया था। मैं ने उसे जगली गवय ही अनुमान किया था, अतएव आप क्रोध को त्याग कर मुझे क्षमा करें ॥२१-२२॥

आजन्मनोमहीपालनमयाव्याहृतमृषा ।
कोपश्चाद्यमहाभागनान्ययामेकदाचन ॥२३
तत्राहमेनदावनोमिशापवतुं नृपान्यथा ।
यस्तेममुद्यत शापोद्वितीय सनिवर्तित ॥२४
इत्युक्तवन्ततवालमादायमपिनाततत ।
जगामस्वाश्रममोऽपिपृषध्र शूद्रतामगात् ॥२५

ऋषि ने कहा—राजन् ! मैंने आज तक कभी मिथ्याभाषण नहीं किया इसलिये मेरे मुख से जो वचन निकल चुका वह अब मिट नहीं सकता। पर मैं आपको जो दूसरा शाप देने वाला था उससे अब विरत होता हूँ। ऋषि पुत्र का यह कथन सुनकर मुनि उसे आश्रम के भीतर लिवा ले गये और पृषध्र भी शूद्रत्व को प्राप्त हो गया ॥२३-२४॥

१०१—नाभागोपाख्यान (१)

कारुषाःक्षत्रियाःशूराःकरुषस्याभवन्सुताः ।
सेतुसप्तशतंवीरास्तेभ्यश्चान्येसहस्रशः ॥१
दिष्टपुत्रस्तुनाभागःस्थितःप्रथमयौवने ।
ददर्शवैश्यतनयामतीवसुमनोहराम् ॥२
तस्यांसंदृष्टमात्रायांमदनाक्षिप्तमानसः ।
बभूवभूपतनयोनिःश्वासाक्षेपतत्परः ॥३
तस्याःसगत्वाजनकंवव्रे तांवैश्यकन्यकाम् ।
ततोऽनङ्गपराधीनमनोवृत्तिनृपात्मजम् ॥४
तंचाहसपितातस्याराजपुत्रं कृतांजलिः ।
बिभ्यत्तस्यपितुर्विप्रप्रश्रयावनतंवचः ॥५
भवन्तोभूभुजोभृत्यावयंवःकरदायकाः ।
कथंसम्बन्धमसमैरस्माभिरभिवाञ्छसि ॥६

मार्कण्डेयजी ने वर्णन किया कि करुष नामक राजा के वंशज कारुष क्षत्रिय हुए जिनकी संख्या पहले सात सौ थी फिर उनसे अन्य हजारों वीर उत्पन्न हुए। इसी वंश में दिष्ट नामक राजा के पुत्र 'नाभाग' ने युवावस्था में किसी समय एक परम सुन्दरी वैश्य कन्या को देखा। वह उसे देखते ही मोहासक्त होगया और वैश्य से कन्या का विवाह अपने साथ कर देने की प्रार्थना

करने लगा। इस पर वैश्य ने राजभय से भयभीत होकर हाथ जोड़ कर कहा कि आप राजा हैं और हम सेवक की भाँति आपकी प्रजा हैं, इसलिये आप ऐसे असमान सम्बन्ध का प्रस्ताव क्यों करते हैं ? ॥१–६॥

> मान्यमानुषदेहस्यकाममोहादिभि कृतम् ।
> तथापिकालेतोरेवयोज्यतेमानुषवपु' ॥७
> तथैवचोपकारायजायन्तेतस्यतान्यपि ।
> अन्यानिचान्येजीवन्तिभिन्नजातिमतामताम् ॥८
> तथान्यान्यप्ययोग्यानियोग्यतायान्तिकालत ।
> योग्यान्ययोग्यतायान्तिकालवश्याहियोग्यता ॥९
> आप्याय्यतेयच्छरीरमाहारादिभिरीप्सितो ।
> कालज्ञात्वानथाभुक्त तदेवपरिशिष्यते ॥१०
> इत्थममैषाभिमतातनयादीयतान्त्वया ।
> अन्यथामच्छरीरस्यविपत्तिरुपलक्ष्यते ॥११
> परतन्त्रावयत्वचपरतन्त्रोमहोभुजः ।
> पित्रातेनाभ्यनुज्ञातस्त्वगृह्णाणददाम्यहम् ॥१२

राजपुत्र 'नाभाग' ने कहा कि सभी मनुष्यों के भीतर काम, क्रोध आदि अज्ञानों से ही उत्पन्न किये हैं। पर ये काम, क्रोध सदैव बने रहते हों ऐसी बात नहीं है, किसी समय समयानुसार वे उत्पन्न हो जाते हैं। ये काम, क्रोध विभिन्न जाति के व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार के भावों में प्रकट होते हैं, पर उनका अभाव किसी में नहीं होता और वे किसी परिस्थिति में उचित और किसी में अनुचित बन जाते हैं। उनका बुरा या अच्छा कहा जाना काल के ही अधीन है। जिस प्रकार भोजन द्वारा शरीर की पुष्टि होती है, पर यदि उसको असमय में ग्रहण किया जाता है तो वह उल्टा हानिकारक हो जाता है ।७-१०।

इसलिये मर्यादावश तुम्हारी कन्या के लिये मेरी अभिलाषा हुई है तो तुम उसे मुझे दे दो, अन्यथा मेरा अन्त हो जायगा। इस पर वैश्य ने कहा कि मुझे राज्य के अधीन रहना पड़ता है और आपको भी महाराज के अनुकूल रहना है, इसलिये आप उनकी आज्ञा ले लें, मैं कन्या का विवाह कर दूँगा ॥११-१२॥

प्रष्टव्याःसर्वकार्य्येषुगुरवोगुरुवर्तिभिः ।
नत्वीदृशेष्वकार्य्येषुगुरूणांवाक्यगोचरः ॥१३
क्वमन्मथकथालापोगुरूणांश्रवणंक्वच ।
विरुद्धमेतदन्यत्रप्रष्टव्यागुरवोनृभिः ॥१४
एवमेतत्स्मरालापस्तथायंपृच्छमागुरुम् ।
अहंपृच्छामिनालापोममकामकथाश्रयः ॥१५
इत्युक्तःसोऽभवन्मौनीराजपुत्रःसचापितत् ।
तत्पित्रेसर्वमाचष्टराजपुत्रस्ययन्मतम् ॥१६
ततस्तस्यपिताविप्रानृचीकादीन्द्विजोत्तमान् ।
प्रवेश्यराजपुत्रंचयथाख्यानंन्यवेदयत् ॥१७
निवेद्यचततःप्राहमुनीनेवंव्यवस्थिते ।
यत्कर्तव्यंतदादेष्टुमर्हन्तिद्विजसत्तमाः ॥१८
राजपुत्रानुरागस्तेयद्यस्यांवैश्यसन्ततौ ।
तदस्तुधर्मएवैषकिन्त्वन्यायक्रमेणसः ॥१९
मूर्धाभिषिक्ततनयापाणिग्रहोत्सवःपुरा ।
भवत्वनन्तरंचेयंतवभार्याभविष्यति ॥२०
एवंनदोषोभवतितथेमामुपभुञ्जतः ।
अन्यथाऽभ्येतितेजातिरुत्कृष्टाबालकानयात् ॥२१

राजपुत्र ने कहा कि यद्यपि मनुष्यों को गुरुजनों की इच्छानुसार चलना चाहिये और सभी विषयों में उनकी आज्ञा लेनी चाहिये, पर यह विषय ऐसा है जिसे उनके सम्मुख प्रकट नहीं किया जा सकता। कहाँ तो गुरुजनों का पद और महत्त्व और कहाँ यह काम कथा का वर्णन, इन दोनों बातों में कोई मेल नहीं, इसलिये इस बात को उनके सामने नहीं कह सकता। वैश्य ने कहा—ठीक है, इस सम्बन्ध में गुरुजनों की आज्ञा लेना काम कथा होगी, पर यदि मैं इस सम्बन्ध में चर्चा करूँ तो वह काम-कथा नहीं मानी जायगी ।।१३-१५।। इस बात पर राजकुमार निरुत्तर होगया और वैश्य ने सब वृत्तान्त राजा के समक्ष जाकर निवेदन किया। राजा ने अपने पुत्र तथा ऋचीक आदि धर्मतत्व

वैश्यों को सामने बुलाकर समस्त हाल कह सुनाया और पूछा कि इस विषय में आप क्या निर्णय करते हैं ? ऋषियों ने कहा—राजकुमार ! यदि आप वैश्य कन्या पर आसक्त होगये हैं तो इसमें कोई बड़ा अधर्म नहीं है, पर इसका न्यायोचित मार्ग यह है कि पहले आप किसी स्वजातीय कन्या का पाणिग्रहण करलें, जो राजमहिषी के पद पर अभिषिक्त हो सके, उसके पश्चात् इस वैश्य कन्या को भी अपनी पत्नी बनावें। इस प्रकार वैश्य-कन्या से विवाह करने से किसी प्रकार का दोष नहीं होगा। अन्यथा हीन वर्ण की कन्या से सम्बन्ध हो जाने पर आपको भी उसी हीन जाति का होजाना पड़ेगा ॥१९-२१॥

इत्युक्तस्तदपास्यैववचस्तेषामहात्मनाम् ।
विनिष्क्रम्यगृहीत्वातामुवाचासिरथाब्रवीत् ॥२२
राक्षसेनविवाहेनमयावैश्यसुताहृता ।
यस्यसामर्थ्यमत्रास्तिसएतामोचयत्विति ॥२३
तत सर्वैश्यस्ताद्दृष्ट्वागृहीतातनयाद्रुतम् ।
आहोतिपितरतस्यप्रययौशरणद्विज ॥२४
ततस्तस्यपिताक्रुद्धआदिदेशवलमहत् ।
हन्यताहन्यतादुष्टानाभागोधर्मदूषक ॥२५
ततस्तद्युधेसैन्यतेनभूभृत्सुतेनवै ।
क्षतास्त्रेणतदास्त्रेणतत्प्राचुर्य्येणपातितम् ॥२६
सश्रुत्वानिहतसैन्यराजपुत्रेणभूपति ।
स्वयमेवययौयोद्धु स्वसैन्यपरिवारित ॥२७
ततोयुद्धमभूत्तस्यभूभुज स्वसुतेनयत् ।
राजपुत्रेणशस्त्रास्त्रैस्तत्रातिशयित पिता ॥२८
ततोऽन्तरिक्षादागत्यपरिव्राट्सहसामुनि ।
प्रत्युवाचमहीपालविरमस्वेतिमयुगात् ॥२९
स्वत्पुत्रस्यमहाभागविधर्मोऽयमहात्मन ।
तवापिवैश्येनमहन्नयुद्ध धर्मवन्नृप ॥३०

यद्यपि इस प्रकार ऋषियों ने राजपुत्र को बहुत समझाया, पर यह मार्ग उसे पसन्द न आया और उसने बाहर आकर वैश्य-कन्या को पकड़ लिया और तलवार निकाल कर कहा कि—मैं इसके साथ बल पूर्वक राक्षस-विवाह करता हूं जिसकी सामर्थ्य हो वह इसे मुझसे छुड़ाले ॥२२-२३॥वैश्य यह देखकर भागा हुआ राजा के पास गया और 'रक्षा करो' यह कहकर पुकारने लगा । इस पर क्रोधित होकर राजा ने आज्ञा दी कि 'इस अधर्मी 'नाभाग' को शीघ्र ही मारो ।' राजा की आज्ञा पाकर सेना 'नाभाग' के साथ लड़ने लगी, पर उसने अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करके शीघ्र ही उसे हरा दिया । सेना के पराभव का वृत्तान्त सुन कर राजा स्वयं उससे लड़ने आया और संघर्ष होने पर 'नाभाग' को दबा दिया । पर उसी समय आकाश मार्ग से नारद मुनि का वहाँ पर आगमन हुआ और उन्होंने राजा दिष्ट से कहा—महाराज ! अब आप युद्ध बन्द कर दीजिये । आपका यह पुत्र अपने वर्ण से पतित होकर वैश्य होगया है,इसलिये उसके साथ आपका युद्ध करना धर्म संगत नहीं है ॥२४—३०॥

ब्राह्मणयाब्राह्मणःपूर्वकुर्वन्दारपरिग्रहम् ।
ब्राह्मणयारसर्ववर्णेपुनहानिमुपगच्छति ॥३१
तथंवक्षत्रियसुतांक्षत्रियःपूर्वमुद्वहन् ।
इतरेचततोराजंश्च्यवतेनस्वधर्मतः ॥३२
पूर्वं वैश्यस्तथावैश्यांपश्चाच्छूद्रकुलोद्भवाम् ।
नहीयतेवैश्यकुलादयंन्यायःक्रमोदितः ॥३३
ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःसवर्णापाणिसंग्रहम् ।
अकृत्वाऽन्यभवापाणौ पतन्तिनृपसंग्रहात् ॥३४
यस्यायस्याहिहीनायाःकुरुतेपाणिसग्रहम् ।
अकृत्वावर्णसयोगंसोऽपितद्वर्णभाग्भवेत् ॥३५
सोऽयंवैश्यत्वमापन्नस्तवपुत्रःसुमन्दधीः ।
नास्याधिकारोयुद्धायक्षत्रियेणत्वयासह ॥३६
वयमेतन्नजानीमःकारणंनृपनन्दन ।
यथाभविष्यतीदंचनिवर्तरणकर्मतः ॥३७

नारदजी ने कहा—शास्त्र का यह विधान है कि यदि ब्राह्मण पहले ब्राह्मण-स्त्री से विवाह करके उसके पश्चात् तीनों वर्णों में से किसी भी वर्ण की स्त्री को ग्रहण करे तो उसका ब्राह्मणत्व नष्ट नहीं होता। इसी प्रकार क्षत्रिय अगर पहले अपने वर्ण की कन्या का पाणिग्रहण करके फिर वैश्य-शूद्र आदि की कन्या से विवाह करे तो वह पतित नहीं होता। वैश्य भी अपने वर्ण की कन्या से विवाह करने के पश्चात् शूद्र कन्या से विवाह करले तो अपने वैश्य कुल से भ्रष्ट नहीं होता। पर किसी भी वर्ग का व्यक्ति यदि प्रथम अपने वर्ण की कन्या से विवाह किये बिना दूसरे वर्ण की कन्या से विवाह कर लेता है तो वह उसी हीन वर्ण का हो जाता है जिस वर्ण की वह कन्या होती है। सर्व प्रथम सवर्णा कन्या से विवाह न करने के कारण वह पिता के उत्तराधिकार का पात्र भी नहीं माना जाता। इस नियम के अनुसार आपका यह मन्द-बुद्धि पुत्र वैश्यत्व को प्राप्त होगया और आप क्षत्रिय हैं, इससे आप दोनों का युद्ध उपयुक्त नहीं। आगे इसका क्या परिणाम होगा यह तो नहीं कहा जा सकता। पर अब आप युद्ध बन्द करदें ॥३१-३७॥

१०२—नाभागोपाख्यान (२)

निवृत्तोसौनतोभूप संग्रामात्स्वसुतेनवै ।
उपयमेन्नतावैश्यतनयासाऽपितत्सुत ॥१
तत सर्ववैश्यतांप्राप्त ममुपेत्याहपार्थिवम् ।
भूपालयन्मयाकार्य्यंतत्समादिश्यतामम ॥२
धर्माधिकरणंयुक्तावाभ्रव्यद्यास्तपस्विन ।
यदस्यधर्मंधर्मायनद्वदतुतथाचर ॥३
ततस्तेमुनयस्तस्यपाशुपाल्यतयाकृषिम् ।
वाणिज्यचपरधर्ममाचचक्षु सभामद ॥४
तथैवचक्रे समुनस्तस्यराज्ञोयथोदितम् ।
तंधर्मंवादिभिर्धर्मच्युतस्यनिजधर्मत ॥५

तस्यपुत्रस्ततोजातोनाम्नाख्यातोभलन्दनः ।
समात्राप्रहितोगच्छद्‌गोपालोभवपुत्रक ॥६
मात्रातथानियुक्तोऽथप्रणिपत्यस्वमातरम् ।
राजर्षिमगमन्नीपंहिमवत्पर्वताश्रयम् ॥७

इस प्रकार नारदजी के समझाने पर राजा ने युद्ध बन्द कर दिया और नाभाग भी वैश्य-कन्या से विवाह करके वैश्यत्व को प्राप्त होगया। फिर वह राजा के पास गया और पूछा—"महाराज ! अब मैं क्या काम करके जीवन-निर्वाह करूँ उसका आदेश दें।" राजा ने कहा कि बाभ्रव्य आदि जो ऋषिगण धर्माधिकरण का निर्णय करते हैं, उनसे पूछ कर जैसा वह बतलावें तदनुसार आचरण करो। तब उन धर्माधिकारी मुनियों ने कहा कि—खेती, पशु-पालन और व्यापार ही वैश्य के लिये निहित धर्म है। राजपुत्र नाभाग ने इस निर्णय को स्वीकार किया और वैश्य कर्मों का आचरण करके निर्वाह करने लगा ॥१-५॥ यथा समय उसके भलन्दन नामक पुत्र हुआ। उसके बड़े होने पर माता ने आदेश दिया 'पुत्र ! गोपाल होओ' अर्थात् गौ पालने का कार्य करो। पर 'गौ' का अर्थ पृथ्वी भी होता है और भलन्दन ने उसी अर्थ को ग्रहण किया। वह हिमालय निवासी नीप नाम राजर्षि की सेवा में उपस्थित हुआ ॥६-७॥

तंसमेत्यचजग्राहतस्यपादौयथाविधि ।
प्रणिपत्याहचैवैनंराजर्षिंसभलन्दनः ॥८
आदिष्टोभगवन्मात्रागोपालस्त्वंभवेतिवै ।
मयाचपालनीयाक्ष्मातस्याःस्वीकरणंकथम् ॥९
मयाहिगौःपालनीयासायदास्वीकृताभवेत् ।
आक्रान्ताबलवद्भिःसादायादैःपृथिवीमम ॥१०
तांयथाप्राप्नुयाँपृथ्वींत्वत्प्रसादादहंविभो ।
तथादिशकरिष्यामितवाज्ञाँप्रणतोऽस्मिते ॥११
ततःसनीपोराजर्षिस्तस्मैनिरवशेषतः ।
भलन्दायददौब्रह्मन्नस्त्रग्राममंमहात्मने ॥१२

प्राप्तास्त्रविद्य सयथोपितृव्यतनयान्द्विज ।
वसुरातादिकान्पुत्रानादिष्ट समहात्मना ॥१३
अयाचतसराज्यार्घपितृपैतामहोचितत् ।
नेचाचुर्वैश्यपुनस्त्वकथभोक्ष्यसिमेदिनीम् ॥१४

भलन्दन ने राजर्षि नीप की यथा विधि वन्दना की और कहा कि मेरी माता ने मुझे 'गोपाल' होने का आदेश दिया है, इसलिये पृथ्वी पालन मेरा कर्तव्य है। पर इस समय पृथ्वी पर मेरे अन्य कुटुम्बियों ने अधिकार कर रखा है। इसलिये आप मेरा इस प्रकार मार्ग दर्शन करें जिससे मैं पृथ्वी को प्राप्त करके उस कर्तव्य को पूर्ण कर सकूँ। राजर्षि नीप उसकी शालीनता से सन्तुष्ट हुए और उन्होंने उस सम्पूर्ण अस्त्र विद्या की शिक्षा दी। इस प्रकार अस्त्र-विद्या द्वारा शक्तिशाली बन कर अपने पितृव्य-पुत्र वसुरात् के पास गये और उनसे राज्य का आधा भाग देने को कहा। उन्होंने उत्तर दिया कि 'तुम वैश्य सन्तान हो इसमे राज्य शासन का अधिकार नही है।" ॥८-१४॥

ततस्तैर्युद्धमभवद्भलन्दस्यात्मवशजै ।
वसुरातादिभि क्रुद्धै कृतास्त्रस्यास्त्रवर्षिभि ॥१५
सजित्वातानशेषास्तुशस्त्रविक्षतसैनिकान् ।
जहारपृथिवीतेपाधर्मयुद्धेनधर्मवित् ॥१६
सनिर्जितारि सकलापृथ्वीराज्यतथापितु ।
निवेदयामासततस्तत्पिताजागृहेनच ।
प्रत्युवाचसतपुनर्भार्य्यायाःपुरतस्तदा ॥१७
भलन्दराज्यमेतत्तत्क्रियतापूर्वजै कृतम् ॥१८
अहतत्कृतवाराज्यनामामर्थ्ययुत पुरा ।
वैश्यतातुपुरस्कृत्यतथैवाज्ञाकर पितु ॥१६
कृत्वाऽग्निपितुरप्वैश्यकन्यापरिग्रहात् ।
नपुण्यलोकर्भाग्राजायात्वदाभूतसप्लवम् ॥२०
उरन्ध्याज्ञामपुनस्त्वमपालयामिमहींयदि ।
नास्तिमोक्षस्तनोनूनममकल्पशतैरपि ॥२१

नचापियुक्तं त्वद्बाहुर्निर्जितंममभानिनः ।
राज्यंभोक्तुमनीहस्यदुर्बलस्येवकस्यचित् ।।२२
राज्यंकुरुस्वयंपुत्रदायादेभ्योविमुंचवा ।
ममाज्ञापालनंशस्तंपितुर्नक्षितिपालनम् ।।२३

इस पर भलन्दन ने उनका युद्ध के लिये आह्वान किया और अस्त्रों के प्रयोग से उनकी सब सेना को घायल करके राज्य पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार भलन्दन के समस्त राज्य जीत कर पिता के चरणों में अर्पण किया, पर पिता उसे ग्रहण करने को तत्पर नहीं हुए। उन्होंने कहा—हे पुत्र ! पूर्वजों द्वारा शासित इस राज्य का उपभोग तुम्हीं करो। मैं राज्य नहीं कर सकता ऐसी बात नहीं है, पर मैंने पिता की आज्ञा को अस्वीकार करके वैश्य कन्या से विवाह किया और इसके लिये राज्य अधिकार को त्याग दिया। अगर अब मैं उस राज्य का पुनः अधिकार ग्रहण करूंगा तो यह पिता की आज्ञा का उल्लंघन होगा। इस मिथ्या व्यवहार के कारण मैं और मेरे पिता प्रलय काल पर्यन्त मुक्ति लाभ नहीं कर सकेंगे ।।१५—२१।। वैसे भी मेरे जैसे निराकांक्षी व्यक्ति को तुम्हारे वाहुवल से जीता राज्य उपभोग करना उचित नहीं है। इसे तुम्हीं भोगो या कुटुम्बियों को ही वापस कर दो। मेरे लिये पिता की आज्ञा पालन करना ही हितकारी है ।।२२-२३।।

ततः प्रहस्यतद्भार्य्यासुप्रभानामभामिनी ।
प्रत्युवाचपतिंभूपगृह्यतांराज्यमूर्जितम् ।।२४
नत्वंवैश्योनचैवाहंजातावैश्यकुलेनृप ।
क्षत्रियस्त्वंतथैवाहंक्षत्रियाणांकुलोद्भवा ।।२५
पूर्वमासीन्महीपालःसुदेवइतिविश्रुतः ।
तस्याभूत्सखाराज्ञोधूम्राश्वस्यसुतोनलः ।।२५
सतेनसख्यासहितोजगामाम्रवनंवनम् ।
पत्नीभिःससमंरन्तुं माधवेमासिपार्थिव ।।२७
ततःपानान्यनेकानिभक्ष्याणिवुभुजेतदा ।
भार्य्याभिःसहितस्ताभिस्तेनसख्यासमन्वितः ।।२८

तत पुष्करिणीतीरेददर्शातिमनोरमाम् ।
पत्नीच्यवनपुत्रस्यप्रमतेः पार्थिवात्मजाम् ॥२९
सरातस्यनलोमत्तोजगृहेताचदुर्मति ।
पश्यतस्तस्यराज्ञश्चतातातेतिवादिनीम् ॥३०

इस वार्तालाप को सुनकर नाभाग की पत्नी सुप्रभा ने हँसते हुए कहा कि वास्तव मे आप वैश्य नही हैं और मैं भी वैश्य नही हू, मेरा जन्म क्षत्रिय वश मे ही हुआ है । इसलिए आप खुशी स इस राज्य को ग्रहण कर सकते हैं। इसका रहस्य यह है कि मेरे पिता पूर्वकाल मे सुदेव नाम के राजा थे और उनके मित्र राजा धूम्राश्व के पुत्र नल नाम के राजा थे। ऐक दिन राजा और उनके मित्र अपनी पत्नियो सहित आमो क वन मे विहार करने गये। वहाँ वे भाँति भाँति के खाने पीने की वस्तुऐं उपभोग करने लगे। इसके पश्चात् नल ने सरोवर के किनारे च्यवन पुत्र प्रमति की सुन्दरी पत्नी को देखा, जो किसी राजा की पुत्री थी। दुष्टमति नल ने उस रमणी को जाकर पकड लिया। इस पर वह 'रक्षा करो 'रक्षा करो' कहकर राजा के सम्मुख रोने लगी ॥२४-३०॥

आक्रन्दितनिशम्यैवमतस्या प्रमति पतिः ।
आजगामत्वरायुक्त किमतदितिवैवदन् ॥३१
ततोददर्शराजानमुदेवतनसस्थितम् ।
गृहीताचतयापत्नीनतेनमुदुरात्मना ॥३२
तत सुदेवप्रमति प्राहायशास्यतामिति ।
त्ववशास्ताभवद्राज्येदुष्टश्चायनलोनृप ॥३३
तस्यार्तस्यवचश्श्रुत्वासुदेवोनरगोरवात् ।
प्राहवैश्योऽस्मिगच्छान्यक्ष त्रयत्राणकारणात् ॥३४
तत सप्रमति क्रुद्धोऽसीतिजमानिदंहन्निव ।
प्रत्युनाचाथराजानवैश्योऽस्मीत्यभिभाषिणम् ॥३५
एवमस्तुभवान्वैश्य क्षत्रिय क्षतरक्षणात् ।
क्षत्रियोवीर्यं तेनास्त्रनास्तिसद्वैभवेदिति ।
सत्वनक्षत्रियोभावोवैश्यएवकुलाधम ॥३६

उधर से महर्षि प्रमति भी 'क्या हुआ ?' कहते हुए शीघ्रता पूर्वक वहाँ आये। प्रमति ने सुदेव से कहा कि आप इसे रोकिये क्योंकि आप ही यहाँ के शासक हैं और ऐसे कार्य को रोकना आपका कर्त्तव्य है। प्रमति के इस प्रकार के विनीत वचन सुनकर राजा सुदेव अपने मित्र की सम्मान रक्षा के विचार से बोले—"मैं तो वैश्य हूँ आप किसी क्षत्रिय के सम्मुख जाकर रक्षा की प्रार्थना कीजिये।" सुदेव की इस तरह की बात सुनकर प्रमति को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने कहा—"तथास्तु, तुम सचमुच वैश्य हो जाओगे, क्योंकि क्षत्रियों की उत्पत्ति तो अन्याय-पीड़ितों की रक्षा के लिये ही की गई है। क्षत्रिय इसी लिये शस्त्र धारण करते हैं कि कोई व्यक्ति अन्याय से पीड़ित न हो। इस धर्म का पालन न करने से तुम क्षत्रिय नहीं रह सकते और वैश्य ही होगये।" ॥३१–३६॥

१०३ कृपावती उपाख्यान

तस्मैदत्वाततःशापंनलंक्रुद्धोऽब्रवीद्विज ।
प्रमतिर्भार्गवःकोपात्त्रैलोक्यंनिर्दहन्निव ॥१
मदोन्मत्तोयतोभार्य्यांभवानत्रममाश्रमे ।
बलाद्गृह्णातिभस्मत्वंतस्माद्व्रजतुमाचिरम् ॥२
तेनोदाहृतमात्रेचवाक्येतस्मिंस्तदानलः ॥
देहजेनाग्निनासद्योभस्मपुञ्जस्तदाऽभवत् ॥३
दृष्ट्वाप्रभावंतंतस्यसुदेवोविस्मितस्ततः ।
प्रणाममनम्र:प्राहेदंक्षम्यतांक्षम्यतामिति ॥४
यदुक्तवांस्त्वांभगवन्सुरापानमदाकुलम् ।
तत्क्षम्यतांप्रसीदत्वंशापोऽयंविनिवर्त्यताम् ॥५
एवंप्रसादितस्तेनप्रमतिःप्राहभार्गवः ।
गतकोपानलेदग्धेनानीतेनचेतसा ॥६

नान्यथाभावितद्वाक्ययन्मयासमुदीरितम् ।
तथापितेकरिष्यामिप्रसन्नोऽनुग्रहपरम् ॥७

इस प्रकार सुदेव को शाप देकर प्रमति ने अत्यन्त क्रोधित होकर नल से कहा—कि "जब तूने उन्मत्त होकर मेरे आश्रम में ही मेरी पत्नी को जबर्दस्ती पकड़ लिया तो तू तुरन्त भस्म होजा। यह वचन मुँह से निकलते ही नल के देह में भयंकर ज्वाला प्रकट हुई और वह तुरन्त भस्म हो गया। प्रमति का ऐसा प्रभाव देख कर सुदेव की मत्तता दूर भाग गई और वह बार बार प्रणाम करके कहने लगे 'भगवान्! क्षमा करो। मद्यपान के दूषित प्रभाव के कारण मैंने जो बक-झक की उसके लिये क्षमा प्रदान करें और शाप से मुझे मुक्त करें। राजा के इस प्रकार विनय करने और नल के नष्ट हो जाने से प्रमति का क्रोध शान्त हुआ और उन्होंने कहा—जो वाक्य मेरे मुख से निकल चुके वे अब मिट नहीं सकते, तो आपकी प्रार्थना पर कुछ अनुग्रह कर सकता हूँ ॥१-७॥

भवितावैश्यजातीयोभवानास्त्यत्रसंशय ।
भविताक्षत्रियोवश्यस्तस्मिन्नेवात्मजन्मनि ॥८
ग्रहीष्यतिबलात्कन्यायदातेक्षत्रसम्भव. ।
तदात्वक्षत्रियोवैश्य स्त्वगृहीतोभविष्यसि ॥९
एवमवैश्योभूपालसुदेवोऽस्मत्पिताभवत् ।
अहवयामहाभागतत्सर्वंश्रूयता त्वया ॥१०
सुरतोनामराजर्षि प्रागासीगदत्त्वमादने ।
तपस्वीनियताहारस्त्यक्तसङ्गोवनाश्रय ॥११
तत श्येनमुखभ्रष्टादृष्ट्वावागारिकाभुवि ।
कृपाऽमूज्जनितामूर्च्छितयासन्त्यमहात्मन. ॥१२
ततोमूर्च्छावगानेऽहतस्योत्राप्रारीरत ।
समादृष्ट्वाचजग्राहस्निह्यमानेनचेतसा ॥१३

यस्मात्कृपाभिभूतस्यममजातेयमात्मजा ।
तस्मात्कृपावतीनाम्नाभविष्यत्याहसप्रभो ॥१४

प्रमति ने कहा—आपको कुछ काल के लिये वैश्य तो अवश्य होना पड़ेगा पर जब कोई क्षत्रिय राजकुमार आपकी कन्या को बल पूर्वक पत्नी बनायेगा तो आप इसी जन्म में पुनः क्षत्रिय हो जायेंगे। इस प्रकार घटनावश मेरे पिता को वैश्य होना पड़ा था। मैं भी ऐसी ही अन्य घटना वश वैश्य के घर उत्पन्न हुई थी। कुछ काल पूर्व गन्धमादन पर्वत के समीप सुरथ नाम के राजर्षि वन में रह कर तपस्या करते थे। एक दिन उन्होंने बाज के मुख पर पृथ्वी पर गिरी सारिका छटपटाते देखा तो वे दुःख के मारे मूर्छित हो गये। मूर्छा दूर होने पर मैं उन्हीं के शरीर से उत्पन्न हुई। उन्होंने मुझे देख कर बड़ा स्नेह किया और कहा कि—इस कन्या का आविर्भाव मेरे कृपाभिभूत होने से हुआ है, इस कारण इसका नाम 'कृपावती' ही होगा ॥८-१४॥

ततोऽहमाश्रमे तस्यवर्धमानंदिवानिशम् ।
सखीभिःसहतुल्याभिर्विचरामिवनानिच ॥१५
ततोमुनेरगस्त्यस्यभ्रातागस्त्यइतिश्रुतः ।
सचिन्वन्कानेवन्यंसखीभिर्कोपितोऽशपत् ॥१६
यस्मान्मांवैश्यइत्याहभवतीतेनतेशपे ।
वैश्याभविष्यसीत्युक्तेप्रसाद्योक्तोमयामुनिः ।
नापराधंकृतवतीतवाहंद्विजसत्तम ।
अन्यासामपराधेनकिमर्थंशप्तवानसि ॥१७
दुष्टर्तादुष्टसंसर्गाद्दुष्टत्वंमपिगच्छति ।
सुरांविंदुनिपातेनपञ्चगव्यघटोयथा ॥१८
प्रणिपत्यह्यनिष्टोपियत्त्वयाहंप्रसादितः ।
तस्मादनुग्रहंबालेश्रृणुष्वचकरोम्यहम् ॥१९
वैश्ययोनौयदाजातात्वंपुत्रंबोधयिष्यसि ।
राज्यायजातिस्मरतांतदात्वंसमवाप्स्यसि ॥२०

ततोभूय क्षत्रजातिप्राप्तारवपतिनासह ।
दिव्यानवाप्स्यसेभोगान्गच्छभीतिरपंतुते ॥२१
एवंशप्तास्मिराजेन्द्रतेनपूर्वंमहर्षिणा ।
पिताचमेपूर्वमेवशाप्तःप्रमतिनाऽभवत् ॥२२
एववैश्योनराजस्त्वनचवैश्य पितामम ।
नत्वहिमयिसंसर्गाद्दुष्टोदुष्यसेकथम् ॥२३

सुप्रभा ने कहा—' मैं उन्हीं राजर्षि के आश्रम में रह कर पलने लगी और बड़ी होने पर समान वय की सखियों के साथ विचरण करने लगी। वहाँ एक दिन अगस्त्य मुनि के भ्राता पुष्प बीन रहे थे। उन्हें देख कर मेरी सखियों ने उन्हें चिढ़ाया, जिस पर क्रोधित होकर उन्होंने मुझे शाप दिया है कि "तुमने मुझको वैश्य कह कर चिढ़ाया है, इस लिये तू वैश्य की ही कन्या हो जायगी। " इस शाप को सुन कर व्यथित होकर मैंने कहा—" हे महामुने! मैंने तो आपसे कुछ भी बुरा नहीं कहा, अन्य सखियों के दोष के कारण मुझे शाप क्यों देते हैं। " ऋषि ने कहा—जिस प्रकार पंचगव्य से पूर्ण पवित्र घट में एक बूँद सुरा के पड़ जाने से दूषित हो जाता है उसी प्रकार निर्दोष व्यक्ति भी दुष्टों के संग में रहने से दूषित हो जाता है। पर अब तेरी विनय सुन कर मैं तुझ पर यह अनुग्रह करता हूँ कि वैश्य वर्ण में उत्पन्न होने के पश्चात् जब तू अपने पुत्र को राज्य ग्रहण करने का उपदेश देगी तो तुझे अपनी पूर्व जाति का स्मरण हो जायगा और पति के संग क्षत्रियत्व को प्राप्त कर के दिव्य भोगों की अधिकारिणी होगी। इसलिये अब तू भय त्याग कर अपने आश्रम में निवास कर ॥१५।२१॥ हे राजेन्द्र! इस प्रकार ऋषि के शाप के कारण मैं वैश्य योनि को प्राप्त हुई थी और मेरे पिता भी महर्षि प्रमति के शाप वश वैश्य हो गये थे। वस्तुतः आप व मेरे पिता कोई वैश्य नहीं हैं अतः इस कारण मेरे साथ सम्पर्क होने से आपका वैश्य होना भी निराधार है ॥१५-२३॥

१०३—भलन्दन वत्सप्रीति चरित्र

इतितस्यावचःश्रुत्वापुत्रस्यसचपार्थिवः ।
पुनःप्रोवाचधर्मज्ञस्तांपत्नींतमयंतथा ॥१
यन्मयापितुरादेशात्त्यक्तं राज्यंनतत्पुनः ।
ग्रहीष्यामिवृथोक्तेनकिमात्मभिलष्यधेत्वया ॥२
अहंतेसम्प्रदास्यामिकरवैश्यव्रतेस्थितः ।
भुङ्क्ष्वराज्यनशेषत्वमिच्छयावापरित्यज ॥३
इत्युक्तःसतदापित्राराजपुत्रोभलन्दनः ।
चकारराज्यंधर्मेणतद्दारपरिग्रहम् ॥४
अव्याहतंतस्यचक्रं पृथिव्यामभवद्द्विज ।
नचाधर्मेमनोभूपास्तस्यसर्वेऽभवन्वशे ॥५
तेनेष्टोविधिवद्यज्ञःसम्यक्शास्तिवसुन्धराम् ।
सएवैकोऽभवद्भर्त्तापृथिव्यामरिशासनः ॥६

पत्नी और पुत्र की बात सुन कर नाभाग ने उत्तर दिया कि चाहे जो कुछ हो, पर जिस राज्य को मैंने पिता की आज्ञानुसार एक बार त्याग दिया, तो अब उसे फिर ग्रहण करके अपनी प्रतिज्ञा को भंग नहीं कर सकता। अब तुम्हीं इस राज्य के अधिकारी बनो और चाहो तो दूसरों के लिये छोड़ दो, मैं तो वैश्य वृत्ति में रहकर राजा का कर देता रहूंगा। इस प्रकार पिता की आज्ञा पाकर भलन्दन राज्य शासन करने लगे और यथा समय विवाह करके गृहस्थ बने। राजा भलन्दन बड़े प्रतापी थे और उनका रथ पृथ्वी पर सर्वत्र भ्रमण करता था, वे कभी अधर्ममार्ग पर अग्रसर नहीं हुए, इसलिये सब राजा उनके अनुगामी बन गये। वे राज्य धर्मानुसार यज्ञानुष्ठान करते और प्रजा का पूर्ण कर्तव्य परायणता से पालन करते थे और उन्हें सर्वत्र एक अद्वितीय शासक माना गया ॥१—६॥

अजायतसुतस्तस्यवत्प्रीतिस्तुनामतः ।
पितातिशयितोयेनगुणौघेनमहात्मना ॥७

तस्यापि भार्य्यासौनन्दाविदूरथसुताऽभवत् ।
पतिव्रतामहाभागासाप्राप्तातेनधीम्यंत ।
हत्वापुरन्दररिपु कुजृंभदितिजेश्वरम् ॥८
भगवस्तेनसप्राप्ताकुजृंभनिधनात्कथम् ॥
एतदाख्यानमाख्याहिप्रसन्नेनान्तरात्मना ॥९
विदूरथोनामनृप ख्यातकीर्तिरभूद्भुवि ।
तस्यपुत्रद्वयजातसुनीति सुमतिस्तथा ॥१०
एकदातुवनयातोमृगयामविदूरथ ।
ददर्शगर्तंसुमहद्भूमेमुंखमिवोद्गतम् ॥११
तदृष्ट्वाचिन्तयामासकिमेतदितिभैरवम् ।
पातालविवरमन्येनैतद्भूमेश्चिरन्तनम् ॥१२
चिन्तयन्नितितत्रासीददर्श विजनेवने ।
ब्राह्मणसुव्रतनामतपस्विनमुपागतम् ॥१३

मार्कण्डेयजी कहने लगे—महाराज भलन्दन के पुत्र वत्सप्रीति हुए जिन्होंने अपने गुणों से पिता की कीर्ति को और भी बढ़ाया। वत्सप्रीति का विवाह विदूरथ की कन्या 'सौनका' से हुआ था और उन्होंने इन्द्र के शत्रु 'कुजृम्भ' नामक दैत्य पति को मार कर उसे प्राप्त किया था। यह सुन कर क्रौष्टुकी ने पूछा—"भगवन्! वत्सप्रीति का आख्यान बतलाइये कि उसके किस प्रकार कुजृम्भ से सौनन्दा को छुड़ाया।" मार्कण्डेय जी ने कहा—विदूरथ एक बड़े प्रतापशाली और प्रसिद्ध नरेश थे। उनके सुनीति और सुमति नामक दो पुत्र थे। एक दिन राजा ने वन में शिकार के लिये भ्रमण करते हुए एक अथाह गड्ढा देखा। उन्होंने विचार किया कि यह कैसे उत्पन्न हो गया। सम्भवतः यह पाताल लोक का मार्ग है।' उसी समय वहाँ उनको सुव्रत नाम के एक तपस्वी ब्राह्मण दिखाई दिये ॥७-१३॥

सतपप्रच्छचनृप किमेतदितिविस्मित ।
प्रतिम्भोरमवनेर्दाघतातर्गतदरम् ॥१४

किन्नवेत्सिमहीपालवागर्थस्त्वंहिमेमतः ।
ज्ञेयंसर्वनरेन्द्रेणवर्ततेयन्महीतले ॥१५
दानवःसुमहावीर्य्योवसत्युग्रोरसातले ।
सजृम्भयतित्पुत्रींकुजृम्भःप्रोच्यतेततः ॥१६
क्रियतेतेनयत्किञ्चिद्रत्नभूतंमहीतले ।
त्रिदिवेदानरपपेतकथंवेत्सिनोभवान् ॥१७
सुनन्दंनाममुशलंत्वष्ट्रायन्निर्मितंपुरा ।
तज्जहारसदुष्टात्मातेनहन्तिरणेरिपून् ॥१८
पातालान्तर्गतस्तेनभिनत्तिवसुधामिमाम् ।
ततोऽसुराणांसर्वेषांद्वाराणिकुरुतेऽसुरः ॥१९
तेनभिन्नात्रवसुधासुनन्दमुशलेनतु ।
भोक्ष्यतेत्रसुधामेतांतमजित्वकथंभवान् ॥२०
यज्ञान्विध्वसयत्युग्रोदेवानामुपरोधकः ।
आप्यायथतिदैतेयान्सवलीमुशलायुधः ॥२१

राजा ने उनका वह गढ़ा दिखा कर पूछा कि यह क्या है ? तपस्वी ने कहा कि क्या आप इसे नहीं जानते ? राजा को तो ऐसी विशेष बातों का पता अवश्य रखना चाहिये । अब मैं आपको इसका सब वृतान्त बतलाता हूं । रसातल में एक बहुत वलवान् दैत्य रहता है । जिसको 'कुजृम्भ' कहते हैं, क्यों कि वह समस्त पृथ्वी को जंभाई लिवाता है । पृथ्वी और स्वर्ग के प्राणी-मात्र, जँभाई लेना उसी के कारण होता है । प्राचीन समय में विश्वकर्मा ने 'सुनन्द' नाम का जो 'मूसल' (अस्त्र) बनाया था वह दुष्ट राक्षस उसी को लेकर युद्ध में शत्रुओं को मारता है ओर पृथ्वी को भेद कर रसातल का मार्ग भी वना देता है । जिससे अन्य दानव भीतर जा सके । उस सुनन्द मूसल से ही उसने यह विवर वना दिया है । वह शक्तिशाली दैत्य उस 'मूसल' के द्वारा अजेय वन कर यज्ञ और देवताओं को नष्ट करता रहता है और दैत्यों की मनोवांछा पूर्ण करता है ॥१४--२१॥

यद्यंघ्रिघातयस्येनपातालान्तरगोचरम् ।
तत मयस्तवमुषामतिस्त्वपरमेश्वर ॥२२
मुशलन्तस्यवलिन सौनन्द प्रोच्यतेजनैं ।
तथावलावलञ्चैवतवदन्तिविचक्षणा ॥२३
तत्तु निर्वीर्य्यतायातिस्पृष्ट योषितानृप ।
तस्मिन्दिनेद्वितीऽह्निवीर्य्यवत्तदुदीर्य्यते ॥२४
नसवेत्तिदुराचार प्रभावमुशलस्यतम् ।
योषित्कराग्रसंस्पर्शोदोपवीर्य्यविशालनम् ॥२५
एवतम्यवलभूपदानवस्यदुरात्मन ।
मुश लस्यचतेप्रोक्त यद्युक्त तरसमाचर ॥२६
आसन्नमेतद्धृक्त पुरस्यपृथिवीपते ।
कृततेनमहारध्र निश्चिन्त विभवान्वृथा ॥२७
इत्युक्त्वातुगतेतस्मिन्पुरगत्वामहीपति ।
मन्त्रयामासमन्त्रज्ञं पुरमध्येतुमन्त्रिभिः ॥२८

ऋषि ने फिर कहा—आप जब रसातल में रहने वाले इस दानव पर विजय प्राप्त कर सकेंगे तभी पृथ्वी के सच्चे अधीश्वर बन सकेंगे। सर्व साधारण में इस मूसल का नाम 'सौनन्द' प्रसिद्ध है और जानकार व्यक्ति उसके सम्बन्ध में कहते हैं कि जिस दिन वह मूसल स्त्री के हाथ से छू लिया जाय उस दिन उसकी शक्ति जाती रहती है, पर दूसरे दिन वह पूर्ववत् हो जाता है। वह दानव मूसल की यह विशेषता और स्त्री के हाथ से छू जाने पर उसकी शक्ति नष्ट हो जाने की बात नहीं जानता। अब मैं ने उस दुष्ट दानव का और मूसल का सब रहस्य आपको बतला दिया। आपका कर्तव्य है कि इस विषय में निश्चिन्त न रह कर दैत्य को नष्ट करने का उपाय करें क्योंकि उसने यह पाताल मार्ग आपके नगर के समीप ही बनाया है ॥२२-२८॥

यथाश्रुतमनेपन्तस्त्वयामासमन्त्रिणाम् ।
मुशलस्यप्रभावाच्चवीर्य्यशाननमेवच ॥२६

तंमन्त्रं क्रियमाणन्तुमन्त्रिभिस्तेनभूभृता ।
तत्पार्श्ववर्तिनीकन्याशुश्रावाथमुदावती ॥३०
ततःकतिपयाहेतुतांकन्यांवयसान्विताम् ।
जहारोपवनाद्दैत्यःकुजृम्भःससखीवृताम् ॥३१
तच्छ्रुत्वासमहीपालःक्रोधपर्य्याकुलेक्षणः ।
पुत्रावुयाचत्वरितंगच्छतंवनकोविदौ ॥३२
निर्विन्ध्यायास्तटेगर्तस्तेनगत्वारसातलम् ।
सहन्यतांयोऽपहर्तांमुदावत्याःसुदुर्मतिः ॥३३
ततस्तौतत्सुतौप्राप्यतंगर्त्तं तत्पदानुगौ ।
युयुधातेकुजृम्भेणस्वसैन्येनातिकोपितौ ॥३४
ततःपरिघनिस्त्रिंशशक्तिशूलपरश्वधैः ।
बाणैश्चाविरतंयुद्धं तेषामासीत्सुदारुणम् ॥३५
ततोमायाबलवतातेनदैत्येनतावुभौ ।
राजपुत्रौरणेबद्धौनिहताशेषसैनिकौ ॥३६

जब ऋषि इस प्रकार राजा को सब बातें बतलाकर चले गये तो राजा अपने नगर में वापस आये और वहाँ अपने मन्त्रियों से इस विषय में सलाह करने लगे । उन्होंने मूसल के प्रभाव तथा उसकी शक्ति नष्ट होने की बात मन्त्रियों को बतलाई । उस समय उनकी कन्या मुदावती भी वहीं पर बैठी सब बातें सुन रही थी । इस घटना से कुछ ही समय पीछे शीघ्र ही एक दिन जब मुदावती अपनी सखियों के साथ उपवन में गई थी कुजृम्भ दानव वहाँ आकर उसे पकड़ कर ले गया । जब यह खबर राजा को मिली तो वे बड़े क्रोधित हुए और अपने दोनों पुत्रों को बुला कर कहा कि तुम दोनों वन-प्रदेश का हाल जानते ही हो इसलिए वहाँ जाकर निर्विन्ध्या नदी के तटवर्ती पाताल विवर में होकर कुजृम्भ दानव को मारो, क्योंकि वह तुम्हारी बहिन को हर कर ले गया है । राजा के आदेशानुसार दोनों राजपुत्र उस विवर पर पहुंचे और वहाँ दानव के पैरों के चिन्ह देखते हुए कुजृम्भ के निवास स्थान पर आ गये । तब राजपुत्रों की सेना का दानव की सेना के साथ घोर

युद्ध हुआ जिसमें परिघ, निस्त्रिंश, शक्ति, शूल, फरसा और बाणों से आघात किये जाने लगे। पर दैत्य सेना ने माया बल से दोनों राजपुत्रों और उनकी सेना को बाँध लिया ॥२९-३६॥

तच्छ्रुत्वासमहीपाल प्राहेद सर्वसैनिकान् ।
बद्धपुत्र परामार्तिमुपेतोमुनिसत्तम ॥३७
यस्तंनिहत्यदैतेयमोचयिष्यतिमेसुताम् ।
तस्याहसप्रदास्यामितामेवायतलोचनाम् ॥३८
इत्येवघोषयामासकसराजास्वपुरेतदा ।
निराश पुत्रतनयाबन्धमोक्षायवैमुने ॥३९
तत शुश्राववत्सप्रोभलन्दनसुतोऽखिलत् ।
आधोष्यमाणबलवान्कृतास्त्र शौर्य्यसयुत: ॥४०
सचागम्याभिवाद्य नप्राहपार्थिवसत्तमम् ।
विनयावनतोभूत्वापितुर्मित्रमनुत्तमम् ॥४१
आज्ञापयाशुमामेवतनयोमोचयामिते ।
तवैवतेजसात्वत्तुदैत्यहितनयाश्रते ॥४२

जब राजा विदूरथ ने अपने दोनों पुत्रों के बाँधे जाने का समाचार पाया तो वे बड़े दुःखी हुये और अपने सेनाध्यक्षों से उन्होंने कहा कि जो कोई दैत्य को जीत कर मेरे पुत्रों तथा कन्या को लावेगा उसके साथ ही मैं अपनी कन्या का विवाह कर दूँगा। राजा इस विषय में बड़े निराश हो गये थे और इसलिये उन्होंने उक्त घोषणा का ढिंढोरा अपने राज्य में पिटवा दिया। यह समाचार भलन्दन के पुत्र वत्सप्री को भी मिला और उसने अपने पिता के मित्र राजा विदूरथ के पास पहुँच कर विनय-पूर्वक कहा कि 'यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपके प्रताप से उस दैत्य को मार कर कन्या तथा पुत्रों को छुड़ा कर लाऊँ' ॥३७-४२॥

सतमुदापरिष्वज्यप्रियसख्युरथात्मजम् ।
गम्यतामितिससिद्धयै वत्सेत्याहसपार्थिव ॥४३

स्थानेस्थास्यतिमेवत्सोयद्ये वंकुरुतेविधिम् ।
वत्सैतत्क्रियतामाशुयद्युत्साहिमनस्तव ॥४४
ततःसखड्गःसधनुर्बद्धगोधाङ्गुलित्राणवान् ।
जगामवीरःपातालंतेनगर्तेनसत्वरः ॥४५
सजोज्यास्वनमत्युग्रं सचक्रे पार्थिवात्मजः ।
येनपातालमखिलमासीदापूरितान्तरम् ॥४६
ततोज्यास्वनमाकर्ण्यकुजृम्भोदानवेश्वरः ।
आजगामातिकोपेनस्वसैन्यपरिवारितः ॥४७
ततोयुद्धमभूत्तस्यतेनपार्थिवसूनुना ।
ससैन्यस्यससैन्येनबलिनोबलशालिनः ॥४८
दिनानित्रीणिसयदायौधियस्तेनदानव ।
ततःकोपपरीतात्मामुसलाय्यधावत ॥४९

महाराज विदूरथ ने मिनापुत्र वत्सप्री का हार्दिक स्वागत करते हुए—"हे वत्स ! यदि तुम इस कार्य को कर सकोगे तो मैं तुम्हारा मित्र पुत्र होना सार्थक समझूँगा । अतएव यदि तुम्हारे मन में इसके लिये पूर्ण उत्साह हो तो शीघ्रातिशीघ्र इसे पूरा करने का प्रयत्न करो । तदनन्तर महावीर वत्सप्री खड्ग, धनुष, गोधा और अंगुलीत्राण धारण करके शीघ्रतापूर्वक उस विविर में घुसे और वहाँ पहुँच कर अपने शक्तिशाली धनुष की प्रशंसा की टंकार भरी जिससे वह समस्त विवर महाशब्द से परिपूर्ण हो गया । उस टंकार के घोर रव को सुन कर दानव श्रेष्ठ कुजम्भ क्रोध से भर गया और अपनी सेना को लेकर लड़ने के लिये तैयार हो गया । राज कुमार वत्सप्री और कुजृम्भ का युद्ध तीन दिन तक होता रहा, पर तब भी वह वत्सप्री को जीत न सका । तब वह मूसल को लेने के लिए अपने महल में गया ।।४३–४९।।

गन्धैर्माल्यैस्तथाधूपैःपूज्मानःसतिष्ठति ।
अन्तःपुरेमहाभागप्रजापतिविनिर्मितः ॥५०
ततोविज्ञातमुशलप्रभावासामुदावती ।
पस्पर्शमुशलश्रेष्ठम तनम्रशिरोधरा ॥५१

पुनर्यावत्समृह्णातिमुशलतमहासुर ।
तावत्सावन्दनव्याजात्पस्पर्शनिकशा शुभा ॥५२
तत समरवायुयुधेमुशलेनासुरेश्वरः ।
व्यर्थामुशलपातास्तेसजग्मुस्तेपुशत्रुपु ॥५३
परमास्त्र तुनिर्वीर्यसौनन्देमुशलेमुने ।
ग्रस्त्रं शस्त्र श्रद्द तेय सोयुध्यतरणेऽरिणा ॥५४
शस्त्रास्त्रैर्नसमस्तस्यराजपुत्रस्यसोऽसुर. ।
मुशलेनवलन्तस्यतद्वतन्व्यानिराकृतम् ॥५५

राजा विदूरथ की कन्या मुदावती जो दानव के महल में बँद थी इस मूसल के विषय मे सब रहस्य अपने पिता से सुन चुकी थी। इसलिये, उसने उस मूसल को प्रणाम करके उसे छू लिया। जब कुजृम्भ उस मूसल को ले जाने लगा तब तक मुदावती ने पूजा के बहाने उसे बार-बार छुआ जब दानव-पति उस मूसल को लेकर युद्ध क्षेत्र में लड़ने लगा तो उसका प्रहार बार-बार असफल होने लगा, क्योंकि उसकी शक्ति स्त्री के स्पर्श के कारण नष्ट हो चुकी थी। यह देख कर दानव अस्त्र-शस्त्र द्वारा युद्ध करने लगा। पर अस्त्र युद्ध में वत्सप्री दानव की अपेक्षा अधिक निपुण था। उसको जिस मूसल का भरोसा था वह सब चतुराई से व्यर्थ कर दिया गया था ॥५०–५५॥

तत पराजित्यमभूपमूनुरस्त्राणिशस्त्राणिचदानवस्य ।
चकारमद्योविरथतनश्चमचर्मखङ्ग.पुनरप्यधावत् ॥५६
समापतन्तरभसाऽभ्युदीर्णविस्पष्टकोपत्रिदशेन्द्रशत्रुम् ।
शस्त्रेणवह्नेर्भु विराजपुत्रोजघानकालानलसप्रभेण ॥५७
सपावकास्त्रेणहृदिक्षतोभृशतत्याजदेहत्रिदशारिरात्मनः ।
वभूवसद्यश्चमहोरगाणामातलान्तेपुमहानयोत्सव ॥५८
ततोपतत्पुष्पवृष्टिर्महीश नसूतोपरि ।
जगुर्गन्धर्वपतयादेववाद्यानिमस्वनु ॥५९
मचापिराजपुत्रस्तहत्वातान्नृपतेमुनी ।
सोत्थमाप्यस्त्रनुगौताश्वस्याभुदाप्रनीय ॥६०

तच्चापिमुशलंतस्मिन्कुजृम्भेविनिपातिते ।
जग्राहनागाधिपतिरनन्तःशेषसंज्ञितः ।।६१
तस्याश्चपरितुष्टोऽसौशेषःसर्वोरगेश्वरः ।
मुदावत्यामुदाघ्यातमनोवृत्तिस्तपोधनः ।।६२
सुनन्दमुशलस्पर्शयच्चकारपुनःपुनः ।
योषित्करतलस्पर्शप्रभावज्ञातिशोभना ।।६३
मुदावत्यास्ततोनामनागराजस्तदाकरोत् ।
सुनन्दामितिसानन्दं सौनन्दगुणजंद्विज ।।६४

जब वत्सप्री ने दानवराज के सब अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ करके उसके रथ को भी नष्ट कर दिया तो वह तलवार, ढाल लेकर वत्सप्री से युद्ध करने के लिये बड़े वेग से दौड़ा। पर वत्सप्री ने उसे बीच में ही कालाग्नि के समान सुप्रकाशित आग्नेयास्त्र से मार दिया ।।५६–५७।। यह कुजृम्भ देवताओं तथा पातालवासी नागों के लिये बड़ा कष्टकारक थी, इससे उसके मरते ही नागगण महान् उत्सव करने लगे। उस समय चारों ओर से राजपुत्र वत्सप्री पर पुष्पवर्षा होने लगी, गन्धर्व गायन करने लगे और देवगण तरह तरह के वाद्य बजाने लगे। वत्सप्री ने दानव की कैद से राजा विदूरथ के दोनों पुत्र सुनीति तथा सुमति और कन्या मुदावती को छुड़ाया। कुजृम्भ का अन्त हो जाने पर उसके मूसल नागराज अनन्त ने ग्रहण किया और वे राजकन्या मुदावती की चतुराई को जान कर बड़े प्रसन्न हुए। उसी मूसल को बार-बार छूकर उसकी शक्ति को मिटा दिया था और इस प्रकार कुजृम्भ का नाश कराया था। उस मूसल का नाम सौनन्द होने से नागराज ने मुदावती का नाम 'सुनन्दा' रख दिया ।।५८–६४।।

सचापिराजपुत्रस्तांभ्रातृभ्यांसहितांपितुः ।
समीपमानिनायाशुप्रणिपत्याहचेवतम् ।।६५
आनीतौतनयौतातत्थैवेयंमुदावती ।
तवाज्ञयामयान्यद्यत्कर्तव्यंतत्समादिश ।।६६

तत प्रहर्षसंपूर्णहृदय समहीपति ।
साधुसाध्वित्यथाहोच्चैर्वत्सवत्सेतिशोभनम् ॥६७
सभाजितोऽस्मित्रिदशैर्वत्साह्वकारणैस्त्रिभि ।
त्वजामाताचयत्प्राप्तोयच्चारिर्विनिपातित ।
आगता॰ यक्षता॰यत्रयच्चापत्यानिमेपुन ।
तद्गृहाणाद्यजम्नेऽस्मिन्पाणिमस्यामयोदितम् ॥६८
त्वराजपुत्रचावेङ्घ्या कन्यायादुहितुर्मम ।
मुदावत्यामुदायुक्तःसत्यवाक्यकुरुष्वमाम् ॥७०

तत्पश्चात् राजकुमार वत्सप्री ने दोनों राजकुमारों तथा कन्या को अपने साथ लाकर राजा विदूरथ की सभा में उपस्थित किया और उनको प्रणाम करके निवेदन किया—'महाराज, आपकी आज्ञानुसार आपके दोनों पुत्रों तथा कन्या मुदावती को कुजृम्भ को मार कर छुड़ा लाया हूँ। अब जो अन्य कोई कार्य हो तो वैसी आज्ञा दें ॥६५–६६॥ यह सुन कर राजा बड़े प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए और बारम्बार वत्सप्री की सराहना करके उसे धन्यवाद देने लगे। उन्होंने कहा—आज मेरे लिये बड़ी प्रसन्नता का दिन है क्योंकि तीन कारणों से मैं देवताओं द्वारा भी प्रशंसा का अधिकारी बन गया हूँ। प्रथम तो तुम को जमाता के रूप में प्राप्त किया, दूसरे ऐसा दुर्धर्ष शत्रु मारा गया और तीसरे मेरे पुत्र और कन्या सकुशल मुझे प्राप्त हो गये। इसलिये अब मैं अपनी प्रतिज्ञानुसार अपनी कन्या को तुम्हें देता हूँ। तुम उसका पाणिग्रहण करो ॥६७–७०॥

तातस्याज्ञामयाकार्यायद्ब्रवीषिकरोमितत् ।
त्वमेवतातजानीषेनैवात्राधिकृतावयम् ॥७१
ततस्तयो मराजेन्द्रश्चक्रे वैवाहिकक्रमम् ।
मुदावत्याश्चदुहितुर्भलन्दनसुतस्यवै ॥७२
तत महतयारमेवत्सप्रीर्नवयौवन ।
रम्येषुरम्यपुदेशेपुप्रासादशिखरेषुच ॥७३
कालेनगच्छताऽवृद्ध पितातस्यभलन्दन ।
वनजगामवत्सप्री सवभूत्रमहीपति ॥७४

इयाजयक्षान्सततंप्रजाधर्मेणपालयन् ।
पुत्रवत्पाल्यमानास्तुप्रजास्तेनमहात्मना ।।७५
ववृधुर्विषयेतस्यनचाभूद्वर्णसङ्करः ।
नदस्युव्यालदुर्वृत्तभयमासीच्चकस्यचित् ।
नोपसर्गभयञ्चैवतस्मिञ्छासतिभूपतौ ।।७६

राजपुत्र वत्सप्री ने कहा—महाराज ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। आप जानते ही है कि मैं गुरुजनों की आज्ञा पालन की सदैव तत्पर रहा हूं। तब राजा विदूरथ ने वत्सप्री तथा मुदावती का विवाह-संस्कार बड़ी धूमधाम से सम्पन्न किया। ये दोनों नवयुवा पति-पत्नी रमणीय स्थानों और महलों में प्रेमपूर्वक विहार करने लगे। कुछ समय पश्चात् वत्सप्री के पिता भलन्दन अधिक वृद्ध हो जाने से पुत्र को राज्य देकर वन को चले गये। वत्सप्री ने राज्य का संचालन और प्रजा का पालन बड़ी योग्यता से किया जिससे समस्त प्रजाजन निरन्तर समृद्धिशाली और सुखी होने लगे। उनके राज्य में कोई वर्णसंकर नहीं होते थे और हिंसक जन्तु, दुष्ट लोगों, ठग, धूर्त आदि का भय जाता रहा ।।७१—७६।।

१०४—खनित्र चरित्र (१)

तस्यतस्यांसुनन्दायांपुत्राद्वादशजज्ञिरे ।
प्रांशुःप्रवीरःशूरश्चसुचक्रोविक्रमःक्रमः ।।१
वलीवलाकश्चण्डश्चप्रचण्डश्चसुविक्रमः ।
सुनयश्चमहाभागाःसर्वेसंग्राममजित्तमाः ।।२
तेषांज्येष्ठोमहावीर्य्यःप्रांशुरासीन्नराधिपः ।
इतरेभृत्यवत्तस्यवभूवुर्वशवर्त्तिनः ।।३
तस्ययज्ञेद्विजत्यक्तैरनेकैर्द्रव्यराशिभिः ।
न्यूनवर्णाविसृष्टैश्चसत्यनामावसुन्धरा ।।४

सम्यक्पालयतस्तस्यप्रजा पुत्रानिवौरसान् ।
योऽभूद्धनचय कोशेतेननिष्पादितास्तुये ॥५
क्रतव शतसहस्रास्तेतेषांसंख्यानविद्यते ।
अयुताद्यैर्नकोटीभिर्नचपद्मादिभिर्मुने ॥६

मार्कण्डेय जी ने कहा—सूर्यवंशोत्पन्न महाराज वत्सप्री के बारह पुत्र हुए थे, जिनके नाम प्रांशु, प्रवीर, शूर, सुचक्र, विक्रम, क्रम, बलाक, चण्ड, प्रचण्ड, सुविक्रम और सुनय हुए। यह सब अत्यन्त भाग्यशाली और युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले थे ॥१-२॥ उनमें सबसे प्रांशु राजा हुए और अन्य ग्यारह भाई उनके अधीन भृत्य के समान रहने लगे ॥३॥ उनके यज्ञ करने के समय में ब्राह्मणों तथा अन्य जाति के मनुष्यों ने भी धन का त्याग किया था, इसीलिये पृथिवी का नाम वसुन्धरा पड़ा ॥४॥ उन्होंने अपने पुत्र के समान ही प्रजा का पालन किया तथा उनके राज-कोष में जो धन एकत्र होता था, उसी धन के द्वारा सभी असंख्य यज्ञानुष्ठान सम्पन्न हुए थे। उन यज्ञों की अयुत, करोड़ अथवा पद्म आदि संख्या में गणना सम्भव नहीं है ॥५-६॥

प्रजानिम्नस्यपुत्रोऽभूद्यस्ययज्ञशतक्रतु ।
अवाप्यतृप्तिमतुलांयज्ञभागे सुरैः सह ॥७
दानवानांसुवीर्याणांजघानवततोनव ।
बलवर्चस्विनाश्चैवोजम्भचासुरसत्तमम् ॥८
अन्यांश्चसुमहावीर्यान्नाजघानामरद्विप ।
प्रजातिस्तनया पञ्चासन्निन्नप्रमुखामुने ॥९
तेषामन्नित्रोराजाभूत्प्रख्यातोनिजविक्रमैः ।
सत्यान्त सत्यवाक्छूर सर्वप्राणिहितरत ॥१०
स्वधर्माभिरतोनित्यवृद्धसेवीबहुश्रुत ।
वाग्मीविनयसम्पन्नकृतास्त्रोऽप्यविकत्थन ॥११
सर्वलोकप्रियोनित्यमुतार्चैतदहर्निशम् ।
नन्दन्नुसर्वभूतानिस्निग्धान्तुजनेष्वपि ॥१२

स्वस्त्यस्तुसर्वभूतेषुनिरातङ्कानिसन्तुच ।
माव्याधिरस्तुभूतानामाधयोनभवन्तुच ॥१३

उन राजा प्रांशु के प्रजाति नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, उनके यज्ञ में देवताओं के सहित इन्द्र यज्ञ भाग प्राप्त कर तृप्त हुए थे और उन्होंने अत्यन्त पराक्रमी वल और जम्भ नामक दैत्यों तथा अन्य देव-शत्रु असुरों का वध किया था, उस राजा प्रजाति के खनित्र इत्यादि नाम वाले पाँच पुत्र हुए थे ॥७-६॥ उन पांचों में खनित्र ही अपने बल, वीर्य से प्रसिद्ध राजा हुए, यह शान्त सत्य-वक्ता, वीर, सब जीवों का हित चिन्तन करने वाले ॥१०॥ अपने धर्म में परा-यण, वृद्धजनों की सेवा करने वाले, अनेक शास्त्रों के देखने वाले, वाग्मी, अस्त्र-शस्त्र के ज्ञाता, विनयशील, अहङ्कार-हीन ॥११॥ तथा सर्व लोकप्रिय थे, वह सदैव कहते रहते—सभी जीव आनन्दित रहें, विजन स्थान में स्नेह युक्त हों, सभी जीवों का कल्याण हो, सब निर्भय हों, सब की पीड़ा नष्ट हो और मनोव्यथा किसी को भी न हो ॥१२-१३॥

मैत्रीमशेषभूतानिपुष्यन्तुसकलेजने ।
शिवमस्तुद्विजातीनांप्रीतिरस्तुपरस्परम् ॥१४
समृद्धिःसर्ववर्णानांसिद्धिरस्तुचकर्मणाम् ।
भोलोकाःसर्वभूतेषुशिवावोऽस्तुसदामतिः ॥१५
यथात्मनियथापुत्रेहितमिच्छथसर्वदा ।
तथासमस्तभूतेषुवर्त्तध्वंहितबुद्धयः ॥१६
एतद्वोहितमत्यन्तंकोवाकस्यापराध्यते ।
यत्करोत्यहितंकिंचित्कस्यचिन्मूढमानसः ॥१७
तंसमभ्येतितन्नूनंकर्तृ गामिफलयतः ।
इतिमत्वासमस्तेषुभोलोकाहितबुद्धयः ॥१८
सन्तुमालौकिकंपापंलोकाःप्राप्स्यथवैबुधाः ।
योमेऽद्यस्निह्यतेतस्यशिवमस्तुसदाभुवि ॥१९

सभी प्राणी सबसे मित्रता प्रकट करें, ब्राह्मणों का कल्याण, पार-स्परिक स्नेह ॥१४॥ सभी वर्णों की समृद्धि और सभी कर्मों की सिद्धि हो,

हे मनुष्यो ! तुम्हारी मङ्गलमयी बुद्धि सदैव सब प्राणियों के हित में लगी रहे ॥१५॥ जैसे तुम अपनी और अपने पुत्र की शुभ कामना सदा किया करते हो, वैसे ही समस्त प्राणियों के हित की कामना करो ॥१६॥ इसी में तुम्हारा अत्यन्त हित निहित है, कौन किसके प्रति अपराधी है ? जो मन्द बुद्धि मनुष्य किसी का अहित करता है ॥१७॥ उसमें उसी का अहित होता है क्योंकि कर्म के फल का भोगने वाला कर्मकर्त्ता ही है, ऐसा विचार करके सभी प्राणियों के हित में अपनी बुद्धि को रखो ॥१८॥ हे ज्ञानियो ! लौकिक पाप में प्रवृत्त मत होना, इसीसे तुम्हें पुण्यलोक प्राप्त हो सकते हैं, मुझसे स्नेह रखने वाले मनुष्य का भूमण्डल में सर्वत्र ही कल्याण हो और जो मेरे प्रति द्वेष करे, उसका भी कल्याण हो ॥१९॥

यश्चमाद्वे ष्टिलोकेऽस्मिन्सोऽपिभद्राणिपश्यतु ।
एवस्वरूप पुत्रोऽभूत्तस्यनिवस्तस्यभूपतेः ॥२०
समस्तगुणसम्पन्नःश्रीमानब्जदलेक्षण. ।
तेनतेभ्रातरं प्रीत्यापृथप्राज्येपुयोजिता. ॥२१
स्वयचपृथिवीमतावभुजेसागराम्वराम् ।
प्राच्यातनेष्टत शौरिदक्षिणस्यामुदावसु ॥२२
दिशिप्रतीच्यामुनयउत्तरस्यामहारथा ।
तेपातस्यचभूपस्यपृथग्गोत्रा पुरोहिता ॥२३
यभूवुर्नयश्चै वमन्त्रियत्राक्रमागता. ।
शौरेरत्रिकुलोद्भूत सुहोत्रोनामवैद्विज ॥२४
उदावसोः कुशावर्त्तोगौतमान्वयजोऽभवत् ।
यान्यप्र प्रमतिर्नाममुनयस्यपुरोहितः ॥२५
महारथस्यवाशिष्ठ पुरोधाऽभून्महीभृत ।
बुभुजुस्तेस्वराज्यानिचरवारोऽपिनराधिपाः ॥२६
नरिनिश्चाधिपस्तेपामशेपस्यमुराधिप ।
तेपुभ्रातृष्वशेपेषुपुत्रनिव समहामति. ॥२७

प्रजासुचसमस्तासुपुत्रेष्विवसदाहितः ।
एकदामन्त्रिणाशौरिःसप्रोक्तोविश्ववेदिना ॥२८

वे राजपुत्र खनित्र इस प्रकार की कामना वाले थे, उन्होंने अपने सब भाइयों को पृथक्-पृथक् राज्य देकर ॥२०-२१॥ स्वयं भी समुद्र तक इस पृथिवी का पालन करते रहे, शौरि को पूर्व प्रदेश में, उदावसु को दक्षिण में ॥२२॥ सुनय को पश्चिम में और महारथ को उत्तर प्रदेश में बसाया और पृथक् राजा के पृथक् गोत्र के पुरोहित हुए ॥२३॥ खनित्र और उनके भाइयों के मन्त्रिवंश के क्रम से उपलब्ध पृथक् गोत्र वाले जो पुरोहित थे, उसी के अनुसार शौरि के अत्रि-वंशोत्पन्न सुहोत्र ऋषि, उदावसु के गौतम वंशोत्पन्न कुशावर्त्त, सुनय के कश्यप गोत्रीय प्रमति तथा महारथ के वसिष्ठजी पुरोहित थे, इस प्रकार चारों भाई राजा होकर राज्य करते थे ॥२४-२६॥ सम्पूर्ण पृथिवी के स्वामी खनित्र उनके अधीश्वर हुए, राजा खनित्र सभी भाइयों और प्रजा के प्रति पुत्र के समान व्यवहार करते थे, एक दिन राजा शौरि से उनके मन्त्री विश्ववेदी ने कहा ॥२७-२८॥

विविक्ते पृथिवीपालकिंचिद्वक्तव्यमस्तिनः ।
यस्येयंपृथिवीकृत्स्नायस्यभूपावशानुगाः ॥२६
सराजातस्यपुत्रश्चतत्पौत्राश्चान्वयस्ततः ।
इतरेभ्रातरस्तस्यप्राक्स्वल्पविषयाधिपाः ॥३०
तत्पुत्राश्चाल्पकास्तस्मात्तत्पौत्राश्चाल्पकाल्पकाः ।
कालेनह्रासमासाद्यपुरुषात्पुरुषान्तरम् ॥३१
कृष्योपजीविनोभूपभवन्तीतितदन्वयाः ।
नोद्धारंकुरुतेभ्राताभ्रातृस्नेहवलार्पणः ॥३२
स्नेहःकःपृथिवीपालपरयोर्भ्रातृपुत्रयोः ।
तत्पुत्रयोःपरतरामतिर्भवतिपार्थिव ॥३३
तत्पुत्रःकेनेकार्य्येणप्रीतियुक्तोभविष्यति ।
अथवायेनतेनैवसतोपंकुरुतेनृपः ॥३४

क्रियतेनर्त्किमर्थन्तुभूपैर्मन्त्रिपरिग्रह ।
भुज्यतंसकलराज्यमयातेमन्त्रिणासता ॥३५

हे राजन्! मुझे इस एकान्त के समय मे कुछ निवेदन करना है, यह सब पृथियो और राजागण जिनके अधीन हैं ॥२६॥ वह तथा उन्ही के बराबर राजा होते हैं उनके अन्य भाई पहिले थोडे से राज्य के अधिकारी होते हैं ।३०। फिर उनके पुत्र उनसे भी थोडे और पौत्र तो पुत्रों की अपेक्षा भी अत्यल्प राज्य के अधिकारी होते हैं, समय पाकर क्रमान्तर से पीढी प्रति पीढी राज्य के घटते-घटते अन्त म ॥३१॥ उस वश के लोग कृषि कर्म से जीविका चलाते हैं हे राजन्! भाई स्नेह म बँधा हुआ भाई कभी भी अपने भाई का उद्धार नहीं करता ॥३२॥ फिर दोनो भाइयो की सन्तान भी एक दूसरे को पराया ही मानने लगती है उनके भी जब सन्तान होती हैं, तो वे और भी दूर होती जाती हैं ॥३३॥ उनके मन म अपनी सन्तति के सुख की ही चिन्ता रहती है, यदि राजागण सतोष का ही अवलम्बन करे ॥३४॥ तो मन्त्रियों की नियुक्ति क्यों करे ? मेरे जैसे मन्त्री के होते हुए आप सम्पूर्ण राज्य का सुख भोग सकते हैं ॥३५॥

तत्किमुधाधारयसेसतोषकुरुतेयदि ।
कार्यनिष्पादयराज्यकरणकर्तुरिष्यते ॥३६
राज्यलब्धुश्चतवार्यत्वाकर्त्ताकरणवयम् ।
सोऽस्माभि करणैराज्यपितृपैतामहकुरु ।
फलप्रदामविप्याम परलोकेनतेवयम् ॥३७
ज्येष्ठोभ्रातामहीपालोवयतस्यानुजायत ।
तत समुक्तेपृथिवीवयचाल्पवसुधराम् ॥३८
वयन्तुभ्रातर पञ्चपृथ्वीत्वैकामहामते ।
अतोऽस्या पृथगैश्वर्यंत्वयाकृत्स्नभविष्यति ॥३९
एवमेतद्भ्रातृस्वत्रयद्येवावसुधानृप ।
तात्वमेवाभिपद्यस्वज्येष्ठ शास्तुयथाभवान् ॥४०

सर्वाधिपत्यःसर्वेभ्योभवत्त्वमखिलेश्वरः ।
यतन्तेचयथाहंतेतेषामपिहिमन्त्रिणः ।।४१

में चेष्टा करने को प्रस्तुत हूं तो आप संतोष को व्यर्थ ही क्यों धारण किये हुए हैं ? राज्य को निष्पादन कर देना मन्त्री का कर्त्तव्य है ।।३६।। परन्तु उस राज्य प्राप्ति के कार्य में मैं कारण हूँगा और आप कर्त्ता होंगे, इसलिये कारण के द्वारा अपने पैतृक राज्य पर अधिकार करिये, हम तो इसी लोक में आपके लिये फल देने वाले हैं, परलोक में नहीं ।।३७।। राजा बोले—पृथिवी का पालन करने वाले राजा हमारे बड़े भाई हैं, इसीलिये वे समस्त पृथिवी का राज्य करते हैं और हम थोड़ी पृथिवी को भोगते हैं ।।३८।। हम पाँच भाई हैं और पृथिवी एक ही है, इसलिए पृथिवी के सम्पूर्ण ऐश्वर्य को हम सब पृथक् रूप से किस प्रकार भोग सकते हैं ? ।।३६।। इस पर विश्ववेदी ने कहा—हे राजन् ! आपका वचन सत्य है परन्तु यदि पृथिवी एक ही है तो इस पर आप ही अधिकार करिये और सबके अधीश्वर होकर इस पृथिवी को भोगिये ।।४०।। सम्पूर्ण आधिपत्य को प्राप्त होकर सब भाइयों में आप ही सबके स्वामी बनिये, मेरे द्वारा नियुक्त अन्य मन्त्रिगण भी ऐसी ही चेष्टा कर रहे हैं ।।४१।।

ज्येष्ठोराजायथाप्रीत्याभजतेऽस्मान्सुतानिव ।
कथंतस्यकरिष्यामिममत्वंजगतींगतम् ।।४२
राज्येस्थितःपूजयेथाज्येष्ठंभूपार्हणैर्धनैः ।
कनिष्ठज्येष्ठताकेयंराज्यंप्रार्थयतांनृणाम् ।।४३
तथेतिचप्रतिज्ञातेभूभुजातेनसत्तम ।
विश्ववेदीततोमन्त्रीतद्भ्रातॄननयद्वशम् ।।४४
तेषांपुरोहितांश्चैवआत्मनःशांतिकादिषु ।
नियोजयामासततःखनित्रस्याभिचारके ।।४५
विभेदतस्यनिभृतान्सामदानादिभिस्तथा ।
चक्रेचपरमोद्योगंनिजदंडप्रभावने ।।४६

राजा बोले—बड़े भाई पुत्र के समान सबका परिपालन कर रहे हैं, फिर उनके राज्याधिकार में मुझे ममत्व क्यों करना चाहिये ? ।।४२।। विश्ववेदी

ने कहा—फिर तो आप राज्याधिकार पूर्वक विभिन्न प्रकार के सत्कारों द्वारा उनका पूजन करिये, वैसे राज्य की कामना वाले पुरुष के लिए छोटे बड़े का विचार करना व्यर्थ ही है ॥४३॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—राजा द्वारा विश्व-वेदी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने पर विश्ववेदी ने उनके अन्य भाइयों को अपने वश में किया ॥४४॥ तथा उनके पुरोहितों को अपने लिये शान्ति कर्म और खनित्र के प्रति आभिचारिक कर्म करने के लिये नियुक्त किया ॥४५॥ तथा खनित्र के विश्वासपात्र भृत्यों को भी सामदानादि की नीति से अपने वश में करने का यत्न करने लगा ॥४६॥

आभिचारिकमत्युग्रमहन्यहनिकुर्वताम् ।
पुरोऽधमाच्चतुर्णांचजज्ञेकृत्याचतुष्टयम् ॥४७
विकरालमहावक्त्रमतिभीषणदर्शनम् ।
समुद्यतमहाशूलप्रभूनमतिदारुणम् ॥४८
तयस्तदागतन्तत्रतनिश्रीयत्रपार्थिवः ।
निरस्तवाप्यदुष्टस्यतस्यपुण्यचयेनतत् ॥४६
कृत्याचतुष्टयन्तपुनिपपातदुरात्मसु ।
पुरोहितप्रभूपानातथागौविश्ववेदिनि ॥५०
ततानिहत्यानिर्दग्धा कृत्ययातेपुरोहिता ।
विश्ववेदीतथामन्त्रीसशोरेदुष्टमन्त्रद ॥५१

जब पुरोहितों ने अत्यन्त उग्र अभिचार कर्म किया, तब चार कृत्यायें उत्पन्न होगईं ॥४७॥ वह सभी विकराल शरीर वाली अत्यन्त भयानक प्रतीत होती थीं, उनके हाथों में महाशूल स्थित थे और वे अत्यन्त विशाल तथा दारुण थीं ॥४८॥ इसके पश्चात् वे चारों कृत्यायें राजा खनित्र के पास पहुँचीं, परन्तु पाप-रहित राजा के पुण्य प्रभाव से तेजहीन होकर ॥४९॥ उन दुरात्मा पुरोहितों और विश्ववेदी के पास ही लौटकर आगईं ॥५०॥ देने वाला वह दुष्ट मन्त्री विश्ववेदी, यह सभी उन लौटी कृत्याओं के द्वारा मारे जाकर भस्मीभूत होगये ॥५१॥

१०५—खनित्र चरित्र (२)

ततःसमस्तलोकस्यविस्मयःसोऽभवन्महान् ।
यदेककालंनेशुस्तेपृथक्पुरनिवासिनः ॥१
ततःशुश्रावनिधनंयातान्भ्रातृपुरोहितान् ।
मन्त्रिणश्चतथाभ्रातुर्दग्धंतंविश्ववेदिनम् ॥२
किमेतदितिसोऽतीवविस्मितोमुनिसत्तम ।
खनित्रोऽभून्महाराजोनाजानात्तच्चकारणम् ॥३
ततोवसिष्ठंपप्रच्छसराजागृहमागतम् ।
यत्कारणंविनेशुस्तेभ्रातृमन्त्रिपुरोहिताः ॥४
तेनपृष्टस्तदाप्राहयथावृत्तंमहामुनिः ।
यच्छौरिमन्त्रिणाप्रोक्तंयच्चशौरिरुवाचतम् ॥५
यथाचानुष्ठितन्तेनभ्रातृणांभेदकारिणौ ।
मन्त्रिणातेनदुष्टेनयच्चक्रुश्चपुरोहिताः ॥६
यन्निमित्तंविनेशुस्तेऽपापस्यापकारिणः ।
पुरोहितास्तस्यराज्ञःशत्रावपिदयावतः ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—उस समय सभी को यह विस्मय हुआ कि यह पृथक्-पृथक् नगर में निवास करने वाले होकर भी एक ही समय में किस प्रकार नष्ट होगये ? ॥१॥ हे मुनिवर ! तदुपरान्त राजा खनित्र ने अपने भाई के पुरोहित और मन्त्री विश्ववेदी का मृत्यु समाचार सुना तो ॥२॥ इसका कारण न समझ कर 'ऐसा क्यों हुआ' इस प्रकार विस्मय युक्त विचार करने लगे ॥३॥ फिर जब वसिष्ठजी घर पर आये तब उनसे राजा ने अपने भाई के मन्त्री और पुरोहितों के इस प्रकार मरने का कारण पूछा ॥४॥ महामुनि वसिष्ठ से पूछने पर उन्होंने शौरि और उनके मन्त्री के मध्य जो वार्ता हुई थी ॥५॥ तथा उस दुष्ट मन्त्री ने भाइयों में फूट डालने के लिए जो कार्य किये थे और पुरोहितों ने जिस कर्म का अनुष्ठान किया था ॥६॥ तथा शत्रुओं पर भी दया करने वाले

वह पुरोहित निरपराध के अपकार में तत्पर होकर स्वयं ही नाश को प्राप्त होगये थे, वह सब वृत्तान्त आद्योपान्त राजा सत्यव्रत को सुना दिया ॥७॥

सतच्छ्रुत्वाततोराजाहाहनोऽस्मीतिवैवदन् ।
निनिन्दात्मानमत्यर्थंवसिष्ठस्याग्रतोद्विज ॥८
धिङ्मामपुण्यसंस्थानमल्पभाग्यमशोभनम् ।
दैवदोपकृतपापसर्वलोकविगर्हितम् ॥९
मन्निमित्तंविनष्टं तत्तद्ब्राह्मणचतुष्टयम् ।
मत्त कोऽन्य पापतरोभविष्यतिपुमान्भुवि ॥१०
नाभविष्ययदिपुमानहमत्रमहीतले ।
तत्स्तेनविनश्यंयुर्ममभ्रातृपुरोहिता ॥११
धिग्राज्यंधिक्चमेजन्मभूभुजांमहतांकुले ।
कारणत्वंगतोयोऽहंविनाशस्यद्विजन्मनाम् ।
कुर्वन्तःस्वामिनानर्थमात्मनामममयाजकाः ।
नाशंययुनदुष्टास्तेदुष्टोऽहंनाशकारणे ॥१३
किंकरोमिक्वगच्छामिनान्योमत्तोहिपापकृत् ।
पृथिव्यामस्तिहेतुर्योद्विजनाशस्ययोगवत् ॥१४

यह वृत्तान्त सुनकर राजा अत्यन्त दुःखित होकर वसिष्ठजी के समक्ष ही अपने को धिक्कारने लगे ॥८॥ राजा ने कहा—मैं कितना मन्दभाग्य अपवित्र पुण्य वाला तथा आभा रहित हूँ कि दैव भी मेरे अनुकूल नहीं है, मैं लोक में निन्दा का पात्र और पापी हूँ, इसलिये मुझे धिक्कार है ॥९॥ क्योंकि मेरे ही कारण चार ब्राह्मणों की मृत्यु हुई है, इसलिये इस पृथिवी पर मुझसे बढ़कर अन्य कौन पापी हो सकता है ? ॥१०॥ यदि मैं इस पृथिवी पर पुरुष के शरीर में उत्पन्न न हुआ होता तो मेरे भाइयों के पुरोहित नाश को प्राप्त न हुए होते ॥११॥ उन ब्राह्मणों के नाश का कारण मैं ही हूँ, इसलिये मेरे इस राज्य को और महान् राज-वंश में जन्म लेने को धिक्कार है ॥१२॥ मेरे भाइयों की प्रयोजन सिद्धि के लिये कर्म करके जो याजकगण नाश को प्राप्त हुए हैं, उनमें वे स्वयं दोषी नहीं थे, उनके नष्ट होने का कारण मैं ही था, इसलिये

दोषी भी मैं ही हुआ ॥१३॥ अब मेरा क्या कर्त्तव्य है, मुझे कहाँ जाना चाहिये? ब्रह्महत्या का कारण होने से मेरे समान पापी इस भूमण्डल पर अन्य कोई नहीं है ॥१४॥

इत्थमुद्विग्नहृदयःखनित्रःपृथिवीपतिः ।
वनंयियासुःपुत्रस्यकृतवानभिषेचनम् ॥१५
अभिषिच्यसुतंराज्येक्षुपसंज्ञंमहीपतिः ।
भार्य्याभिस्तिसृभिःसार्धंतपसेसवनंययौ ॥१६
तत्रागत्वातपस्तेपेवानप्रस्थविधानवित् ।
शतानित्रीणिवर्षाणांसार्द्धानिनृपसत्तमः ॥१७
तपसाक्षीणदेहस्तुराजवर्य्योद्विजोत्तम ।
निगृह्यसर्वस्रोतांसितत्याजासून्वनेचरः ॥१८
ततःपुण्यान्ययौलोकान्सर्वकामदुहोऽक्षयान् ।
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरवाप्यायेनराधिपैः ॥१९
भार्य्याश्चतस्यतास्तिस्रःसमन्तेनैवतत्युजुः ।
प्राणानवापुःसालोक्यंतेनैवसुमहात्मना ॥२०
एतत्खनित्रचरितंश्रुतंकल्मषनाशनम् ।
पठताञ्चमहाभागक्षुपस्यातोनिशामय ॥२१

राजा खनित्र ने इस प्रकार उद्विग्न चित्त से वनवासी होने की इच्छा करके अपने पुत्र का राज्याभिषेक किया ॥१५॥ क्षुप नामक पुत्र को राज्य देकर स्वयं अपनी तीन पत्नियों को साथ लेकर तप करने के लिये वन में गये ॥१६॥ और वन में वास करते हुए वानप्रस्थी रहकर साढ़े तीन सौ वर्ष तक उन्होंने तप किया ॥१७॥ फिर हे द्विज श्रेष्ठ ! उन वनवासी राजा ने तप के द्वारा कृश शरीर होने पर सब स्रोतों के निरोध पूर्वक प्राण का परित्याग कर दिया ॥१८॥ अन्यान्य राजागण सैंकड़ों अश्वमेध यज्ञों को करके भी जिस लोक को नहीं पा सकते उस सर्व अभीष्ट देने वाले अक्षय पुण्य लोक को राजा खनित्र ने प्राप्त किया ॥१९॥ उनकी तीनों पत्नियाँ भी उनका अनुगमन करके उन्हीं के साथ समान गति को प्राप्त हुईं हे महाभाग ! इस प्रकार खनित्र के चरित्र को

तुम्हारे प्रति कहा है, इसके पढ़ने या सुनने से पापों का नाश होता है, अब क्षुप का चरित्र कहता हूँ उसे श्रवण करो ॥२१॥

१०६—त्रिंशि चरित्र

क्षुपःखनित्रपुत्रस्तुप्राप्यराज्ययथापिता ।
तथैवपालयामासप्रजाधर्मेणरञ्जयन् ॥१
सदानशीलोयष्टाचयज्वनामवनीपतिः ।
समःशत्रौचमित्रेचव्यवहारादिवर्त्मनि ॥२
एकदासमहीपालोनिजस्थानगतोमुने ।
सूतैरुक्तोयथापूर्वंक्षुपोराजातथाऽभवत् ॥३
ब्रह्मणस्तनयः पूर्वंक्षुपोऽभूत्पृथिवीपतिः ।
यादृक्चरितमस्यासीत्तादृक्तस्य विचेष्टितम् ॥४
श्रोतुमिच्छामिचरितंक्षुपस्यास्यमहात्मनः ।
यदिताहृङ्भयाशक्य चेष्टितुं तत्करोम्यहम् ॥५
सचकाराकरान्भूपराजागान्ब्राह्मणान्पुरा ।
यज्ञादीन्दत्तावोर्व्यामिष्टिस्तेनमहात्मना ॥६
तेषामहारः नाराज्ञारोऽनुमाम्यनिमद्विध ।
तयाप्युत्कृष्टचेतानाचेष्टामूद्यमवान्भवत् ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—राज्य में अभिषिक्त हुए खनित्र पुत्र क्षुप प्रजा को प्रसन्न करते हुए अपने पिता के समान ही प्रजा का पालन धर्म पूर्वक करने लगे ॥१॥ यह राजा क्षुप भी अपने पिता के समान यज्ञकर्त्ता, दाता और शत्रु-मित्र सभी के साथ समान व्यवहार करने वाले हुए ॥२॥ इस समय की बात है कि सूतों ने राज्य सिंहासन में प्रतिष्ठित राजा क्षुप से कहा—आप अपने पूर्ववर्ती क्षुप राजा की प्रति मूर्ति जैसे ही हैं ॥३॥ पुराकाल में ब्रह्मा के पुत्र क्षुप ने पृथिवी पर राज्य किया था, उनका जैसा चरित्र तथा जैसी चेष्टा थी, वैसी

ही सब बातें आपमें हैं ॥४॥ राजा बोले—मैं उन महात्मा का क्षुप का चरित्र सुनना चाहता हूं यदि मैं भी उनके जैसा ही आचरण कर सकूँ तो वैसा ही प्रयत्न करूँगा ॥५॥ सूत बोले—हे महाराज ! वह राजा क्षुप गौ-ब्राह्मण से कर प्राप्त नहीं करते थे तथा छठे अंश से यज्ञों का अनुष्ठान करते थे ॥६॥ राजा बोले—मेरा जैसा मनुष्य उनके कार्यों का अनुकरण कैसे कर सकता है ? फिर भी ऐसे महात्माओं के उत्कृष्ट आचरण पर चलने का प्रयत्न करना चाहिये ॥७॥

तच्छ्रूयतांप्रतिज्ञायासाम्प्रतंक्रियतेमया ।
क्षुपस्यानुकरिष्यामिमहाराजस्यचेष्टितम् ॥८
त्रींस्त्रीन्यज्ञान्करिष्यामिसस्यापातेगतागते ।
पृथिव्यांचतुरन्तायांप्रतिज्ञेयंकृतामया ॥९
यच्चगोब्राह्मणाःपूर्वमददन्भूभृतेकरम् ।
तमेवप्रतिदास्यामिब्राह्मणानांतथागवाम् ॥१०
इतिप्रतिज्ञायवचःक्षुपस्तत्कृतवांस्तथा ।
सस्यापातेसयज्ञांस्त्रीनयजद्यजतांवरः ॥११
गोब्राह्मणाःपुराराज्ञामददद्यं चयौकरम् ।
तावत्संख्यमदाद्वित्तमन्यद्गोब्राह्मणायसः ॥१२
तस्यपुत्रोऽभवद्वीरःप्रमथायामनिन्दितः ।
यस्यप्रतापशौर्याभ्यांकृतावश्यामहीभृतः ॥१३
तस्यापिनन्दिनीनामवैदर्भीदयिताऽभवत् ।
विविंशंतनयंतस्यांजनयामाससप्रभुः ॥१४

इसलिये मैं इस समय प्रण करता हूं उसे श्रवण करो; मैं उन महाराज क्षुप के कार्य का आज से अनुकरण करूँगा ॥८॥ मैं चारों वर्ण और पृथिवी के प्रति यह प्रतिज्ञा करता हूं कि कृषि आने वाले, वर्त्तमान और व्यतीत होने वाले समय में तीन-तीन यज्ञों का अनुष्ठान करूँगा ॥९॥ तथा पहिले जिस-जिस समय में राजाओं ने ब्राह्मणों से जो कर लिया है, उसे मैं उनको लौटा दूँगा ॥१०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यज्ञकर्त्ताओं में श्रेष्ठ राजा क्षुप ने ऐसी प्रतिज्ञा करके उसकी रक्षा की अर्थात् कृषि की उपस्थिति के समय तीन यज्ञानुष्ठान

दिया ॥११॥ तथा पहिले राजाओं को गौ और ब्राह्मणों ने जितना कर दिया था, उतना धन उनको दे दिया ॥१२॥ उनकी प्रमथा नाम की भार्या हुई उसके गर्भ से एक अत्यन्त सुन्दर और बलवान् पुत्र की उत्पत्ति हुई, उस पुत्र ने अपनी शूरता और पराक्रम से सभी राजाओं को अपने अधीन कर लिया था ॥१३॥ उनकी भार्या विदर्भ देश के राजा की पुत्री नन्दिनी हुई, उसके गर्भ से विविंश नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१४॥

विविंशेशासतिमहीमहीपालेमहौजसि ।
महीतलमभूद्व्याप्तनिरन्तरतयाजनैः ॥१५
ववर्षकालेपर्जन्योमहीसस्यवतीतथा ।
सुफलानिचसस्यानिरसवन्तिफलानिच ॥१६
[illegible]

तत्प्रतापेनरिपवोभयमापुर्महामुने ।
स्वास्थ्य जन सुहृद्वर्गोमुदमापसुपूजितः ॥१८
इष्ट्वासयज्ञान्सुबहून्सम्यक्सम्पाल्यमेदिनीम् ।
सग्रामेनिधनप्राप्यशक्रलोकमितोगत ॥१९

राजा विविंश के राज्यकाल मे पृथिवी पर इतनी प्रजा थी कि कहीं भी स्थान शेष नही था ॥१५॥ उस काल मे मेघ यथा समय वृष्टि करते थे और पृथिवी भी अन्न से परिपूर्ण रहती थी, सभी अनाज फल से युक्त और सभी फल रस से युक्त थे ॥१६॥ रस मे पोषक तत्व होते थे, उनसे होने वाली पुष्टि से मनुष्य उन्मत्त नही होता था, बहुत धनवान् होकर भी मनुष्यों में मिथ्यामद नही था ॥१७॥ शत्रु उनके बल से सदा भयभीत तथा स्वस्थ रहते थे, सुहृदों को सदा सन्तोष रहता था ॥१८॥ इस प्रकार उस राजा विविंश ने अनेकानेक यज्ञ किये और भले प्रकार प्रजा का परिपालन किया, अन्त में युद्ध करते हुए मृत्यु को प्राप्त होकर स्वर्गलोक को गये थे ॥१९॥

१०७—खनित्र चरित्र (३)

तस्यपुत्रःखनीनेत्रोमहाबलपराक्रमः ।
यस्ययज्ञे ष्वगायन्तगन्धर्वाविस्मयान्विताः ॥१
खनीनेत्रसमोनान्योभुवियज्वाभविष्यति ।
तेनयज्ञायुतेपूर्णेदत्तापृथ्वीससागरा ॥२
दत्त्वाचसकलांपृथ्वींब्राह्मणानांमहात्मनाम् ।
तपसाद्रव्यमासाद्यमोदयन्साधितेनयः ॥३
यतश्चप्राप्यवित्तर्द्धिमतुलांदातृसत्तमात् ।
जगृहुर्ब्राह्मणाविप्रनान्यराज्ञःप्रतिग्रहम् ॥४
सप्तषष्टिसहस्राणिसप्तषष्टिशतानिच ।
सप्तषष्टिचयोयज्ञानयजद्भूरिदक्षिणान् ॥५
अपुत्रःसमहीपालोमृगयामुपचक्रमे ।
पुत्रार्थपितृयज्ञायमांसकामोमहामुने ॥५
अश्वारूढोविनासैन्यमेकएवमहावने ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणोबाणखड्गधनुर्धरः ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा विविंश के पुत्र खनी नेत्र हुए, वे महाबली और पराक्रमी थे, उनके यज्ञानुष्ठान को देखकर विस्मय को प्राप्त हुए गन्धर्वों ने उनकी गाथा का इस प्रकार कीर्तन किया था ॥१॥ इस पृथिवी पर खनी नेत्र के समान कोई यज्ञकर्त्ता नहीं होगा, क्योंकि उन्होंने दश सहस्र यज्ञों का अनुष्ठान किया और समुद्र पर्यंत सम्पूर्ण पृथिवी का दान कर दिया ॥२॥ उन राजा खनीनेत्र ने ब्राह्मणों को सब पृथ्वी दे दी थी और फिर तप के द्वारा धन लाभ करके उस पृथ्वी को छुड़ा लिया था ॥३॥ हे ब्रह्मन् ! उन दानियों में श्रेष्ठ राजा खनीनेत्र से ब्राह्मणों ने विपुल द्रव्य प्राप्त करके, पुनः अन्य किसी से दान ग्रहण नहीं किया था ॥४॥ उन्होंने तिहत्तर हजार सरसठ यज्ञों का अनुष्ठान किया और सभी यज्ञों में विपुल धन की दक्षिणा दी ॥५॥ एक समय की बात है कि खनी नेत्र ने पुत्र की कामना से पितृ-यज्ञ के अनुष्ठान की इच्छा की, उस

समय अनुष्ठान के निमित्त मृग के लिये धनुष बाण आदि धारण कर और अश्वा- रूढ होकर वन में आखेट के लिये गये ॥६-७॥

तथाह्यन्तस्तुरगमन्यतोगहनाद्वनात् ।
विनिष्क्रम्यमृग प्राहमाहत्वाभिमतंकुरु ॥८
अन्येमृगा पलायन्तेमहाभीत्याविलोक्यमाम् ।
कथमात्मप्रदानन्त्वंमृत्यवेकर्तुमिच्छसि ॥९
अपुत्रोऽहंमहाराजवृथाजन्मप्रयोजनम् ।
विचारयन्नपश्यामिप्राणानामिहधारणम् ॥१०
अथान्योऽन्यमृग प्राहतमन्यावसुधाधिपम् ।
मृगस्यतस्यप्रत्यक्षमलमतेनपार्थिव ॥११
घातयस्वतिमामामेंममकर्ममाचर ।
यथाहृनाथ तातस्यात्ममचाप्युपकारितत ॥१२
पुत्रार्थ त्वंमहाराजस्त्वपितृन्यष्टुमिच्छसि ।
अपुत्रस्यास्यमामेनत्वस्यसवाञ्छितंकथम् ॥१३
यादृक्कर्मविनिष्पाद्य तादृग्द्रव्यमुपाहरेत् ।
दुर्गन्धोन्सुगन्धानागन्धज्ञानविनिर्णय ॥१४

जब उन्होंने एक वन से दूसरे वन में जाने के लिये अपने अश्व को दौड़ाया, तभी एक मृग ने एक वन से निकल कर उनसे कहा—हे राजन्! मेरा वध करके अपना इच्छित कार्य करिये ॥८॥ राजा बोले—और सभी मृग तो मुझे देखते ही भाग जाते हैं परन्तु तुम मरने के लिये क्यों इच्छा कर रहे हो? ॥९॥ मृग ने कहा—हे राजन्! मैं पुत्रहीन हूँ, इसलिये जीवित रहना व्यर्थ समझता हूँ ॥१०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तभी एक अन्य मृग वहाँ आकर पहिले मृग के ही सामने राजा से बोला—हे राजन्! इस मृग का आप क्या करेंगे? ॥११॥ आप मेरा वध करके अपने कार्य का सम्पादन करेंगे तो आपका अभीष्ट सिद्ध होगा और मेरा भी उपकार होगा ॥१२॥ हे राजन्! आप पुत्र की कामना से जो पितृ यज्ञ करना चाहते हैं उसकी सिद्धि इस पुत्रहीन के मांस से कैसे हो सकेगी? ॥१३॥ जो कर्म जिस प्रकार का हो, उसके

लिये वैसा ही द्रव्य ग्रहण करना चाहिये, भला कभी दुर्गन्ध से सुगन्ध की पूर्ति हो सकती है ? ।।१४।।

वैराग्यकारणंप्रोक्तमनेनापुत्रताामम ।
कथ्यतांप्राणसत्यागेयत्तेवैराग्यकारणम् ।।१५
वहवोमेसुताभूपबह्व्योदुहितरस्तथा ।
यच्चिन्तादुःखदावाग्निज्वालामध्येवसाम्यहम् ।।१६
सर्वसाध्यानरेन्द्रेयंमृगजातिःसुकातरा ।
तेष्वपत्येषुमेचातिममत्वंतेनदुःखितः ।।१७
मनुष्यसिंहशार्दूलवृकादिभ्योबिभेम्यहम् ।
विहीनात्सर्वसत्त्वेभ्यःश्वश्रृगालादपिप्रभो ।।१८
सोऽहंनिमित्तबन्धूनामिमांशून्यांवसुन्धराम् ।
नृसिंहादिभयात्सर्वामिच्छामिसुनृशंसकृत् ।।१९
तृणान्यन्येऽपिखादन्तिगोऽजावितुरगादिकाः ।
तांस्तेषांपोषणायाहमिच्छामिनिधनंगतान् ।।२०
निष्क्रान्तेषुततस्तेषुममापत्येपुवैपृथक् ।
भवन्तिचिन्ताःशतशोममत्वावृतचेतसः ।।२१

राजा बोले—उस प्रथम मृग ने पुत्रहीनता को ही अपने वैराग्य का कारण बताया है, परन्तु तुमको वैराग्य किसलिये हुआ है, जो अपना प्राण देने को तत्पर हुए हो ? ।।१५।। मृग ने कहा—हे राजन् ! मेरे पुत्र पुत्रियों की अधिकता है, उन्हीं की चिन्ता से मैं दुःखरूपी अग्नि में जलता रहता हूँ ।।१६।। यह मृग जाति सभी के वश में हो जाती है, मुझे अपनी संतान के प्रति अत्यन्त मोह है, इसीलिये मैं सदा ही दुःखित रहता हूं ।।१७।। हे राजन् ! मनुष्य, सिंह, व्याघ्र, वृक तथा सभी प्राणियों में अत्यन्त हीन श्वान और गीदड़ आदि से भी भयभीत रहता हूं ।।१८।। मैं सदा यही कामना करता हूँ कि इन मनुष्य सिंहादि के डर से यह पृथिवी मुक्त हो जाय और मैं भी विघ्न रहित हो जाऊँ ।।१९।। गौ, बकरी, अश्व आदि पशु जब इस पृथिवी के सम्पूर्ण तृण को खा जायेंगे तब मेरे पुत्र-पुत्री आदि क्या खाकर जीवन धारण करेंगे, इसीलिये मुझे अपनी

सतान के पोषणार्थ मैं तृण खाने वाले जीवो के मरने की कामना करता रहता हूँ ॥२०॥ जब मेरे पुत्र-पुत्री पृथक् पृथक् रूप से गमन करते हैं, तब उनके स्नेह के कारण मेरे हृदय मे सैंकडो चिन्ताएँ उपस्थित हो जाती हैं ॥२१॥

> किचूटपाशंकिवद्ध वागुराविमुतोमम ।
> प्राप्तश्चरन्वनेकिवानृसिहादिवशगतः ॥२२
> प्राप्तोऽयमेकःसप्राप्तान्तेवस्थाकीदृशीमम ।
> साम्प्रततेचिरायतेयेगता सुमहावनम् ॥२३
> दृष्ट्वाप्राप्तान्ममाभ्याशमहन्तानात्मजान्नृप ।
> ईषदुच्छ्वसमित क्षेममिच्छामिरजनीपुन ॥२४
> प्रभातेदिवमक्षेममस्तगेऽर्के निशामपि ।
> वाञ्छाम्यहव दाक्षेमसर्ववातामविप्यति ॥२५
> एततेन थितभूपमहोद्वेगस्यकारणम् ।
> अत प्रमादधुर्मेबाणोऽयपात्यतामयि ॥२६
> इतिदु खशताविष्ट प्राणाग्रहंत्यजामियत्त ।
> तत्कारणनिबोधत्वम् वतोममपार्थिव ॥२७
> अमूर्यानामलेलावायान्गच्छन्त्यात्मघातकाः ।
> यज्ञोपयुक्ता पशव मम्भयात्स्युच्छिन्नी प्रभो ॥२८

कभी-कभी लगता है कि कोई पुत्र किसी कठोर पाश मे फँसा है अथवा वध्य या सिंहादि के द्वारा मारा गया है ॥२२॥ यदि एक आजाता है तो दूसरे की चिन्ता रहती है, जो वन मे चरने के लिये गये हैं, वह वहाँ कैसी दशा मे होंगे यह मुझे ज्ञात नही है ॥२३॥ हे राजन् ! जब वह सब मेरे पास आ जाते हैं, तब उन्हे देखकर कुछ सताप होता है, परन्तु उस समय भी समस्त रात्रि मगल पूर्वक व्यतीत हो, यही चिन्ता करता रहता हूँ ॥२४॥ प्रात काल होने पर दिन भर की मगल कामना और सूर्यास्त होने पर रात्रि के मंगल पूर्वक व्यतीत होने की चिन्ता करता हुआ यही सोचता रहता हूँ कि यह हर समय निरापद अवस्था मे रहें ॥२५॥ हे राजन् ! मेरे उद्वेग का यही कारण है जो मैंने आपसे कहा है अब आप कृपा करके मुझ पर बाण चलाइये ॥२६॥

राजन् ! मैं जिस लिये सैंकड़ों दुःखों से दुःखित हृदय हुआ अपने प्राण त्याग की कामना कर रहा हूँ उसे आप यथार्थ समझिये ॥२७॥ हे प्रभो ! आत्मघात करने वालों को असूर्य नामक नरक की प्राप्ति होती है और यज्ञ के लिये प्रयुक्त हुए पशुओं को सद्गति की प्राप्ति होती है ॥२८॥

अग्निःपशुरभत्पूर्वपशुरासीज्जलाधिपः ।
भास्वानथोच्छ्रितीःप्राप्तायज्ञेनिष्ठामुपागताः ॥२९
तन्ममैतांकृपांकृत्वानयमामुच्छ्रितिंनृप ।
अत्मनश्चेप्सितंकामपुत्रलाभादवाप्स्यसि ॥३०
राजेन्द्रनैषहन्तव्योधन्योऽयंसुकृतीमृगः ।
बहवस्तनयाह्यस्यहन्तव्योऽहमसन्ततिः ॥३१
एकदेहभवंयस्यदुःखंधन्यःसर्वभवान् ।
बहूनियस्यदेहानितस्यदुःखान्यनेकधा ॥३२
एकोयदाहमासंतुप्राक्तदादेहजंमम ।
दुःखमासीन्ममत्वेतुभार्य्यायास्तदभूद्द्विधा ॥३३
यदाजातान्यपत्यानितदायावन्तितानिवै ।
तावच्छरीरभूमीनिममदुःखान्यथाभवन् ॥३४
मक्तार्थोभवाम्यस्यनातिदुःखायसम्भवः ।
इहदुःखायमत्सूतिःपरत्रचविरोधिनी ॥३५
यतोरक्षणपोषार्थमपत्यानांकरोमितत् ।
चिन्तयामिचसंभूतिस्तेनमेनरकेध्रुवम् ॥३६

पुराकाल में अग्नि, वरुण और सूर्य भी पशु होकर यज्ञार्थ वियुक्त हुए थे, इसीलिये उनको सद्गति की प्राप्ति हुई थी ॥२९॥ हे राजन् ! इसीलिये मुझ पर कृपा करके आप मुझे सद्गति को प्राप्त कराइये, ऐसा करके आप अपने इच्छित पुत्र को प्राप्त करेंगे ॥३०॥ प्रथम मृग ने कहा—हे राजन् ! यह मृग अधिक संतान वाला तो स्वयं ही सुकर्मवान् होता है, इसलिये मुझ पुत्रहीन का ही वध करिये ॥३१॥ इस पर दूसरे मृग ने कहा—एक शरीर वाले को एक ही दुःख होता है, वह तुम्हारे समान धन्य ही है, परन्तु अधिक देह वाले को

अनेकानेक दुःखों की प्राप्ति होती है ॥३२॥ जब मैं भी एक था, तब मुझे भी एक देह का ही दुःख था, परन्तु जब पत्नी हुई, तब स्नेह के कारण इसकी दो भागों में विभक्ति हुई ॥३३॥ फिर जितनी सन्तान होती गई, उतने ही भागों में दुःख बढ़ता गया, इस प्रकार मुझे अनेक देहों के कारण अनेक दुःखों की प्राप्ति हुई है ॥३४॥ अब तुम्हें अधिक दुःख नहीं है तब क्या तुम धन्य नहीं हो ? मुझे तो मेरी यह सन्तान इस लोक में दुःख का कारण और परलोक में भी अहितकर है ॥३५॥ मैं अपनी सन्तति के पोषण और रक्षार्थ जो प्रयत्न अथवा चिन्ता करता हूँ, वह सभी मेरी नरक प्राप्ति का साधन रूप ही है ॥३६॥

नवेद्मिकिसन्ततिमान्धन्योऽपुत्रोऽथवामृग ।
पुत्रार्थश्चायमारम्भोममदोलायतेमनः ॥३७
दुःखायसन्ततिः सत्यमेहिकामुष्मिकायतत् ।
तथाप्यतनयान्यान्तिऋणानीतिश्रुतमया ॥३८
सोऽहमतिप्यपुत्रार्थं मृतेप्राणिवधं मृग ।
तपसैवप्रचण्डेनयथापूर्वंमहीपतिः ॥३९

राजा बोले—हे मृग ! पुत्रहीन और पुत्रवान् इन दोनों में किसका जीवन सफल है यह मुझे ज्ञात नहीं है, मैं पुत्र प्राप्ति के कार्य में प्रयत्नवान् हूँ, परन्तु मेरा मन अत्यन्त चंचलता को प्राप्त हो रहा है ॥३७॥ यद्यपि इहलोक और परलोक में सन्तान के कारण ही दुःखों की प्राप्ति होती है, परन्तु ऐसा सुना जाता है कि पुत्रहीन पुरुष ऋण-मुक्त नहीं होता ॥३८॥ इसलिये हे मृग ! मैं जीवहत्या किये बिना ही, पूर्वकालीन भूपालों के समान घोर तप करके ही पुत्र लाभ का प्रयत्न करूँगा। ३९॥

१०८—करन्धम चरित्र

ततः सनृपतिर्गत्वागोमतीपापनाशिनीम् ।
तत्रतष्टाव नियतोभक्त्यादेवपुरन्दरम् ॥१

तप्यमानस्तपश्चोग्रं यतवाक्कायमानसः ।
तुष्टावप्रयतःशक्रमपत्यार्थंमहीपतिः ॥२
तस्यस्तोत्रेणतपसाभक्त्याचापिसुरेश्वरः ।
तुतोषभगवानिन्द्रःप्राहचैनंमहामुने ॥३
अनेनतपसाभक्त्यास्तोत्रेणोच्चारितेनच ।
परितुष्टोऽस्मितेभूपव्रियतांभवतांवरः ॥४
अपुत्रस्यसुतोमेऽस्तुसर्वशस्त्रभृतांवरः ।
सदाचाव्याहतैश्वर्योधर्मक्रद्धर्मवित्कृती ॥५
तथेतिचोक्तःशक्रेणराजाप्राप्तमनोरथः ।
प्रजाःपालयितुं भूपश्चाजगामनिजंपुरम् ॥६
तत्रास्यकुर्वतोयज्ञं सम्यक्पालयतःप्रजाः ।
अजायतसुतोविप्रतदाशक्रप्रसादतः ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—तदनन्तर राजा खनीनेत्र ने पापों को नष्ट करने वाली गोमती के किनारे पहुँच कर जितेन्द्रिय रहते हुए पुरन्दरदेव का स्तवन किया ॥१॥ हे मुने ! राजा ने जब देह, मन और वचन से संयत होकर पुत्र की इच्छा से देवेन्द्र की स्तुति की, तब भगवान् पुरन्दर ने उनकी भक्ति और स्तुति से प्रसन्न होकर कहा ॥२-३॥ हे राजन् ! तुम्हारी तपस्या, भक्ति और स्तुति से मैं अत्यन्त संतुष्ट हुआ हूँ, इसलिये तुम मुझसे वर माँगो ॥४॥ राजा बोले—हे प्रभो ! मैं पुत्रहीन हूँ, मेरे सभी शस्त्रधारियों से बढ़कर, बाधा रहित और ऐश्वर्यवान् धर्म के जानने वाला एक पुत्र हो ॥५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इन्द्र ने 'ऐसा ही हो' कहकर जब राजा की प्रार्थना स्वीकार की, तब राजा अपने नगर में लौट आये ॥६॥ वहाँ प्रजा पालन में तत्परता पूर्वक यज्ञ का अनुष्ठान करने पर इन्द्र की कृपा से उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥७॥

तस्यनामपिताचक्रेबलाश्वइतिभूपतिः ।
अस्त्रग्राममशेषंचग्राहयामासतंसुतम् ॥८
पितर्युपरतेविप्रसोऽधिराज्येस्थितोनृपः ।
सबलाश्वोवशन्निन्येभुविसर्वमहीक्षितः ॥९

वरचदापयामासमारयहृगपूर्वकम् ।
ससर्वंभूमिपाघ्राजापालयामासचप्रजा ॥१०
अथाखिलनरेन्द्रास्तेदायादास्तस्यदुर्मदा ।
नचाभ्युत्थायमनतेचास्मैप्रददु करान् ॥११
व्युत्थिता स्वेपुराष्ट्रे पुनसन्तोषपरास्तत ।
भुवलस्यनरेन्द्रस्यजगृहुस्तेनराधिपा ॥१२
सगृहीत्वास्वव राज्यपृथिवीशावलान्मुने ।
तस्यौम्यनगरेभूर्यविरोधोवहुभि कृत ॥१३
समेत्यसुमहावीर्य्या समाधनधनास्तत ।
रुरुधुस्तमहीपालपुरेतननरेश्वरा ॥१४

पिता ने उसका नाम बलाश्व रखा और उसे सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्र की शिक्षा दी ॥८॥ हे ब्रह्मन्! वह बलाश्व अपने पिता के मरणोपरान्त, पृथिवी के सब राजाओं को जीतकर सम्राट बन गए ॥९॥ वह उन राजाओं से सार रूप कर को लेकर अनेक प्रकार प्रजा का पालन करने लगे ॥१०॥ फिर समय प्राप्त कर उन राजाओं और जाति वालों ने राजा का अभ्युत्थान न होने देने के निमित्त कर देना रोक दिया ॥११॥ तब वह राजागण बलाश्व के अधीनता से मुक्त होकर भी सन्तुष्ट न हुए वरन् उन्होंने राजा बलाश्व की भूमि भी छीन ली ॥१२॥ राजा बलाश्व अपने शत्रुओं से युद्ध करते करते इतने बलहीन होगये कि उनके पास अपना राज्य मात्र ही रह गया और वह अपनी राजधानी में ही रहने लगे ॥१३॥ इसके पश्चात् उन धन साधन सम्पन्न राजाओं ने इन राजा बलाश्व को उनके नगर में ही घेर लिया ॥१४॥

पुररोधेनतेनाथकुपित समहीपति ।
स्वल्पकोशोल्पदण्डश्चवैक्लव्यपरमगत ॥१५
अपश्यमान शरणमथनाद्विजसत्तम ।
करौमुखाग्रे कृत्वानिशश्वासातमानस ॥१६
ततोऽस्यहस्तविवरान्मुखानिलसमाहता ।
निर्जग्मु शतशोयोधारथनागतुरङ्गमा ॥१७

ततःक्षणेनतत्सर्वनगरंतस्यभूपतेः ।
व्याप्तमासीद्वलौघेनसारेणातिबलान्मुने ॥१८
अथसोऽतिबलौघेनमहतातेनसंवृतः ।
निर्मथ्यनगरात्तस्मात्तान्विजिग्येनराधिपः ॥१९
जित्वाचवशमानीयचकारकरदान्पुनः ।
यथापूर्वंमहाभागमहाभाग्योनरेश्वरः ॥२०
धुतयोःकरयोर्जज्ञे यतस्तस्यारिदाहृदम् ।
बलंकरन्धमस्तस्मात्सबलाश्वोऽभिधीयते ॥२१
सधर्मात्मामहात्माचसमैत्रःसर्वजन्तुषु ।
करन्धमोऽभवद्भूपस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥२२
सम्प्राप्तस्यपरामार्त्तिददावरिविनाशनम् ।
बलन्धर्मेणचाक्षिप्तमभ्युपेत्यस्वयंनृपम् ॥२३

नगर के घिर जाने से बलाश्व को बड़ा क्रोध हुआ, परन्तु वह अल्पकोष और अल्प दण्ड व्यवस्था वाले होने के कारण ॥१५॥ रक्षा का कोई अन्य उपाय न देखकर अत्यन्त व्याकुलता पूर्वक मुख को दोनों हाथों से ढक कर दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगे ॥१६॥ ऐसा करने से उनके मुख की वायु के साथ ही सैकड़ों योद्धा, रथ, हाथी और अश्व निकल पड़े ॥१७॥ हे मुने ! क्षण भर में ही इस प्रकार अत्यन्त बल युक्त सेनाओं के द्वारा राजा बलाश्व का सम्पूर्ण नगर व्याप्त होगया ॥१८॥ तब उन राजा बलाश्व ने अपनी उस महान् सेना के सहित नगर से बाहर आकर युद्ध किया और शत्रुओं पर विजय प्राप्त की ॥१९॥ और उन सबको अपने अधीन करके उन्हें पुनः करदाता बनाया, इस प्रकार वह पुनः सौभाग्यशाली हुए ॥२०॥ बलाश्व के काँपते हाथों से जो सेना उत्पन्न हुई उसके कारण राजा बलाश्व की प्रसिद्धि 'करन्धम' नाम से हुई ।२१। करन्धम त्रैलोक्य में प्रसिद्ध, धर्मात्मा तथा सब प्राणियों के प्रति सख्य भाव वाले थे ॥२२॥ वह राजा स्वयं बल प्राप्त करके परम आर्त्त हुए प्राणियों के शत्रुओं या दुःखों का नाश करने वाले हुए ॥२३॥

१०६—अवीक्षित चरित्र (१)

वीर्य्यचन्द्रसुतासुभ्रूर्वीरानामनुभवता ।
स्वयवरेसाजगृहेमहाराजकरन्धमम् ॥१
तस्यापुत्रसराजेन्द्रोजनयामासवीर्यवान् ।
अविक्षितमितिख्यातिमुपेतजगतीतले ॥२
जातेतस्मिन्सुतेराजासदैवज्ञानपृच्छत ।
कच्चित्प्रशस्तनक्षत्रेशस्तलग्नेसुतोमम ॥३
कच्चिच्चालोकितजन्ममपुत्रस्यशोभनै ।
ग्रहैकच्चिदग्रदुष्टानाग्रहाणाहक्पथगतम् ॥४
इत्युक्तास्तेनदैवज्ञास्तमूचुर्पार्थिवं तत ।
शस्तेमुहूर्तेनक्षत्रलग्नेचैवसुतस्तव ॥५
समुत्पन्नामहावीर्योमहाभागामहाबल ।
भविष्यतिमहाराजमहाराजस्तवात्मज ॥६
अवेक्षतेमदेवानागुरु शुक्रश्चममम ।
सोमश्चतुर्थ स्तनयतवैनममवेक्षत ॥७
उपान्तसस्थितश्चैवसोमपुत्राप्यवेक्षत ।
नावेक्षतेमभविनानभौमोनशनैश्चर ॥८

मार्कण्डेय जी ने कहा—महाराज करन्धम ने स्वयंवर मे वीर्यचन्द्र नरेश की कन्या सुभद्रा वीरा का पाणिग्रहण किया था। वीरा के गर्भ से महाराज करन्धम के एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ जिसका अवीक्षित नाम लोक मे प्रसिद्ध है। उसके जन्म लेने पर राजा ने ज्योतिषियो को बुलाकर कहा कि मेरे पुत्र ने 'प्रशस्त लग्न और शुभ नक्षत्र मे तो जन्म लिया है? इसके लग्न स्थान मे शुभ ग्रहो की दृष्टि है? किसी दुष्ट ग्रह की दृष्टि तो नही पडी? राजा के प्रश्न सुनकर ज्योतिषियो ने गणना करके बतलाया कि 'महाराज उत्तम मुहूर्त, शुभ नक्षत्र और श्रेष्ठ लग्न म उत्पन्न हुआ है। इसलिये बडे भाग्यशाली, बडे पराक्रमी, असीम शक्तिशाली नृपति होंगे। इनकी कुण्डली मे बृहस्पति तथा शुक्र सप्तम

है और सप्तम घर पर देखते है। चौथे घर को चन्द्रमा देख रहा है और ग्यारहवें पर बुध की दृष्टि है। रवि मंगल तथा शनिश्चर जैसे क्रूर ग्रहों की दृष्टि नहीं है ॥१-८॥

तवपुत्रंमहाराजधन्योऽयंतनयस्तव ।
सर्वकल्याणसम्पत्तिसमवेतोभविष्यति ॥६
इतिदेवज्ञवचनंनिशम्यवसुधाधिपः ।
हर्षपूर्णमनाःप्राहनिजस्थानगतस्तदा ॥१०
अवैक्षतेमदेवानांगुरुःसोमःसितोबुधः ।
नावेक्षतैनमादित्योनार्कसूनुर्नभूमिजः ॥११
अवैक्षतेतियत्प्रोक्तं भवद्भिर्बहुशोवचः ।
अविक्षितेतितेनास्यख्यातंनामभविष्यति ॥१२
अविक्षितःसुतस्तस्यवेदवेदाङ्गपारगः ।
अस्त्रग्राममशेषंसकरवपुत्रादथाग्रहीत् ॥१३
सरूपेणातिभिषजौदेवानांपार्थिवात्मजः ।
बुद्धयावाचस्पतिंकान्त्याशशाङ्कं तेजसारविम् ॥१४
धैर्येणाब्धिंतथोर्वीचसहिष्णुत्वेनवीर्यवान् ।
शौर्येणनसमस्तस्यकश्चिदासीन्महात्मनः ॥१५

इसलिये महाराज ! आपके पुत्र बड़े मान्य, भाग्यवान् और वैभवशाली होंगे। यह सुनकर राजा प्रसन्न होकर कहने लगे कि आपके कथनानुसार 'बृहस्पति और बुध पुत्र को अवलोकन करते है, पर रवि, मंगल, शनि की इन पर दृष्टि नहीं है।' आपने बार-बार 'अवैक्षत' शब्द कहा है, इसलिये इसका नाम अवीक्षित रख दिया जाय। मार्कण्डेय जी बोले—बड़ा होने पर राजकुमार अवीक्षित ने वेद-वेदांग की शिक्षा प्राप्त करके कण्वपुत्र से अस्त्र विद्या का पूर्ण रूप से अभ्यास किया। यह राजपुर परम रूपवान्, बुद्धिमान्, कान्तिमान् और तेजस्वी था। वह समुद्र के समान धैर्यशाली और पृथ्वी के समान सहिष्णु भी था। उस समय उसकी तुलना का कोई और व्यक्ति नहीं मिलता था ॥६-१५॥

स्वयम्वरेतजगृहेहेमधर्मातिमजावरा ।
सुदेवतनयागौरीसुभद्रावलिन सुता ॥१६
लीलावती ।ोरसुतावीरभद्रसुतानिभा ।
भीमात्मजामान्यवतीदम्भपुत्रीकुमुद्वती ॥१७
याश्चैननाभिनन्दन्तिस्वयम्वरकृतक्षरणा ।
ताश्चापिसबलाद्वीरोजग्राहनृपते सुत ॥१८
निराकृत्यनृपान्सर्वांस्तासापितृकुलानिच ।
स्वयहिवीयंमाथित्यबलवान्सबलोद्धत. ॥१९
एकदातुविशालस्यविशालाधिपते सुताम् ।
वशालिनीसमुदतोस्वयवरकृतनक्षणाम् ॥२०
परिभूयाखिलान्भूपान्स्वच्छयानकृतस्तया ।
बलाज्जग्राहनिग्रथेयथान्यावलगीवित ॥२१

धर्म की कन्या वरा सुदेव की कन्या गौरी, बलि की पुत्री सुभद्रा, वीरभद्र की निभा और–पुत्री लीलावती भीम पुत्री मान्यवती ने उन्हें स्वयवर म वरण किया था। और भी अनेक कन्याओं को जिन्होंने उनको वरण नही किया था वह शक्ति स ग्रहण करके ले आय थे। एकबार विशाल राजा की कन्या सुदती न स्वयवर म उनका वरण नही किया। इस पर उन्होंने सब राजाओं को पराजित कर उस भी अन्य कन्याओं की भाँति बल पूर्वक ग्रहण किया ॥१६–२१॥

ततस्तभूभृत सर्वेनहुतस्तेनमानिना ।
निराकृता मुनिर्विण्णा प्राचुरन्योन्यमातुरा ॥२२
क्षमताविचनामताभवस्माद्वन्शानिनाम् ।
बहूनामेववर्णानाजन्मनिम्नामहीभृताम् ॥२३
क्षमिणोय क्षतात्त्राणवध्यमानस्यदुमदै ।
करातितस्यतत्रामनृपंवान्येहिविभ्रति ॥२४
भात्मनोपिक्षतत्राणदुष्टादस्मादवुवंताम् ।
मरनाक्षत्रियकुलेजातानाक्षीदृशीमति ॥२५

उच्चार्यतेस्तुतिर्यावःसूतमागधवन्दिभिः ।
सासत्यामावृथावीराभवत्वरिविनाशनात् ॥२६
चरतांसातथैवैषाभूपाश्चारैदिगन्तरे ।
पौरुषाश्रयिणःसर्वेविशिष्टकुलसम्भवाः ॥२७
बिभेतिकोनमरणात्कोयुद्धेनविनाऽमरः ।
विचिन्त्यैतन्नहातव्यंपौरुषंशस्त्रवृत्तिभिः ॥२८
एतन्निशम्यतेभूपाविस्पष्टामर्षपूरिताः ।
ऊचुःपरस्परंसर्वेसमुत्तस्थुश्चसायुधाः ॥२९
केचिद्रथानारुरुहुःकेचिन्नागांस्तथाहयान् ।
अन्येऽमर्षपराधीनास्तमुपेताःपदातयः ॥३०

इस पर वे राजा बारम्बार पराजय होने से दुखी होकर परस्पर कहने लगे कि इतने राजाओं के इस स्थान पर एकत्रित होने पर भी इस अकेले ने बलपूर्वक इस कन्या को ग्रहण कर लिया और तुम सब देखते रह गये यह धिक्कारने योग्य बात है । दुर्मद मनुष्य के आघात करने पर भी अन्य की रक्षा-रूप कर्त्तव्य-पालन में तत्पर रहता है वही वास्तविक क्षत्रिय है अन्यथा क्षत्रिय का नाम धारण करना व्यर्थ है । २२-२४॥ पर तुमको दूसरे की क्या अपनी रक्षा का उद्योग भी नहीं कर पाते । क्षत्रिय कहलाने पर भी यह तुम्हारी कैसी बुद्धि है ? सूत, मागध,वन्दीगण तुम्हारी शूर वीरता की जो प्रशंसा करते हैं उसे असत्य सिद्ध मत करो वरन् शत्रु का पराभव करके उसे यथार्थ सिद्ध करके दिखलाओ । तुम संसार में 'भूप' के नाम से प्रसिद्ध हो इसे वृथा मत होने दो । तुम सबने श्रेष्ठ कुलों में जन्म लिया है और तुम सभी वीरता और पराक्रम में प्रसिद्ध हो ।।२५–२७।। वीर पुरुष मृत्यु का भय कब करते हैं और युद्ध से विमुख होने वाला कौन अमर होता है ? इन सब बातों पर विचार कर क्षत्रिय नाम-धारी को कभी पौरुष का त्याग नहीं करना चाहिये । ऐसे उत्तेजना पूर्ण वचनों को सुनकर राजागण क्रोध से भर गये और आपस में उत्साहपूर्ण वार्तालाप करके हथियार लेकर तैयार होगये । कोई रथ पर, कोई हाथी पर, कोई घोड़े पर सवार होगये और कोई पैदल ही अवीक्षित के समीप आये ।।२८-३०।।

११०—अवीक्षित चरित्र (२)

इतिसंग्राममज्जास्ते भूपाभूपसुतस्तथा ।
निराकृत्वा सुवहुशस्तत्कालस्याप्यविक्षिता ॥१
ततोवभूवसंग्रामस्तस्यतं सहदारुण ।
एकस्यवहुभिर्मूर्पभूपपुत्रवरैमृ र्ने ॥२
तेऽसिशक्तिगदाबाणपाणायस्तमुदुर्मता ।
अभिघ्नन्तोयुयुधिरेतं समस्तंरसावपि ॥३
सतान्छरशतंस्त्रं विभेदनृपनन्दन ।
छिन्नास्त्रोवल्नवान्बाणैस्तेचतविभिदु सितं ॥४
यस्यशिश्चिच्छिदेवाहुमन्यस्यचशिरोधराम् ।
हृदिविव्याधचंवान्यवक्षस्यताडयत् ॥५
परश्चिच्छेदनरिणस्तुरगस्यतथाशिर ।
रथस्येपान्तथंवाश्वानपस्यान्यस्यसारथिम् ॥६
बाणानापततश्चकेद्विधावाणांस्तथाद्विषाम् ।
चिच्छेदान्यस्यास्त्रं चधनुरन्यस्यलाघवात् ॥७
तनुत्रे रहुनेतेननना शान्योनृपात्मज ।
अविक्षिताहतश्चान्य पदाति प्रजहीरणम् ॥८

मार्कण्डेय जी कहने लगे—उस अवसर पर अवीक्षित द्वारा पराजित हुए व कितने ही राजा एक साथ मिल कर भयकर संग्राम करने लगे। वे खड्ग, शक्ति, गदा, बाण आदि से आघात करने लगे और अवीक्षित भी अकेला ही उनके साथ युद्ध करने लगा। प्रसिद्धवीर नन्दन ने सैकड़ा बाणो से अवीक्षित पर आघात किया और उसने तीक्ष्ण बाणो से उनको विद्ध दिया। अवीक्षित न किसी की भुजा, किसी का मस्तक काट दिया और किसी का हृदय छेदकर छाती पर आघात किया। किसी के हाथी की सूँड काट डाली, किसी का घोड़ा मार दिया किसी के रथ के सारथी को मार दिया। उन्होंने शत्रुओ के

शत-शत वाणों को बीच में ही दो खण्ड करके गिरादिया, किसी के खड्ग और किसी का धनुष काट डाला कोई वीर कवच के कट जाने से मारा गया और कोई पैदल युद्ध करने वाला घायल होकर युद्ध क्षेत्र से हट गया ॥१-८॥

इत्याकुलीकृतेतस्मिन्समग्रे राजमण्डले ।
तस्थुःसप्तशतंवीरामरणेकृतनिश्चयाः ॥९
आभिजात्यवयःशौर्य्यलज्जाभारसमन्विताः ।
निर्जितेसकलेसैन्येपलायनपरायणे ॥१०
तैःसमेत्यमहीपालैःसतुपुत्रोमहीभृतः ।
युयुधेधर्मयुद्धे नतेनतंनातिकोपितः ॥११
विच्छिन्नयन्त्रकवचान्सतानपिमहाबलः ।
कर्त्तुं व्यवस्थितस्तेचततःक्रुद्धा महामुने ॥१२
धर्ममुत्सृज्ययुयुधुर्युध्यमानेनधर्मतः ।
नरेन्द्रपुत्राःप्रस्वेदजलविलन्नाननाःसमम् ॥१३
विव्याधकश्चिद्वाणौघैःकश्चिच्छेदकार्मुकम् ।
ध्वजमस्यापरोवाणैश्छित्त्वाभूमावपातयत् ॥१४
जघ्नुरन्येतथेवाश्वान्बभञ्जुश्चापरेरथम् ।
गदापातेनाथचान्येवाणैःपृष्ठमताडयन् ॥१५

जब अवीक्षित ने इस तरह समस्त राजाओं को व्याकुल कर दिया और उनकी सेना भाग ने लगी तो सात सौ वीर अपने वंश, कीर्ति और वीरता का विचार करके मरने का भय त्याग कर युद्ध में तत्पर हुए। अवीक्षित भी अत्यन्त क्रोधित हो उनके साथ धर्म-युद्ध करने लगा। जब वह उनके अस्त्रों और कवच आदि काटने लगा, तब, वे पसीने से लथपथ राजा गण धर्म विरुद्ध साथ मिलकर उन पर अस्त्रों का आघात करने लगे। किसी ने शरीर में वाण मारे, किसी ने धनुष को तोड दिया, किसी ने ध्वजा को काट डाला, किसी ने घोड़ों को मार दिया, किसी के रथ को तोड़ा किसी ने पीछे से शस्त्र का आघात किया ॥९-१५॥

छिन्नेधनुषिसक्रोध सतदानृपते सुत ।
जग्राहासितथाचर्मतदप्यन्योन्यपातयत् ॥१६
छिन्नासिचर्माजग्राहसगदागदिनावर. ।
तामप्यन्य क्षुरप्रेणचिच्छेदस्तहस्तवत् ॥१७
अन्येशरसहस्रेणशतेनान्येनराधिपा ।
विव्यधु कोष्टनीकृत्यधर्मयुद्धपराङ्मुखा ॥१८
सोऽप्यन्तर पपातोर्व्यमिवाबहुभिरर्दित ।
राजपुत्रामहाभागानवबन्धुस्तेचततत ॥१९
तमधर्मेणतेसर्वेगृहीत्वानृपते सुतम् ।
विशालेनसमराजानंदिशविविशु पुरम् ॥२०
दृष्ट्वा प्रमुदितावद्ध समादायनृपात्मजम् ।
स्वयवराचमारन्यान्यस्तावनतत पुर ॥२१

धनुष के कट जाने पर क्रोधित होकर अवीक्षित ढाल तलवार लेकर युद्ध करने लगा पर एक अन्य वीर ने उसे भी काट गिराया। इस पर गदा लेकर संग्राम में प्रवृत्त हुआ तो एक अन्य ने गदा को भी काट दिया। इसके पश्चात् उन धर्म विमुख राजाओं ने उस शस्त्रहीन को घेर कर हजारों और सैकड़ों बाण मारे। उनसे विद्ध होकर जब वह व्याकुल होकर गिर गया तब सब ने मिल कर उसे बांध लिया और उसे लेकर विशाल राजा के नगर वैदिशपुर में उपस्थित हुए और बन्धनयुक्त राजकुमार अवीक्षित को विशाल नृप के सामने खड़ा किया ॥१६–२१॥

पुन पुनश्चापश्चोक्तातयापिचपुरोधसा ।
आलम्बयना मतिवरायस्तोगजसुराचते ॥२२
यदाछामानितीश्चिन्नजग्राहनरमुने ।
ततापप्रच्छद वन विवाहार्थनरेश्वर ॥२३
विशिष्टनमेनम्याविवाहायदिनवद ।
यदि नदीदृक्सगातयुद्ध विख्यापपादवम् ॥२४

इतिपृष्टोनरेन्द्रेणसदैवज्ञोविमृश्यतत् ।
दुर्मनाःप्राहविज्ञातपरमार्थोमहीपतिम् ॥२५
भविष्यन्त्यपराण्यहदिनानिपृथिवीपते ।
प्रशस्तलग्नयुक्तानिशोभनान्यचिरेणवै ॥२६॥
करिष्यसिविवाहंत्वंतेषुप्राप्तेषुमानद ।
अलमेतेनयत्रायमहाविघ्नउपस्थितः ॥२७

तत्पश्चात् राजा और पुरोहितों ने उस स्वयंवरा कन्या से कहा विवाह इन राजाओं में से जिसे उचित समझे वरण करे पर उसने किसी को भी वर रूप में स्वीकार नहीं किया । तब राजा ने इस सम्बन्ध में ज्योतिषियों की सम्मति मांगी । उन्होंने कहा कि आज तो स्वयंवर पर यह विघ्नकारी युद्ध उपस्थित होगया, इससे अब आप विवाह का कोई अन्य शुभ मुहूर्त वतलावें । राजा के इस प्रकार पूछने पर ज्योतिषी उस सम्बन्ध में विचार करने लगे और कुछ देर बाद उन्होंने कहा—हे महाराज आपकी कन्या के विवाह के उपयुक्त अच्छी लग्न वाला और शुभ दिन शीघ्र ही आयेगा । उसी दिन आप विवाह की समुचित व्यवस्था करें आज तो इसमें जो यह महाविघ्न पड़ गया इसलिये इस कार्य को स्थगित कर देना ही उचित है ॥२२-२७॥

१११—अवीक्षित चरित्र (३)

ततःशुश्रावतंबद्धं तनयंसकरन्धमः ।
तस्यपत्नीतथावीराअन्येचापिमहीभृतः ॥१
तमधर्मेणतनयंबद्धंश्रुत्वामहीपतिः ।
सामन्तैः पृथिवीपालैश्चिरन्दध्यौमहामुने । २
केचिद्रचुर्महीपालावध्याःसर्वेमहीभृतः ।
यैरेकःसंयुगेबद्धःसमस्तैस्तैरधर्मतः ॥३
युज्यतांवाहिनीशीघ्रमूचुरन्येकिमास्यते ।
विशालोवध्यतांदुष्टस्तत्रयेऽन्येसमागताः ॥४

अन्येनयोद्धुर्धर्मोऽत्यक्त पूर्वंमहीक्षिता ।
अन्यायेनश्लाघ्य नगृहीतातमवाञ्छती ॥५
स्वयंवरेऽत्रशेषेपुतेनराजसुतास्तदा ।
विनीकृतास्तत सर्वेमभित्यसवशीकृत ॥६

मार्कण्डेयजी कहने लगे—जब राजकुमार अवीक्षित के बाँध लिये जाने का समाचार महाराज करन्धम और राजमहिषी वीरा को मिला तो वे बहुत खिन्न होकर अपने सामन्तों और मन्त्रियों से सलाह करने लगे। किसी ने कहा कि जिन बहुत से राजाओं ने मिलकर अकेले वीर को अधर्म युद्ध में पराजित करके बाँध लिया है वे सब मार देने योग्य हैं। दूसरे ने सम्मति दी कि अब निश्चिन्त क्यों बैठे हो, अब तुरन्त विशाल राज और वहाँ एकत्रित अन्य राजाओं पर आक्रमण करके उन सब को बाँध लेना चाहिए। किसी किसी ने यह भी कहा कि इस अवसर पर राजकुमार ने भी वरण करने को अनिच्छुक राजकन्या को बलपूर्वक ग्रहण करके धर्म विरुद्ध कार्य किया है। उन्होंने पहले भी कई स्वयंवरों में ऐसा ही कार्य करके अन्य राजपुत्रों से शत्रुता मोल ले ली है और इसी कारण उन सब ने मिल कर उन्हें पराजित किया है ॥१–६॥

तेषामेतद्वच श्रुत्वावीरावीरप्रजावती।
धीरगोमसमुद्भूतावीरपत्नीप्रहर्षिता ॥७
उवाचभर्तु प्रत्यक्षमन्येषानमहीक्षिताम् ।
भद्र कृतमद्रभुजाममपुत्रेणपार्थिवा ॥८
गृहीतायद्बलात्कन्याजित्वासर्वमहीक्षित ।
तदर्थयुध्यमानोऽयबद्धएकोनधर्मतः ॥९
तदप्यस्मत्सुतस्याजोमन्येनापचयदप्रदम् ।
एतदवज्ञिपौरुष्ययदमर्षवशान्नर ॥१०
नीतिनगणयत्येवजिघांसुरिवकेसरी ।
स्वयंवरायविन्यस्ताममपुत्रेणकन्यका ॥११
बह्वीयोगृहीताभूपानापश्यतामतिमानिनाम् ।
यदशाभियकुलेजन्मकन्याचाहीनसेविता ॥१२

वलादेवसमादत्तेक्षत्रियोवलिनांपुरः ।
लोहशृङ्खलबद्धावानवशंयान्तिकातराः ॥१३
प्रसह्यकारिणोयान्तिराजानोधर्मशालिनः ।
तदलन्दौर्मनस्येनश्लाघ्यमेवास्यवन्धनम् ॥१४

इस प्रकार की बात सुन कर अवीक्षित की माता वीर वशीय वीरा देवी बहुत प्रसन्न हो कर महाराज करन्धम तथा अन्य सामन्तों के सामने कहने लगी कि मेरे पुत्र ने यदि सब राजाओं को हरा कर कन्या को बल पूर्वक ग्रहण किया तो यह कार्य प्रशंसा योग्य ही है। इसके फलस्वरूप वह अधर्मयुद्ध में बाँध लिया गया तो इसमें भी मेरी सम्मति में उसकी कोई हानि नहीं हुई। पुरुषार्थी का तो यही कर्त्तव्य है कि वह अधर्म से मार ने की इच्छा रखने वालों से भी भयभीत न हो और सिंह के समान सब का मुकाबला करता रहे। अगर मेरे पुत्र ने अनेक स्वयंवरों में सम्मालित राजागणों के सम्मुख कन्याओं को बलपूर्वक ग्रहण किया तो इसे भी मैं क्षत्रियोचित कार्य ही मानती हूं। तुच्छ व्यक्तियों के समान किसी वस्तु को माँगने की अपेक्षा उसे और शक्ति प्रकट करके ग्रहण करना श्लाघनीय ही है। क्षत्रियों की शोभा तो इसी में है कि वह बलवानों के सम्मुख भी अपना पराक्रम दिखलाकर बल-पूर्वक ग्रहण करे इस प्रकार के कार्य में अगर जंजीर से बाँध भी लिया जाय, तो भी वह भयभीत होकर किसी की वश्यता स्वीकार नहीं करता। यदि मनुष्य निडर हो कर पूर्ण दिखलाने के बाद बन्धन ग्रस्त भी हो जाय तो मैं इसमें कोई बुराई नहीं समझती, वरन् मैं तो ऐसी पराजय को भी प्रशंसा का कारण मानती हूँ ॥७–१४॥

युष्माकमपियेपूर्वंकृत्वारीणांनिपातनम् ।
दृष्ट्वैवपृथिवीशानांपृथ्वीपुत्रादिकंवसु ॥१५
भार्य्यावीर्यनिमित्तानिततोयातातिगौरवम् ॥
तस्वर्य्यतांरणायाशुस्यन्दनान्यधिरोहत ॥१६
सज्जीकुरुतनागाश्वमचिरेणससारथिम् ।
मन्यध्वंकिमहीपालैर्बहुभिःसहविग्रहम् ॥१७

प्रभूताएवतोपायस्तु स्याल्पगुणोक्रिया ।
कस्यनाल्पेपुसामर्थ्यनरेन्द्रादिपुजायते ॥१८
येभ्योनविद्यतेभीतिर्विक्रान्तस्यापिशत्रुषु ।
वधरोचतेनिशूर सतमासीवदिवाकर ॥१९
इत्युद्धपितोराजाऽनयापत्याकरन्धम ।
तथारसबलोद्योगहन्तु पुत्राहितान्मुने ॥२०
ततस्तस्यसमभूपेविशालेनचसङ्गर. ।
बभूववद्धपुत्रस्यतैरशेषैर्महामुने ॥२१

वीरा ने कहा कि आपके पूर्वजो ने भी इसी प्रकार शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर उनके राज्य, कोष और पुत्र आदि पर अधिकार किया था। राजा लोग पृथ्वी, धन, भार्या आदि समानता वालो से ही छीन कर इकट्ठी करते हैं और उनके लिये प्राणान्त सहना भी श्लाघनीय मानते हैं। इसलिये आप शीघ्र रथ, हाथी, घोडो को सजाकर युद्ध के लिये तैयार हो। वीरगण छोटे युद्ध मे भी अपनी पूरी वीरता दिखला कर गौरव प्राप्त करते हैं। तो फिर ऐसे सामान्य राजाओं पर आक्रमण करने मे आप लोगो को क्या भय हो सकता है? सूर्य जिस प्रकार समस्त दिशाओ के अन्धकार को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार जो शूरवीर हर प्रकार के शत्रु को पराजित करने के लिये तैयार रहता है, वही सच्चा बहादुर है। मार्कण्डेय जी ने कहा कि राज महिषी द्वारा इस प्रकार उत्साह और प्रेरणा दिलाये जाने पर महाराज करन्धम तुरन्त पुत्र के शत्रुओं पर आक्रमण करने को रवाना हो गये और शीघ्र ही विशाल राजा नगर के समीप पहुच कर वहाँ एकत्रित सब राजाओं से युद्ध करने लगे ॥१५-२१॥

दिनत्रयमभूद्युद्ध तेनराज्ञासमतदा ।
करन्धमेनभूपानांविदिशस्यानुवर्तताम् ॥२२
यदापराजितप्रायनतसर्वभूपमण्डलम् ।
तदाविशालोऽर्घ्यकर करन्धममुपस्थित. ॥२३

करंधमोऽपिसंप्रीत्यातेनराज्ञाभिपूजितः ।
विमुक्ते तनयेतत्रनिशांतांसुखमावसत् ॥२४
तांचकन्यामुपादायविशालंसमुपस्थितम् ।
अविक्षितप्राहविप्रर्षे विवाहार्थंपितुःपुरः ॥२५
नाहमेतांग्रहीष्यामिनचान्यांयोषितंनृप ।
परैर्यस्यानिरीक्षन्त्याःसंग्रामेऽहंपराजितः ॥२६
अन्यस्मैसंप्रयच्छेमामियञ्चान्यंवृणोतुसम् ।
अखण्डितयशोवीर्य्योयःपरैर्नापमानितः ॥२७

विशाल राजा तथा उसके साथी राजाओं से करन्धम का युद्ध तीन दिन तक चलता रहा और अन्त में वे सब पूर्णतः पराजित होगये । तब विशालराज पूजा सामग्री लेकर करन्धम के सामने उपस्थित हुए । करन्धम ने इस पर शत्रु-भाव त्याग दिया और राजा द्वारा पूजित होकर तथा पुत्र को छुड़ा कर उस दिन वहीं ठहरे । जब विशालराज अपनी कन्या का विवाह अवीक्षित से करने को प्रस्तुत हुए तो उसने इसे अस्वीकार कर दिया और पिता के सामने ही कहा कि—हे महाराज ! जिस कन्या के सामने मैं शत्रुओं से परास्त होगया उसको तो कभी ग्रहण कर ही नहीं सकता, साथ ही अब किसी अन्य कन्या से भी विवाह नहीं करूँगा । आप इसका विवाह किसी ऐसे वीर-से कीजिये जो कभी शत्रुओं से पराजित न हुआ हो और जिसका यश अखंडित बना हो ॥२२–२७॥

परैःपराजितोऽहंयत्कातरेयंयथाऽबला ।
किमत्रमानुषत्वंमेनैतस्याममचान्तरम् ॥२८
स्वतन्त्रतामनुष्याणांपरतन्त्रासदाऽबला ।
नरोऽपिपरतन्त्रोयस्तस्यकीदृङ्मनुष्यता ॥२९
सोऽहमस्यामुखभूयोदृष्टंदर्शयिताकथम् ।
योऽहमस्याःपुरोभूमौपरैर्भूपैःखिलीकृतः ॥३०
इत्युक्ते तेनतनयामुवाचजगतीपतिः ।
शृणुतेवचनंवत्सेवदतोऽस्यमहात्मनः ॥३१

वयवासंप्रयच्छामोयस्मिस्तस्मिस्तवाहृति ।
एतयोंह्यकमातिष्ठमार्गयो रुचिरानने ॥३२
पराजितोऽप्यवहुभिर्नसम्यवसम्यगाचरन् ।
सग्रामेत्तद्यशोवीर्य्यंहानिकारिनपार्थिव ॥३३
एकोवहूनांयुद्धायगजानामिवकेसरी ।
यत्सस्थित परशौर्य्यतेनास्यप्रकटीकृतम् ॥३४
नकेवलमयतस्थौयुद्धे तेऽप्यखिलाजिताः ।
वहुशोऽनेनयत्नेनविक्रमोऽपिप्रकाशितः ॥३५
शौर्यंविक्रममयुक्तमिमसर्वमहीक्षित. ।
धर्म्मयुद्धमधर्मेणजितवन्तोऽवनात्रपा ॥३६

अवीक्षित ने कहा—हे राजन् ! अब मैं इसके सामने एवं कातर अबला के सामने शत्रुओं द्वारा बन्धन ग्रस्त होगया तो मेरा पुरुषत्व ही क्या रहा ? अतएव अब मुझ में और इस कन्या में कोई भेद नहीं रहा । पुरुष का मुख्य लक्षण तो स्वाधीन होना है और नारियाँ सर्दव पराधीन मानी गई हैं । इसलिये पुरुष होकर जो पराधीन होगया उसका पौरुष कहाँ रहा ? जिसके सामने मैं समस्त राजाओं के पराजित होगया हूँ उसको अपना मुँह किस साहस से दिखाऊँगा ? महीपाल विशाल ने अवीक्षित के वचन सुनकर कन्या से कहा कि तुमने राजकुमार की बात सुनली । अब तुम्हारी इच्छा हो तो किसी भी राजा को स्वेच्छा पूर्वक वरण करलो अन्यथा पिता के कर्तव्य का ध्यान रखता हुआ मैं जिसके योग्य समझूँ उसके साथ तुम्हारा पाणिग्रहण संस्कार कर दूँ । इन दोनों बातों में से तुमको जो स्वीकार हो वह कहो ॥२८-३२॥ कन्या ने कहा—पिताजी ! इस राजकुमार ने बहुत से वीरों के साथ संग्राम किया और फिर भी पूर्णतः पराजित नहीं हो सके । इन्होंने जो अकेले ही इतने राजाओं के साथ घोर युद्ध किया इसम ही इनका सर्वोत्कृष्ट शौर्य प्रकट होगया । केवल युद्ध में निर्भीक भाव से स्थित ही नहीं रहे वरन् समस्त राजाओं को इन्होंने अनेक बार हराया भी । फिर इन धर्म युद्ध के नियम का पालन करने वाले को अनेक

राजाओं ने मिलकर अधर्म युद्ध में हराया, इसमें मुझे लज्जा की कोई बात नहीं जान पड़ती ॥३३-३६॥

नचाभिरूपमात्रेऽहंलोभमस्यगतापितः ।
शौर्य्यविक्रमधैर्य्याणिहरन्त्यस्यमनोमम ॥३७
तत्किमुक्तेनबहुनायाच्यतांमत्कृतेनृपः ।
त्वयामहानुभावोऽयंनान्योमेभवितापतिः ॥३८
राजपुत्रसुताप्राहममैतच्छोभनंवचः ।
एवंचैवत्वयातुल्यःकुमारोनमहीतले ॥३९
अविसंवादितेशौर्य्यमतीवचपराक्रमः ।
पावयास्मत्कुलंवीरदुहितुर्मेपरिग्रहात् ॥४०
नाहमेतांग्रहीष्यामिनचान्यांयोषितंनृप ।
आत्मन्येवहिमेबुद्धिःस्त्रीमयीमनुजेश्वर ॥४१
ततःकरन्धमःप्राहपुत्रेयंगृह्यतांत्वया ।
विशालतनयासुभ्रूस्त्वयिहार्दवतीदृढम् ॥४२
नाज्ञाभङ्गःकदाचित्तेकृतःपूर्वमयाप्रभो ।
तथाऽऽज्ञापयमांतातयथाज्ञांकरवाणिते ॥४३

कन्या ने कहा—मैं इनके रूप को देखकर ही विवाहोद्यत नहीं हुई हूँ वरन् इनके शौर्य तथा पराक्रम ने मेरे मन में घर कर लिया है। इसलिये पिताजी ! अब मैं निश्चय कर चुकी हूँ कि इनके अतिरिक्त मैं कभी अन्य किसी को वरण नहीं करूँगी। आप इनको ही मेरे लिये समझाइये। इस पर राजा विशाल ने अवीक्षित से कहा—राजकुमार ! मेरी कन्या ने जो कुछ कहा वह बिल्कुल ठीक ही है। तुम्हारे समान राजकुमार मुझे कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। तुम्हारी वीरता में कुछ भी सन्देह नहीं और तुम्हारा पराक्रम भी प्रत्यक्ष ही है, इसलिये तुम्हारे द्वारा मेरी कन्या का पाणिग्रहण किये जाने से मेरा कुल पवित्र होगा। यह सुनकर अवीक्षित ने कहा—"राजन् ! अब मैं इसे अथवा किसी भी अन्य स्त्री को ग्रहण नहीं करूँगा क्योंकि मैं अब अपने को स्त्री ही समझता हूं।" तब महाराज करन्धम ने भी अपने पुत्र को समझाया कि तुम

इस कन्या का पाणिग्रहण करो, क्योंकि इसको तुम्हारे प्रति हार्दिक अनुराग उत्पन्न होगया है। अवीक्षित ने उत्तर दिया—पिताजी ! मैंने आज तक कभी आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। इसलिये आप मुझे ऐसी कोई आज्ञा न दें जिसे पालन करने में समर्थ न होऊँ ॥३७-४३॥

अत्यन्तनिश्चितमतौतस्मिन्राजसुतेसुताम् ।
तामुवाचविशालोऽपिव्याकुलीकृतमानस ॥४४
निवर्त्यतामन पुत्रिएतस्मात्त्वप्रयोजनात् ।
अन्यवरयभर्तारिसन्त्यनकेनृपात्मजा ॥४५
वरवृणोष्वहतातममपयदिनच्छति ।
तपसाऽन्योनमेभर्ताजन्मन्यस्मिन्भविष्यति ॥४६
तत करन्धमोराजाविशालेनसमम्मुदा ।
स्थित्वादिनत्रयतत्रनिजमभ्यागयोपुरम् ॥४७
अविक्षितोपितनैवपित्रान्यैश्चनराधिपै ।
निदर्शनै पुरावृत्तै सान्त्वनाऽभ्यागमत्पुरम् ॥४८

जब विशाल राजा ने देखा कि अवीक्षित ने विवाह न करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है तो उसने अपनी पुत्री से कहा कि जब इस राजपुत्र की ऐसी भावना होगई है तो अब तू इस विचार को त्याग कर किसी अन्य राजपुत्र का वरण करले। कन्या ने उत्तर दिया—पिताजी ! यदि ये राजपुत्र विवाहार्थी नहीं होते तो मेरा निश्चय भी यही है कि इस जन्म में मेरा पति 'तपस्या' के अतिरिक्त और कोई न होगा। मार्कण्डेय जी कहने लगे—राजा करन्धम तीन दिन तक विशाल राजा के यहाँ अतिथि सत्कार ग्रहण करके अपनी राजधानी को वापस चले गये और उनके तथा अन्य सामन्तों के समझाने से अवीक्षित भी उनके साथ चले गये ॥४४-४८॥

साऽपिकन्यानतगत्वानिसृष्टानिजबान्धवै ।
तपस्तप्तनिराहारावैराग्यपरमास्थिता ॥४९
निराहारायदामासुमासत्रयमवस्थिता ।
सप्राप्यपरमामार्तिकृशाधमनिसन्तता ॥५०

मन्दोत्साहातितन्वङ्गीमुमूर्षुं रपिबालिका ।
देहत्यागायसाचक्रे तदाबुद्धिनृपात्मजा ॥५१
आत्मत्यागायतांज्ञात्वाकृतबुद्धिसुरास्ततः ।
समेत्यप्रेषयामासुर्देवदूतन्तदन्तिकम् ॥५२
समुपेत्यसतांप्राहदूतोऽहंपार्थिवात्मजे ।
प्रेषितस्त्रिदशैस्त्वयंयत्कार्यंतन्निशामय ॥५३
नभवत्यापरित्याज्यशरीरमतिदुर्लभम् ।
त्वंभविष्यसिकल्याणिजननीचक्रवर्तिनः ॥५४
पुत्रेणत्वमहाभागेभोक्तव्यानिहतारिणा ।
अव्याहताज्ञं नचिरंसप्तद्वीपवतीमही ॥५५
हन्तव्यस्तेनतरुजिद् वानांपुरतोरिपुः ।
अय शंकुस्तथाक्रूरोधर्मेस्थाप्यास्ततःप्रजाः ॥५६
प रपालनीयमखिलंचातुर्वर्ण्यस्वधर्मतः ।
हन्तव्यादस्यवोम्लेच्छायेचान्येदुष्टचेष्टिताः ॥५७
यष्टव्यंविविधैर्यज्ञैःसमाप्तवरदक्षिणैः ।
वाजिमेधादिभिर्भद्रे षट्सहस्रं असंख्यया ॥५८

उधर वह विशाल राजा की कन्या भी परिवार वालों से विदा ले वन में निवास करती हुई बड़े संयम-नियम के साथ तपस्या करने लगी। इस प्रकार तीन महीने तक निराहार रहने से वह अत्यन्त दुर्बल होगई और उसके शरीर की नसें दिखलाई पड़ने लगीं। अपने शरीर की ऐसी दशा देखकर उस कन्या ने निराश हो प्राण त्याग का निश्चय किया। जब देवताओं ने उसको ऐसा कार्य करते देखा तो उन्होंने एक देवदूत उसके पास भेजा, जिसने उस तपोवन में आकर कहा—हे राजकुमारी! मैं देवताओं का दूत हूँ। उन्होंने कहलाया है कि यह दुर्लभ शरीर सहज में नहीं मिलता तुम प्राण त्याग मत करो, तुम आगे चलकर एक चक्रवर्ती राजा की जननी बनोगी। हे महाभागे! तुम्हारा पुत्र अपने बाहुबल से समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके अनेक वर्षों तक समस्त पृथ्वी का अधीश्वर बना रहेगा। वह देवगणों के शत्रु तरुजित् और

अप शत्रु को भी मारकर उनका हितकारी होगा। वह प्रजा को धर्माचरण के लिए प्रेरित करेगा, चातुर्वर्ण्य धर्म को प्रतिष्ठित करेगा और म्लेच्छ, दस्यु आदि दुष्टों को नष्ट करके प्रजा को सुखी करेगा। वह बड़ी दक्षिणा वाले अश्वमेध और अन्य प्रकार के छः हजार यज्ञ करेगा ॥४६-५८॥

तद्दृष्ट्वासाऽस्त्रीरत्नस्यदिव्यस्रगनुलेपनम् ।
देवदूतमुवाचेदराजपुत्रीततोमृदु ॥५९
सत्यत्वमागत स्वर्गाद्देवदूतोनसंशय ।
किन्तुभर्त्राविनापुत्र सकथंमेभविष्यति ॥६०
अविक्षितमृतेभर्त्तामेमनान्योऽत्रजन्मनि ।
भवितेतिप्रतिज्ञातमयैतत्सन्निधौपितुः ॥६१
सचनेच्छतिमाप्रोक्तोमत्पित्राजनकेनच ।
वरन्यमेनाथसम्यग्याचितश्चमयातथा ॥६२
विमनेनमहाभागेवहुनोक्तेननेमुत ।
समुत्पत्स्यतिमात्याक्षीस्त्वमात्मानमधर्मतः ॥६३
अत्रैववाननेतिष्ठनतु क्षीणाऽस्वपोपय ।
तव प्रभावादेतत्तमर्वमाशुभविष्यति ॥६३
इत्युक्त्वात्वेदूतोऽस्मीयथागनमगच्छत ।
चपागानुदिनमुभ्र माल्याऽत्मनमनुपोपयम् ॥६४

मार्कण्डेय जी कहने लगे—वह राज कन्या उस दिव्य चिह्नों से युक्त देवदूत को आकाश में देखकर मीठा वाणी से कहने लगी—आप स्वर्ग के देवदूत हैं और इस कारण आपकी बातें असत्य नहीं हो सकतीं पर पति के बिना मेरे पुत्र किस प्रकार होगा ? मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि अवीक्षित के अतिरिक्त मैं किसी और को वरण नहीं करूँगी और उन्होंने मेरे पिता, अपने पिता तथा मेरे अनुरोध को भी त्याग अस्वीकार करके विवाह न करने का दृढ़ निश्चय प्रकट किया है। देवदूत ने कहा—देवगण का कथन अन्यथा नहीं हो सकता, निःसन्देह तुमको पुत्र उत्पन्न होगा। इसलिये तुम इस आत्म-हत्या रूपी पाप के विचार को त्याग कर इस वन में रहकर ही अपनी देह की रक्षा करो। तपस्या

के प्रभाव से तुम्हारे सभी मनोरथ अवश्य पूर्ण होंगे । इस प्रकार विशाल राजा की कन्या को समझा कर देवदूत अपने स्थान को चला गया और वह भी आहार ग्रहण करके शरीर का पोषण करने लगी ॥५९–६५॥

११२—अवीक्षित चरित्र (४)

अथसाऽविक्षितोमातावीरावीरप्रजावती ।
पुण्येऽह्निसमाहूयप्राहपुत्रमविक्षितम् ॥१
पुत्राहमभ्यनुज्ञातातत्पित्रामहात्मना ।
उपवासंकरिष्यामिदुष्करोऽयंकिमिच्छकः ॥२
सचायत्तस्तवपितुस्त्वयासाध्योमयापिच ।
प्रतिज्ञातेत्वयापुत्रततस्तत्रयताम्यहम् ॥३
द्रव्यस्यार्द्धंमहाकोशात्तवदास्याम्यहंपितुः ।
धनतेपितुरायत्तमनुज्ञाताऽस्मितेनच ॥४
क्लेशसाध्योमदायत्तःसहिश्रेयोभविष्यति ।
साध्योभवेद्वायदितेकश्चिद्बलपराक्रमैः ॥५
सतेऽसाध्योह्यन्यथावादुःखसाध्योभविष्यति ।
तत्वंप्रतिज्ञांकुरुषेयदिपुत्रात्रचैवते ।
तवैतदहमावाप्स्येकथ्यतांयन्मतंतव ॥६

मार्कण्डेय जी कहने लगे—किसी समय अवीक्षित की माता वीरादेवी ने अपने पुत्र को बुला कर कहा—बेटा ! मैं 'किमिच्छिक' नाम का दुष्कर व्रत करना चाहती हूं और तुम्हारे पिता ने उसकी आज्ञा देदी है । यह व्रत तुम्हारे पिता, मेरे और तुम्हारे सहयोग से पूर्ण हो सकता है, इसलिये जब तुम उसकी प्रतिज्ञा कर लोगे तभी मैं उसे आरम्भ करूँगी । इस व्रत में मुझे राजकोष का आधा धन दान करना है और इसके लिये तुम्हारे पिता ने स्वीकृति देदी है । शरीर के कष्ट का सहन करना मेरा काम है, उसे मैं भली प्रकार सम्पन्न करूँगी

और बल तथा पराक्रम से होने वाला जितना कार्य है वह तुम्हारे अधीन है। यह कार्य सुसाध्य, दुस्साध्य और असाध्य भी हो सकता। इसलिये तुम समस्त कार्यों को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करो तो मैं इस व्रत को आरम्भ करूँ। इसलिये तुम्हारा जैसा विचार हो वह स्पष्ट कहो ॥१-६॥

वित्तमेषु पितुरायत्तमस्वामित्वमतनत्र वै ।
यन्मच्छरीरनिष्पाद्यं तत्करिष्ये त्वयोदितम् ॥७
किमिच्छकव्रतमातर्निश्चिन्ताभव निर्व्यथा ।
राज्ञा पित्राऽप्यनुज्ञातं यदि वित्तेश्वरेण मे ॥८
ततः सा राजमहिषी तद्व्रतमुपोषिता ।
यथोक्तं साऽकरोत्पूजां राजराजस्य संयता ॥९
निधीनामप्यशेषाणां निधिपालगणस्य च ।
लक्ष्म्याश्च परया भक्त्या यतवाक्कायमानसा ॥१०
विविक्ते तु गृहस्थोऽयमथ राजाऽवरन्धम ।
आसीनं उक्तं मन्त्रिवर्गैर्नीतिशास्त्रविशारदैः ॥११
राजन्यस्य परिणामं नवैनं छद्मनामहीम् ।
एकस्तेन नयोऽविक्षित्यक्तदारपरिग्रहः ॥१२
अपुत्रस्य च ननिष्ठा यदा भूप गमिष्यति ।
तदारिपक्षपृथिवी निश्चितं न वयाप्यति ॥१३
यशाक्षयम्ने नविना पितृपिण्डादथ क्षय ।
एतन्महत् भयनियाहान्या भविष्यति ॥१४
तस्मात्कुरु तथा भूप यथा तनयः पुनः ।
पगातिमनन बुद्धि पितृणामुपकारिणीम् ॥१५

अवीक्षित ने कहा—राज्य भंडार का धन तो पिताजी का ही है, उसके लिये कुछ भी कहना नहीं है मेरे शरीर से होने वाले कार्यों के लिये मैं आपकी आज्ञा को हर तरह से पालन करने को प्रस्तुत हूं। यदि पिताजी, धन व्यय करने को प्रस्तुत हैं तो आप निश्चिन्त होकर प्रसन्नतापूर्वक 'किमिच्छक' व्रत का अनुष्ठान कीजिये। मार्कण्डेयजी कहने लगे—तत्पश्चात् राजमहिषी वीरा देवी ने

बड़े उत्साह पूर्वक उस व्रत को आरम्भ किया और उपवास रखकर काम, मन, वचन से पूर्ण संयम करते हुए शास्त्र विधि से निधि समूह, निधिपालगण और लक्ष्मी देवी का पूजन करने लगी। इस अवसर पर महाराज करन्धम अपने सुयोग्य मन्त्रियों के साथ मंत्रणागृह में बैठ कर सब व्यवस्था करते रहते थे। उस समय मंत्रियों ने राजा से कहा—हे महाराज ! राज्य का पालन करते हुए आपकी अवस्था पूर्ण हो चली है और आपके एकमात्र पुत्र ने स्त्री-सम्पर्क त्याग कर कोई सन्तान उत्पन्न नहीं की है। यदि वे आजन्म इसी प्रकार ब्रह्मचारी बने रहे तो अन्त में आपका यह राज्य शत्रुओं के अधिकार में चला जायगा। इस प्रकार आपका वंश क्षय होकर पितरों का श्राद्ध और तर्पण बन्द हो जायगा। इस प्रकार सब क्रियाओं के रुक जाने पर शत्रुओं का भय उपस्थित होगा। इसलिये जैसे भी सम्भव हो आप ऐसा उपाय कीजिये जिससे आपका पुत्र गृहस्थ आश्रम स्वीकार करके पितरों के श्राद्ध और तर्पण को स्थिर रख सके ॥७–१५॥

एतस्मिन्नन्तरेऽशब्दं शुश्रावजगतीपतिः ।
पुरोहितस्यवीरायागदतोह्यर्थिनंप्रति ॥१६
कःकिमिच्छतिदुःसाध्यंकस्यकिंसाध्यतामिति ।
करन्धमस्यमहिषीकिमिच्छिकमुपोषिता ॥१७
राजपुत्रोऽप्यविक्षित्तु श्रुत्वापौरोहितंवचः ।
प्रत्युवाचार्थिनःसर्वान्राजद्वारमुपागतान् ॥१८
मयासाध्यंशरीरेणयस्यकिञ्चिद्ब्रवीतुसः ।
ममामातामहाभागाकिमिच्छकमुपोषिता ॥१९
शृण्वन्तुमेऽर्थिनः सर्वेप्रतिज्ञातंमयातदा ।
किमिच्छयददाम्येषक्रियमाणेकिमिच्छके ॥२०
ततोराजानिशम्यैतद्वाक्यंपुत्रमुखाच्छ्रुतम् ।
तमुत्पत्याब्रवीत्पुत्रमहमर्थीप्रयच्छमे ॥२१
दातव्यंयन्मयातातभवतेतद्ब्रवीहिमाम् ।
कर्तव्यंदुष्करंवातेसाध्यंदुःसाध्यमेववा ॥२२

मार्कण्डेयजी कहने लगे—उसी समय राजा के कानों में पुरोहितों के ये शब्द आये कि "करन्धम की राजमहिषी 'किमिच्छक' व्रत करती है—तुम क्या इच्छा करते हो ? जिसका जो कठिन कार्य पूरा किया जाने को हो वह उसके सम्मुख कहो।" राजपुत्र अवीक्षित ने भी पुरोहितों के इन वचनों का सुना और तब वह भी द्वार पर आकर कहने लगे—"हे अर्थीगणो ! मेरी प्रतिज्ञा है कि मेरी भाग्यवती माता जो 'किमिच्छक' व्रत कर रही है, उसके सम्बन्ध में मैं भी प्रत्येक कार्य, जो कुछ मेरे शरीर से सम्भव है, पूरा करने को प्रस्तुत हूं। जब राजा करन्धम ने अवीक्षित को इस प्रकार कहते सुना तो उसने अवीक्षित के सामने जाकर कहा—"पुत्र ! मैं भी अर्थी हूं, मेरी अभिलाषा को भी पूर्ण करो।" अवीक्षित ने कहा—पिताजी ! मैं आपको क्या दूं ? आप जो चाहते हों उसकी आज्ञा दें वह कार्य कैसा भी दुःसाध्य या असाध्य भी क्यों न हो मैं उसे पूरा करूंगा ॥१६-२१॥

यदिसत्यप्रतिज्ञस्त्वददासिचकिमिच्छकम् ।
पौत्रस्यदर्शयमुखममोत्सङ्गगतस्यतत् ॥२३
अहन्तवैकस्तनयोब्रह्मचर्य्यंचमेनृप ।
नमेपुत्रोऽस्तिपौत्रस्त्वदर्शयामिकथमुखम् ॥२४
पापायब्रह्मचर्य्यन्तेयदिद धार्य्यतेत्वया ।
तस्मात्त्वमोचयात्मानंममपौत्रंचदर्शय ॥२५
विषमस्याग्महाराजयदन्यत्तत्समादिश ।
वैराग्येणमयात्यक्तःस्त्रीसम्भोगस्तथात्मजः ॥२६
बहुभिर्युध्यमानानादृष्टोवैवैरिणाजय ।
तत्रापियदिवैराग्यमुर्पंपितदपण्डित ॥२७
रिवानोब्रह्मनोक्तंनब्रह्मचर्य्यंपरित्यज ।
मातुस्त्वमिच्छयावक्त्रपौत्रस्यममदर्शय ॥२८

राजा ने कहा—"अगर तुमने किमिच्छक व्रत में दान करने की प्रतिज्ञा अवश्य की है तो मुझे पौत्र का मुख दिखाओ।" अवीक्षित ने उत्तर दिया—पिताजी ! आपका एकमात्र पुत्र तो मैं ही हूं और मैंने सदैव के लिये ब्रह्मचर्य

पालन का निश्चय किया है और मेरे कोई पुत्र नहीं है। इस कारण आपको पौत्र का मुख कैसे दिखा सकता हूं?" महाराज करन्धम ने कहा—तुमने जो ब्रह्मचर्य धारण किया है वह नीति विरुद्ध पाप कार्य है। इसलिये उसे त्याग कर मुझे पौत्र का मुख दिखाओ।" अवीक्षित ने कहा कि इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत का त्याग मेरे मन के बहुत विरुद्ध है। मैंने वैराग्य भावना से स्त्री-सम्पर्क का त्याग किया है, अतएव आप मुझे ऐसी आज्ञा दें जिससे मेरा व्रत खंडित न हो। राजा ने कहा—तुमने बड़ी-बड़ी सेनाओं सहित प्रबल वैरियों को हराया है, इस पर भी तुम वैराग्य धारण करते हो तो कोई तुमको बुद्धिमान् नहीं कह सकता। कुछ भी हो, इस विषय में अधिक विवाद न करके अपनी माता के व्रत का पालन करने के लिये मुझे पौत्र का मुख दिखाओ ॥२३-२८॥

यदासबहुशस्तेनप्रोक्तःपुत्रेणपार्थिवः।
नान्यत्प्रार्थयतेकिंचित्तदापुत्रोऽब्रवीत्पुनः ॥२९
दत्त्वाकिमिच्छकंतुभ्यंप्राप्तोऽहंतातसङ्कटम्।
तत्करिष्यामिनिर्लज्जोभूयोदारपरिग्रहम् ॥३०
स्त्रियाःसमक्षविजितःपतितोधरणीतले।
स्त्रीपतिर्भविताभूयस्तातैतदतिदुष्करम् ॥३१
तथापिकिंकरोम्येषसत्यपाशवशङ्गतः।
करिष्यामियथाऽऽत्थत्वंभुज्यतांनिजशासनम् ॥३२

मार्कण्डेय जी कहने लगे—यद्यपि अवीक्षित ने बार-बार अपनी कठिनाई बतलाई और राजा से कोई दूसरी बात माँग लेने को कहा—पर जब वे न माने तो उसने कहा—"पिताजी! मैं 'किमिच्छक' व्रत के लिये इच्छानुसार दान देने की प्रतिज्ञा करके सङ्कट में पड़ गया हूं इसलिए निर्लज्ज होकर फिर गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होना ही पड़ेगा। अन्यथा सच्ची बात तो यह है कि जब मैं स्त्री के सामने पराजित होकर पृथिवी में गिर गया तो अब मैं स्त्री और वह पति के समान होगी, वास्तव में यह मेरे लिये बड़ा कठिन कार्य है। तोभी जब मैं आपसे प्रतीज्ञा-बन्धन में बँध गया हूं, तो आपने जो कहा है उसे अवश्य

करूँगा। आप अब इस विषय में निश्चिन्त हो जायें और अपना राज्य-कार्य यथापूर्व करते रहें ॥२९–३२॥

११३—अवीक्षित चरित्र (५)

कदाचिद्राजपुत्रोऽसौ मृगयामचरद्वने ।
मृगान्विध्यन्वराहांश्च शार्दूलादींश्च दंष्ट्रिण ॥१
शुश्राव सहसा शब्दं त्राहि त्राहीति योषित ।
विक्रोशन्त्या सुबहुशो भयगद्गदमुच्चकै ॥२
मा भैर्मा भैरिति वदन्राजपुत्र सवेगित ।
चोदयामास तुरगं यत शब्द समागत ॥३
ततश्चमापि चुक्रोश कन्यका विजने वने ।
गृहीतादनुपुत्रेण दृढकेशेन मानिनी ॥४
करन्धमसुतस्याहं भार्य्या चाहमवीक्षित ।
हृरत्यनार्य्यो विपिने पृथिवीशस्य धीमत ॥५
यस्य सर्वे महीपालास्तथा गन्धर्वगुह्यका ।
न समर्था पुर स्थातुं तस्य भार्य्या हृतास्म्यहम् ॥६
यस्य मृत्योरिव क्रोध शक्रस्येव पराक्रम ।
करन्धमसुतस्यैपा तस्य भार्य्या हृतास्म्यहम् ॥७

मार्कण्डेय जी कहने लगे—कुछ समय पश्चात् राजकुमार अवीक्षित वन में शिकार के लिये गये थे और मृग, वराह, सिंह आदि को बाणों द्वारा मार रहे थे। अकस्मात् उन्होंने किसी उच्च स्वर से रोती हुई स्त्री का 'त्राहि-त्राहि' शब्द सुना। उसे सुनते ही अवीक्षित ने 'भय नहीं' 'भय नहीं' कहते हुये उसी ओर घोड़ा दौड़ाया। उन्होंने सुना कि दानव द्वारा ग्रस्त वह युवती कन्या कह रही है कि "मैं महाराज करन्धम के पुत्र अवीक्षित की पत्नी हूँ, यह पापी दानव मुझे बलपूर्वक पकड़ रहा है। जिनके सामने कोई भी राजा और गुह्यक, गन्धर्व

आदि देवगण भी शत्रुभाव से नहीं ठहरते हैं, मैं उनकी ही पत्नी होकर हरण की जा रही हूं। जिनके क्रोध में पड़कर कोई बचकर नहीं जा सकता और जो इन्द्रतुल्य पराक्रमी हैं, उन महाराज करन्धम के पुत्र की भार्या को यह पापी हरण कर रहा है ॥१-७॥

इत्याकर्ण्यमहीपालतनयःसशरासनो ।
चिन्तयामासकिमिदं ममभार्य्यात्रकानने ॥८
मायेयरक्षसांनूनंदुष्टानांकाननौकसाम् ।
अथवागतएवाहंसर्वं वेत्स्यामिकारणम् ॥९
त्वरितःसततोगत्वाहदर्शातिमनोरमाम् ।
कानने कन्यकामेकांसर्वालङ्कारभूषिताम् ॥१०
गृहीतांदनुपुत्रेणदृढकेशेनदंडिना ।
त्राहित्राहीतिकरुणांविक्रोशन्तींपुनःपुनः ॥११
माभैरितिसतामाहहतोऽसीतिचतंवदन् ।
शासतीमांमहींदुष्टःकोदूयेतकरंधमे ॥१२
यस्यप्रतापावनताभुविसर्वेमहीक्षितः ।
ततस्तमागतंदृष्ट्वागृहीतवरकार्मुकम् ॥१३
मांत्राहीत्याहतन्वङ्गीहृतास्म्येषेतिचासकृत् ।
राज्ञःकरन्धमस्याहंस्नुषाभार्य्याप्यविक्षितः ।
हृतास्म्येतेनदुष्टेनसनाथाऽनाथवद्वने ॥१४

मार्कण्डेयजी कहने लगे—अवीक्षित इन शब्दों को सुनकर विचार करने लगा कि इस वन में मेरी पत्नी कहाँ से आयी। हो न हो यह राक्षसों की माया है। तोभी जब आगे बढ़ कर उन्होंने देखा कि दृढकेश नामक दानव अनेक आभूषणों से युक्त एक अत्यन्त मनोहर कन्या को पकड़ रहा है और वह बार-बार 'त्राहि-त्राहि' कहकर रो रही है तो उन्होंने कन्या से कहा—'डरो मत।' फिर वे उस दानव से बोले—अब तेरी मृत्यु आ चुकी है, महाराज करन्धम के शासन-काल में कौन इस प्रकार अत्याचार कर सकता है। जिन महाराज करन्धम के सम्मुख पृथ्वी के समस्त नृपतिगण मस्तक झुकाते हैं, उनके शासन

में कोई दुष्ट जीवित नहीं रह सकता । उस समय उन प्रचण्ड धनुष धारण किये हुये राजकुमार को वहाँ आया देखकर वह कुमारी बार बार कहने लगी—'मेरी रक्षा करो—यह दुष्ट मुझे अपहरण कर रहा है । मैं करन्धम पुत्र अवीक्षित की भार्या हूँ और सनाथ होकर भी इस समय अनाथ के समान हरण की जा रही हूँ ॥८—१४॥

तातोविमम्हशेवावयमविक्षित्सतयोदितम् ।
कथमेषाहिमेभार्य्यास्नुषातातस्यवाकयम् ॥१५
अथवामोचयाम्येतातन्वीवेत्स्यामितत्पुन ।
क्षत्रियैर्धार्य्यतेशस्त्रमार्त्तानात्राणकारणात् ॥१६
तत क्रुद्धोऽब्रवीद्वीरोदानवतमुदुर्मतिम् ।
जीवन्गच्छविमुच्यैनामन्यथानभविष्यसि ॥१७
तत सताविहायोग्रं दंण्डमुत्क्षिप्यदानव. ।
तमभ्यधावत्सोऽप्येनशरवर्षैरवाकिरत ॥१८
सवार्य्यंमाणोबाणौघैर्दानवोऽतिमदान्वित. ।
राजपुत्रायचिक्षेपदण्डशङ्कुशतावृतम् ॥१९
तमापतन्तचिच्छेदशरैर्भूपसुतस्ततः ।
सोऽप्यासन्न गृहीत्वोग्रं द्रुममाजौव्यवस्थितः ॥२०
सृजत शरवर्षाणितचिक्षेपततोद्रुमम् ।
सचततिलशश्चक्रे भल्लै कामुं कमोचितै. ॥२१
ततश्चिक्षेपचशिलाराजपुत्रायदानव. ।
सापिमोघापपातोर्व्यामुज्झनातेनलाघवात् ॥२२
राजपुत्रायकुपितोयद्यच्चिक्षेपदानवः ।
तत्तच्चिच्छेदबाणौघैर्भूभृत्सूनु सलीलया ॥२३

मार्कण्डेयजी कहने लगे—राजकुमार अवीक्षित कन्या के इन वचनों को सुनकर विचार करने लगे कि यह कन्या अपने को मेरी पत्नी और महाराज करन्धम की पुत्र वधू किस प्रकार कहती है ? जो कुछ भी हो पहले इसकी रक्षा करूँ, फिर सब बात मालूम हो जायगी, क्योंकि दुःखी और अत्याचार पीड़ित

व्यक्तियों की रक्षा के लिए ही क्षत्रीगण शस्त्र धारण करते हैं। तत्पश्चात् उन्होंने अत्यन्त क्रोध पूर्वक उस दुष्ट दानव से कहा यदि तुझे अपनी जान बचानी हो तो यहाँ से शीघ्र भाग कर चला जा, अन्यथा मैं तुझे अभी यमालय पहुँचाता हूँ। राजपुत्र की बात सुनकर वह उस कन्या को छोड़ दण्ड हाथ में ले उन्हें मारने दौड़ा। अवीक्षित ने उसे बीच में ही बाणों से रोक दिया। दानव ने उन बाणों को रोक कर बड़े अहङ्कार के साथ राजपुत्र पर दण्ड को फेंक कर मारा, पर उन्होंने उसे बाणों से काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। तब दानव एक बड़ा वृक्ष उखाड़ कर मारने को चला, पर अवीक्षित ने बाणों द्वारा उसे भी खण्ड-खण्ड कर डाला। तत्पश्चात् वह बड़े-बड़े शिलाखण्ड लेकर उनके ऊपर फेंकने लगा, पर राजकुमार ने उन सबको बाणों द्वारा व्यर्थ कर दिया। उसने मारने के लिये जो कुछ चलाया उसे अवीक्षित ने सहज में काट डाला ।।१५-२३।।

ततोविच्छिन्नदंडौसाविच्छिन्नसकलायुधः ।
मुष्टिमुद्यम्यसक्रोधोराजपुत्रमधावत ।।२४
तस्यापततएवासौकरन्धमसुतःशिरः ।
छित्त्वावेतसपत्रेणपातयामासवैभुवि ।।२५
तस्मिन्विनिहतेदेवैर्दानवेदुष्टचेष्टिते ।
करन्धमसुतःसर्वैःसाधुसाध्वितिभाषितः ।।२६
वरंवृणीष्वेतितदादेवैरुक्तोनृपात्मजः ।
वव्रेपुत्रंमहावीर्य्यंपितुःप्रियचिकीर्षया ।।२७
भविष्यतिहितेपुत्रश्चक्रवर्त्तीमहाबलः ।
अस्यामेवहिकन्यायांमोक्षितायांत्वयानघ ।।२८
पित्राहंसत्यपाशेनबद्धइच्छाम्यहंसुतम् ।
राजभिर्निर्जितेनाजौत्यक्तोमेदारसंग्रहः ।।२९
साचमेयावतात्यक्ताविशालनृपतेःसुता ।
तयाचमत्कृतेत्यक्तोमामृतेनरसङ्गमः ।।३०

तत्कथंतामपास्याद्यविशालतनयामहम् ।
करिष्याम्यन्यनारीपरिग्रहम् ॥३१

इस पर वह क्रोध से भर गया और घूंसा उठा कर प्रचण्ड वेग से राजपुत्र पर झपटा पर उन्होंने एक कराल बाण ऐसा छोड़ा कि उसका मस्तक कट कर पृथ्वी पर गिर गया। उस महादुष्ट दानव को इस प्रकार मरा हुआ देख कर देवगण 'साधु-साधु' कह उसकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि तुम्हारी जो अभिलाषा हो वही वर माँगो। अवीक्षित ने अपने पिता द्वारा इच्छित मार्ग का स्मरण करके एक पराक्रमी पुत्र की प्रार्थना की। देवगण बोले—हे निष्पाप! जिस कन्या की तुमने दानव से रक्षा की है उसी के गर्भ से तुम का एक महावीर चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा। राजपुत्र ने कहा—मैं पिता के सम्मुख प्रतिज्ञा करने के कारण ही पुत्र की कामना कर रहा हूँ अन्यथा स्वयंवर के अवसर पर युद्ध में हार कर मैंने स्त्री का.विचार सर्वथा त्याग कर दिया था। अब मैंने विशाल राजा की कन्या के साथ विवाह करना अस्वीकार कर दिया था तब से उस कन्या ने भी मेरे अतिरिक्त और किसी को वरण न करने की प्रतिज्ञा करली थी। अब मैं उस कन्या को छोड़ कर अन्य नारी को किस प्रकार ग्रहण कर सकता हूँ ॥२४-३१॥

इयमेवहितेभार्य्यश्लाघ्यतेपात्वयासदा ।
विशालस्यसुतासुभ्रूस्त्वत्कृतेयाऽथितातप ॥३२
अस्यामुत्पत्स्यतवीर सप्तद्वीपप्रसाधक ।
महायज्ञसहस्राणाचक्रवर्तीसुतस्तव ॥३३
इत्युक्तार्य्ययुर्देवा करन्धमसुतद्विज ।
सोऽप्याह तां तदापत्नीकथ्यतामीरुकिमिदम् ॥३४
मांचास्मैव ययामामत्यक्ताहमव्रतायदा ।
त्यक्तबन्धुजनाऽरण्यनिर्वेदात्समुपागता ॥३५
अत्राहमनपमावीरक्षीणप्रायनसेवरम् ।
त्यक्तुरामाममन्यैत्यदेवदूनेनवारिता ॥३६

भविष्यतिचपुत्रस्तेचक्रवर्त्तीमहाबलः ।
प्रीणयिष्यतियोदेवानसुरांश्चहनिष्यति ॥३७
इतिदेवाज्ञयातेनदेवदूतेनवारिता ।
नसंत्यक्तवतीदेहंत्वत्सङ्गमनोरथा ॥३८

देवों ने कहा—"यह वही विशाल नृप की कन्या है। जिसकी तुम प्रशंसा कर रहे हो और जो तुम्हारे लिए बनवासिनी होकर तपस्या कर रही है। इसी के गर्भ से तुम को एक ऐसा पुत्र जन्म ग्रहण करेगा जो सातों द्वीपों का शासन, सहस्रों यज्ञों का करने वाला होगा।" जब देवगण यह कह कर अन्तर्धान हो गये तो राजकुमार ने पत्नी से पूछा—"तुम इस विपत्ति में किस प्रकार फंस गई" वह कहने लगी—"जब आप मेरे पिता के नगर से मुझे छोड़ कर चले आये तब मैं भी दुःखित चित्त से परिवार वालों को त्याग वन में रहने चली आई। यहाँ पर निराहार तपस्या करने से जब मैं अत्यन्त दुर्बल हो गई और निराश होकर देह त्याग का विचार करने लगी तो एक देवदूत ने आकर मुझे ऐसा कहा—"तुम्हारे गर्भ से एक महा पराक्रमी पुत्र जन्म लेगा, जो असुरों को मार कर देवताओं का कृपापात्र बनेगा, इसलिये तुम इस प्रकार आत्मघात मत करो। इस प्रकार आशान्वित हो कर मैंने जीवन त्याग करने का विचार छोड़ दिया ॥३२–३८॥

परश्वश्चमहाभागस्नातुंगङ्गांह्लदंगता ।
अवतीर्णाविकृष्टास्मिवृद्धनागेनकेनचित् ॥३९
ततोरसतलंनीतातेनतत्रचमेपुरः ।
नागाःसहस्रशस्तस्थुर्नागपत्न्यःकुमारकाः ॥४०
तुष्टुवुर्मासमभ्येत्यमामन्येऽपूजयंस्तथा ।
ययाचिरेसविनयंनागामामङ्गनास्तथा ॥४१
प्रसादंकुरुसर्वेषांत्वमस्माकंसुतस्त्वया ।
अपराधमुपेतानांसंनिवार्य्योवधोन्मुखः ॥४२
अपराधंकरिष्यन्तित्वत्पुत्रस्यानिलाशनाः ।
तन्निमित्तं निवार्योऽसौप्रसादःक्रियतामिति ॥४३

नागैश्चसमयाप्रोक्तं दिव्यं पातालमुत्तमं ।
भूषिताहंतथा पुष्पैर्गन्धवासोभिरुत्तमैः ॥४४
समानीतातथालोकमिमन्नैनानिलाशिना ।
पुरायथाकान्तिमतीपूर्ववद्रूपशालिनी ॥४५
इत्थंरूपवतीदृष्ट्वासर्वालङ्कारभूषिताम् ।
जग्राहदुष्टकेशाऽयहर्तुकाम मुदुमति ॥४६
त्वन्महाबाहुबलेनाहराजपुत्रविमोक्षिता ।
प्रसीदमहाबाहोमाप्रतीच्छत्वयाहम ।
भूलोकराजपुत्रोऽयोमास्तिसदृशत्रयोन्यहम् ॥४७

अभी दो दिन पूर्व जब मैं पिता के निकटवर्ती कुण्ड में स्नान करने गई तो एक बूढ़ा नाग मुझे खींचकर रसातल में ले गया, जब मैं वहाँ पहुँची तो हजारों नाग, नाग रमणियाँ और बालक मेरे सामने इकट्ठे हो गये और मेरी पूजा, स्तुति करके कहने लगे कि आप हमारे ऊपर कृपा करें। जिस समय हम किसी अपराध के कारण आपके पुत्र के सम्मुख दण्डनीय हों तो आप उनको रोक कर हमारी रक्षा करना। यदि वायु भक्षण करने वाले नागगण तुम्हारे कुल का कोई अपराध करें तो उस समय आप हमारी सहायिका बनें, यही प्रार्थना हम करते हैं ॥३६–४३॥ जब मैंने उनकी बात स्वीकार करली तब उन्होंने पाताल लोक के दिव्य आभूषणों, मनोहर गंध, वस्त्र, पुष्प आदि से मुझे सजाया और तत्पश्चात् मुझे पृथ्वी पर पहुँचा गये और नागों के प्रभाव से पूर्ववत् कान्ति और सौन्दर्य युक्त हो गई। आज मुझे इस प्रकार आभूषणों से विभूषित और अलंकृत देख कर यह दुष्ट पातालकेतु नामक दुष्ट दानव हरण करके लिये जा रहा था कि आप आ गये और उसके पंजे से मुझे छुड़ा लिया। आज आपके ही बाहुबल से मेरी रक्षा हो सकी है इस लिए अब आप ही मुझे ग्रहण करके कृतार्थ करें। मेरा अटल विश्वास है कि इस समय आपके सदृश गुणवान् भूमण्डल में दूसरा कोई नहीं है ॥४४–४७॥

११४—मरुत जन्म वर्णन

इतितस्यावचः श्रुत्वास्मृत्वापितृवचःशुभम् ।
किमिच्छकेप्रतिज्ञातेयदुक्तं तेनभूभृता ॥१
अस्युवाचसतांकन्यामविक्षिन्नृपतेःसुतः ।
सानुरागमनाःकन्यात्यक्तभोगास्वतत्कृते ॥
यदाहृत्यक्तवांस्तन्वीत्वामरातिपराजितः ।
विजित्यशत्रून्सप्राप्तात्वंमयात्रकरोमिकिम् ॥३
ममपाणिगृहाणत्वंरमणीयेऽत्रकानने ।
सकामायाःसकामेनसङ्गमोगुणवान्भवेत् ॥४
एवंभवतुभद्रन्तेविधिरेवात्रकारणम् ।
अन्यथाकथमन्यत्रत्वामहञ्चसमागतः ॥५

मार्कण्डेयजी ने कहा—राजकुमार अवीक्षित ने जब राजकन्या के मुख से यह सब वृत्तान्त सुना और किमिच्छक व्रत के अवसर पर पिता से की हुई प्रतिज्ञा का स्मरण किया और यह भी देखा कि विशाल राज-कन्या ने मेरे ही लिये सब भोग त्याग रखे हैं तब उसके चित्त में उस सौन्दर्यमयी के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया उसने कहा—हे सुन्दरी ! शत्रुओं से हार जाने पर ही मैंने तुम्हारा त्याग किया था और आज फिर शत्रु को जीत कर ही तुमको प्राप्त किया है, अतः अब मैं क्या करूँ ? राजकुमारी ने उत्तर दिया—इस रमणीय वनस्थली में ही आप मेरा पाणिग्रहण करें तो दो सकाम युवक युवती का यह सम्मिलन सुख शान्ति और सत्परिणाम से सिद्ध होगा । राजकुमार अवीक्षित ने कहा—ऐसा ही हो—तुम्हारा मंगल हो । इस घटना के पीछे स्पष्ट-रूप से दैव का हाथ है, अन्यथा तुम और मैं पृथक्-पृथक् स्थान में रहते हुए भी आज इस अवसर पर कैसे इकट्ठे हो सकते थे ॥१-५॥

एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोगन्धर्वतनयोमुने ।
राप्सरोभिःसहितोगन्धर्वैरपरैर्वृतः ॥६

राजपुत्रमुतेयम्मेभामिनीनाममानिनी ।
अभिशापादगस्त्यस्यविशालतनयाऽभवत् ॥७
वालभावेनयोऽगस्त्य कोपित.क्रीडमानया ।
ततस्तेनतदाशप्तामानुषीत्वभविष्यसि ॥८
प्रसादित मचास्माभिर्वालेयमविवेकिनी ।
तवापराद्धविप्रर्षेप्रसाद क्रियतामिति ॥९
प्रसाद्यमान सोऽस्माभिरिदमाहमहामुनिः ।
वालेतिमत्वाशापोऽल्पोदत्तोऽप्यानान्ययैवनत ॥१०
इतिशापा गस्त्यस्यविशालभवनेशुभा ।
जातेयमस्सुतासुभ्रू भामिनीनामनामत ॥११॥
तदस्याहस्तेप्राप्तोगृहाणेमानृपात्मजाम् ।
ममात्मजामुतस्तेऽप्रचक्रवर्तीभविष्यति ॥१२

मार्कण्डेयजी कहने लगे—जिस समय अवीक्षित और विशाल राजकन्या का यह वार्तालाप हो रहा था उसी समय तनय नामक गन्धर्व अन्य अनेक गन्धर्वों तथा अप्सराओं के साथ वहाँ आया। उसने कहा—यह कन्या वास्तव में मेरी ही है और इसका नाम मानिनी है। अगस्त्य ऋषि को इसने एक बार क्रोधित कर दिया था और तब उन्होंने शाप दिया कि तू मनुष्य योनि में जन्म ले। मैंने उनसे प्रार्थना कि यह एक अबोध—कन्या है इस के ऊपर क्रोधित होना उचित नहीं, आप इस पर कृपा करें। महामुनि अगस्त्य जी ने मेरी प्रार्थना से प्रसन्न होकर कहा कि—बालिका समझ कर ही मैंने इसे सामान्य शाप दिया है, पर अब वह सर्वथा मिट नहीं सकता मेरी प्रिय कन्या ने उसी शाप के कारण विशाल राजा के यहाँ जन्म ग्रहण किया था। अब मैं इसके लिए ही यहाँ आया हूँ कि आप मेरी कन्या का पाणिग्रहण करें, इसके गर्भ से आप को चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होगा ॥६-१२॥

तथेत्युक्त्वेनितस्याक्षमपाणिपार्थिवात्मज ।
जग्राहॅाथितत्रद्रोमाक्रेतनचतुम्बुरु ॥१३

प्रजगुर्देवगन्धर्वाननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
पुष्पाणिससृजुर्मेघादेवत्राद्यानिसस्वनुः ॥१४
विवाहेराजपुत्रस्यतयातत्रसमेनृपः ।
समस्तवसुधात्राणकर्तृ कारणभूतया ॥१५
ततोगन्धर्वलोकन्तेसहतेनमहात्मना ।
निःशेषेणययुःसाचसचराजसुतोमुने ॥१६
भामिन्यामुमुदेसार्द्धं सविक्षिन्नृपनन्दनः ।
साचतेनसमंतत्रभोगसम्पत्समन्विता ॥१७
कदाचिद्रतिरम्येऽसौगगनोपवनेतया ।
विक्रीडतिसमंतन्व्याकदाचिद्दुपपर्वते ॥१८
कदाचित्पुलिनेनद्याहंससारसशोभिते ।
कदाचिद्भवनस्यान्तेप्रासादेचातिशोभने ॥१९
विहारदेशेष्वन्येषुरमणीयेष्वहर्निशम् ।
सरेमेसहितस्तन्व्यासाचतेनमहात्मना ॥२०

राजकुमार अवीक्षित ने गन्धर्व का वचन सुन कर तथास्तु कहा। तब गन्धर्वों के पुरोहित तुम्बुरु ने उन दोनों का पाणिग्रहण संस्कार यथाविधि होम करके सम्पादन कराया। उस अवसर पर देवता तथा गन्धर्व हर्ष से गाने बजाने लगे, अप्सरायें नाचने लगीं, आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी और देव-गण अपने वाद्य बजाने लगे। तत्पश्चात् सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल के पालनकर्त्ता (चक्रवर्ती शासक) की जननी होने वाली कुमारी तथा राजकुमार अवीक्षित के विवाह में आये हुए समस्त गन्धर्व उस प्रमुख गन्धर्व तनय के साथ गन्धर्व लोक को चले गये। राजकन्या और राजकुमार अवीक्षित उन्हीं के साथ गये। वहाँ पर ये दोनों पति-पत्नी एक दूसरे के सहवास और प्रेमयुक्त व्यवहार से अत्यन्त संतोष को प्राप्त हुए। वे अपनी उस मनोहर भार्या सहित कभी नगर के उपवनों में, कभी उपपर्वतों में क्रीड़ा करने लगे। कभी हंस-सारस आदि से शोभायमान नदियों के तट पर कभी भवनों में, कभी ऊँचे महलों और कभी अन्य रमणीक स्थानों में वे दोनों विहार सुख प्राप्त करने लगे ॥१३-२०॥

भक्ष्यानुलेपनवस्त्रं स्रक्पानादिकमुत्तमम् ।
उपाजह्रुः स्वयं तत्र मुनिगन्धर्वकिन्नराः ॥२१
तया च रमतस्तस्य भामिन्या सह दुर्लभे ।
गन्धर्वलोके वीरस्य पुत्रं सा सुषुवे शुभा ॥२२
तस्मिञ्जाते महावीर्ये गन्धर्वाणां महोत्सवः ।
बभूव मनुजव्याघ्र तेन कार्यमवेक्षत म् ॥२३
जगु केचित्तथैवान्ये मृदङ्गपटहानकान् ।
प्रवादयन्त चैवान्ये वेणुवीणादिकास्तथा ॥२४
ननृतुश्चलयात्तत्र बहवोऽप्सरसां गणा ।
पुष्पवृष्टिमुचो मेघा जगर्जुर्मृदुनिस्वना ॥२५
तथा कोलाहले तस्मिन्वर्तमानेऽप्यतुम्बुरु ।
प्रणयेन स्मृतोऽभ्येत्य जातकर्माकरोन्मुनि ॥२६

वहाँ रहने वाले मुनि, गन्धर्व और किन्नर उनके उत्तम भक्ष्य पदार्थ, पानीय, वस्त्र, माला और मद्य आदि भेंट स्वरूप देने लगे भोगों से भरपूर गन्धर्व लोक में राजकुमारी भामिनी के इस प्रकार विहार करते हुए राजकन्या ने एक पुत्र को जन्म दिया। उस महावीर्य वाली पुत्र का जन्म होने पर भविष्य में उसके द्वारा महान् कार्यों के सिद्ध होने की आशा से गन्धर्वों ने महान् उत्सव का आयोजन किया। वहाँ पर कोई गान करने लगा, कोई मृदंग, पटह, ढोल वेणु, वीणा, आदि बजाने लगे। अप्सरायें मनोहर नृत्य करने लगी और मेघ फूलों की वर्षा करते हुए मधुर मन्द शब्द करने लगे। इस प्रकार जब वहाँ सर्वत्र मंगल शब्द हो रहा था तनय के स्मरण करते ही पुरोहित तुम्बुरु ने वहाँ आकर शिशु का जात कर्म पूरा किया ॥२१-२६॥

देवा समाययु सर्वे तथा देवर्षयोऽमला ।
पातालात्पन्नगेन्द्राश्च शेषवासुकितक्षका ॥२७
तथा देवासुराणां च ये प्रधाना द्विजोत्तम ।
यक्षाणां गुह्यकानां च नायकाश्च तथाऽपरा ॥२८

तदाऽऽगतैरशेषर्षिदेवदानवपन्नगैः ।
मुनिभिश्चाकुलमभूद्गन्धर्वाणांमहत्पुरम् ॥२९
ततःसतुम्बुरुःकृत्वाजातकर्मादिकाःक्रियाः ।
चक्रेस्वस्त्ययनंतस्यबालस्यस्तुतिपूर्वकम् ॥३०
चक्रवर्त्तीमहावीर्य्योमाहाबाहुर्महाबलः ।
महान्तंकालमीशित्वमशेषायाःक्षितेःकुरु ॥३१
इमेशक्रादयःसर्वेलोकपालास्तथर्षयः ।
स्वस्तिकुर्वन्तुतेवीरवीर्यंचारिविनाशनम् ॥३२
मरुत्तवशिवायास्तुवातिपूर्वेणयोऽरजाः ।
मरुत्तेविमलोऽक्षीणोऽवैषम्यायास्तुदक्षिणः ॥३३
पश्चिमस्तेमरुद्वीर्य्यमुत्तमंतेप्रयच्छतु ।
बलंयच्छतुचोत्कृष्टं मरुत्तोचनथोत्तरः ॥३४

मार्कण्डेय जी कहने लगे—उस समय वहाँ पर सभी देवर्षि, पाताल निवासी शेष, वासुकि, तक्षक आदि नागगण, राजा, देव, असुर, यक्ष, गुह्यकों के प्रधान व्यक्ति और समस्त वायुकुल उपस्थित हुए। उस अवसर समस्त आने वाले समस्त ऋषि, देव, दानव, पन्नग और मुनियों से गन्धर्वों का सम्पूर्ण नगर भर गया। जातकर्म सम्पन्न हो जाने पर उन तुम्बुरु ने बालक का स्वस्त्ययन इस प्रकार किया—हे वीर तुम महाबली, महावीर्य और महाबाहु होकर पृथ्वी सार्वभौम आधिपत्य प्राप्त करके अब श्रेष्ठ शासक बनो। समस्त इन्द्रादि लोकपाल और ऋषिगण तुम्हारा मंगलमय और शत्रुओं को विजय करने वाला वीर्य विधान करें। पूर्व दिशा से चलने वाली स्वच्छ वायु तुम्हारा कल्याण करे। अक्षीण और विमल दक्षिण-पवन तुम्हारे अनुकूल रहे। पश्चिम का मरुत तुमको महावीर्य और उत्तर का पवन उत्कृष्ट बल प्रदान करे ॥२७-३४॥

इतिस्वस्त्ययनस्यान्तेवागुवाचाशरीरिणी ।
मरुत्तवेतिवहुशोयदिदं गुरुरब्रवीत् ॥३५

मरुत्तइतितेनायभुविख्यातोभविष्यति ।
भुविचाप्यमहीपालायास्यन्त्याज्ञावशायतः ॥३६
एपसर्वक्षितीशानावीर स्थास्यतिमूर्द्धनि ।
चक्रवर्त्तीमहावीर्य्य सप्तद्वीपवतीमहीम् ॥३७
आक्रम्यपृथिवीपालानयमोक्ष्यत्यवारितः ।
प्रधान पृथिवीशानाभविष्यत्ययज्वनाम् ।
प्राधिक्यशौर्य्यवीर्य्येणभविष्यत्यस्यराजसु ॥३८
इत्याकर्ण्यवच सर्वेकेनाप्युक्त दिवौकसाम् ।
तुतुपुर्विप्रगन्धर्वाश्चास्यमातातथापिता ॥३९

इस स्वस्त्ययन का पाठ समाप्त होने पर आकाशवाणी हुई कि गुरु ने बार-बार 'मरुत' शब्द का उच्चारण किया है इसलिये इस बालक का नाम 'मरुत' ही होगा और समस्त संसार विख्यात होगा। सम्पूर्ण राजागण इसके आज्ञावर्ती होंगे इस प्रकार सब राजाओं में शिरोमणि होगा। यह सब राजाओं को हरा कर चक्रवर्ती पदवी पायेगा सातों द्वीपों में विस्तृत पृथ्वी का भोग करेगा। यह सब नरेशों और यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ होगा और समस्त राजाओं की अपेक्षा बल-वीर्य में प्रधानता प्राप्त करेगा। देवगण की इस वाणी को सुनकर सब ब्राह्मण, गन्धर्व और बालक के माता पिता अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए ॥३५-३९॥

११५– मरुत्त चरित्र (१)

ततःसराजपुत्रस्तमादायदयितंसुतम् ।
पत्नीचानुगतोविप्रगन्धर्वैराययौपुरम् ॥१
सपितुर्भवनंप्राप्यववन्देपितुरादरात् ।
चरणौसाचतन्वङ्गीह्रीमतीनृपते सुता ॥२
तथाहराजपुत्रोऽसौगृहीत्वाबालकं सुतम् ।
धर्मासनगतंभूपराज्ञामध्येकरन्धमम् ॥३
मृगपौत्रस्यपश्यैतद्वक्त्रमङ्कस्थयन्मया ।
किमिच्छत्तेप्रतिज्ञातंभ्रूममातु कृतेपुरा ॥४

इत्युक्त्वापितुरुत्सङ्गेसंक्रम्यातनयंततः ।
यथावृत्तमशेषंसकथयामासतस्यतत् ।।५
सपरिष्वज्यतंपौत्रमानन्दास्राविलेक्षणः ।
सभाग्योऽस्मीत्यथात्मानंप्रशशंसपुनःपुनः ।।६
ततःसोर्घ्यादिनासम्यग्गन्धर्वान्समुपागतान् ।
संमानयामासमुदाविस्मृतान्यप्रयोजनः ।।७

मार्कण्डेयजी कहने लगे—तत्पश्चात् राजकुमार अवीक्षित अपने नवजात पुत्र तथा पत्नी के साथ अपने नगर में आये। उस समय अनेक गन्धर्व भी उनके पीछे-पीछे थे। उन्होंने राज भवन में जाकर पिता की वन्दना की, विशाल राजकन्या ने भी सलज्जभाव से उनको प्रणाम किया। तदनन्तर अवीक्षित ने पुत्र को लेकर बड़े-बड़े सरदारों के साथ राजसिंहासन पर विराजमान अपने पिता महाराज करन्धम से कहा—"माताजी के किमिच्छक व्रत के अवसर पर मैंने आपसे जो प्रतिज्ञा की थी, तदनुसार पौत्र को गोदी में लेकर इसका मुख देखिये।" यह कहते हुए उन्होंने पुत्र को पिता की गोदी में दे दिया और विवाह तथा पुत्र-जन्म का पूरा वृत्तान्त उनको सुना दिया। पौत्र को देखकर राजा के नेत्रों में हर्ष से अश्रु आगये और अपने को परम सौभाग्यवान् मानकर स्वयं ही अपनी प्रशंसा करने लगे। इसके पश्चात् उन्होंने साथ में आये गन्धर्वों का सब प्रकार से सम्मान किया ।।१-७।।

ततःपुरेमहानासीदानन्दःपौरवेश्मसु ।
अस्माकंसन्ततिर्जातानाथस्येतिमहामुने ।।८
हृष्टपुष्टेपुरेतस्मिन्गीतवाद्यैवराङ्गनाः ।
विलासिन्योऽतिचार्वङ्ग्योननृतुर्लास्यमुत्तमम् ।।९
राजाचद्विजमुख्येभ्योरत्नानिचवसूनिच ।
गावोवस्त्राण्यलङ्कारानददाद्धृष्टमानसः ।।१०
ततःसबालोववृधेशुक्लपक्षेयथाशशी ।
पितृणांप्रीतिजनकोजनस्येष्टश्चसोऽभवत् ।।११
आचार्य्याणांसकाशात्सप्राग्वेदाञ्जगृहेमुने ।
ततःशस्त्राण्यशेषाणिधनुर्वेदंततःपरम् ।।१२

कृतोद्योगोयदासोऽभूत्खड्गकार्मुकर्मणि ।
अन्येषुचतथावीरःशस्त्रेषुविजितश्रम ॥१३
ततोऽस्त्राणिसजग्राहभार्गवाद्भृगुसंभवात् ।
विनयावनतोविप्रगुरो प्रीतिपरायण ॥१४

मार्कण्डेय कहने लगे—उस समय समस्त नगर में भी बहुत बड़े उत्सव होने लगे और लोग यह कह कर खुशी मनाने लगे कि "हमारे रक्षक राजा के सन्तान हुई है।" उस समय नगर के भीतर स्थान-स्थान पर नर्तकियाँ नृत्य और गायन करने लगीं। महाराज करन्धम गुणवान् ब्राह्मणों को धन, रत्न, वस्त्र, आभूषण और गौओं का दान देने लगे। इस प्रकार के प्रसन्नतापूर्ण वातावरण में वह बालक क्रमशः बड़ा होता हुआ पिता का प्रीतिपात्र और अन्य साधारण मनुष्यों का भी प्यारा बन गया। बड़ा होने पर उसने आचार्य के समीप रहकर वेद, शास्त्र और धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की। जब वह इन सब शास्त्रों का ज्ञाता हो गया तो खड्ग, धनुष-बाण और अन्यान्य शास्त्रों का प्रयोग सीखने के लिए भृगुवंशीय भार्गव के निकट आकर उनका रहस्य सीखने लगा ॥८-१४॥

गृहीतास्त्र कृतीवेदेधनुर्वेदस्यपारग ।
निष्णात सर्वविद्यासुनयभूत्ततः पर ॥१५
विशालाऽपिसुतावार्त्तामुपलभ्याखिलामिमाम् ।
हर्षनिर्भरचित्तोऽभूद्दौहित्रस्यचयाम्यताम् ॥१६
अथराजासुतसुतदृष्ट्वाप्राप्तमनोरथ ।
यज्ञाननेकान्निष्पाद्यदत्वादानानिचार्थिनाम् ॥१७
कृतशेषक्रियोयुक्त सर्वशोधमतोमहीम् ।
परिपाल्यारिविजयोऽलबुद्धिसमन्वित ॥१८
अथियामुर्वनपुत्रमविक्षितमभाषत ।
पुत्रवृद्धोऽस्मिगच्छामिवनराज्यगृहाणमे ॥१६
कृतकृत्योऽस्मिनास्त्यन्यदिदञ्चित्वदभिषेचनात् ।
सुनिष्पन्नमतोराज्यत्वगृहाणमयार्पितम् ॥२०

इस प्रकार सुयोग्य गुरुओं से परिश्रम पूर्वक शिक्षा ग्रहण करके वह धनुर्वेद में पारंगत बन गया और युद्ध सम्बन्धी सब कलाओं में पूर्ण निष्णात होगया। उस समय इन विद्याओं में उससे बढ़कर कोई अन्य दिखाई नहीं पड़ता था। अपनी कन्या के मनोरथ की सिद्धि दौहित्र की विशेष योग्यता को जानकर विशाल राजा को भी अत्यन्त हर्ष हुआ। शत्रु पर सदा विजय प्राप्त करने वाले और परम बुद्धिमान् महाराज करन्धम ने पौत्र का प्राप्त करने की खुशी में अनेक यज्ञ करके अर्थियों बहुत-सा दान दिया और बहुत से सत्कार्य करके प्रजा का हित साधन किया। तदनन्तर कुछ समय पीछे वन जाने की इच्छा से उन्होंने अपने पुत्र अवीक्षित से कहा—' पुत्र ! अब मेरी वृद्धावस्था है और मेरी अभिलाषा वन में रहकर भगवद् भजन करने की है, अतएव अब तुम इस राज्य को ग्रहण करो। मैं सभी दृष्टियों से अपने जीवन को सफल हुआ देख रहा हूं, अब तुम्हारा राज्याभिषेक करने के अतिरिक्त मेरे लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया है, इस कारण मैं तुमसे इस भांति से सम्पन्न राज्य का शासक भार ग्रहण करने का आग्रह करता हूँ" ॥१५–२०॥

इत्युक्तःपितरंप्राहसोऽविक्षिन्नृपनन्दनः ।
प्रश्रयावनतोभूत्वाग्रिग्रासुस्तपसेवनम् ॥२१
नाहंतातकरिष्यामिपृथिव्याःपरिपालनम् ।
नापैतिह्रीर्ममनसिराज्येऽन्यंत्वंनियोजय ॥२२
तातेनमोक्षितोबद्धोनस्ववीर्य्याद्हंयतः ।
ततःकियत्पौरुषमेपुरुषैःपाल्यतेमहीम् ॥२३
योऽहंनपालनायालमात्मनोऽपिवसुन्धराम् ।
सकथंपालयिष्यामिराज्यमन्यत्रविक्षिप ॥२४
सस्त्रीसधर्मापुरुषोयश्चान्येनावद्ध ह्यते ।
आत्माऽमोहायभवतावन्धनाद्यं नमोक्षितः ॥२५
सोऽहंकथंभविष्यामिस्त्रीसधर्मामहीपतिः ।
स्त्रियःपुमान्भवेद्भर्तायःशूरःसमहीपतिः ॥२६

पर राजकुमार अवीक्षित स्वयं वन में जाकर तप करने के इच्छुक थे। उन्होंने कहा—'पिताजी ! मैं राज्य का भार ले सकने में असमर्थ हूं, अभी तक मेरी पहली लज्जा की भावना दूर नहीं हुई है, इसलिये आप इस उत्तरदायित्व को अन्य किसी को दे। जब मैं हार कर बन्धन ग्रस्त होगया और पिता के द्वारा छुड़ाया गया तो मेरे पुरुषार्थ और वीरता का महत्व ही क्या रह गया ? जब मैं स्वयं अपनी रक्षा करने में समर्थ न हो सका तो पृथ्वी का पालन किस तरह कर सकता हूं ? बुद्धिमान् और धर्माचरण वाला होने पर भी जो मनुष्य शत्रुओं से पराजित होगया, जो अपनी आत्मा का भी उद्धार न कर सका और पिता की सहायता से ही उस बन्धन मुक्त हो सका, वह पुरुष कहे जाने के योग्य नहीं, वह तो एक प्रकार से स्त्री ही है और कदापि राज्य करने में समर्थ नहीं हो सकता ॥२१-२६॥

नभिन्नएवपुत्रस्य पितापुत्रस्तथापितुः ।
नान्येनमोक्षितोवीरमस्त्वपित्रामोक्षितः ।
हृदयनान्यथानेतु मयाशक्यनरेश्वर ॥२७
हृदयेह्रीर्ममातीवयस्त्वहमोक्षितस्त्वया ॥२८
पित्रापात्ताश्रियमुक्तं पित्राकृच्छ्रात्समुद्धृतः ।
विज्ञायतेचय पित्रामानवःसोस्तुनोकुले ॥२९
स्वयमर्जितवित्तानाख्यातिस्वयमुपेयुषाम् ।
स्वयनिम्नोर्णकृच्छ्राणायागति साऽस्तुमेगतिः ॥३०

करन्धम ने कहा—हे वीर श्रेष्ठ, पिता और पुत्र में कोई अन्तर नहीं होता, अतएव मेरे द्वारा छुड़ाये जाने में पराये का कोई प्रश्न नहीं और न लज्जा का कोई कारण हो सकता है। अवीक्षित ने उत्तर दिया—महाराज ! आपका कथन सत्य है, पर मेरे हृदय में वह हीन भावना अब दूर नहीं हो पाती और सर्वत्र उस पराजय तथा अपमान का स्मरण हो आता है। जो व्यक्ति पिता की उपार्जित सम्पत्ति के भरोसे सुख प्राप्त करता है, आपत्ति में पड़ जाने पर पिता द्वारा छुटकारा पाता है और पिता की कीर्ति के आधार पर ही प्रसिद्ध होता है, उसका कुछ भी महत्व समझना व्यर्थ है। जो स्वयं अपने पुरुषार्थ द्वारा

वैभव प्राप्त करता है, स्वयं नाम कमाता है और स्वयं ही आपत्तियों से छुटकारा पाने में समर्थ है वही सच्चा पुरुष है ॥२७—३०॥

इत्याहबहुशःपित्रायदाप्युक्त्वोऽप्यसौमुने ।
तदातस्यसुतंराज्येमरुत्तमकरोन्नृपः ॥३१
सपित्रासमनुज्ञातंराज्यंप्राप्यपितामहात् ।
चकारसम्यक्सुहृदामानन्दमुपपादयन् ॥३२
राजाकरन्धमश्चापिवीरामादायतान्तथा ।
वनंजगामतपसेयतवाक्कायमानसः ॥३३
तत्रवर्षसहस्रं सतपस्तप्त्वासुदुश्चरम् ।
विहायदेहंनृपतिःशक्रस्यापसलोकताम् ॥३४
सास्यपत्नीतदावीरावर्षाणामपरंशतम् ।
तपश्चचारविप्रर्षेजटिलामलपंकिनी ॥३५
सालोक्यमिच्छतीभर्त्तुःस्वर्गतस्यमहात्मनः ।
फलमूलकृताहाराभार्गवाश्रमसंश्रया ।
द्विजातिपत्नीमध्यस्थाद्विजशुश्रूषणादृता ॥३६

मार्कण्डेयजी ने कहा—जब अवीक्षित ने पिता के बारम्बार कहने पर भी राज्य भार ग्रहण करने में अपनी असमर्थता प्रकट की तो महाराज करन्धम ने उसके पुत्र मरुत्त को राज्य भार दे दिया। मरुत्त ने पिता की अनुमति पाकर पितामह द्वारा प्रदत्त राज्य भार को स्वीकार किया और ऐसे सुचारु रूप से संचालन करने लगे जिससे उनके समस्त निकटवर्तियों को परम संतोष और आनंद हुआ। तब महाराज करन्धम भी अपनी पत्नी वीरा को साथ लेकर मन, वचन, काया से तपस्या में निरत होने के लिये वन में चले गये वहाँ पर करन्धम के एक हजार वर्ष तक कठिन तप करके देह त्याग करने पर वह इंद्रलोक को प्राप्त हुए। उनकी पत्नी वीरा देवी इसके पश्चात् भी सौ वर्ष तक तपस्या में निरत रही। वह सदैव परलोक में भी पति का सामीप्य प्राप्त करने की इच्छा करती रहती

और केवल फल, मूल का आहार करके और्व के आश्रम में द्विज पत्नियों के साथ सेवा और सम्मान पाती हुई समय व्यतीत करती थी ॥३१–३६॥

११६—मरुत्त चरित्र (२)

भगवन्विस्तरात्मवंममैतत्कथितत्वया ।
वरन्यसस्यचरितमविक्षिच्चरितचयत ॥१
अविक्षितस्यनृपतेर्मरुत्तस्यमहात्मन ।
श्रोतुमिच्छामिचरितम् यतेसांऽवैचेष्टितं ॥२
चक्रवर्तीमहाभाग शूरकान्तोमहामति ।
धर्मविद्धर्मकृच्चैवसम्यक्पालपिताभुव ॥३
सपित्राऽभ्यनुज्ञातराज्यप्राप्यपितामहात् ।
धर्मंत पालगामासपितापुत्रानिवौरसान् ॥४
इयाजसुबहून्यज्ञान्यथावत्स्वाप्तदक्षिणान् ।
ऋत्विक्पुरोहितादेशादनिविण्णोमहीपति ॥५
तस्याप्रतिहतचक्रमासीद्द्वीपेपुसमसु ।
गतिश्चाप्यनवच्छिन्नास्वपातालजलादिषु ॥६
ततः प्राप्यधनविप्रययावत्स्वक्रियापर ।
अपजरसमहायज्ञ देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हे भगवन् ! अब मैं सूर्यवंश के राजा मरुत्त के चरित्र को सुनना चाहता हूँ, सुना जाता है कि वह अत्यन्त उद्यमी, प्रतिभावान् ॥१-२॥ चक्रवर्ती, महाभाग, शूर, कान्त, श्रेष्ठ बुद्धि, धर्मज्ञ, धर्माचारी तथा सभी प्रकार से पृथिवी का पालन करने वाले थे ॥३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पिता की आज्ञा से मरुत्त ने अपने पितामह से राज्य को प्राप्त किया और प्रजा का पालन अपने पुत्र के समान करने लगा ॥४॥ याज्ञिकों और पुरोहितों की अनुमति पूर्वक

उन महाराज ने अत्यन्त दक्षिणा वाले अनेकानेक यज्ञों का अनुष्ठान किया था ॥५॥ उनके रथ के पहिये सातों द्वीप में न रुकने वाले थे, आकाश, पाताल और जल में भी उनकी गति का अवरोध नहीं होता था ॥६॥ अपने कर्म में तत्पर हुए उन मरुत्त ने धन पाकर सब महायज्ञों के द्वारा इन्द्र आदि देवताओं का यजन किया था ॥७॥

इतरेचवयथावर्णाःस्वेस्वेकर्मण्यतन्द्रिताः ।
तदुपात्तधनाश्चक्रुरिष्टापूर्त्तादिकाःक्रियाः ॥८
पाल्यमानामहीतेनमरुत्तेनमहात्मना ।
योस्पर्द्धे त्रिदशावासवासिभिर्द्विजसत्तम ॥९
तेनातिशयिताःसवकेवलंनमहीक्षितः ।
यज्विनादेवराजोऽपिशतयज्ञाभिसन्धिना ॥१०
ऋत्विक्तस्यतुसंवर्त्तोबभूवाङ्गिरसःसुतः ।
भ्राताबृहस्पतेर्विप्रमहात्मातपसांनिधिः ॥११
सौवर्णोमुञ्जवान्नामपर्वतःसुरसेवितः ।
पातितंतेनतच्छृङ्गं कृतेतस्यमहीपतेः ॥१२
तेनयस्याखिलंयज्ञेभूमिभागादिकद्विज ।
प्रासादाश्चकृताःशुभ्रास्तपसासर्वकाञ्चनाः ॥१३
गाथाश्चाप्यत्रगायन्तिमरुत्तचरिताश्रयाः ।
सातत्येनर्षयःसर्वेकुर्वन्तोऽध्ययनंयथा ॥१४

सभी वर्ण अपने-अपने कर्म में तत्पर रहकर उनसे प्राप्त धन के द्वारा इष्टापूर्त इत्यादि कर्म को करते थे ॥८॥ महात्मा मरुत्त के द्वारा पालन की जाती हुई पृथिवी देवताओं से भी स्पर्द्धा करती थी ॥९॥ वह मरुत्त राजाओं में ही प्रमुख नहीं होगये थे, वरन् सैकड़ों यज्ञों को करने के कारण वह इन्द्र से भी श्रेष्ठ होगये थे ॥१०॥ हे ब्रह्मन् ! अंगिरा सुवन, बृहस्पतिजी के भाई तपोनिधि महात्मा संवर्त्त उनके ऋत्विक् हुए ॥११॥ देवताओं द्वारा सेवित स्वर्णमय एक पर्वत मुंजवान् नाम से प्रसिद्ध है, ऋत्विक् अपने तपोबल से उसका शृंग उखाड़ कर राजा के निमित्त ले आये थे ॥१२॥ इसी शृंग के द्वारा राजा का

समस्त यज्ञ-स्थान और स्वर्णमय उज्ज्वल भवनों का निर्माण हुआ था ॥१३॥ इन मरुत्त के चरित्र को आधार बना कर ऋषिगण सदा इनका वृत्तान्त कीर्तन करते और इनके चरित्र का अध्ययन करते थे ॥१४॥

मरुत्तेनसमोनासीद्यजमानोमहीतले ।
सदःसमस्तयज्ञेप्रासादाश्चवक्रतकाञ्चना ॥१५
अमाद्यदिन्द्र सोमेनदक्षिणाभिर्द्विजातयः ।
विप्राणापरिवेष्टार शक्राद्यास्त्रिदशोत्तमाः ॥१६
यथायज्ञे मरुत्तस्यतुष्मा सर्वंमहीपते ।
सुवर्णमखिलत्यक्त रत्नपूर्णगृहेद्विजैः ॥१७
प्रासादादिममरुत्तचसोवर्णंतस्ययज्वनो ।
अयोवर्णाह्यलम्भन्ततस्मात्केचित्तथादद ॥१८
(तेनत्यक्त नशिष्टायेजना पूर्णमनोरथा ।
तेपियज्ञान्यजतेस्मदेदेदेपृथक्पृथक् ।)
यस्यैवकुर्वतोराज्यमभ्यपालयतःप्रजाः ।
तपस्वीकश्चिदभ्येत्यतमाहमुनिसत्तम ॥१९
पितुर्मातातवाहेदद्दृष्ट्वानापसमण्डलम् ।
विषाभिभूतमुरगैस्तोऽन्मत्तंनरेश्वर ॥२०
पितामहस्तेस्वर्यातःसम्यक्समपास्यमेदिनीम् ।
पिनातवतयाशक्तोह्यस्वाश्रममवनगत ।
(तपश्चरणशक्तास्मिहचौर्वाश्रमेस्थिता) ॥२१

जिनके यज्ञ में समस्त सभा भवन एवं प्रासाद स्वर्णमय बनाये गये थे, इन्द्र सोमपान करके और ब्राह्मण दक्षिणा को प्राप्त करके मस्त हो उठे थे, सब प्रधान देवताओं ने ब्राह्मणों को घेर रखा था, उन मरुत्त के समान यज्ञ करने वाला कोई पुरुष पृथिवी पर उत्पन्न नहीं हुआ ॥१५–१६॥ ब्राह्मणों ने जितनी रत्नमय गृह और स्वर्ण राशि उन मरुत्त के यज्ञ में प्राप्त की थी उतनी अन्य किसके यज्ञ में की ? उन्हीं के समय में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्ण स्वर्णमय भवनादि को पा सके थे, उनके अतिरिक्त ऐसा दान और किस पुरुष ने

किया है ? ॥१८॥ उनके धन को प्राप्त कर जो मनुष्य पूर्ण काम हुए, उन्होंने भी अपने द्वारा समस्त यज्ञों का सम्पादन किया था) हे मुनिवर ! उनके इस प्रकार के श्रेष्ठ राज्य शासन, एवं प्रजा पालन काल में एक दिन एक तपस्वी उनके पास आकर बोला ॥१९॥ हे राजन् ! तुम्हारी पितामही ने तापस मंडली को मदोन्मत्त सर्पों के विष से पीड़ित होता हुआ देखा और यह संदेश भेजा है ॥२०॥ तुम्हारे पितामह भले प्रकार से पृथिवी का पालन करने के कारण स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं और तुम्हारे पिता ने भी वन का आश्रय लिया है (मैं भी तप में आसक्त होकर और्वाश्रम में स्थित हूं) ॥२१॥

साऽहंपश्यामिवैकल्यंतवराज्यंप्रशासतः ।
पितामहस्यतेनाभूद्यत्पूर्वेषांचतेनृप ॥२२
नूनंप्रमत्तोभोगेषुसक्तोवाऽतिजितेन्द्रियः ।
चारान्धतायतोस्तीयंदुष्टादुष्टंनवेत्सियत् ॥२३
पातालादभ्युपेतैस्तुभुजगैर्दंशशालिभिः ।
दष्टामुनिसुताःसप्तदूषिताश्चजलाशयाः ॥२४
स्वेदमूत्रपुरीषेणदूषितंसुशृतंहविः ।
अपराधंसमुद्दिश्यदत्तोनागबलिश्चिरात् ॥२५
एतेसमर्थामुनयोभस्मीकर्तुं भुजंगमान् ।
किन्त्वेषांनाधिकारोऽत्रत्वमेवात्राधिकारवान् ॥२६
तावत्सुखंभूपतिजैर्भोगजंप्राप्यतेनृप ।
अभिषेकजलंयावन्नमूर्ध्निविनिपात्यते ॥२७

हे राजन् ! जो घटनाएँ तुम्हारे अन्यान्य पूर्व पुरुषों के शासन काल में घटीं, उन्हें तुम्हारे शासन काल में घटती हुई देख रहा हूं ॥२२॥ तुम या तो प्रमत्त हो अथवा अजितेन्द्रिय रहकर भोगों के प्रति अनुरक्त हुए हो, तुम दूतों को न रखने के कारण अच्छी-बुरी घटनाओं को जानने में समर्थ नहीं हो ।२३। दंशनशील नागों ने पाताल से आकर सात मुनि कुमारों को डस लिया है तथा स्वेद, मूत्र और पुरीष से सब जलाशय और यज्ञ-हवि को दूषित कर दिया है, इसलिये अपराध हुआ जानकर मुनिगण सर्पों को बलि दे रहे हैं ॥२४-२५॥

यद्यपि यह मुनिगण सभी को स्वयं ही भस्म कर सकते हैं, परन्तु उस कार्य के दुःखी अधिकारी हो ॥२६॥ हे राजन् ! राजपुत्रों को भोग जनित सुख के भोगने का अधिकार तभी तक है, जब तक उनके शीश पर अभिषेक का जल नहीं सींचा जाता ॥२७॥

> यानिमित्राणिक शत्रुर्ममशत्रोवलंकियत् ।
> [illegible] ।
> [illegible] ।
> त्रिरस्कोवापरंभिन्न.परेषामपिकोहृत्य ।
> क सम्यगत्रनरैर्विषयेराजनोमम ॥२८
> धर्मकर्माश्रयोमूढ क सम्यगपिवर्त्तते ।
> कोदण्डय परिपाल्य क केचोपेक्ष्यानरामया ॥३०
> सामभेदतयादम्यादेशकालमवेक्षता ।
> चारश्चिचारयेदन्यैरज्ञातान्भूपतिश्चरैं ॥३१
> रांधिषादिपूमर्वपुवरान्दद्यान्महीपतिः ।
> इत्यादौभूपतिर्स्त्यकर्मण्यासक्तमानसः ॥३२
> नयेदिनस्याराश्निनतुभोगपरायणः ।
> रामाशरीरग्रहणनभोगायमहीपते ॥३३

मित्र कौन है ? शत्रु कौन है ? शत्रु के पास कितनी शक्ति है ? कौन मन्त्री कैसा है ? कौन राजा अपने पक्ष का है ? ॥२८॥ (मेरे पास कितना कोष है ? कितनी शक्ति है ! कौन मुझसे प्रीति करता है ?) शत्रु के द्वारा भेद को किसने पा लिया है ? कौन शत्रु किस प्रकार का है ? अपने नगर अथवा राज्य में धर्म-कर्म का आश्रय लेने वाला कौन है ? ॥२९॥ कौन मूर्ख रहता है ? कौन दण्डनीय है ? कौन पालनीय और कौन उपेक्षणीय है ? ॥३०॥ छिद्र भेद के भय से किसके प्रति दृष्टि रखनी चाहिये ? इस सबका ज्ञान करने के लिये दूत के अपरिचित गुप्तचर को नियुक्त करना उचित है ॥३१॥ सब नगरवासियों पर दृष्टि रखने के लिये भी दूत की नियुक्ति करे, इस प्रकार राज्य-काज में प्रति राजा को दत्तचित्त होना चाहिए ॥३२॥ इसी में दिन-रात्रि व्यतीत करे और

भोग-परायण न हो,हे राजन् ! राजाओं का जन्म भोग के लिये नहीं होता है ३३

क्लेशायमहतेपृथ्वीस्वधर्मपरिपालने ।
सम्यक्पालयतःपृथ्वींस्वधर्मंचमहीपतेः ॥३४
इहक्लेशोमहान्स्वर्गेपरमंसुखमक्षयम् ।
तदेतदवबुध्यस्वहित्वाभोगान्नरेश्वर ॥३५
पालनायक्षितेःक्लेशमङ्गीकर्तुमिहार्हसि ।
इतिवृत्तमृषीणांयद्व्यसनंत्वयिशासति ॥३६
भुजङ्गहेतुकंभूपचारान्धोनापिवेत्सितत् ।
बहुनात्रकिमुक्तेनदुष्टेदण्डोनिपात्यताम् ॥३७
शिष्टान्पालयराजंस्त्वंधर्मषड्भागमाप्स्यसि ।
अरक्षन्पारमखिलंदुष्टैरविनयात्कृतम् ॥३८
समवाप्स्यस्यसन्दिग्धंयदिच्छसिकुरुष्वतत् ।
एतन्मयोक्तंसकलंयत्तवाहंपितामही ।
कुरुष्वेवंस्थितेयत्तेरोचतेवसुधाधिप ॥३९

पृथिवी का पालन और अपने धर्म का पालन करने के लिये उन्हें तो महाकष्ट ही भोगने होते हैं, उन्हें अपने धर्म और पृथिवी के पालन से ॥३४॥ इस जन्म में अत्यन्त क्लेश भोग लेने पर परलोक में उन्हें अक्षय सुख की प्राप्ति होती है, हे राजन् ! इस पर विचार करके और भोग का परित्याग करके ॥३५॥ तुम्हें पृथिवी का पालन करने के लिये क्लेश को अंगीकार करना चाहिये, तुम्हारे शासनकाल में ऋषियों को सर्पों से जो भय उपस्थित हुआ है ॥३६॥ उस भय को दूतों के न होने के कारण ही जानने में समर्थ नहीं हुए, हे राजन् ! तुम दुष्टों को दंडित करो ॥३७॥ और शिष्टजनों का पालन करो, इससे धर्म के षष्ठ भाग की प्राप्ति होगी, दुष्टगण जिस उद्दण्डता को करते हैं, उससे सज्जनों की रक्षा न करोगे तो ॥३८॥ तुम अवश्य ही पाप के भागी होगे, अब जो कर्त्तव्य समझो, वह करो, हे राजन् ! मैं तुम्हारी पितामही हूं, इसीलिये ऐसा कहा है, अब तुम्हें जो उचित प्रतीत हो, वही करो ॥३९॥

११७—मरुत्त चरित्र (३)

इतितापसवाक्यसश्रुत्वालज्जापरोनृपः ।
धिङ्माचारान्धमित्युक्त्वानि श्वस्यजगृहेधनु. ॥१
तत सत्वरितगत्वाखल्वौर्वस्याश्रमप्रति ।
ववन्देशिरसावीरामातरंपितुरात्मन ॥२
तापसांश्चप्रयान्यायतश्चाशीर्भिरभिष्टुत ।
दृष्ट्वाचतापसान्सप्तनागैर्दष्टान्मृतान्भुवि ॥३
निनिन्दात्मानमसकृत्पुरस्तेषामहीपति. ।
उवाचचैनदद्याहमद्वीर्यमवमन्यताम् ॥४
यत्करोमिभुजङ्गानादुष्टानाब्राह्मणद्विषाम् ।
तत्पश्यतुजगत्सर्वंसदेवासुरमानृपम् ॥५
इत्युक्त्वाजगृहेक्रोधादस्त्रसंवर्तंनृप ।
नाशायाशेषनागानापातालोर्व्वीविचारिणाम् ॥६
ततोजज्वालसहसानागलोकःसमन्तत ।
महास्त्रतेजसाविप्रदह्यमानोनिवारित ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—तापस की बात सुनकर राजा लज्जित हुए और 'मुझ आचारान्ध को धिक्कार है' ऐसा कहते हुए हाथ में धनुष उठाया ॥१॥ और अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक और्वाश्रम में आकर नत मस्तक हो अपनी पितामही वीरा ॥२॥ और तपस्वियों को प्रणाम किया, उन्होंने भी राजा को आशीर्वाद दिये, फिर राजा ने सर्पदंश से मरे हुए सात तपस्वियों को पृथिवी में पड़े देखा ॥३॥ राजा ने मुनियों के समक्ष बारम्बार अपनी निन्दा की और बोले—यह दुष्ट नाग मेरे बल के तिरस्कार पूर्वक ॥४॥ ब्राह्मणों से द्वेष करते हैं, इसलिये अब मैं उनकी जो दशा करता हूँ, उसको देवता, दैत्य और सम्पूर्ण विश्व अवलोकन करें ॥५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ऐसा कहकर राजा ने पाताल और पृथिवी में रहने वाले सब नागों को नष्ट करने के उद्देश्य से संवर्त अस्त्र को

हाथ में उठाया ॥६॥ उस समय उस महा अस्त्र के तेज से समस्त नागलोक प्रकाशमान हो उठा और भस्म होने लगा ॥७॥

हाहातातेतिहामातहाहावत्सेतिसंभ्रमे ।
तस्मिन्नस्त्रकृतेवाचःपन्नगानामथाभवन् ॥८
केचिज्ज्वलद्भिः पुच्छाग्रैःफणैरन्येभुजङ्गमाः ।
गृहीतपुत्रदाराश्चत्यक्ताभरणवाससः ॥९
पातालमुत्सृज्यययुःशरणंभामिनींतदा ।
मरुतमातरं पूर्वंययादत्तंतदाभयम् ॥१०
तामुपेत्योरगाःसर्वेसप्रमाणंभयातुराः ।
सगद्गदमिदप्रोचुःस्मर्यतांनःपुरोदितम् ॥११
प्रणम्याभ्यर्थितपूर्वंयदस्माभीरसातले ।
तस्यकालोऽयमायातस्त्राहिवीरप्रजायिनि ॥१२
पुत्रोनिवार्य्यतांराज्ञिप्राणैःसंयोज्यमस्तुनः ।
दह्यतेसकलोलोकोनागानामस्त्रवह्निना ॥१३
एवंसदह्यमानानामस्माकंतनयेनते ।
त्वामृतेशरणंनान्यत्कृपांकुरुयशस्विनि ॥१४

इस अस्त्र के भय से भीत हुए नागगण माता, तात, वत्स आदि पुकारते हुए चीत्कार करने लगे ॥८॥ किसी की पूँछ और किसी का फण दग्ध होने लगा, किसी ने वस्त्राभरणों को परित्याग कर स्त्री पुत्र सहित ॥९॥ पाताल-लोक को छोड़ राजा मरुत्त की माता भामिनी की शरण ग्रहण की, क्योंकि उसने इनको कभी अभय दान दिया था ॥१०॥ सभी नाग उसके समक्ष उप-स्थित होकर गद्गद वचनों से कहने लगे—आप रसातल में हमारे द्वारा की हुई प्रार्थना का स्मरण करिये, उसके निर्वाह का यही समय है, आप हमारी रक्षा करिये ॥११–१२॥ हे राजमाता ! अपने पुत्र को रोक कर हमारे प्राणों की रक्षा करिये, समस्त नागलोक उनके अस्त्रों से उत्पन्न अग्नि से भस्म हुआ जाता है ॥१३॥ हे यशस्विनी ! आपका पुत्र इस विधि से हमें जलाता है, इस-

लिए आपके अतिरिक्त अन्य किसी की शरण हम नहीं ले सकते, आप हम पर दया करें ॥१४॥

इतिश्रुत्वावचस्तेषांसस्मृत्वादीनभाषितम् ।
भर्त्तारमाहसासाध्वीससम्भ्रममिदवच ॥१५
पूर्वमेवतवाख्यातपातालेयद्भुजङ्गमैः ।
प्रोक्तमभ्यर्थनापूर्वममासीत्तनयप्रति ॥१६
तद्भमेऽभ्यागताभीतावादह्यन्तेतस्यतेजसा ।
मामेतेशरणपूर्वंदत्तमेभ्योमयाऽभयम् ॥१७
येमाशरणमापन्नास्तेत्वाशरणमागता ।
अपृथग्धर्मचरणाधाताहशरणतव ॥१८
तन्निवारयपुत्रस्त्वमरुत्त वचनात्तव ।
मयाचाभ्यर्थितोऽवश्यशाममभ्युपयास्यति ॥१९
महापराधेनियतमरुत्त क्रोधमागत ।
दुर्निवर्त्यंमहमन्येतस्यक्रोधसुतस्यते ॥२०

मार्कण्डेयजी ने कहा—सर्पों के करुणापूर्ण वचन सुन कर उस साध्वी स्त्री को सर्पों को दिया अपना अभय वचन स्मरण हो आया तो वह सभ्रम-सहित अपने स्वामी से बोली ॥१५॥ भामिनी ने कहा—पाताल स्थित सर्पगणों ने विनय-पूर्वक जो कुछ मेरे पुत्र के सम्बन्ध में कहा वह पूर्व ही मैंने आपसे वर्णन किया ॥१६॥ यही सर्पगण इस काल मेरे पुत्र के तेज के कारण दग्ध हुए जाते हैं मैंने पहले ही इन्हें अभय-दान किया था इसलिए भयभीत होकर वे मेरी शरण में आये हैं ॥१७॥ जो मेरी शरण में आये हैं, वे आपके भी शरणागत हैं क्योंकि एक धर्माचरण के कारण मैं आपकी शरणागत हुई हूँ ॥१८॥ इसलिए आप पुत्र मरुत्त को रोकिये । आपके आदेश और मेरे आग्रह से वह निश्चित ही शान्त हो जायगा ॥१९॥ अवीक्षित बोले—इनकी सदैव अपराधी प्रकृति के कारणवश ही मरुत्त कोपित हुआ है इस कारण तुम्हारे पुत्र का कोप सरलता से शान्त हो जायगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता ॥२०॥

शरणागतास्तववयंप्रसाद.क्रियतांनृप ।
क्षत्रस्यार्तपरित्राणनिमित्तं शस्त्रधारणम् ॥२१
नागानांतद्वचःश्रुत्वाभूतानांशरणैषिणाम् ।
तयाचाभ्यर्थितःपत्न्याप्राहावीक्षिन्महायशाः ॥२२
गत्वाब्रवीमितंभद्रे तनयंत्वरयालव ।
परित्राणायनागानांनत्याज्याःशरणागताः ॥२३
नोपसंहरतेसोस्त्रंयदिमद्वचनान्नृपः ।
तदास्त्रैर्वारयिष्यामितस्यास्त्रंतनयस्यते ॥२४
ततोगृहीत्वासधनुरविक्षित्क्षत्रियोत्तमः ।
भार्य्ययासहितःप्रायात्त्वरावान्भार्गवाश्रमम् ॥२५

सर्प बोले—हे राजा ! हम आपके शरणागत है, आप हम पर कृपा करिये, क्षत्रिय मनुष्य सदैव त्रसित मनुष्यों की रक्षार्थ ही शस्त्र ग्रहण करते हैं ॥२१॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यशस्वी अवीक्षित ने पत्नी का निवेदन और शरण में आये सर्पों के वचन सुनकर कहा—॥२२॥ हे भद्रे ! मैं तुरन्त ही तुम्हारे पुत्र मरुत के निकट जाकर नागों की रक्षा हेतु उससे कहता हूं, शरण में आये को शरण न देना कभी उचित नहीं है ॥२३॥ यदि तुम्हारा पुत्र राजा मरुत मेरे कहने पर ही अस्त्र त्याग नहीं करेगा तो मैं उसके विरुद्ध अस्त्र का प्रयोग करूँगा ॥२४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् नरश्रेष्ठ अवीक्षित धनुष धारण करके भार्या को संग लेकर भार्गवाश्रम गये ॥२५॥

११८—मरुत चरित्र (४)

सतुतत्रसुतंदृष्ट्वागृहीतवरकार्मुकम् ।
धनुःशस्त्रंचतस्योग्रं ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥१
उद्‌गिरन्तंमहावह्निदीपिताखिलभूतलम् ।
पातालान्तर्गतंप्राप्तममह्यं घोरभीषणम् ॥२

सतदृष्ट्वामहीपालभृकुटीकुटिलाननम् ।
माक्रुधस्त्वमरुत्तास्त्रमुपसंह्रियतामिति ॥३
प्राहासकृच्चानुलुप्तवर्णक्रममुदारधीः ।
सनिशम्यगुरोर्वाक्यदृष्ट्वातचपुनः पुनः ॥४
गृहीतकार्मुकः पित्रोः प्रणिपत्यसगौरवम् ।
प्रत्युवाचापराद्धामेसुभृशपन्नगा पिता ॥५
शासतीमामवमह्यपरिभूयबलमम ।
समाश्रममुपागम्यदष्टामुनिकुमारका ॥६
ऋषीणामाश्रमस्थानामभीषामवनीपते ।
मयिशासतिदुर्वृत्तैर्दूपितानिहवींपिच ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—अवीक्षित ने वहाँ आकर देखा कि मरुत्त धनुष पर शस्त्र चढ़ाये हुए हैं जिस की तीव्र ज्वाला से समस्त दिङ्मण्डल प्रकाशित है ॥१॥ उस उग्र शस्त्र से तीव्र अग्नि उत्पन्न होकर पृथ्वी को प्रदीप्त कर रही है जो कि अत्यन्त भीषण व असहनीय है एवं पाताल तक पहुंच रही है ॥२॥ यह देख कर कि महीप मरुत्त की मुखाकृति व भ्रकुटि कुटिल हैं वो व बोले—हे मरुत्त ! अस्त्र त्याग दो और क्रोध समाप्त करो ॥३॥ बार बार इस प्रकार कह कर जब चुप हो गये तो उस बुद्धिमान् मरुत्त ने उनकी ओर देख कर ॥४॥ पिता व माता दोनों को प्रणाम सहित आदर पूर्वक बोला—हे पिता ! यह सर्पगण मेरे भारी अपराधी हैं ॥५॥ मेरे पराक्रम की अवहेलना करके इन्होंने मेरे राज्य काल में आश्रम में आकर सात मुनिकुमारों को काटा है ॥६॥ एवं हे महाराज ! मेरे राज्य काल में इन दुर्बुद्धि नागों ने इन सम्पूर्ण आश्रम निवासियों के हवि अन्न आदि को दूषित कर डाला है ॥७॥

जलाशयास्तथाप्येते सर्वएवहिदूषिता ।
मदत्तारणाविक्षिप्तवत्तन्न्यत्वयापित ।
ननिवारयितव्याऽहंब्रह्मघ्नान्प्रतिपन्नगान् ॥८
यदभिनिहृताविप्रायास्यन्तिनरकंमृता ।
ममैतत्क्रियतामायविरमास्त्रप्रयोगतः ॥९

नाहमेषांक्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् ।
अहमेवगमिष्यामिनरकंयदिपापिनाम् ।
ननिग्रहेयताम्येषांमांनिवारयमापितः ॥१०
मामेतेशरणंप्राप्ताःपन्नगाममगौवात् ।
उपसंह्रियतामस्त्रमलंकोपेनतेनृप ॥११
नाहमेषांक्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् ।
स्वधर्ममुल्लंघ्यकथंकरिष्यामिवचस्तव ॥१२
दण्डचे निपातयन्दण्डं भूपःशिष्टांश्चपालयन् ।
पुण्यलोकानवाप्नोतिनरकाश्चाप्युपेक्षणात् ॥१३

इसलिए आप इन सर्पगणों के विषय में कुछ भी न कहें और ब्रह्म-हत्यारे नागों के संहार-कार्य से मुझे न रोकें ॥८॥ अवीक्षित बोले—यदि उन्होंने ब्रह्म-हत्या की है तो मरने के पश्चात् नरक को जायेंगे किन्तु तुम अस्त्र का प्रयोग न करके मेरे वचन की रक्षा करो ॥९॥ मरुत बोले—यदि इन पापियों पर नियन्त्रण का यत्न छोड़ दूँ तो मुझे ही नर्क की प्राप्ति होगी, इसलिए हे पिता जी आप मुझे उनके संहार से मत रोकिये, मैं इन दुष्टों को क्षमा नहीं करना चाहता ॥१०॥ अवीक्षित बोले—यह नाग मेरी शरण को प्राप्त हुए हैं, इसलिए मेरे गौरव की रक्षा के निमित्त क्रोध छोड़ कर अस्त्र त्याग दो ॥११॥ मरुत बोले—इन दुष्टों को मैं क्षमा करके अपने धर्म का उल्लघन कैसे करूँ और आपके वचन को कैसे निभाऊँ ॥१२॥ दंड योग्य जीवों को दंड देकर और शिष्ट पुरुषों का पालन करके ही राजा पुण्य लोक को प्राप्त होते हैं अन्यथा उन्हें नर्क की प्राप्ति होती है ॥१३॥

एवंसबहुशःपित्रावार्य्यमाणोम्बयासह ।
नोपसंहरतेसोऽस्त्रंततोऽसौपुनरब्रवीत् ॥१४
हिंससेपन्नगान्भीतान्ममैतान्छरणागतान् ।
वार्यमाणोऽपितस्मात्तेकरिष्यामिप्रतिक्रियाम् ॥१५
मयाप्यस्त्राण्यवाप्तानिनत्वमेकऽस्त्रविद्भुवि ।
ममाग्रतःसुदुर्वृत्तपौरुषञ्चकियत्तव ॥१६

सत कार्मु कमारोप्यकोपताम्रविलोचनः ।
श्रविक्षिदस्त्रजग्राहकालस्यमुनिपुङ्गवः ॥१७
ततोज्वालापरीवारमनिसघ्नमुत्तमम् ।
कालास्त्रतुमहावीर्य्यंयोजयामासकार्मु के ॥१८
ततश्चुक्षोभजगतीसवर्त्तास्त्रप्रतापिता ।
साब्धिपर्वताखिला विप्रकालस्यास्त्रेसमुद्यते ॥१६
कालास्त्रमुद्यतपिश्रामरुत्त सोऽपिवीक्ष्यतत् ।
प्राहोच्चैरस्त्रमेतन्मेदुष्टशास्तिसमुद्यतम् ॥२०
नत्वद्वधायकालास्त्रमयिमु चतिकिमवान् ।
स्वधर्मचारिरिगसुतेसदैवाज्ञाकरेतथ ॥२१

मार्कण्डेय जी ने कहा—पिता के द्वारा बारम्बार निषेध किये जाने पर भी मरुत ने जब अस्त्र का परित्याग नहीं किया तब अवीक्षित ने उनसे पुनः कहा ॥१४॥ ये नाग भयभीत होकर मेरी शरण को प्राप्त हुए मेरे द्वारा निवारण किये जाने पर भी तुम इनकी हिंसा में प्रवृत्त हो, इसलिए मैं इसका प्रतिकार करूँगा ॥१५॥ पृथ्वी पर एकमात्र तुम्हीं अस्त्र विज्ञाता नहीं हो, मैंने भी अनेक अस्त्र प्राप्त किये हैं, मेरे सामने तुम्हारा पौरुष नगण्य है ॥१६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! अवीक्षित ने ऐसा कह कर क्रोध से ताम्रवर्ण नेत्र कर धनुष उठा कर कालास्त्र ग्रहण किया ॥१७॥ ज्वाला से परिपूर्ण शत्रुओं के नाश करने वाला वह श्रेष्ठ कालास्त्र धनुष पर चढ़ाया ॥१८॥ हे ब्रह्मन् ! मरुत के संवर्त्तकास्त्र से तप्त हुए पर्वत एवं समुद्र से युक्त सम्पूर्ण विश्व कालास्त्र के संधान से क्षोभ को प्राप्त हुआ ॥१९॥ मरुत भी धनुष पर चढ़ाये हुए उस कालास्त्र को देख कर उच्च स्वर में बोले—मेरा संवर्त्तकास्त्र दुष्टों का दमन करने के लिए तत्पर हुआ है ॥२०॥ वह आपके हनन के लिए नहीं है, तो फिर सदा सत्पथ का आश्रय लेने वाले और अपनी आज्ञा-पालन में तत्पर रहने वाले पुत्र के प्रति आप इस कालास्त्र को क्यों छोड़ते हैं ॥२१॥

मयाकार्यमहाभागप्रजानापरिपालनम् ।
रक्षवंशप्रियनेटूरमान्मद्वधायास्त्रमुद्यतम् ॥२२

शरणागतसंत्राणंकर्तुं व्यवसिताबयम् ।
तस्यव्याघातकर्त्तात्वंनमेजीवन्विमोक्ष्यसे ॥२३
मांवाहत्वास्त्रवीर्येणजहिदुष्टानिहोरगान् ।
त्वांवाहत्वाऽहमस्त्रेणरक्षिष्यामिमहोरगान् ॥२४
धिक्तस्यजीवितंपुंसःशरणार्थिनमागतम् ।
योनार्त्तमनुगृह्णासिवैरिपक्षमपिध्रुवम् ॥२५
क्षत्रियोऽहमिमेभीताःशरणंमामुपागताः ।
अपकर्त्तात्वमेवैषांकथंवध्योनमेभवान् ॥२६
मित्रंवाबान्धवोवाऽपिपितावायदिवागुरुः ।
प्रजापालनविघ्नायंयोहन्तव्यःसभूभृता ॥२७
सोऽहन्तेप्रहरिष्यामिनक्रोद्धव्यंत्वयापितः ।
स्वधर्मःपरिपाल्योमेनास्तिक्रोधस्तवोपरि ॥२८

हे महाभाग ! प्रजा-पालन ही मेरा परम कर्त्तव्य है, फिर आप मेरे संहार के लिए इस प्रकार के अस्त्र को क्यों प्रयुक्त करते हैं ॥२२॥ अवीक्षित बोले–मैंने शरणागतों की रक्षा का दृढ़-निश्चय किया है, तुम उस कार्य में विघ्न उपस्थित करते हो इसलिए तुम मेरे जीवित रहते रक्षा नहीं प्राप्त कर सकते ॥२३॥ इस काल या तो तुम्हीं मुझे अस्त्र-बल से मार-कर दुष्ट नागों को मार डालो या मैं ही अस्त्र की सहायता से तुम्हारा वध करके इन सर्पों की रक्षा करूँगा ॥२४॥ जो शत्रु-पक्ष के मनुष्य भी आर्त्त होकर शरण ग्रहण करें उनकी रक्षा न करने वाले पुरुष के जीवन को धिक्कार है ॥२५॥ मैं क्षत्रिय हूं, भयभीत होकर मेरी शरण में आये हैं और तुम्हीं इनका अपकार करते हो, इसलिये तुम मेरे द्वारा मारे जाने योग्य क्यों नहीं हो ॥२६॥ मरुत्त बोले—मित्र, बन्धु, पिता अथवा गुरु भी यदि प्रजा के पालन में विघ्न उपस्थित करे तो राजा के द्वारा वध किये जाने के योग्य है ॥२७॥ इसलिए हे पिता ! मैं आप पर जो प्रहार करूँ, उससे आप क्रोधित न हों, मैं अपने धर्म के पालन के लिये ही ऐसा करने को तत्पर हुआ हूँ। यह मेरा क्रोध आपके प्रति नहीं है ॥२८॥

ततस्तौ निश्चितौ दृष्ट्वा परस्परवधं प्रति ।
अभ्युपेत्यान्तरे तस्थुर्मुनयो भार्गवादयः ॥२९
ऊचुश्चैनं न मोक्तव्यस्त्वयास्त्रं पितरं प्रति ।
त्वया चनाय हन्तव्य पुत्र प्रख्यातचेष्टितः ॥३०
मया दुष्टा निहन्तव्या मन्तोरक्ष्या महीक्षिता ।
इमे च दुष्टा भुजगा कोऽपराधोऽत्र मे द्विजाः ॥३१
शरणागतसन्त्राणं मया कार्यं मयच्चमे ।
अपराध्यः सुतो विप्रा यो हन्ति शरणागतान् ॥३२
इमे वदन्ति भुजगास्त्रासलोलविलोचनाः ।
सञ्जीवयामस्तान्विप्रान्ये दष्टा दुष्टपन्नगैः ॥३३
तदलं विग्रहेणोभौ राजवर्यौ प्रसीदताम् ।
उभावपि स्थिरौ स्वप्रतिज्ञे धर्मकोविदौ ॥३४
मातुर्वीरामहाभागेत्यपुत्रमेतदभाषत ।
मद्वाक्यादेपतेपुत्रोहन्तु नागान्कृतोद्यमः ॥३५
तस्मिन्नन्नयदा विप्रास्ते जीवन्ति तदा मृता ।
सञ्जीवन्तश्चामुच्यन्ते यद्युष्मच्छरणं गताः ॥३६

मार्कण्डेय जी ने कहा—उन दोनों को परस्पर संहार करने में प्रवृत्त देख कर भार्गवादि मुनि शीघ्र आकर दोनों के मध्य खड़े हो गये ॥२९॥ और मरुत से कहा—पिता के ऊपर अस्त्र चलाना किसी प्रकार भी उचित नहीं है और अवीक्षित से कहा कि आपको भी इस श्रेष्ठकर्मा पुत्र को नष्ट करना अनुचित है ॥३०॥ मरुत बोले—हे द्विजो ! मैं राजा हूँ, दुष्टों का वध करना और शिष्ट जनों का पालन करना मेरा परम कर्तव्य है। ये नाग भी दुष्ट हैं, इसलिये इनके विषय में मेरा क्या अपराध है ॥३१॥ अवीक्षित बोले—हे विप्रो ! शरणागतों की रक्षा करना मैं अपना कर्तव्य मानता हूँ, जो पुत्र मेरे शरणागतों का वध करने को तत्पर है, वह मेरा अपराधी है ॥३२॥ ऋषि बोले—भय से चंचल नेत्र हुए भुजगों ने कहा कि जिन ब्राह्मणों को दुष्ट नागों ने डस लिया है, हम उनको जीवित कर रहे हैं ॥३३॥ इसलिये अब युद्ध की

आवश्यकता नहीं रह गई, आप दोनों ही राज-श्रेष्ठ, धर्मज्ञानी और प्रतिज्ञा-पालक हैं, आप प्रसन्न हों ।।३४।। मार्कण्डेयजी ने कहा—तभी वीरा ने आकर अपने पुत्र अवीक्षित से कहा कि मेरे कहने से ही तुम्हारा पुत्र सर्पों को नष्ट करने में तत्पर हुआ था ।।३५।। और अब जब ये मृतक ब्राह्मण जीवित हो रहे हैं, तब उसका कार्य भी सम्पन्न होगया और तुम्हारे ये शरणागत भी मुक्त हो गये ।।३६।।

सहमभ्यर्थितापूर्वमेभिःपातालसंश्रयैः ।
तन्निमित्तमयंभर्त्तामयात्रविनियोजितः ।।३७
तदेतदार्येनिवृ`त्तमुभयोरपिशोभनम् ।
ममभर्तु`श्चपुत्रस्यत्वत्पौत्रस्यार जस्यच ।।३८
ततःसंजीवयामासुस्तान्विप्रांस्तेभुजङ्गमाः ।
दिव्यैरोषधिजातैश्चविषसंहरणेनच ।।३९
पित्रोर्नंनामचरणौसततोजगतीपतिः ।
मरुत्तश्चसतंप्रीत्यापरिष्वज्येदमब्रवीत् ।।४०
मानहाभवशत्रूणांचिरंपालयमेदिनीम् ।
पुत्रपौत्रैश्चमोदस्वमाचतेसन्तुविद्विषः ।।४१
ततोद्विजैरनुज्ञातोवीरयाचनरेश्वरी ।
समारूढौरथंसाचभामिनीस्वपुरङ्गता ।।४२

भामिनी बोली—पाताल में रहने वाले इन सभी सर्पों ने पहले मुझ से अभय-याचना की थी, इसीलिए मैंने अपने स्वामी से तद्-विषयक अनुरोध किया था ।।३७।। इस समय मेरे स्वामी और पुत्र अथवा तुम्हारे पुत्र और पौत्र का यह श्रेष्ठ रीति से पूर्ण हुआ है ।।३८।। मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर सर्पों ने उन मरे हुए ब्राह्मणों का विष दिव्य औषधियों के द्वारा दूर करके उन्हें जीवित कर दिया ।।३९।। फिर राजा मरुत ने भी माता पिता के चरणों में प्रणाम किया और अवीक्षित ने भी मरुत को आलिंगन करके प्रीति-पूर्वक यह आशीर्वाद दिया ।।४०।। शत्रुओं के मान-भंजक होओ, पृथ्वी का सदा

पालन करो, पुत्र-पौत्र सहित सुख-पूर्वक समय व्यतीत करो, तुम्हारे शत्रु नष्ट हों ॥४१॥ फिर ब्राह्मणों और वीरा की आज्ञा प्राप्त कर दोनों राजा और भामिनी रथारूढ़ होकर अपने नगर को चले गये ॥४२॥

वीराऽपिकृत्वासुमहत्तपोधर्मभृतावरा ।
भर्तुं सलोकताप्राप्तामहाभागापतिव्रता ॥४३
मरुत्तोऽपिचकारोर्व्यांधर्मत.परिपालनम् ।
विनिर्जितारिषड्वर्गोभोगाश्चबुभुजेनृप. ॥४४
तस्यपत्नीमहाभागाविदर्भतनयातथा ।
प्रभावतीसुवीरस्यसौवीरीचाभवत्सुता ॥४५
सुकेशीकेतुवीर्यस्यमागधस्यात्मजाऽभवत् ।
सुतावसिन्धुवीर्यस्यमद्रराजस्यकेकयी ॥४६
केकयस्यचसैरन्ध्रीसिन्धुभर्तुर्वपुष्मती ।
चैदिराजसुताभार्यामरुत्तस्यसुशोभना ॥४७
तासांपुत्रास्तस्यचासन्भूतोऽष्टादशद्विज ।
तेषांप्रधानोज्येष्ठश्चनरिष्यत सुतोऽभवत् ॥४८
एवंवीर्योमरुत्तोऽभून्महाराजोमहाबल ।
तस्याप्रतिहतचक्रमासीद्द्वीपेषुसप्तसु ॥४९
यस्यतुल्योऽपरोराजाभूतोनभविष्यति ।
सत्यविक्रमयुक्तस्यराजेरमितौजसः ॥५०
तस्यैतच्चरितश्रुत्वामरुत्तस्यमहात्मनः ।
जन्मचाग्र्यद्विजश्रेष्ठमुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥५१

फिर धार्मिक-श्रेष्ठ परम भाग्यवती पतिव्रता वीरा देवी घोर तपस्या का आचरण करके अपने स्वामी के सालोक्य को प्राप्त हुई ॥४३॥ राजा मरुत्त ने भी छहों शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन और विभिन्न प्रकार के सुख-भोग किये ॥४४॥ विदर्भसुता प्रभावती तथा सुवीर की की पुत्री सौवीरी, मगधेश्वर केतु-वीर्य की पुत्री सुकेशा, मद्रराज सिंधुवीर्य की पुत्री केकयी, सिंधुनरेश की पुत्री सैरन्ध्री, चेदिराज की पुत्री वपुष्मती, ये

सुन्दर स्वरूप वाली ललनाऐं उनकी पत्नियाँ थीं ॥४५-४६-४७॥ हे ब्रह्मन् ! इन सब पत्नियों के गर्भ से अठारह पुत्र जन्मे थे जिनमें नरिष्यन्त नामक पुत्र ही सबसे बड़ा था ॥४८॥ महा पराक्रमी राजा मरुत ऐसे वीर्यवान् थे, सप्त-द्वीपों में उनका रथ-चक्र कहीं नहीं रुकता था ॥४९॥ महाबली, विक्रम सम्पन्न एवं अमित तेज वाले इन राजर्षि के समान अन्य कोई राजा उत्पन्न नहीं हुआ और न कोई भविष्य में होगा ॥५०॥ हे द्विजवर ! उन महात्मा मरुत का यह चरित्र सुनने से सभी पापों से मुक्ति और मरणोपरान्त श्रेष्ठ जन्म की प्राप्ति होती है ॥५१॥

११९—नरिष्यन्त चरित्र

मरुत्तचरितंकृत्स्नंभगवान्कथितंत्वया ।
तत्संततिमशेषेणश्रोतुमिच्छाप्रवर्तते ॥१
तत्संततौक्षितीशायेराज्यार्हावीर्यशालिनः ।
तानहंश्रोतुमिच्छामित्वयाख्यातान्महामुने ॥२
नरिष्यंतइतिख्यातोमरुत्तस्याभवत्सुतः ।
अष्टादशानांपुत्राणांसज्येष्ठःश्रेष्ठएवच ॥३
वर्षाणांचसहस्राणिसप्ततिदशपंचच ।
बुभुजेपृथिवींकृत्स्नांमरुत्तःक्षत्रियर्षभः ॥४
कृत्वाराज्यंस्वधर्मेणईष्ट्वायज्ञाननुत्तमान् ।
नरिष्यंतसुतंज्येष्ठमभिषिच्यययौवनम् ॥५
एकाग्रचित्तःसनृपस्तप्त्वातत्रतपोमहत् ।
आरुरोहदिवंविप्रद्युसावृत्यचरोदसी ॥६

क्रौष्टुकि बोले—हे भगवन् ! मरुत्त चरित्र का आपने विस्तार पूर्वक वर्णन किया । अब मेरी आकांक्षा उनकी संतानों के विषय में समस्त वृत्तांत श्रवण करने की है ॥१॥ हे महर्षि संततियों में जो महीपति शासन योग्य एवं

पराक्रमी वीर्यवान् थे उनका वृत्तान्त आपके मुखारविन्द से श्रवण करना चाहता हूँ ॥२॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—मरुत के अठारह पुत्र हुए जिनमें नरिष्यन्त सबसे बड़ा और श्रेष्ठ पुत्र हुआ ॥३॥ क्षत्रिय श्रेष्ठ मरुत ने सत्तर सहस्र पचह वर्ष पर्यन्त समस्त भूतल पर राज्य किया ॥४॥ धर्म के अनुसार शासन कर और सर्वश्रेष्ठ यज्ञ एवं अनुष्ठान करके वह अन्त में अपने ज्येष्ठ पुत्र नरिष्यन्त का राज्याभिषेक करके वनवास करने चले गये ॥५॥ हे द्विज ! तदुपरान्त दत्तचित्त से वन में तपस्या करते हुए पृथ्वी से यश प्राप्त करके राजा मरुत ने स्वर्ग प्राप्त किया ॥६॥

नरिष्यन्त सुत सोऽस्यचिंतयामासबुद्धिमान् ।
पितुर्वृत्तसमालोक्यतथान्येषाचभूभृताम् ॥७
अन्वयेमेमहात्मानोराजानोममपूर्वजा ।
यज्विनोधर्मतः पृथ्वीपालयामासुर्जिता ॥८
दातारश्चापिवित्तानासंग्रामेष्वनिवर्तिन ।
तेषांयश्चरितंशक्तस्त्वनुयातु महात्मनाम् ॥९
विन्तुनैपरहृतकर्मधर्म्यमाहवनादिभि ।
तदहन्तु मिच्छामितन्नास्तिकर्गोमिकिम् ॥१०
धर्मात्पालयन पृथ्वींयोगुणोत्तमहीपते ।
असम्यक्पालनात्पापीनरन्द्रोनरकंव्रजेत् ॥११
मतिवित्ते महायज्ञा रतव्यागवभूभृता ।
दानव्यचार्यविचित्रसीदतामीश्वरोगति ॥१२
माभिजात्यनवालउज्ञावेपश्चारिजनाश्रय ।
पा यनिम्नधर्मश्रमप्रामादपरायनम् ॥१३
एतत्सर्वंयथामम्यङ्मत्पूर्वं पुन्यैः कृतम् ।
पिताचमेमम्त्तेनतयातत्वेनशक्यते ॥१४

परम विद्वान् पुत्र नरिष्यन्त ने अपने पिता व अन्य दूसरे अधिपतियों के व्यवहार देखकर विचार किया ॥७॥ कि इस कुल में मेरे समस्त पूर्वज महात्मा गुणगण यज्ञ व अनुष्ठान करने वाले, महा पराक्रमी, वीर्यवान्, धनदाता

संग्राम में कभी भी मुख न मोड़ने वाले थे एवं सभी ने धर्म के अनुसार भूतल का पोषण किया था, उन महान् आत्माओं के चरित्र का अनुकरण करने की सामर्थ्य किस में होगी ? ॥८-९॥ आह्वानादि से उन्होंने जो धार्मिक कृत्य पूर्ण किये उन्हें करने की मेरी भी आकांक्षा है, परन्तु वह भी तो प्रकृत नहीं हैं, इसलिए मैं कैसे करूँ ॥१०॥ यदि नृप धर्म व न्याय पूर्वक भूतल का पालन न करे तो फिर उसमें नृप के क्या गुण हैं ? उसके गुण में वह कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि न्यायिक प्रकार से पृथिवी का पालन न करने वाला राजा पाप का भागी बनकर नरक प्राप्त करता है ॥११॥ धन युक्त होने पर नृप को दान और यज्ञ करने चाहिये, इसमें भी कोई अद्भुत बात नहीं है, राजा के लिये तो ईश्वर ही एकमात्र गति है ॥१२॥ अपने धर्म में स्थित रहने से ही राजा अपनी जाति के श्रेष्ठ व और लज्जा के कारण शत्रु के कोप और संग्राम से पीछे नहीं मुड़ता है॥१३॥ यह सब कार्य मेरे पूर्व पुरुषों और मेरे पिता मरुत्त ने जिस प्रकार किये हैं, वैसे कार्य अन्य कौन कर सकता है ? ॥१४॥

तदहंकिंकरिष्यामियत्तुतै:पूर्वजै:कृतम् ।
येयज्विनोवरादांता:संग्रामास्त्वानिवर्तिन: ॥१५
महत्संग्रामसंमर्देऽथविसंवादिपौरुषा: ।
क्रमेणाहंयतिष्यामिकस्मैतानभिसंधितुम् ॥१६
अथवातै:स्वयंयज्ञा:कृता:पूर्वजनेश्वरै: ।
अविश्रमद्भिर्नान्यैस्तुकारितास्तत्करोम्यहम् ॥१७
इतिसंचिन्त्ययज्ञंसचकारैकंनरेश्वर: ।
यादृशंनचकारान्योवित्तोत्सर्गोपशोभितम् ॥१८
द्विजानांजीवनायालंदत्त्वासुसुमहाधनम् ।
तत:शतगुणंतेषांयज्ञार्थमददान्नृप: ॥१९
गावोवस्त्राण्यलंकारंधान्यागारादिकंतथा ।
प्रत्येकमददात्तेषांसर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥२०

मेरे सभी पूर्व पुरुष श्रेष्ठ यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले, दानशील, दम-गुण युक्त तथा युद्ध से विमुख होने वाले न थे ॥१५॥ तथा युद्ध उपस्थित होने

पर शत्रुओं को अपना पराक्रम दिखाते थे, मैं इस समय ऐसा कौन कार्य करूँ, जिसे उन्होंने नहीं किया ? मैं कर्म द्वारा ही निष्काम कर्म को करूँगा ॥१६॥ अथवा जो यज्ञ मेरे पूर्व पुरुषों ने स्वयं किये थे, किसी अन्य को नहीं कराये, उन्हीं यज्ञों को मैं करूँगा ॥१७॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा ने ऐसा विचार करके विपुल धन द्वारा एक ऐसे यज्ञ का अनुष्ठान किया, जिसे पूर्व में कोई भी नहीं कर सका था ॥१८॥ उस यज्ञ में उन्होंने ब्राह्मणों को अत्यधिक धन प्रदान किया और उसमें जो गौ सौ गुना धन-दान किया ॥१९॥ पृथिवी पर जितने भी ब्राह्मण थे, उनमें से प्रत्येक को उन्होंने गौ, वस्त्र, अलंकार, घर, धान्य आदि प्रदान किया था ॥२०॥

ततस्तनयदा यज्ञ प्रारब्धो भूभुजापत ।
प्रारब्धे स मखे यष्टु तदा नालभत द्विजान् ॥२१
यान्यान्वृणोति स नृपो विप्रानार्त्विज्यकर्मणि ।
ततस्ते पूर्वयज्ञाय वयमस्य प्रदीक्षिता ॥२२
अन्यवरयवद्वित्त त्वयास्मात्र विसर्जितम् ।
तस्यातानाभिनियजपुहस्त स्वनृपतत्यम् ॥२३
नचापश्यदिवजा विप्रान्दाशपक्षितीश्वर ।
ऋत्विक्त्वे न दाक्षायन् मदामुपराक्रम ॥२४
तथापि जगृहुर्नैव धनमभूतमदिशः ।
द्विजायदा तु भूपालस्तानिनिगगादइदमब्रवीत् ॥२५
अहानि शाभनपृच्छाय द्विप्रानाधन कत्विज् ।
मदाभनच्चयत्वाकोऽत्रिफलायमयज्ञिन ॥२६
नाविजा नृत्वरश्चित्र जमानोऽनिवाजन ।
द्विजानानननादानददगामप्रतीच्छत ॥२७

जब राजा ने पुनः यज्ञानुष्ठान किया तब उन्हें कोई भी ब्राह्मण यज्ञ कराने वाला प्राप्त नहीं हुआ ॥२१॥ उन्होंने जिस-जिस को भी ऋत्विक् रूप में ग्रहण करना चाहा उसी-उसी ने कहा कि मैं यज्ञ के लिये अन्यत्र वरण किया जा चुका हूँ ॥२२॥ आप किसी अन्य का वरण कर लें हे राजन् ! आप

आपने यज्ञ में हमें जितना धन दिया, वह अनेकानेक यज्ञों में भी समाप्त नहीं हो सका ॥२३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—सम्पूर्ण पृथिवी के राजा होकर भी जब उन्हें ऋत्विक् बनने के लिये कोई ब्राह्मण न मिला, तब वह बहिर्वेदी में दान करने को उद्यत हुए ॥२४॥ फिर भी धन से युक्त घर का दान ब्राह्मणों ने ग्रहण नहीं किया, जब राजा दान करने में सफल नहीं हुए और उनका श्रम व्यर्थ गया तब वे अत्यन्त दुःखित होकर सोचने लगे ॥२५॥ पृथिवी में कहीं कोई भी इस समय धनहीन ब्राह्मण नहीं है यह अत्यन्त संतोष की बात है, परन्तु यज्ञानुष्ठान के बिना मेरा मेरे पास राजकोष का होना सार्थक नहीं है, यही कष्ट का कारण है ॥२६॥ सभी ब्राह्मण इस समय स्वयं ही यज्ञ कार्य में प्रवृत्त हैं, इसलिए ऋत्विक् होने में कोई ब्राह्मण सहमत नहीं है, इस समय वह स्वयं ही दान कर रहे हैं, इसलिये मेरा दान स्वीकार नहीं करते ॥२७॥

ततःकांश्चिद्विजान्भक्त्याप्रणिपत्यपुनःपुनः ।
स्वयज्ञेऋत्विजश्चक्रेतेप्रचक्रुर्महामखम् ॥२८
अत्यद्भुतमिदंचासीद्यदातस्यमहीपतेः ।
सयज्ञोभूत्तदापृथ्व्यांयजमानोऽखिलोजनः ॥२९
द्विजन्मनामभून्नासीत्सदस्यस्तत्रकश्चन ।
यजमानाद्विजाःकेचित्केचित्तेषांतुयाजकाः ॥३०
नरिष्यंतोनरपतिरियाजसयदातदा ।
तत्प्रदातुर्धनैर्यागंकुर्युःपृथ्व्यामशेषतः ॥३१
प्राच्यांकोटचस्तुयज्ञानामसन्नष्टादशाधिकाः ।
प्रतीच्यांसप्तवैकोटचोदक्षिणस्यांचतुर्दश ॥३२
उत्तरस्यांचपंचाशदेककालंतदाभवन् ।
मुनेब्राह्मणयज्ञानांनरिष्यंतोयदाऽयजत् ॥३३
एवंसराजाधर्मात्मानरिष्यंतोऽभवत्पुरा ।
मरुत्ततनयोविप्रविख्यातबलपौरुषः ॥३४

मार्कण्डेय जी ने कहा—फिर बारम्बार परम भक्ति और प्रणाम पूर्वक उन्होंने कोई ब्राह्मणों को अपने यज्ञ में ऋत्विक् होने को सहमत कर लिया और

तब उन ब्राह्मणों ने उस महायज्ञ का सम्पादन किया ।।२८।। यह अत्यन्त विस्मय की बात थी कि राजा द्वारा सम्पादित उस महायज्ञ में सभी ब्राह्मण स्वयं ही यजमान हुए ।।२९।। उस यज्ञ में कोई सभासद नहीं हुआ था, ब्राह्मणों में से ही कोई स्वयं यजमान और कोई याजक हुआ ।।३०।। जब राजा नरिष्यन्त ने यज्ञ किया तब उन्हीं के धन से ब्राह्मणगण अनेक यज्ञों के अनुष्ठान में प्रवृत्त हुए थे उस समय अट्ठारह करोड़ से भी अधिक यज्ञ किये गये, पश्चिम में सात करोड़, दक्षिण में चौदह करोड़ ।।३१-३२।। तथा उत्तर में पचास करोड़ यज्ञ हुए, ब्राह्मणों के सभी यज्ञ एक ही अवसर में सम्पन्न हुए ।।३३।। हे महान् ! पुराकाल में विख्यात बली एवं पराक्रमी मरुत्त पुत्र नरिष्यन्त ऐसे धर्मज्ञ थे ।।३४।।

१२०—दम चरित्र (१)

नरिष्यतस्यतनयोदुष्टारिदमनोदमः ।
शक्रस्येवबलतस्यदयाशीलमुनेरिव ।।१
बाभ्रव्यामिन्द्रसेनायाराजञ्जातस्यभूभृत ।
नववर्षाणिजठरेस्थित्वामातुर्महायशा ।।२
यद्ग्राहयामासदममातरजठरेस्थित: ।
दमशीलश्चमविताथतश्चायनृपात्मज ।।३
ततस्त्रिकालविज्ञानःमहितस्यपुरोहित. ।
दमइत्यकरोन्नामनरिष्यतसुतस्यतु ।।४
सदनांराजपुत्रस्तुधनुर्वेदमशेषत ।
जगृहेसुरराजम्यसकाशाद्वृषपर्वण ।।५
दुन्दुभेर्दैत्यवर्य्यस्यतपोवननिवासिनः ।
सकाशाज्जगृहेशस्त्रमस्त्रग्राममशेषतः ।।६
शक्तेःसकाशाद्वेदांश्चवेदाङ्गान्यखिलानिच ।
तथार्ष्टिषेणाद्राजर्षेर्जगृहेयोगमात्मवान् ।।७

मार्कण्डेय जी ने कहा—राजा नरिष्यन्त के पुत्र दम हुए, वे इन्द्र के समान बली, मुनि के समान दयावान् और शीलवान् तथा शत्रुओं का दमन करने में समर्थ थे ॥१॥ बभ्रु की पुत्री इन्द्रसेना के जठर से बभ्रु नरिष्यन्त के वीर्य से उत्पन्न हुए, यह नौ वर्ष पर्यन्त माता के गर्भ में ही रहे ॥२॥ इसके गर्भ में स्थित रहने के समय माता को इन्द्रिय निग्रह पूर्वक रहना पड़ा था और यह राजकुमार भी दमशील हुए ॥३॥ यह देखकर तीनों काल के जानने वाले राज-पुरोहितों ने उनका नाम दम रखा, इस राजकुमार ने राजा वृषपर्वा से सम्पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की ॥४-५॥ तथा तपोवन में रहने वाले दैत्यवर दुंदुभि से उन्होंने समस्त अस्त्र ग्राम के प्रयोगों को संहार सहित प्राप्त किया ॥६॥ शक्ति मुनि से सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्ग और आर्ष्टिषेण से योग शिक्षा प्राप्त की ॥७॥

तंसुरूपंमहात्मानंगृहीतास्त्रंमहाबलम् ।
स्वयंवरेकृतापित्राजगृहेसुमनापतिम् ॥८

सुतादशार्णाधिपतेर्बलिनश्चारुवर्मणः ।
पश्यतांसर्वभूतानांयेतदर्थमुपागताः ॥९

तस्यांचसानुरागोऽभून्मद्रराजस्यवैसुतः ।
सुमनायांमहानादोमहाबलपराक्रमः ॥१०

तथाविदर्भाधिपतेःपुत्रःसंक्रन्दनस्यच ।
वपुष्माञ्जपुत्रश्चमहाधनुरुदारधीः ॥११

तेतदातंवृतंदृष्ट्वादुष्टारिदमनंदमम् ।
मन्त्रयामासुरन्योऽन्यंतत्रानङ्गविमोहिताः ॥१२

एतामस्यबलात्कन्यांगृहीत्वारूपशालिनीम् ।
गृहंप्रयामस्तस्येयमस्माकंयंग्रहीष्यति ॥१३

भर्तृबुद्ध्यावरारोहास्वयंवरविधानतः ।
तस्येच्छयानोभवित्रीभार्याधर्मोपपादिता ॥१४

अथनेच्छतिसाकञ्चिदस्माकंमदिरेक्षणा ।
ततस्तस्यभवित्रीसायोदमंवातयिष्यति ॥१५

दशार्णाधिपति चारुवर्मा की कन्या सुमना ने अपने पिता के द्वारा स्वयंवर किये जाने पर, महाबली महात्मा दम को ही अपना पति बनाया ॥८-९॥ मद्रराज के पुत्र महानन्द, विदर्भ राज के पुत्र वपुष्मान् तथा महाधनु नामक राजपुत्र ने उस सुमना की कामना की थी ॥१०-११॥ परन्तु शत्रुओं का दमन करने वाले 'दम' को राजकन्या ने वरण किया, यह देखकर वह राजकुमार परस्पर विचार करने लगे ॥१२॥ हम इस रूपवती राजकुमारी को इससे बल पूर्वक छीन कर ले जायेंगे ॥१३॥ इसके पश्चात् यह राजकुमारी स्वयंवर की विधि से हममें से जिसे चाहे स्वेच्छापूर्वक वरण करे, तब यह उसी की धर्म से उपलब्ध पत्नी मानी जायगी ॥१४॥ यदि यह हममें से किसी को भी ग्रहण नहीं करेगी तो जो इस का वध कर देगा, यह उसकी पत्नी होगी ॥१५॥

इत्येवं निश्चयं कृत्वा त्रयस्ते पार्थिवनन्दनाः ।
जगृहुस्तां सुचार्वङ्गीं दमपार्श्वानुवर्तिनीम् ॥१६
ततः केचिन्नृपास्तत्र तत्पक्षा विचुक्रुशुः ।
चुक्रुशुश्चापरे भूपाः केचिन्मध्यस्थतां गताः ॥१७
ततो दमस्तान्भूपालानवलोक्य समन्ततः ।
अनाकुलमना वाक्यमिदमाह महामुने ॥१८
भो भूपा धर्मकृत्योऽयं यद्वदन्ति स्वयंवरम् ।
दशार्णपतिना भूपाः कृतमस्मिन्स्वयंवरे ।
अधर्मो वाऽथवा धर्मो यदभिर्हृतेयं बलात् ॥१९
यद्यधर्मो न मे राज्ञामन्यभार्या भविष्यति ।
धर्मोऽथान्यदलप्राणैर्यदयन्तरिलघने ॥२०
ततो दशार्णाधिपतिश्चारुवर्मा नराधिप ।
निशम्यानार्यितस्तास्मद प्राह महामुने ॥२१

मार्कण्डेयजी ने कहा—उन तीनों राजकुमारों ने ऐसा विचार करके दम के पार्श्व में बैठी हुई उस राजकुमारी का हरण कर लिया ॥१६॥ उस समय दम पक्षीय राजाओं ने उनकी निन्दा और भर्त्सना की, बहुत से राजा परस्पर क्रोधित हुए और बहुत से तटस्थ रहे ॥१७॥ फिर अपने चारों ओर राजाओं को चिन्त

देखकर दम ने व्याकुलता पूर्वक कहा ॥१८॥ दम बोले—हे राजाओ ! जिस स्वयंवर को धर्म कार्य समझा जाता है. वह यथार्थ में धर्म है अथवा अधर्म है ! इन्होंने स्वयंवर द्वारा प्राप्त हुई कन्या का जो हरण बलपूर्वक किया है ॥१९॥ तो यदि स्वयंवर धर्म-कार्य नहीं है तो अवश्य ही यह अन्य की पत्नी बने, परन्तु यदि आप इसे धर्म कहते हो, तो शत्रु से तिरस्कृत हुए इस शरीर को प्राण रखने की क्या आवश्यकता है ? फिर दशार्णाधिपति चारुवर्मा ने सभाभवन को शब्द रहित कराते हुए कहा ॥२१॥

दमेनयदिदं प्रोक्तं धर्माधर्माश्रितंनृपाः ।
तद्वदध्वंयथाधर्मोममास्यचनलुप्यते ॥२२
ततःकेचिन्महीपालास्तमूचुर्वसुधाधिपम् ।
परस्परानुरागेणगान्धर्वोविहितोविधिः ॥२३
क्षत्रियाणांपरमयंनविट्शूद्रद्विजन्मनाम् ।
दममाश्रित्यनिष्पन्नःसचास्याद्दुहितुस्तव ॥२४
इतिधर्मादिमस्यैषादुहितातवपार्थिव ।
योऽन्यथावर्त्ततेमोहात्कामात्मासम्प्रवर्त्तते ॥२५
तथाऽपरेतदाप्रोचुर्महात्मानोहिभूभृताम् ।
पक्षेयेभूभृतोविप्रदशार्णाधिपतिवचः ॥२६
मोहात्किमाहुर्धर्मोऽयंगान्धर्वक्षत्रजन्मनः ।
नयेप्रशास्तानान्योहिराक्षसःशस्त्रजीविनाम् ॥२७
बलादिमांयोहरतिहत्वातुपरिपन्थिनः ।
तस्यैषास्याद्राक्षसेनविवाहेनावनीश्वराः ॥२८

हे राजाओ ! दम ने धर्म-अधर्म विषयक जो बात कही है, उस पर आप अपनी सम्मति दीजिये, जिससे आप धर्म से च्युत न हों ॥२२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब अनेक राजा उनसे बोले कि परस्पर की प्रीति से गांधर्व विवाह का विधान है ॥२३॥ यह विवाह क्षत्रियों के लिये उत्तम है, ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र के लिये नहीं, आपकी इस कन्या का विवाह उक्त विधान से दम के साथ ही सम्पन्न होगया है ॥२४॥ इसलिये हे राजन् ! आपकी पुत्री दम की

ही पत्नी हुई, परन्तु कामासक्त मनुष्य ही मोह के वशीभूत होकर इसका विरोध करते हैं ॥२५॥ इसके पश्चात् विरोध पक्ष के राजाओं ने दशार्णाधिपति से इस प्रकार कहा—॥२६॥ मोह के वशीभूत हुए यह राजागण कैसी बात कर रहे हैं ? क्षत्रियों के हित में यह गान्धर्व विवाह तो है ही नहीं, अन्य विवाह भी उनके लिये प्रशस्त नहीं हैं, शस्त्रजीवियों के लिये तो केवल राक्षस विवाह ही उचित माना गया है ॥२७॥ हे राजन् ! विपक्ष को नष्ट करके इस कन्या को जो बलपूर्वक ले लेगा, राक्षस विवाह के विधान से यह उसी की भार्या होगी ॥२८॥

प्रधानतरएषोऽत्रविवाहद्वितयेमत ।
क्षत्रियाणामतोधर्मोमहानन्दादिभि कृत ॥२९
अथप्रोचु पुनर्भू पाये पूर्वमुदितानृप ।
परस्परानुरागेणजातिधर्माश्रितवच: ॥३०
सत्यशस्तोराक्षसोऽपिक्षत्रियाणापरोविधि ।
किन्त्वसौजनकस्याम्येकुमार्य्यानुमतोवर ॥३१
हृत्वातुपितृमन्यत्रबलेनह्रियतेह्रिया ।
सराक्षसोविधि प्रोक्तोनात्रभर्तृ करेस्थिता ॥३२
पश्यतासर्वभूपानामनयायद्वृतोदम ।
गान्धर्वस्येहनिष्पत्तोविवाहोराक्षसोऽत्रक ॥३३
विवाहितायाकन्यायायान्यान्वनैवविद्यते ।
कन्यायाश्चविवाहेनसम्बन्धपृथिवीश्वरा ॥३४
राक्षसेयवन्दनादमादादानुमुच्यता ।
बलितम्नैयदिनत कुर्वन्तुनतुमायुनत् ॥३५

क्षत्रियों में जब राक्षस विवाह की ही प्रमुखता है तब महानन्द आदि राजकुमारों ने धर्म का ही आचरण किया है ॥२९॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—जिन राजाओं ने पहिले परम्परागत धर्म और जाति धर्म के विषय में कहा था, उन राजाओं ने पुन कहा ॥३०॥ यह भी सत्य है कि क्षत्रियों में राक्षस विवाह को श्रेष्ठ माना गया है, परन्तु इन राजकुमारों ने तो अपने पिता की अधीनता

में 'दम' का वरण किया है ।।३१।। राक्षस विवाह वही है, जिसमें कन्या पक्ष के पिता आदि को मार कर वा घायल करके कन्या का हरण कर लिया जाय, परन्तु पति को प्राप्त हुई कन्या का हरण करने से उसे राक्षस विवाह नहीं माना जा सकता ।।३२।। सब नृपालों के सामने ही सुमना ने दम का वरण किया है, इसलिये यह विवाह गांधर्व विवाह ही है, इसमें राक्षस विवाह का विधान कौन-सा हुआ ? ।।३३।। विवाह होने पर कन्यात्व नहीं रहता, इसलिये विवाह के होने तक ही उसे कन्या समझना चाहिये ।।३४।। दम के हाथ से इस कन्या का बलपूर्वक हरण करने वाले लोग अपने बल के मद में ऐसा कर सकते हैं, परन्तु यह कोई अच्छा कार्य नहीं है ।।३५।।

तच्छ्रुत्वाऽसौदमःकोपकषायीकृतलोचनः ।
आरोपयामासधनुर्वचनंचेदमब्रवीत् ।।३६
ममाभिभार्य्यांबलिभिःपश्यतोह्रियतेयदि ।
तत्कुलेनभुजाभ्यांवाकोगुणःक्लीबजन्मनः ।।३७
धिङ्ममास्त्राणिधिक्छौर्य्यंधिक्छरान्धिक्छरासनम् ।
धिग्व्यर्थंमेकुलेजन्ममरुत्तस्यमहात्मनः ।।३८
यदिभार्य्यामिमेमूढाःसमादायबलान्विताः ।
प्रयान्तिजीवतोधिक्तांममव्यर्थमनुष्यताम् ।।३९
इत्युक्त्वातान्महीपालान्महानन्दमुखान्बली ।
अथाब्रवीत्तदासर्वान्महारिदमनोदमः ।।४०
एषातिशोभनाबालाचार्वङ्गीमदिरेक्षणा ।
किन्त्वस्यजन्मनाभार्य्यानयस्येयंकुलोद्भवा ।।४१
इतिसञ्चिन्त्यभूपालास्तथायततसंयुगे ।
यथानिर्जित्यमामेतांपत्नींकुरुत्तमानिनः ।।४२

मार्कण्डेयजी ने कहा—यह बात सुनकर दम ने क्रोध से लाल नेत्र कर अपने धनुष पर ज्या चढ़ाते हुए कहा—।।३६।। यह मेरे सामने ही मेरी पत्नी का बलपूर्वक हरण करते हैं, इसलिए मैं क्लीव ही हुआ समझो, इस प्रकार मेरे वंश के गौरव और दोनों भुजाओं में कोई गुण ही नहीं है ।।३७।। मेरे जीवित

रहते हुए यह पत्नी का हरण कर ले जाय तो मेरे शस्त्रों, बाणों और धनुष को धिक्कार है तथा महात्मा मरुत्त के वंश में उत्पन्न होने और मनुष्य बनने को भी धिक्कार है ॥३८-३९॥ शत्रुओं का दमन करने वाले महाबली दम ने ऐसा कहकर महानन्दादि के प्रति कहा ॥४०॥ हे सम्मानित राजागण ! यह सत्कुल में उत्पन्न हुई सुन्दरी बालिका जिसकी पत्नी नहीं हुई, उसका जन्म ही वृथा हुआ है ॥४१॥ यह सोचकर मुझे पराजित करके इसे अपनी पत्नी बना सकें, वैसा ही प्रयत्न संग्राम भूमि में करो ॥४२॥

इत्याभाष्यततस्तेषुशरवर्षममुञ्चत ।
छादयन्पृथिवीपालांस्तमसेवमहीरुहान् ॥४३
तेऽपिवीरामहीपाला शरशक्त्यष्टिमुद्गरान् ।
मुमुचुस्तत्प्रयुक्तांश्चदमश्चिच्छेदलीलया ॥४४
तेऽपितत्प्रहितान्बाणांस्तेषांचासीच्छरोत्करान् ।
चिच्छेदपृथिवीशानानरेन्द्रात्मजोमुने ॥४५
वर्तमानेतदायुद्धेदमस्यक्षितिपात्मजैः ।
प्रविवेशमहानन्दःखड्गपाणिस्ततोदम ॥४६
तमायान्तंदमोदृष्ट्वाखड्गपाणिंमहामृधे ।
मुमोचशरवर्षाणिवर्षाणीवपुरन्दर ॥४७
तदस्त्राणिततस्तानिशरजालानितत्क्षणात् ।
महानन्दप्रचिच्छेदखड्गेनान्यानवञ्चयत ॥४८
ततोरोषात्समाप्लुत्यदमस्यन्दनात्स्वयम् ।
महानन्दोमहावीर्योदमेनयुयुधेमह ॥४९

ऐसा कहकर दम ने उन राजाओं पर आच्छादन पूर्वक बाण वृष्टि की ॥४३॥ उन राजाओं ने भी बाण, शक्ति, ऋष्टि, मुग्दर आदि इन पर चलाये, परन्तु इन्होंने उन सब शस्त्रास्त्रों को लीलापूर्वक ही नष्ट कर दिया ॥४४॥ हे मुने ! उस समय सब राजा दम के अस्त्रों को और दम भी उनके अस्त्रों को काटने लगे ॥४५॥ दम और उन राजपुत्रों में मध्य इस प्रकार संग्राम हो ही रहा था, तभी हाथ में खड्ग ग्रहण किये हुए महानन्द उनके सामने हुआ ॥४६॥

उसे हाथ में खड्ग लिये आता देखकर, इन्द्र द्वारा जल वृष्टि करने के समान, दम ने बाणों की वर्षा आरम्भ की ॥४७॥ महानन्द ने उनके सब अस्त्रों और बाणों को अपने खड्ग से काट डाला, उसने यह कार्य इस चतुराई से किया कि अन्य राजागण उसे देख भी न सके ॥४८॥ फिर क्रोध में भरा हुआ वह महानन्द दम के रथ पर चढ़कर उसके साथ लड़ने लगा ॥४९॥

बहुधायुध्यमानस्यमहानन्दस्यलाघवात् ।
दमोमुमोचहृदयेशरंकालानलप्रभम् ॥५०
तंलग्नमात्मनोरकृष्यविभिन्नेनततोहृदा ।
दमंप्रतिविचिक्षेपमहानन्दोऽसिमुज्ज्वलम् ॥५१
पतन्तंचैनमुल्काभंशक्त्याचिक्षेपतंदमः ।
शिरोवेलसपत्रेणमहानन्दस्यचाच्छिनत् ॥५२
तस्मिन्हतेमहानन्देप्राचुर्य्येणपराङ्मुखाः ।
बभूवुःपार्थिवास्तथौवपुष्मान्कुण्डिनाधिपः ॥५३
दमेनयुधेचासौवलगर्वमदान्वितः ।
दाक्षिणात्यमहीपालतनयोरणगोचरः ॥५४
युध्यमानस्यतस्योग्रं करवालंसवैलघु ।
चिच्छेदसारथेश्चैवशिरःसंख्येतथाध्वजम् ॥५५
छिन्नखड्गोगदांसोऽथजग्राहवहुकण्टकाम् ।
तामप्यस्यसचिच्छेदकरस्थामेवसत्वरः ॥५६

बहुत समय तक इस प्रकार युद्ध करते हुए दम ने उसके हृदय में कालाग्नि के समान ज्वलंत बाण छोड़ा ॥५०॥ महानन्द ने हृदय में लगे हुए उस बाण को स्वयं ही निकाला और दम पर अपने उज्ज्वल खड्ग का वार किया ॥५१॥ दम ने विद्युत् के समान गिरते हुए उस खड्ग को शक्ति द्वारा काट कर तुरन्त ही वेलसपत्र बाण के द्वारा उस महानन्द का शीश काट डाला ॥५२॥ महानन्द के समाप्त होते ही कुण्डिनाधिपति वपुष्मान् के अतिरिक्त अधिकतर नृप रण से विमुख हो गये ॥५३॥ वह राजपुत्र दाक्षिणात्य एवं अपने पराक्रम के प्रति अभिमानपूर्ण वपुष्मान् रण-क्षेत्र में दम से युद्ध करने लगा ॥५४॥ युद्ध

रोष में दम ने तुरन्त वपुष्मान् की तीक्ष्ण तलवार एवं उसके सारथी का सिर व रथ की ध्वजा काट डाली ॥५५॥ तलवार के नष्ट होने पर वपुष्मान् ने अनेक काँटों से युक्त गदा धारण की और उससे वार करने से पूर्व ही दम ने वह गदा उसके हाथों में खण्ड खण्ड कर डाली ॥५६॥

यावदन्यत्समादत्ते सवपुष्मान्वरायुधम् ।
तावच्छरेणतविद्धादमोभूमावपातयत् ॥५७
सपातितस्ततोभूमौविह्वलाङ्ग सवेपथु ।
विनिवृत्तमतियु द्धाद्वभूवक्षितिपात्मज ॥५८
तमालोक्यतथाभूतमयुयुद्धमतिमात्मवान् ।
उत्सृज्यादायसुमनासुमना प्रययौदम ॥५९
ततोदशार्णाधिपति प्रीतिमानकरोत्तयो ।
दमस्यसुमनायाश्चविवाहविधिपूर्वकम् ॥६०
कृतदारोदमस्तत्रदशार्णाधिपतेःपुरे ।
स्थित्वाऽल्पकालप्रययौसभार्योनिजमन्दिरम् ॥६१
दशार्णाधिपतिश्चासीदत्त्वानागान्तुरङ्गमान् ।
रथगोऽश्वखरोष्ट्राश्चदासीदासांस्तथाबहून् ॥६२
वस्त्रालङ्कारचापादिवरायस्करमासनम् ।
अन्यैस्तैश्चतथाभाण्डै परिपूर्णंव्ययमजंयत् ॥६३

इसके पश्चात् वपुष्मान् द्वारा सर्वोत्तम अस्त्र ग्रहण करने पर भी दम ने उस अपनी बाण वर्षा द्वारा उसको पृथ्वी पर गिरा दिया ॥५७॥ तब राज-पुत्र वपुष्मान् ने व्याकुल व कम्पित शरीर को पृथ्वी पर गिरा दिया व युद्ध की तत्परता त्याग दी ॥५८॥ दम ने उसकी ऐसी स्थिति एवं उसकी युद्ध के लिए तत्परता न देख उसे छोड़ दिया एवं आनन्दपूर्ण हृदय से सुमना को लेकर चले गये ॥५९॥ इसके पश्चात् दशार्णाधिपति ने आनन्दित चित्त होकर सुमना व दम का विवाह विधिपूर्वक सम्पन्न किया ॥६०॥ भार्या प्राप्त करके दम कुछ समय तक दशार्णाधिपति के महल में रहे, तदनन्तर पत्नी के साथ अपने गृह को चले गए ॥६१॥ उनको विदा करते समय दशार्णाधिपति ने उन्हें अनेकों हाथी,

घोड़े, रथ, गौ, खर, ऊँट, दास, दासी ॥६२॥ वस्त्र, आभूषण, धनुष आदि विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य वस्तुऐं भेंट स्वरूप एवं दानस्वरूप धन, रत्न आदि प्रदान किये ॥६३॥

१२१—दम चरित्र (२)

सतांलब्ध्वातथापत्नींसुमनांसुमहामुने ।
प्रणम्यसपितुःपादौमातुश्चक्षितिपात्मजः ॥१
साचतौश्वशुरोसुभ्रूर्नैनामसुमनातदा ।
ताभ्यांतौवतदाविप्रश्र·शीर्भिरभिनन्दितौ ॥२
महोत्सवश्चसंजज्ञे नरिष्यन्तस्यवैपुरे ।
कृतदारेचसप्राप्ते दशार्णाधिपतेपुरात् ॥३
सम्बन्धिनंदशार्णेश जितांश्चपृथिवीश्वरान् ।
श्रुत्वापुत्रेणमुमुदेनरिष्यंतोमहीपतिः ॥४
सोऽपिरेमेसुमनयामहाराजसुतोदमः ।
वरोद्यानवनोद्देशप्रासादगिरिसानुषु ॥५
अथकालेनमहतारममाणादमेनसा ।
अवापगर्भसुमनादशार्णाधिपतेः सुता ॥६
सोऽपिराजानरिष्यन्तोभुक्तभोगोमहीपतिः ।
वयःपरिणतिप्राप्यदमंराज्येऽभिषिच्यच ॥७
वनंजगामेंद्रसेनापत्नींचास्यतपस्विनी ।
वानप्रस्थविधानेनसतत्रसमतिष्ठत ॥८

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे महर्षि ! दम ने अपनी भार्या सुमना सहित आकर अपने माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया ॥१॥ एवं इसी प्रकार सुमना ने भी उन्हें प्रणाम किया । हे द्विज ! उन दोनों माता पिता ने भी आशीर्वाद प्रदान करते हुए उनका अभिनन्दन किया ॥२॥ सुमना के भार्या कै

रूप मे ग्रहण करके दम दशार्णाधिपति के महल मे आये, तो नरिष्यन्त के महल मे आनन्दोत्सव प्रारम्भ हो गया ॥३॥ नराधिपति नरिष्यन्त को दशार्णराज के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने एवं अपने पुत्र द्वारा अन्य राजाओं को हराने का वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त सन्तोष हुआ ॥४॥ इसके पश्चात् राजकुमार दम अनुपम उद्यानों, वनों, महलों एवं पर्वत आदि स्थानों पर भार्या सुमना के साथ विहार करने लगे ॥५॥ इस प्रकार विहार करते हुए कुछ समय पश्चात् दशार्ण सुता ने गर्भ धारण किया ॥६॥ उसी काल नृपेन्द्र नरिष्यन्त ने वैभव का उपभोग कर अपनी वृद्धावस्था को देखकर दम को राज्याभिषेक कर दिया ॥७॥ अपनी भार्या रानी इन्द्रसेना को साथ लेकर वन में प्रस्थान कर गये एवं वहाँ विधिपूर्वक वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करने लगे ॥८॥

दाक्षिणात्य सुदुर्वृत्त संक्रन्दनसुतावने ।
वपुष्मान्समृगान्हन्तुययावल्पपदानुग ॥९
सतद्दृष्ट्वानरिष्यन्तंतापसंमलपाङ्किनम् ।
इन्द्रसेनाञ्चतत्पत्नीतपसातिसुदुर्बलाम् ॥१०
पप्रच्छकस्त्वंभोविप्र:क्षत्रियोवावनचर: ।
वानप्रस्थमनुप्राप्तोवैश्यो[वा]मम[क]थ्यताम् ॥११
सतामौनव्रतीभूपोनहि[कि]ञ्चात्तरददौ ।
इन्द्रसेनाचतत्सर्वंमाच[ष्टे]स्मयथातथम् ॥१२
ज्ञात्वानश्चनरिष्यन्तंवपु[ष्]मानिपतरंरिपो ।
आसोऽसीनिवद[न्]चोपाज[ज]टामुपरिगृह्यच ॥१३
हाहेतिचन्द्रसेनायाम्द्रय[मा]नाव्यगद्गदम् ।
चकारकोपान्नतु ववाव[ध] चेदमुवाचह ॥१४

एक बार दाक्षिणात्य नृप [स]ंक्रन्दन का दुराचारी पुत्र वपुष्मान् अपने कुछ अनुचरों के साथ उस वन में [मृगया]खेट के लिए आया ॥९॥ वहाँ वानप्रस्थी नरिष्यन्त की मलिन देह व निर्बला[ह]ुई इन्द्रसेना को देखकर ॥१०॥ वपुष्मान् उनसे पूछा तुम कौन हो ? ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य में से किस जाति के हो वानप्रस्थी होकर वनवासी हुए हो, यह मुझे बताओ ॥११॥ राजा मौन

व्रत में थे, इसलिए इसका उत्तर नहीं दे सके. परन्तु, इन्द्रसेना ने सब बात यथा-वद् बतादी ॥१२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—वपुष्मान् ने उन्हें शत्रु का पिता नरिष्यन्त जान कर "पा गया" कहते हुए क्रोधपूर्वक उनकी जटा पकड़ली ॥१३। उस समय इंद्रसेना हाहा कर रोने लगी, तभी दुराचारी ने म्यान से तलवार निकालकर कहा ॥१४॥

> निर्जित:समरेयेनयेनमेसुमनाहृता ।
> दमस्यतस्यपितरंहनिष्येऽवतुतन्दमः ॥१५
> येनाखिलमहीपालपुत्रा:कन्यार्थमागता: ।
> अवधूताहनिष्येऽहंपितरंतस्यदुर्मतेः ॥१६
> यौवनारुश्वरूपेषुमदोयस्यदुरात्मनः ।
> सदमोवारयत्वेषहन्मितस्यरिपोर्गुरुम् ॥१७
> इत्युक्त्वासदुराचारोवपुष्मानवनीपतिः ।
> क्रंदन्त्यामिन्द्रसेनायांशिरश्चिच्छेदतस्यच ॥१८
> ततोधिग्धिङ्मुनिजनाश्चान्येचवनवासिनः ।
> तमूचुःसचतंहत्वाजगामस्वपुरंवनात् ॥१९
> गतेतस्मिन्विनिश्चस्यसेन्द्रसेनावपुष्मति ।
> प्रेषयामासपुत्रस्यसमीपंशूद्रतापसम् ॥२०

जिसने मुझे युद्ध में हरा दिया था और जो मेरी सुमना का हरण कर ले गया है उस दम के पिता का मैं वध करता हूं, वह दम यहां आकर इसकी रक्षा करे ॥१५॥ कन्या की कामना से सब राजकुमारों को जिसने अपमानित किया, उस दम के पिता को आज मैं मार रहा हूं ॥१६॥ जो योद्धाओं के दमनकारी स्वभाव वाला है, मैं आज उस दुरात्मा शत्रु के पिता को विनष्ट करता हूं. दम आकर इसको बचावे ॥१७॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इतना कह कर दुरात्मा राजा वपुष्मान् ने रुदन करती हुई इन्द्रसेना के समक्ष नरिष्यन्त का मस्तक छिन्न कर दिया ॥१८॥ यह देखकर मुनिगण और अन्य सब वन-वासी उसे धिक्कार देने लगे और वह भी नरिष्यन्त को इस दशा में छोड़कर

अपने नगर को चला गया ॥१६॥ जब वपुष्मान् चला गया, तब इन्द्रसेना ने दीर्घ विश्वास लेकर एक वृद्ध तपस्वी को अपने पुत्र के पास भेजा ॥२०॥

गच्छेदंथाशुमेपुत्रदमंब्रूहिवचोमम ।
अभिज्ञोह्यसिमद्वृत्तं वृत्तान्तंप्रोच्यतेऽत्रकिम् ॥२१
तथापिवाच्य पुत्रोमेयद्ब्रवीम्यतिदुःखिता ।
लघनामीदृशीप्राप्ता विलोक्यतामहीपते ॥२२
मद्भर्ताऽधिकृतोराजाचतुर्णांपरिपालकः ।
त्वमाश्रमाणांवियुक्त शापसान्यव्ररक्षसि ॥२३
भर्त्तामनरिष्यन्तस्तापसस्तपसिस्थित ।
विलपन्त्यास्तथानाथोयथानासिनथात्वयि ॥२४
व्यापृष्यकेशेपुवलादपराधविनाततः ।
हतोवपुष्मतात्याप्तिमितितेभूपतिर्गता ॥२५
एवम्थितेतक्रियतांयथाधर्मोनलुप्यते ।
तथाधनैवयक्तव्यमाताहतापमीष्त ॥२६
पितावृद्धस्तपस्वीचनापराधनेदूषित ।
निहतोयेनयत्तस्यपतंम्यतद्विचिन्त्यताम् ॥२७
मन्तितैमन्त्रिणोवीरा सर्वशास्त्रार्थवेदिन ।
तैं सहालोच्ययन्याय्यमेव भूतेवुरच्यतत् ॥२८

इन्द्रसेना ने उससे कहा कि तुम शीघ्र ही हमारे पुत्र दम के पास जाकर इधर का समाचार कहो, तुम सब वृतान्त को भले प्रकार जानते हो, इसलिए तुम्हें बताने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥२१॥ फिर भी राजा का ऐसा अपमान उपस्थित देखकर और अत्यन्त दुःखित होकर मैं जो कह रही हूँ, वह सब मेरे पुत्र से कहना ॥२२॥ तुम राजा हो, चारों आश्रम के पालन कर्ता एवं स्वामी नियुक्त हुए हो, फिर भी तुम तपस्वियों की रक्षा करते, क्या यह उचित है ? ॥२३॥ मेरे पति नरिष्यन्त यहाँ तप करते थे, परन्तु, तुम रक्षा करने वाले के होते हुए भी मेरे द्वारा विलाप करते करते वपुष्मान् ने उनका निरपराध ही वध कर दिया है। तुमने राजा होकर पतिद्धि उपलब्ध की है ॥२४॥२५॥

इस दशा में जिससे धर्म लुप्त न हो वैसा ही कार्य करो, इससे अधिक कहना उचित नहीं समझता ॥२६॥ तुम्हारे पिता प्रथम तो वृद्ध थे, इस पर भी तपस्वी और सर्वथा निरपराधी थे, ऐसी अवस्था में उनकी हत्या की गई है। इस विषय में अपने कर्त्तव्य का भलीभांति निश्चय करो ॥२७॥ तुम्हारे वीर मन्त्री शास्त्र ज्ञाता हैं उनसे परामर्शपूर्वक जो कर्त्तव्य हो वही करना चाहिए ॥२८॥

नास्माकमधिकारोऽस्तापसानांनराधिप ।
कुरुष्वैतदितीत्यंत्वमेवंभूपतिभाषितम् ॥२६
विदूरथस्यजनकोयवनेनयथाहतः ।
तथायंतवपुत्रस्यकुलंतेनविनाशितम् ॥३०
जम्भस्यासुरराज्यस्यपिताइष्टोभुजङ्गमैः ।
तेनाप्यखिलपातालवासिनःपन्नगाहताः ॥३१
पराशरेणपितरंशक्तितंरक्षसात्हृतम् ।
श्रुत्वाऽग्नौपातितंकृत्स्नंरक्षसामभवत्कुलम् ॥३२
अन्यस्यापिस्ववंशस्यलंघनाक्रियतेहिया ।
तांनालक्षश्रियःसोढुंकिंपुनःपितृमारणम् ॥३३
नायंपितातेनिहतोनास्मिन्क्षस्त्रंनिपातितम् ।
त्वामत्रनिहतंमन्येत्वयिशस्त्रंनिपातितम् ॥३४

हे राजन् ! तुम्हारे पिता ने मरते समय कहा है कि मैं तपस्वी हूं, इस विषय में अनधिकारी हूं, इसलिए तुम्हें ही इसका प्रतिकार करना है ॥२६॥ हे पुत्र ! जिस प्रकार विदूरथ के पिता का यवन ने वध किया था, वैसे ही वपुष्मान ने तुम्हार पिता का वध करके कुल को नष्ट किया हैं ॥३०॥ जब दैत्यराज जंभ के पिता को सर्पों ने काट लिया था, तब जंभ ने पातालवासी सभी नागों को निहत किया था ॥३१॥ और उस असुर के द्वारा पिता शक्ति की मृत्यु हुई सुनकर पराशर जी ने सम्पूर्ण असुर-वंश को अग्नि में दग्ध कर दिया था ॥३२॥ जब क्षत्रियगण अपने कुल के किसी भी व्यक्ति का अपमान सहन नहीं कर पाते तो पिता के वध की बात का तो कहना ही क्या है ॥३३॥

मैं समझती हूँ कि तुम्हारे पिता का वध नहीं हुआ है उन पर शस्त्र नहीं चलाया गया अपितु इस प्रकार तुम्हारा ही वध हुआ है ॥३४॥

विभेत्यस्य हि कः शस्त्रं न्यस्तं येन वनौकसाम् ।
तव भूपस्य पुत्रस्य मा बिभेतु बिभेतु वा ॥३५
त्वं वैराधनायुक्तो यदस्मिंस्तत्समाचर ।
वपुष्मति महाराज सभृत्यज्ञातिबान्धवे ॥३६
इति संक्रान्तसन्देशमिन्द्रसेना विसृज्य तम् ।
पतिदेहमुपाश्लिष्य विवेशाग्निं मनस्विनी ॥३७

वन वासियों के ऊपर जो हथियार नहीं उठाता है उसका भय कौन करेगा ? अथवा उसका पौरुष ही क्या होगा ? तुम उनके पुत्र तथा पृथ्वी के पालक हो, यदि शत्रु को नष्ट करोगे तो तुम्हारा भय सभी मानेंगे अन्यथा तुम्हारे शासन में भी विघ्न उपस्थित हो जायगा ॥३५॥ हे राजन् ! ये तिरस्कार हुआ है, इसलिए भृत्यों व वपुष्मान् के प्रति तुम्हें जो करना चाहिये, वही करो ॥३६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—इन्द्रसेना ने उस तापस से यह संदेश कह कर उसे विदा किया और पति के शरीर का आलिंगन करके अग्नि में प्रवेश किया ॥३७॥

१६२—दम चरित्र (३)

इन्द्रसेनाशमाश्रान्तः समागत्याशु स तापसः ।
सभामध्ये यथापूर्वं दमाय निधनं पितुः ॥१
तापसेन समाख्याते दमस्तेन पितुर्वधे ।
क्रोधेनातीव जज्वाल हविषेवाग्निरिन्धनः ॥२
गतुः क्रोधाग्निना घोरो दह्यमानो महामुने ।
करं करेण निष्पिष्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥३

अनाथइवमेतातोमयिपुत्रेनुजीवति ।
घातितःसुनृशंसेनपरिभूयकुलंमम ।।४
तापंकरोम्यहंकिवाप्येषक्लैव्यात्क्षमाम्यहम् ।
दुर्वृत्तशांतोशिष्टानांपालनेऽधिकृतात्वयम् ।।५
पितरंचापिनिहतंदृष्ट्वाजीवन्तिशत्रवः ।
तत्किमेतेनबहुनाहातातेतिचकिंपुनः ।।६
विलापेनात्रयत्कृत्यंतदेवोऽत्रकरोम्यहम् ।
यद्यहंतस्यरक्तेनदेहोत्थेनवपुष्मतः ।
नकरोमिगुरोस्तृप्तितत्प्रवेक्ष्येहुताशनम् ।।७
तच्छोणितेनोदककर्मतस्यामांसेनसम्यग्द्विजभोजनंच ।
कुर्यांपितुस्तस्यचपिंडदानंचेत्प्रवेक्ष्यामिहुताशनंतत् ।।८

मार्कण्डेय जी ने कहा—इन्द्रसेना की आज्ञा से शूद्र तापस ने दम के निकट जाकर उनके पिता की मृत्यु का समाचार और रानी इन्द्रसेना ने जो कहा था, वह सब कह सुनाया ।।१।। पिता की मृत्यु का पूर्ण सम्वाद सुन कर घृताहुति से तीक्ष्ण हुई अग्नि के समान राजा दम क्रोध से लाल हो गये ।।२।। यद्यपि वह स्वभाव से धीर थे, परन्तु उस समय क्रोधाग्नि से प्रज्वलित होकर हाथ मलते हुए बोले ।।३।। मुझ पुत्र के जीवित रहते हुए उस नृशंस ने मेरे कुल के अपमान पूर्वक पिता की अनाथ के समान हत्या की है ।।४।। मैं क्रोध करूँ या क्लीवता से क्षमा कर दूँ, परन्तु, मैं दुष्टों का दमन करने और शिष्ट-जनों का पालन करने के लिये नियुक्त हुआ हूँ ।।५।। पिता का वध करने पर भी मेरे शत्रु अभी तक जीवित हैं, परन्तु इस प्रकार अधिक वार्ता से क्या लाभ है ।।६।। अब मुझे जो कर्त्तव्य है। वही करता हूँ। यदि वपुष्मान् के देह से निकले हुए रुधिर से अपने पिता का तर्पण न करूँ तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा ।।७।। यदि उसे मारकर उसके रक्त से मृत-पिता का तर्पण न करूँ और पितरों को पिंड-दान न करूँ तो मैं अग्नि में प्रविष्ट होऊँगा ।।८।।

साहाय्यमस्यासुरदेवयक्षगन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघाः ।
कुर्वंतिचेत्तानपिचास्त्रपूगैर्भस्मीकरोम्येषरपासमेतः ।।९

नोऽसुरमाधार्मिकमप्रशस्ततदाक्षिणात्यसमरेनिहत्य ।
भोक्ष्येऽततोऽहंपृथ्वीचकृत्स्नावह्निप्रवेक्ष्याम्यनिहत्यतंवा ॥१०
मृदुर्मतितापसवृद्धघातिनवनस्थगसाधुविविचित्रिदग्धगम् ।
हन्ताहमद्याखिलबन्धुमित्रपदातिहस्त्यश्वबलं समेतम् ॥११
एषोऽहमादायधनुःसखड्गोरथीतथैवाखिलसमेत्य ।
कर्मेमिवैयत्कदनमसस्ता पश्यन्तुमेदेवगणा समेता. ॥१२
याय सहायोभवितायतस्यमयासमेतस्यरणायभूय ।
तस्यैवनिःशेषकुलक्षयायसमुद्यतोऽहंनिजबाहुसैन्यः ॥१३
यदिकुलशिखरोऽस्मिन्सयुगेदेवराजः,
पितृपतिरथचोग्र दण्डमुद्यम्यकोपात् ।
धनपतिवरुणार्करक्षितुन्त यतन्ते,
निशितशरवरौघैर्घानयिष्येतयापि ॥१४
नियतमनिन्दोप काननान्मुण्डलोका,
निपतितफलभक्ष सर्वभूतेषुमैत्र ।
प्रभवतिमयिपुत्रैर्हिंसिततोयेनन त,
पिशितरुधिरतृप्तास्तस्यमन्तवद्यगृध्रा ॥१५

असुर देव दल, गन्धर्व, विद्याधर अथवा सिद्ध गण जो भी उसकी सहायता करेगा, उसे भी मैं अपने अस्त्रानल से भस्म कर डालूँगा ॥९॥ उस अतीव अधार्मिक, निन्दित, दाक्षिणात्य को युद्ध में मारकर ही सम्पूर्ण पृथ्वी को भोगूँगा अथवा उसके वध में असमर्थ होने पर अग्नि में प्रविष्ट हो जाऊँगा ॥१०॥ जिस दुर्मति ने मेरे तपोनिरत वनवासी मौनव्रती वृद्ध पिता के दान वचनों के उपरान्त भी उनकी हत्या की है, उसे मैं अभी उसके सब बन्धुओं मित्रों तथा पैदल और सवार के सहित मार डालूँगा ॥११॥ मैं अब असि और धनुष को ग्रहण करता हुआ रथारूढ़ होकर शत्रु-सेना के मध्य उपस्थित हो कर उसके संहार-कार्य में लगता हूँ। मेरा वह कृत्य सब देवगण देखें ॥१२॥ युद्ध में मेरे साथ भिड़ने पर उसका जो जो भी सहायक होगा उस उसको अपनी बाहु और सेना द्वारा कुल सहित नाश करने के लिये मैं आज तत्पर हुआ हूँ

॥१३॥ इस संग्राम में वज्रधारी इन्द्र, उग्र दंड देने वाले यम, अथवा कुवेर, वरुण और सूर्य भी यदि उसकी रक्षा का प्रयत्न करेंगे तो मैं अपने श्रेष्ठ बाणों से उनको भी नष्ट कर डालूँगा ॥१४॥ मुझ प्रभावशाली पुत्र के रहते हुए भी जिसने मेरे संयमचेता दोष रहित वनवासी केवल गिरे हुए फल से जीवन-निर्वाह करने वाले एवं सब प्राणियों के प्रति मैत्री भाव रखने वाले पिता की हत्या की है। आज उसके रक्त और मांस से गृद्ध-गण तृप्ति को प्राप्त होंगे ॥१५

१२३—वपुष्मान् बध

इतीप्रतिज्ञायतदानरिष्यंतसुतोदमः ।
कोपामर्षविवृत्ताक्षःश्मश्रु मावृत्यपाणिना ॥१
हाहतोऽस्मीतिपितरंध्यात्वादैवंविनिद्यच ।
प्रोवाचमंत्रिणःसर्वानानिनायपुरोहितम् ॥२
यदत्रकृत्यंतद्ब्रूततातेप्राप्ते सुरालयम् ।
श्रुतं भवद्भिर्यत्प्रोक्तं तेनशूद्रतपस्विना ॥३
वृद्धस्तपस्वीसनृपोवानप्रस्थव्रतेस्थितः ।
मौनव्रतधरोऽशस्त्रोमन्मात्राचेन्द्रसेनया ॥४
प्रोक्तं ससृष्टयास्वात्म्याद्याथातथ्यंवपुष्मते ।
तेनापिखड्गमाकृष्यजटांसव्येनपाणिना ॥५
धृत्वाजघानदुष्टात्मालोकनाथमनाथवत ।
मातात्रसदिश्यमांधिक्छब्दंब्रुवतीसती ॥६
गंदभाग्यंचनिःश्रीकप्रविष्टाहव्यवाहनम् ।
तमालिग्यनरिष्यंतं प्रयातात्रिदशालयम् ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—इस प्रकार प्रण करके क्रोध में भरे हुए दम ने घूर्णित नेत्रों से मूँछों पर हाथ फेर कर उन्हें ऊँची किया ॥१॥ और अपने पिता का चिन्तन तथा देव की निन्दा करने लगे, फिर पुरोहितों को बुलाया

और अमात्यों के समक्ष उनसे बोले ॥२॥ दम ने कहा—पिता जो स्वर्गवासी होगये, शूद्र तापस के द्वारा यह बात आप सब को ज्ञात हो चुकी है, अब क्या कर्त्तव्य, वह मुझे बताइये ॥३॥ सब पर शासन करने वाले वह महाराज वृद्धावस्था में वानप्रस्थी होकर मौन व्रत का अवलम्बन कर रहे थे, वपुष्मान् द्वारा परिचय पूछने पर मेरी माता इन्द्रसेना ने ॥४॥ उसे अपना सम्पूर्ण परिचय यथार्थ रूप से दिया, तभी उस दुष्ट ने तलवार निकाल कर अपने वामहस्त से ॥५॥ मेरे पिता का अनाथ के समान पकड़ लिया और उनकी हत्या कर दी, तब मेरी सती माता ने मुझ मन्दभाग्य और निःश्रीक को धिक्कारा और मेरे पिता का आलिंगन करके अग्नि में प्रविष्ट होगई ॥६-७॥

सोऽहमद्यकरिष्यामियन्मेमातुरुदीरितम् ।
हस्त्यश्वरथपादातसैन्यंचपरिकल्प्यताम् ॥८
अनिर्याप्यपितुर्वैरमहत्वापितृघातकम् ।
अकृत्वाचवचोमातुर्जीवितु किमिहोत्सहे ॥९
सभिणस्तद्वचश्श्रुत्वाहाहेत्युक्त्वानथाचतन् ।
कृतवन्तोविमनसःसभृत्यबलवाहना ॥१०
निर्ययुःसपरीवारा पुरस्कृत्यदमनृपम् ।
गृहीत्वाचापिपौविप्रास्त्रिवालिनास्पुरोधसः ॥११
अहिराडिवनिःश्वस्यदम प्रायाद्वपुष्मतम् ।
सीमापालादिसामतान्निघ्नन्याम्यादिशत्वरा ॥१२
निरीक्ष्यतःसमायातवपुष्मान्सपरिपूरितः ।
राजःदनसुतेनापिदमाज्ञातोवपुष्मता ।
आयातःसपरीवारःसामात्यःसपरिच्छदः ॥१३
अवपितेनमनसाशर्सन्यानिदिदेशह ।
दूतञ्चप्रेषयामासनिर्गम्यनगराद्बहिः ॥१४

माता ने जो आज्ञा मुझे भेजी है अब मुझे तदनुसार कार्य करना है, रथ, अश्व, पैदल आदि से युक्त यह चतुरंगिणी सेना सुसज्जित की जाय ॥८॥

पितृ-द्वेषी और पितृ घातक को मारे बिना और माता की आज्ञा का पालन किये बिना जीवित रह ने पर मुझ में उत्साह नहीं रह सकता ॥६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—उनके वचन सुन कर मन्त्रिगण ने शोक व्यक्त कर राजाज्ञा का पालन किया और वे भृत्य, सेना, वाहनादि के सहित ॥१०॥ सपरिवार चल पड़े और त्रिकालज्ञ पुरोहितों का आशीर्वाद लेकर दम भी ॥११॥ नागराज के समान श्वासोच्छ्वास छोड़ते हुए सीमापालक सामन्तों को मारते हुए दक्षिण दिशा में गये ॥१२॥ सपरिवार और मन्त्रिगण के साथ वीर वेश में दम का आगमन सुन कर संक्रन्दन-पुत्र वपुष्मान् ने भी क्रोध पूर्वक ॥१३॥ दृढ़चित्त से अपनी सेना को युद्ध करने का आदेश दिया और नगर से बाहर निकल कर दूत के द्वारा यह सन्देश भेजा ॥१४॥

त्वंशीघ्रतरमागच्छनरिष्यंतःप्रतीक्षते ।
सभार्यक्षत्रबंधोत्वंसमायाहिममांतिकम् ॥१५
इमेमद्बाहुनिर्मुक्ताःशिताबाणाः पिपासिताः ।
भित्त्वाशरीरसंग्रामेपास्यंतिरुधिरंतव ॥१६
श्रुत्वादमस्तुतत्सर्वंदूतप्रोक्तं यथौत्वरन् ।
स्मृत्वाप्रतिज्ञापूर्वोक्तांननिःश्वसन्नुरगोयथा ॥१७
आहूतसमरेचेवपुमान्मेनाविकत्थनः ।
ततोयुद्धमतीवासीद्दमस्यचवपुष्मतः ॥१८
रथीचरथिनानागीनागिनाहयिनाहयी ।
अयुध्यतचविप्रर्षेतद्युद्धं तुमुलह्यभूत ॥१९
पश्यतांसर्वदेवानांसिद्धगंधर्वरक्षसाम् ।
चकंपेवसुधाब्रह्मन्युध्यमानेदमेयुधि ॥२०
नगजोनरथीनाश्वस्तस्यबाणसहस्त्रशः ।
ततोदमेनयुयुधेसेनाध्यक्षावपुष्मतः ॥२१

अरे क्षत्रियाधम ! तू शीघ्र ही सामने आ, अरिष्यन्त भी पत्नी के सहित तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसलिये तुरन्त ही मेरे पास आ ॥१५॥ यह रक्त-पिपासु बाण शिला पर पैनाये गये हैं और अब मेरी भुजाओं द्वारा चलाये

जाकर तेरे देह को विदीर्ण कर रक्तपान करेंगे ॥१६॥ दूत की बात सुन कर और पूर्व प्रतिज्ञा का स्मरण कर सर्प के समान श्वास त्याग करते हुए द्रुतगति से दम वहाँ पहुँचे ॥१७॥ तथा युद्ध के लिये ललकारते हुए कहा—प्रकृत पुरुष आत्मश्लाघा कभी नहीं करते, इसके पश्चात् वपुष्मान् के साथ दम का अत्यन्त घोर संग्राम हुआ ॥१८॥ रथी से रथी, हाथी सवार से हाथी सवार और अश्वारोही से अश्वारोही भिड़ गये और घोर युद्ध होने लगा ॥१९॥ हे ब्रह्मर्षे ! उस युद्ध को अपने सामने ही सब देवता, सिद्ध, गंधर्वादि देख रहे थे, जब अत्यन्त क्रोध सहित दम युद्ध में प्रवृत्त हुए, तब पृथिवी कम्पायमान हो उठी ॥२०॥ उनके बाणों को सभी हाथी, अश्व या रथारोही सहन करते थे, दम के साथ वपुष्मान् का सेनापति भिड़ रहा था ॥२१॥

हृदि विव्याध च दमस्तुणागाद्य मातिकम् ।
तस्मिन्निपतिते सैन्यपलायनपरह्यभूत ॥२२
सस्वामिनं तत प्राह दमः शत्रु दमस्तथा ।
करमासिदुष्टपितरं घातयित्वा तपस्विनम् ॥२३
अशस्त्रं चतपस्यन्तं क्षत्रियासि निवर्त्तताम् ।
ततो निवृत्य स दम योधयामास सानुज ॥२४
सपुत्र सहसैव पितुर्वधं स्मृत्वा युधे रथी ।
तत शरासनान्मुक्तैर्बाणैर्ध्यामास्तता दिश ॥२५
दमं च मरथं चापुरशरजालैरपूरयत् ।
तत पितृवधात्येन क्रोधेन स दमस्तथा ॥२६
चिच्छेद ताञ्छरांस्तेषां विव्याधाश्वांश्च तानपि ।
एकैकेनैव बाणेन सप्त पुत्रान्स्तथा द्विज ॥२७
तत्र धिवाधवान्मिश्रा क्षिनायय प्रसादनम् ।
वपुष्मान्स रथोक्रोधाभिहतात्मजबाधव ॥२८
युयुधे च मनानेजौरा शरामोनिर्पोचर्म ः ।
चिच्छेद तस्य ना बाणान्स्मद्भयत्र महामुने ॥२९

उसके हृदय को दम ने बींध दिया, उसके गिरते वपुष्मान् के सहित समस्त सेना भाग ने लगी ॥२२॥ तब शत्रुनाशक दम बोले—अरे दुष्ट मेरे पिता की हत्या करके तू किधर जा रहा है ॥२३॥ तूने शस्त्र रहित तपस्वी पिता का वध किया है, भाग मत, यह सुन कर वपुष्मान् अपने अनुज, पुत्र एवं बांधवादि के सहित डट कर रथ पर चढ़ा हुआ युद्ध करने लगा और उसने अपने धनुष के द्वारा बाण वर्षा करके सभी दिशाओं को ढक दिया ॥२४-२५॥ उसने अपने बाणों के जाल से रथ अश्व सहित दम को आवृत्त कर और दम ने भी अपने पिता की हत्या से उत्पन्न हुए क्रोध से उत्तेजित होकर ॥२६॥ उसके सब बाणों को काट कर, शत्रुओं के देह बाणों से बींध कर, एक-एक बाण से उसके सात पुत्र ॥२७॥ अनुज, सम्बन्धी आदि का वध कर दिया, जब वपुष्मान् ने अपने आत्मज तथा बन्धु आदि का मरण देखा, तब वह भी अत्यन्त क्रोध में भर कर ॥२८॥ नागों के समान बाणों के द्वारा दम से युद्ध करने लगा, परन्तु दम ने वे सभी बाण काट दिये ॥२९॥

युयुधातेचसंरब्धौपरस्परजयैषिणौ ।
परस्परशराघातविच्छिन्नधनुषौत्वरा ॥३०
गृहीतखड्गावुत्तीर्यचिक्रीडातेमहाबलौ ।
दम क्षणांनृपध्यात्वापितरंनिहतंवने ॥३१
केशेष्वाकृष्यचाक्रम्यनिपात्यधरणीतले ।
शिरोधारायांपादेनभुजमुद्यम्यचाब्रवीत् ॥३२
पश्यंतुदेवताःसर्वामानुषाःपन्नगाःखगाः ।
पाटथमानंचत्हृदयंक्षत्रबन्धोर्वपुष्मतः ॥३३
एवमुक्त्वाचसदमोरहृदयंचव्यदारयत् ।
पातुकामश्चसमुरैःक्षतजेननिवारितः ॥३४
तत्रश्चकारतातस्यारक्तेनैवोदकक्रियाम् ।
आनृण्यंप्राप्यसपितुःपुनःप्रायात्स्वमन्दिरम् ॥३५
वपुष्मतश्चमांसेनपिंडदानंचकारह ।
ब्राह्मणान्भोजयामासरक्षःकुलसमुद्भवान् ॥३६

एवंविधाहिराजानोवभूवु सूर्यवंशजा ।
अन्येपिसुधिय शूरायज्विनोधर्मकोविदा ॥३७
वेदांतपारगास्ताश्चनसख्यातुमिहोत्सहे ।
एतेषाचरित श्रुत्वानर पापं प्रमुच्यते ॥३८

इस प्रकार क्रोध पूर्वक एक दूसरे को मारने की इच्छा से घोर संग्राम करने लगे, दोनो ही महाबली थे दोनो के ही धनुष टूट गये थे, तब दोनो ही तलवार से युद्ध करने लगे, वन मे मारे गए पिता की क्षण भर याद करके दम ने वपुष्मान् के ॥३०-३१॥ केश खींच कर पृथिवी मे डाल दिया और उसकी ग्रीवा को पाँव से दाब कर भुजा उठा कर दम ने इस प्रकार कहा ॥३२॥ मैं इस क्षत्रियाधम वपुष्मान् के हृदय को विदीर्ण करता हूँ, इसे सभी देवता, मनुष्य, सिद्ध और नागगण देखें ॥३३॥ ऐसा कह कर दम ने तलवार से उस का हृदय चीर डाला और उसका रक्त पीने को उद्यत हुए, तब देवताओं ने उन्हें रोका ॥३४॥ उसके रक्त से दम ने अपने पिता को उदक दान और मांस से पिंड-दान किया इस प्रकार पितृ ऋण से मुक्त हुए दम अपनी राजधानी में लौट आये ॥३५ ३६॥ सूर्यवंश में ऐसे पराक्रमी राजा हुए तथा अन्य अनेक राजा पश्चात् धर्मात्मा, ज्ञानी एवं वीर हुए हैं ॥३७॥ ऐसे-ऐसे वेदान्त पारगत हुए, जिनका वर्णन नहीं हो सकता और न उनकी गणना की जा सकती है, इनके चरित्र को सुनने वाला मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है ॥३८

११३—पुराण श्रवण पठन फल

एवमुक्तजैमिनेयमार्कण्डेयामहामुनि. ।
विसृज्यत्रोष्टुकिर्मुनिचक्रे माध्याह्निकीक्रियाम् ॥१
अस्माभिश्चश्रुतनस्मात्ते प्रोक्त महामुने ।
अनादिसिद्धमेतद्धि पुराणोक्त स्वयम्भुवा ॥२

मार्कण्डेयायमुनयेयत्तेस्माभिरुदाहृतम् ।
पुण्यंपवित्रमायुष्यंधर्मकामार्थसिद्धिदम् ॥३
पठतांशृण्वतांसद्यःसर्वपापप्रमोचनम् ।
आदावेवकृतायेचप्रश्नाश्चत्वारएवहि ॥४
पितुःपुत्रस्यसंवादस्तथासृष्टिःस्वयंभुवः ।
तथामनूनांस्थितयोराज्ञांचचरितंमुने ॥५
अस भिरेतत्ते प्रोक्तं किमद्यश्रोतुमिच्छसि ।
एतान्सर्वान्नरःश्रु त्वापठतेवासभासुच ॥६
विधूयसर्वपापानिब्रह्मणोह्यालयंव्रजेत् ।
अष्टादशपुराणानियानिप्राहपितामहः ॥७॥

पक्षियों ने कहा—हे जैमिने ! महामुनि मार्कण्डयजी ने इस प्रकार कह कर क्रौष्टुकि मुनि को विदा किया और मध्याह्न क्रिया सम्पन्न की ॥१॥ हे महामुने ! जो हमने आपसे कहा है वह सब स्वयं भगवान् मार्कण्डेय जी ने कहा था, हमने भी उन्हीं से सुना है ॥२॥ आपसे कहा गया यह मनोहर पुराण मार्कण्डेय जी के द्वारा कहा गया एवं अत्यन्त पवित्र है, इसके पढ़ने या सुनने से आयु की वृद्धि और सभी कामनाओं की सिद्धि होती है ॥३॥ और इसके पाठ करने से सभी पापों से मुक्ति होती है पहिले आपने जो चार प्रश्न किये थे, उन सब का उत्तर ॥४॥ पिता-पुत्र सम्वाद स्वायंभुव की सृष्टि, मनुष्यों की उत्पत्ति और राजागण का चरित्र भी ॥५॥ आपके प्रति कहे गये हैं, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? इस सब को सुनने और सभा स्थल में वाचन कराने वाला मनुष्य ॥६॥ सभी पापों से छूट कर ब्रह्म में लीन हो जाता है ॥७॥

तेषांतुसप्तमंज्ञेयंमार्कण्डेयंसुविश्रु तम् ।
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवंचशैवंभागवतंतथा ॥८
तथान्यन्नारदीयंचमार्कण्डेयंचसप्तमम् ।
आग्नेयमष्टमंप्रोक्तं भविष्यंनवमंतथा ॥९

दशमब्रह्मवैवर्तं लैंगमेकादशस्मृतम् ।
वाराहंद्वादशप्रोक्तं स्कान्दमत्रत्रयोदशम् ॥१०
चतुर्दशंवामनञ्चकौर्मंपंचदशतथा ।
मात्स्यञ्चगारुडञ्चैवब्रह्माण्डञ्चततःपरम् ॥११
अष्टादशपुराणानानामधेयानियःपठेत् ।
त्रिसन्ध्यंजपतेनित्यंसोऽश्वमेधफलंलभेत् ॥१२
सर्गश्चप्रतिसर्गश्चवंशोमन्वन्तराणिच ।
वंशानुचरितंचैवपुराणंपंचलक्षणम् ॥१३

तानिसर्वाणिनश्यन्तितूणंवातहतं यथा ॥१५

पितामह ब्रह्मा जी ने अठारह पुराण कहे थे उनमें यह मार्कण्डेय पुराण सातवाँ है, प्रथम पुराण ब्राह्म द्वितीय पाद्म, फिर वैष्णव, शैव, भागवत ॥८॥ नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय भविष्य ॥९॥ ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कन्द ॥१०॥ वामन, कौर्म, मत्स्य, गरुड़ और फिर अठारहवाँ ब्रह्माण्ड पुराण है ॥११॥ इन अठारह पुराणों के नाम का ही पाठ करने वाला तथा तीनों सन्ध्या में जप करने वाला मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के समान फल प्राप्त करता है ॥१२॥ सर्ग, प्रति सर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित यह पाँच लक्षण पुराणों के होते हैं ॥१३॥ चार प्रश्न वाला इस मार्कण्डेय पुराण के सुनने सौ करोड़ कल्प के भी पापों का क्षय होता है ॥१४॥ ब्रह्महत्या आदि सब महापाप प्रचण्ड वायु से टूटे हुए तृण के समान ही इसके पाठ करने से नष्ट हो जाते हैं ॥१५॥

पुष्करेदानजंपुण्यंश्रवणादस्यजायते ।
सर्ववेदाधिकंफलमवाप्यायाचाधिगच्छति ॥१६
यःश्रावयेत्पूजयेत्तु यथादेवंपितामहम् ।
सप्तपुण्यंस्तयावन्मं ब्राह्मणानाचतर्पणं ॥१७

यथाशक्त्याचदातव्यं नृपैर्ग्रामादिवाहनम् ।
एतत्पुराणमखिलंवेदार्थैरुपबृं हितम् ।
धर्मशास्त्रं कनिलयंश्रु त्वासर्वार्थमाप्नुयात् ।।१८
श्रु त्वापुराणमखिलंव्यासंसंपूजयेद्बुधः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणांयथोक्तफलहेतवे ।।१९
दद्याद्गांगुरवेस्वर्णवस्त्रालंकारसंयुताम् ।
श्रवणस्यफलावाप्त्यैदानैःसंतोषयेद्गुरुम् ।।२०
अपूज्यपाठकर्तारंश्लोकमेकंशृणोतियः :
नासौपुण्यमवाप्नोतिशास्त्रचोरःस्मृतोहिसः ।।२१

इसके श्रवण करने से वैसा ही पुण्य मिलता है, जैसा पुष्कर में दान करने से मिलता है, इसकी सम्पूर्णता में वेदपाठ की सम्पूर्णता के समान फल की उपलब्धि होती है ।।१६।। इस पुराण को सुनाने वाले पंडित का ब्रह्मा के समान पूजन करे, गंध, पुष्प, वस्त्रादि से पुराण का पूजन कर ब्राह्मण-भोजन कराये ।।१७।। राजा यथाशक्ति ग्राम तथा वाहनादि प्रदान करे, यह पुराण सम्पूर्ण वेदार्थ से युक्त तथा धर्म का स्थान रूप है, इसके श्रवण करने से सर्वार्थ सिद्धि होती है ।।१८।। इस सम्पूर्ण पुराण को सुन कर व्यास पूजन करे तो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों की प्राप्ति होती है ।।१९।। स्वर्ण, वस्त्र, तथा अलंकारादि से युक्त गौ गुरु को दे, क्योंकि सुनने का फल प्राप्त करने के लिये दान द्वारा गुरु को संतुष्ट करे ।।२०।। वाचक की पूजा किये विना जो पुरुष इसको सुनते हैं, उन्हें कुछ भी पुण्यलाभ नहीं होता, ज्ञानीजन उन्हें शास्त्र चोर कहते हैं ।।२१।।

नतस्यदेवाःप्रीणंतिपितरौनैवपुत्रकान् ।
दत्तं श्राद्धं तथेच्छंतितीर्थस्नानफलंनच ।।२२
लभतेशास्त्रचोरश्चनिंदांसज्जनसंसद ।
अवज्ञयानश्रोतव्यंशास्त्रमेतद्विचक्षणैः ।।२३
पठ्यमानेस्त्ववज्ञातेसाधुभिःशास्त्रउत्तमे ।
मूकोभवतिजन्मानिसप्तमूर्खःप्रजायते ।।२४

श्रुत्वा तत्पूजयेद्यस्तु पुराणं सततं पुनः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनात्येव निजं कुलम् ॥२५
पूतात्मा तिन सन्देहो विष्णुलोकं सनातनम् ।
च्युतस्तत पुनर्नैव संभविष्यति मानवः ॥२६
पुराणश्रवणादेव स्वयोगमवाप्नुयात् ।
नास्तिकायन दातव्यं वृषलेवेदनिंदके ॥२७
गुरुद्विजातिनिंदाय तथा मसव्रतायच ।
मातापित्रोर्निंदकाय वेदशास्त्रादिनिंदिने ॥२८

दर्शन उनसे रुष्ट हो जाते हैं, पितरगण भी अप्रसन्न होकर उनके द्वारा दिया गया श्राद्ध ग्रहण नहीं करते और उन्हें तीर्थ स्नान के फल से भी वंचित होना पड़ता है ॥२२॥ सज्जनों के समाज में उनकी निन्दा होती है, इसलिए विद्वानों का अवज्ञापूर्वक श्रवण नहीं करना चाहिये ॥२३॥ जो मनुष्य साधुओं द्वारा शास्त्र पढ़ने समय अवज्ञा करते हैं वह कई जन्म तक गू गे और सात जन्म तक बधिर होते हैं ॥२४॥ इस महान पुराण का पूजन करने वाले मनुष्य सब पापों से मुक्त होते और अपने कुल को पवित्र करते हैं ॥२५॥ वह पवित्र होकर अवश्य ही विष्णुलोक को प्राप्त होते हैं, वहाँ से पुन संसार में नहीं लौटते ॥२६॥ केवल इस पुराण के ही सुनने मात्र से उत्कृष्ट योग की प्राप्ति होती है परन्तु यह पुराण नास्तिक, शूद्र, वेदनिन्दक, गुरुद्वेषी, व्रतत्यागी, माता पिता के निन्दक और शास्त्रादि के निन्दक को प्रदान न करे ॥२७ २८॥

भिन्नमर्यादिनेचैवतथावैश्वातिकोपिने ।
एतेषांनैवदातव्यंप्राणैः कण्ठगतैरपि ॥२९
लोभाद्वायदिवामोहाद्भूयाद्वापिविशेषतः ।
पठेद्वापाठयेद्वापिसगच्छेन्नरकध्रुवम् ॥३०
एतत्सर्वंमुपाख्यानंधर्म्यंस्वर्गापवर्गदम् ।
यः शृणोतिपठेद्वापिसिद्धं तस्यसमीहितम् ॥३१
प्राधिव्याधिजदुःखेनकदाचिन्नाभियुज्यते ।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्योमुच्यते नात्रसंशयः ॥३२

संतःस्वजनमित्राणिभवंतिहितबुद्धयः ।
नारयःसंभविष्यंतिदस्यवोवाकदाचन ॥३३
सदर्थोमिष्टभोगीचदुर्भिक्षेनवसीदति ।
परदारपरद्रव्यहिंसादिकिल्बिषैः ॥३४
मुच्यतेनेकदुःखेभ्योनित्यंचैवद्विजोत्तम ।
ऋद्धिर्वृद्धिःस्मृतिशांतिःश्रीःपुष्टिस्तुष्टिरेवच ।
नित्यंतस्यभवेद्विप्रयःशृणोतिकथामिमाम् ॥३५

मर्यादा के तोड़ने वाले और जाति को दूषित करने वाले मनुष्य को भी न दे तथा प्राण कंठगत होने पर भी इस पुराण को प्रदान न करे ।।२६।। यदि लोभ, मोह या भय के कारण इनमें से जो कोई पुराण का पाठ करता है या पाठ करा कर श्रवण करता है, तो वह अवश्य ही नरकगामी होता है ।।३०।। मार्कण्डेय जी ने कहा—यह समस्त उपाख्यान धर्म, स्वर्ग और मोक्ष का दाता है, इसे जो पढ़ता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएं सिद्ध होती हैं ।।३१।। उसे कभी रोगादि से कष्ट नहीं होता और वह ब्रह्महत्या आदि के पापों से मुक्त हो जाता है ।।३२।। उसके स्वजन और मित्र उसका हित करने वाले हो जाते हैं, उसका कोई भी शत्रु नहीं होता और न चोरों को ही बाधा उपस्थित होती है ।।३३।। उसके यहाँ श्रेष्ठ धन विद्यमान रहता है, वह मिष्टान्न का भोजन करता और दुर्भिक्ष से कभी भी पीड़ित नहीं होता. पर नारी, पर धन, और पर हिंसा के पापों से ।।३४।। अथवा अन्य अनेक प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाता है, इस कथा को जो सुनता है, ऋद्धि, वृद्धि, स्मृति, शान्ति, श्री, पुष्टि, तुष्टि उसके साथ रहती हैं ।।३५।।

मार्कण्डेयपुराणमेतदखिलंशृण्वन्नशो–
च्यःपुमान्योवासम्यगुदीरयेद्रसमयंशोच्योनसोपिद्विज ।
योगज्ञानविशुद्धसिद्धिसहितःस्वर्गादिलोकेप्यसौ–
शक्राद्यैरसुरादिभिःपरिवृतःस्वर्गेसदापूज्यते ॥३६

पुराणमेतच्छ्रुत्वाचज्ञानविज्ञानसंयुतम् ।
विमानवरमारुह्यस्वर्गलोकेमहीयते ॥३७

पुराणाक्षरसंख्यानप्रख्याततत्त्वबुद्धिना ।
श्लोकानांषट्सहस्राणितथाचाष्टशतानिच ॥३८

श्लोकास्तत्रनवाशीतिरेकादशसमाहिता ।
कथितामुनिनापूर्वंमार्कण्डेयेनधीमता ॥३९

भारतेनाभवद्यन्मेसंशयस्फोटनद्विजा ।
तद्भवद्भि कृतयमकश्चिदन्यकरिष्यति ॥४०

यूयदीर्घायुषःस्यातप्रज्ञाबुद्धिविशारदा ।
सांख्ययोगेतथाचास्तुबुद्धिरव्यभिचारिणी ॥४१

पितृशापकृताद् दुःखाद्योमंनस्यव्यपेतुव ।
एतावदुक्त्वावचनजगामस्वाश्रममुनि ।
चिंतयन्परमोदारपक्षिणांवाक्यमीरितम् ॥४२

इस सम्पूर्ण मार्कण्डेय पुराण का श्रवण करने वाला कभी शोचनीय नहीं रहता, इसके कहने वाले विप्रगण भी शोचनीय नहीं रहते, वे योग, ज्ञान और सिद्धि के सहित स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होते हैं तथा इन्द्रादि देवताओं के साथ रह कर सदा पूजे जाते हैं ॥३६॥ इस ज्ञान विज्ञान से युक्त पुराण का श्रवण करने वाले मनुष्य श्रेष्ठ विमान में चढ़ कर स्वर्ग को गमन करते हैं ॥३७॥ पहिले सूक्ष्मदर्शी श्री मार्कण्डेय जी ने इस पुराण में छः हजार नौ सौ श्लोक कहे थे ॥३८-३९॥ जैमिनि ने कहा—हे खगगण ! महाभारत में जो सन्देह था, वह सब तुमने मित्रभाव से दूर कर दिया, इस प्रकार अन्य कौन कर सकता था ? ॥४०॥ तुम अत्यन्त दीर्घायुष्य, नीरोग और बुद्धि विशारद हो, तुम्हारी बुद्धि सांख्य योग में श्रेष्ठ गति वाली हो ॥४१॥ तुम पिता के वचन से ही दुःखों प्राप्त नहीं हुए हो, ऐसा कह कर और उन खगों के वचनों का स्मरण करते हुए मुनि अपने आश्रम को लौटे ॥४२॥

मार्कण्डेय पुराण का नैतिक व सांस्कृतिक अध्ययन

पुराण रचना की पात्रता और मार्कण्डेय की दूरदर्शिता

इस पुराण के प्रणेता अथवा वक्ता महर्षि मार्कण्डेय हैं। उन्हीं के नाम से यह पुराण अभिहित हुआ है। मार्कण्डेय उच्चकोटि के साधक और आत्मानुसंधान के प्रवीण पात्र थे। वे आत्मसाक्षात्कार की अन्तिम सीढ़ी तक पहुंच चुके थे। नारायण उनके इष्ट देव थे। उनके साक्षात् दर्शन होने के सम्बन्ध में स्वयं नारायण ने प्रकट होकर महाभारत में मार्कण्डेय को सम्बोधित करते हुए कहा "हे मार्कण्डेय ! तुम्हारे ब्रह्मचर्य की महानता अवर्णनीय है। मेरे जिस रूप को देवता भी तत्व रूप से नहीं समझ सकते, उसे तुम अपने प्रत्यक्ष नेत्रों से देख रहे हो। मैं नारायण हूँ, विश्व का शाश्वत और अव्यय प्रसव स्थान हूँ। इन्द्र, प्रजापति, कुबेर, शिव, ब्रह्मा, विष्णु, यम, सोम सब मैं ही हूं। चारों वेद मुझ से ही आविर्भूत होते हैं और मुझ में ही समा जाते हैं। जो कुछ भी स्थावर और जंगम वस्तुओं को तुमने देखा है, उन्हें मेरी ही आत्मा समझो, "मैं नारायण हूं।"

मार्कण्डेय ने महाभारत में युधिष्ठिर के एक प्रश्न के उत्तर में कहा है "एकार्णवीभूत स्थिति में एक वटवृक्ष की शाखा पर मैं ने एक बालक के दर्शन किए जो स्वयं नारायण थे। उन्होंने स्वयं कहा—मार्कण्डेय ! मैं तुम से सन्तुष्ट हूं, तुम थक गये होगे, तुम मेरे शरीर में विश्राम लो।" कथा के अनुसार मार्कण्डेय उस नारायण रूपी बालक के मुख में चले गये, वहाँ उन्होंने भारत वर्ष के दिव्य दर्शन किये—उसके जनपद, नगर, नदियाँ और पर्वत।" जिस तरह से भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को पात्र समझ कर विराट् रूप के

दर्शन दिये थे, उसी तरह से नारायण ने मार्कण्डेय को उत्तम पात्र जानकर उन्हें अपना साक्षात् दर्शन दिया और भारत वर्ष का विराट् रूप दिखाया। दूसरे शब्दों में उन्होंने मार्कण्डेय को भारत वर्ष की भौगोलिक समीक्षा और उसके निवासियों का नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विश्लेषण करके मार्ग दर्शन करने का अधिकार दे दिया हो। नारायण को मार्कण्डेय उत्तम पात्र दिखाई दिये। ऐसा लगता है कि मार्कण्डेय पुराण की रचना का भार स्वयं नारायण ने मार्कण्डेय को सौंपा हो। इससे स्पष्ट है कि मार्कण्डेय पुराण के प्रणयन की पृष्ठभूमि में स्वयं नारायण उपस्थित हैं। प्रस्तुत पुराण में जो भी शिक्षाएँ और प्रेरणाएँ दी गई हैं, वे मार्कण्डेय के मस्तिष्क में नारायण के प्रकाश से ही आई हैं। पुराणों को वैसे भी वेदों की शरण स्वरूपा मानी जाती है। वेदों में जो सिद्धान्त गहन रूप में प्रतिपादित किये गए हैं, उन्हें कथाओं, कहानियों और रूपकों के माध्यम से पुराणों में वर्णित किया गया है ताकि वे सर्व साधारण की समझ में आ सकें। वेदों को ईश्वरीय रचना मानने में किसी को सन्देह ही नहीं हो सकता। अतः यदि मार्कण्डेय पुराण की रचना के लिये नारायण ने मार्कण्डेय को पात्र समझ कर आदेश दिया हो तो इसमें कुछ अतिशयोक्ति नहीं है।

पुराण की रचना में मार्कण्डेय ने अपनी पात्रता सिद्ध कर दी। उन्होंने युगानुरूप सामग्री का चयन किया, पुराणों को सुसंस्कारित किया, जो दोष कुछ अन्य पुराणों में थे, उन्हें दूर किया, साम्प्रदायिक विद्वेष से दूर रहे, किसी भी सम्प्रदाय व देवी देवता का उन्होंने खण्डन नहीं किया, उनके लिए सभी देवता समान हैं, वे तो सभी को नारायण रूप देखते थे। जिसे नारायण का स्वयं साक्षात्कार हो गया हो, उसके मन में भेदभाव की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? वे तो सभी प्राणियों में अपने ही रूप के दर्शन करके उनके कल्याण की योजना में मग्न रहते होंगे और महर्षि मार्कण्डेय ने किया भी ऐसे ही।

मार्कण्डेय दूरदर्शी थे, उन्होंने मानव मन का गहन अध्ययन किया था, वे स्वयं साधक थे और क्रियात्मक रूप से देखा था कि किस तरह से दुष्ट से

महान अथवा नीचे से ऊपर चढ़ने की क्रियाएं सम्पन्न होती हैं। वे ऋषि थे, आत्मसाक्षात्कार किए हुए थे, उन्हें स्वयं आत्मा के अतिरिक्त संसार में कुछ सूझना ही न होगा। वे इस जगत की अनित्यता को भली भांति अपने खुले नेत्रों से देखते होंगे परन्तु जगत से उन्होंने मुँह नहीं मोड़ा। वे जानते थे कि स्थूल शरीर की सुरक्षा के लिए हर प्रकार की भौतिक सामग्री की अपेक्षा रहती है। उनसे घृणा करना अपने मार्ग को अवरुद्ध करना होगा। आत्मोत्थान के लिए दोनों का समन्वय अभीष्ट है। मार्कण्डेय ने अपने पुराण में यही किया है। भौतिक, नैतिक, सामाजिक और आत्मिक सभी विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

भौतिक विद्याओं के विकास का समर्थन—

महर्षि ने भारत वर्ष के भूगोल का विस्तृत विवेचन किया है। जिससे भारत की प्राचीन सीमाओं का दिग्दर्शन होता है। पर्वतों और नदियों का भी विस्तार से वर्णन है। सम्पूर्ण जनपद सूची भी दे दी गई है। मार्कण्डेय राष्ट्रवादी संत थे। आज तो पढ़े-लिखे लोग अपने देश की उपेक्षा करते हैं और इङ्गलैंड, अमेरिका की प्रशंसा के पुल बांधते नहीं थकते परन्तु मार्कण्डेय ने भारत को कर्म-भूमि और शेष भू-भाग को भोग-भूमि घोषित किया है। ब्रह्मपुराण २७।७२-७८ में भी कहा है कि भारत में जन्म लेने वाले धन्य हैं। यहाँ सब पुण्यों के फल प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। स्वर्ग के देवता यहाँ जन्म लेने में गौरव का अनुभव करते हैं। जो कार्य यहां के लोग कर सकते हैं, वे देवताओं और असुरों किसी के लिए भी सम्भव नहीं है।" वास्तव में प्राचीन भारत का गौरव ऐसे ही था जिसकी समृद्धि, विकास और उत्थान की ख्याति चारों ओर फैली हुई थी। आज भी यदि ऋषियों के पदचिह्नों पर चलने लगें तो उस खोए गौरव को पुन प्राप्त कर सकते हैं।

महर्षि ने भौतिक विद्याओं की उपेक्षा नहीं की। जीवन के पूर्ण विकास को भी आवश्यक मानते हैं। तभी उन्होंने धन संग्रह करने के सभी उपायों का वर्णन किया है जिसे पद्मिनी विद्या का नाम दिया गया है। व्यापार द्वारा

धन कमाने के जितने भी साधन हो सकते हैं, उन सब का ब्यौरा पुराण में दिया गया है। आशय यह है कि व्यक्ति को घोर परिश्रम करके भौतिक जीवन को सुखी बनाने के लिए धन का सञ्चय करना चाहिए परन्तु अनैतिक उपायों से नहीं। वे धन को व्यक्तिगत सम्पत्ति भी नहीं मानते। जब राष्ट्र को उसकी आवश्यकता पड़े तो उससे मोह न करके राष्ट्रहित में सारी सम्पत्ति का दान कर देना चाहिए। हरिश्चन्द्र का सम्पूर्ण आख्यान इसी उद्देश्य से लिखा गया है कि धनवानों को अपने धन से मोह नहीं करना चाहिए। वह ईश्वर द्वारा सत्कार्यों के लिए उन्हें दिया गया है। यदि वह इसका दुरुपयोग करेंगे तो उन से छीन लिया जायेगा। मार्कण्डेय धन कमाने के पक्ष में तो हैं पर हरिश्चन्द्र को आदर्श मान कर समय आने पर सर्वस्व लुटाने के लिए तैयार रहने की प्रेरणा भी देते हैं।

यद्यपि जगत को अनित्य, क्षणभङ्गुर और अस्थायी मानते हैं परन्तु आत्मा के इस मन्दिर शरीर की सुरक्षा पर भी पूरा ध्यान देते हैं। पुराण में शरीर विज्ञान का प्रतिपादन किया गया है, जो आधुनिक विज्ञान से मिलता है। इस सम्बन्ध में लिखा है कि रज और वीर्य के मिलने से किस तरह नये शरीर की रचना प्रारम्भ होती है और किस तरह उसका क्रमिक विकास होता है। गर्भ में शरीर का पोषण किस प्रकार से होता है, माता और गर्भस्थ शिशु के शारीरिक सम्बन्ध की अद्भुत व्यवस्था का वर्णन है। आयुर्वेद चिकित्सा का भी वर्णन है जिससे शरीर का असाध्य रोग होने पर भी स्वास्थ्य बनाया जा सके। आयुवृद्धि के उपायों पर भी प्रकाश डाला गया है। रम्य के पुत्र राज्यवर्धन की रानी ने उसके सर पर सफेद बाल देखा तो दुखी हुई। राजा ने समझा कि अब मृत्यु निकट है और वानप्रस्थ में प्रवेश कर वन में तप करने चलना चाहिए। प्रजा चाहती थी कि वही राजा राज्य शासन की बागडोर सम्भालते रहें। प्रजा ने राजा की आयुवृद्धि के लिये सूर्यदेव की सामूहिक आराधना का निश्चय किया और कामरूप पर्वत पर अनुष्ठान में लग गई। तीन मास की उपासना के बाद सूर्यदेव प्रसन्न हुए और राजा की आयु दस हजार वर्ष करने का वरदान दिया। अतिशयोक्ति शैली में वर्णित

यह कथा आयुवृद्धि के लिए सूर्य की शरण में जाने को इङ्गित करती है। आधुनिक विज्ञान ने भी सिद्ध किया है कि सूर्य ही समस्त भौतिक शक्तियों का स्रोत है और शरीर के विकास, सुरक्षा, सुदृढ़ता और चिकित्सा के लिए सभी आवश्यक तत्व इसमें विद्यमान हैं। सूर्य किरणें शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक मानी जाती हैं। जो लोग सूर्यदेव से विमुख रहते हैं, उन पर ही रोग आक्रमण करने का साहस करते हैं। सूर्य किरणों से रोग मुक्ति को एक नवीन चिकित्सा पद्धति का भी आविष्कार हो चुका है। सूर्य के बिना पृथ्वी पर मानव का जीवन असम्भव है। सूर्य के अभाव में जीवधारी अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर सकते। जहाँ सूर्य के यदाकदा दर्शन होते हैं, वहाँ पर जब सूर्य निकलता है तो उत्सव मनाए जाते हैं। तभी भारत में सूर्य को देवता की संज्ञा दी गई है और मार्कण्डेय पुराण में भी उसका भव्य स्तवन किया गया है।

पुराणकार मनोरंजन के साधनों को आवश्यक मानते हैं और कला की प्रशंसा करते हैं।" जिसमें गुण रूप नहीं होता, उसे नाटक में सफलता प्राप्त नहीं होती। नृत्य का सुन्दर अधिष्ठान आवश्यक है। उसके बिना नृत्य एक विडम्बना ही रह जाती है।"

ऐसा लगताहै कि प्राचीनाकाल में सब प्राणियों की बोली समझने की विद्या का विकास हो चुका था तभी विभावरी ने जब स्वरोचिष को आत्म-समपर्ण किया तो विभावरी ने सब प्राणियों की बोली समझने की विद्या को शुल्क रूप में प्रदान किया।

जिस समय पुराणों की रचना हुई, उस समय मंत्र विज्ञान की प्रक्रिया उच्चशिखर पर थी। मंत्र-विज्ञान की एक शाखा-इष्टि क्रिया का उल्लेख किया गया है। एक राजा की पत्नी किसी कारण से राजा को छोड़ कर चली गई। एक ब्राह्मण व राजा से मित्रविन्दा नाम की इष्टि करादी और जब वह साधना पूरी हो गई तो ब्राह्मण ने राजा से कहा "अब आपकी पत्नी आप में पूर्ण अनुरूप रहेगी, अतः आप उसे प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिए" यह मंत्रविज्ञान का ही चमत्कार है।

कर्तव्य परायणता का निर्देश—

पुराणों में क्षत्रिय राजाओं के शौर्य, साहस और जीवन चरित्रों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। उनमें क्षत्रियों के चरित्र का पूर्ण परिचय मिलता है। वे प्रजा शरीर की आहुति देकर भी कर्तव्य पालन करते हैं और प्रजा की सुरक्षा को अपना आवश्यक धर्म मानते हैं। तभी कहा है "हम बलवान क्षत्रियों के सामने यदि इस कन्या का अपहरण हो जाये तो हमारे जीवन को धिक्कार है। जो दुष्ट लोगों से दुःखी व्यक्ति की सुरक्षा करता है, वही सच्चा क्षत्रिय है।

अलर्क के पूछने पर महात्मा ने ब्राह्मण के धर्म का विवेचन करते हुए कहा "दान, अध्ययन और यज्ञ यह ब्राह्मण के विशेष धर्म हैं" चारों वर्णों और आश्रमों के कर्तव्यों का उल्लेख है।

राजा के कर्तव्य तो विस्तार से वर्णित किये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आजकल की तरह उस समय भी शासक वर्ग में स्वार्थपरता का अवगुण आ चुका था तभी वह कड़े शब्दों में शासकों को चेतावनी देते हैं कि "वैश्य अपनी आयका १२ वां भाग राजा को इसलिए देता है कि उनके जान-माल की सुरक्षा हो सके। ग्वाले, घी, तक्र आदि का तथा किसान अनाज का छठा भाग इसीलिए देते हैं। जो राजा व्यापारियों से उनकी आय का अधिकांश भाग लेते हैं वह चोर हैं। यदि कर लेकर भी राजा प्रजा की सुरक्षा में असमर्थ रहता है और प्रजा को अन्य उपायों का सहारा लेना पड़ता है तो राजा निश्चय ही नरक जाता है। यदि चोरों से रक्षा नहीं कर सकता तो वह पापी कहलाता है।"

इस तरह से मार्कण्डेय एक स्वतन्त्र और निर्भीक विचारक की तरह अपने विचार व्यक्त करते हैं। उनका उद्देश्य जनता की भलाई है। उसमें उन्हें कष्ट भी सहना पड़े तो उसके लिए वे तैयार हैं। शासक वर्ग का कड़ा विरोध करने पर क्या परिणाम निकलते हैं, इससे सभी परिचित हैं। फिर भी अपनी आत्मा की आवाज को बन्द नहीं करते वरन् निर्भय रूप से उसका प्रसार करते हैं। वास्तव में ऐसे विचारक ही जनहित में सफल होते हैं।

मार्कण्डेय आध्यात्मवादी हैं, आत्म-साक्षात्कार कर चुके हैं, परन्तु भौतिक वाद की ओर आँख मूँदना उन्हें अभीष्ट नहीं है। इसीलिए अनेकों प्रकार की भौतिक विद्याओं की ओर उन्होंने अपने पाठकों को आकृष्ट किया है। वे चेतावनी भी देते है कि इन में लिप्त रहना निरी मूर्खता होगी, केवल भौतिक विकास पर ही सन्तुष्ट न हो जाना, मानव का चहुँमुखी विकास होना आवश्यक है। पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक और आत्मिक सभी धाराओं में उसका प्रवेश होना चाहिये और बिना विश्राम के प्रगति पथ पर निरन्तर आगे बढ़ते चले जाना चाहिए। केवल भौतिक या आध्यात्मिक—दोनों एकांगी हैं। दोनों का विकास ही पूर्ण विकास माना जाता है।

पारिवारिक व सामाजिक समस्याओं का समाधान—

मार्कण्डेय योग्य चिकित्सक थे। वे उलझी गुत्थियों को सुलझाना जानते थे और हवा का रुख देख कर उसी के अनुसार अपनी नीति का निर्धारण करते थे। उनके सामने बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार हो रहा था। जनता का झुकाव प्रवृत्ति मार्ग की अपेक्षा निवृत्ति मार्ग की ओर अधिक होने लगा था। परिणामतः गृहस्थ में प्रवेश की अपेक्षा लोग सन्यास ग्रहण करना अधिक पन्सद करते थे। गृहस्थ में प्रत्यक्ष रूप से लौकिक सुख की उपलब्धि थी परन्तु सन्यास में पारलौकिक कल्याण का लोभ निहित था। इससे अनीश्वरवादी धारा का प्रवाह बह चला। समाज में एक अजीब पागलपन आगया। भारतीय ऋषियों ने चार आश्रम बड़ी सूझ बूझ से बनाये थे। उसमें भी सन्यास का विधान है परन्तु गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम के बाद जब साधक उसकी पात्रता प्राप्त कर लेता है। जब तक मनःस्थिति में सन्यास का रंग न आए, तब तक उससे अपेक्षित लाभ की आशा करना व्यर्थ है भले ही घर बार छोड़ने और त्यागमय जीवन व्यतीत करने का ढोंग रचा जाये। मार्कण्डेय ने इस अव्यवहारिक प्रवृत्ति का विरोध किया, अपने पक्ष में व्यवहारिक समाधान प्रस्तुत किया, गृहस्थ के आदर्श कर्तव्यों का निरूपण किया। उन्होंने बताया कि किस प्रकार से गृहस्थ आश्रम में रहकर ही

लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। इनके सभी पक्षों का प्रतिपादन किया। मदालसा के माध्यम से उन्होंने अपनी विचारधारा प्रकट करते हुए कहा है कि जिसने गृहस्थ आश्रम ग्रहण किया, यह समझना चाहिए कि उसने विश्व के पालन का भार अपने कन्धों पर ले लिया है। देव, पितर, मुनि, भूत, मनुष्य, कृमि, कीट, पतंग, पशु और पक्षी सभी गृहस्थ आश्रम से ही जीवित रहते हैं और उसी से तृप्त होते हैं। तेरहवें मनु रौच्य की जन्म कथा में प्रजापति रुचि और पितरों के सम्वाद में भी यह चर्चा आई है। पितरों ने रुचि को सम्बोधित करते हुए कहा "वत्स! तुमने गृहस्थ को छोड़ कर अच्छा काम नहीं किया। गृहस्थाश्रम स्वर्ग और मोक्ष दोनों का साधन है। इसी आश्रम में रहकर ही व्यक्ति देवता, ऋषि, पितर और अतिथियों के प्रति अपने कर्तव्य को निभाते हुए उत्तम लोकों की प्राप्ति कर सकता है।"

सन्यास आश्रमों की दृष्टि से तो एक ओर थी परन्तु मार्कण्डेय ने चारों ओर घूम कर देखा तभी एक सुनिश्चित नीति को अपनाया। यदि युवक सन्यासी हो जाएँ तो लोक की युवतियों का क्या होगा। यौवन के प्रवेश पर काम भावों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है, यदि उनकी पूर्ति की सामाजिक व्यवस्था न हो पाये तो असंगत उपायों की ओर मन का दौड़ना कौन रोक सकता है? हर एक में संयम की साधना कहाँ से आए? इसका कुप्रभाव चरित्र पर पड़ेगा और स्वच्छ जल में कीचड़ के छींटे पड़ जायेंगे। इस कुप्रवृत्ति का विरोध करते हुए मार्कण्डेय ने व्यवस्था दी कि सन्यास श्रेष्ठ है परन्तु गृहस्थ उससे भी श्रेष्ठ है क्योंकि सन्यासी गृहस्थ पर निर्भर करके अपनी साधना का संचालन करता है। आदर्श और त्याग समय पर ही शोभा देते हैं। मन को इस के अनुरूप परिपक्व करने पर ही यह अच्छे लगते हैं। विवेकहीन त्याग का कोई मूल्य नहीं होता। जब मन से प्रेरणा उत्पन्न होती है और वह उसे निभा सकने की सामर्थ्य रखता हो तो अभी त्याग को व्यावहारिक रूप देना चाहिये।

दूसरा मार्ग यह है कि जब युवक सन्यासी हो रहे हैं तो युवतियाँ भी उसी मार्ग पर चलने लगें। सन्यास ग्रहण करने पर भी जब युवक और युवतियाँ साथ २ रहेंगे तो वहाँ पर भी वही प्राकृतिक प्रतिक्रियाएं उत्पन्न होंगी, जिन्हें दोष, व्यभिचार और चरित्रहीनता की संज्ञा दी जाती है। मठों में जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों निवास करते हैं, वहाँ ऐसी घटनाओं की चर्चा प्रायः सुनी जाती है। युवक सन्यासियों के पास जहाँ स्त्रियों का आना जाना बना रहता है, वहाँ भी दबा हुआ काम उभर पड़ता है और अपने बाह्य वेष को लज्जित करने में संकोच नहीं करता। सम्भव है उस समय भी ऐसी घटनाएं घटी हों और दूरदर्शी ऋषि ने समाज को नया मोड़ देना चाहा हो। कुछ भी हो, वे विवाह के पक्ष में थे। तभी उन्होंने कहा कि स्त्रियों को बहुत दिन तक पिता के घर बन्धु बान्धवों के बीच रहना यशस्कर नहीं होता। उनका अपने पति के घर रहना ही बन्धु बान्धवों को अभीष्ट होता है। विवाह होने पर भी स्त्री का अधिक दिन तक बन्धु बान्धवों के बीच रहना ठीक नहीं माना गया है। सातवें मनु की कथा में इसका विवेचन है। त्वष्टा की पुत्री संज्ञा का पाणिग्रहण-संस्कार सूर्य से हुआ था। एक बार संज्ञा को पिता के घर अधिक दिन हो गये तो पिता ने पुत्री से कहा—"इस तरह से तुम्हारे धर्म का लोप हो रहा है। बन्धु बान्धवों के बीच स्त्री का अधिक दिन तक रहना ठीक नहीं है। तुम मेरे लिए पूज्य हो और मैं तुम से प्रसन्न भी हूं पर तुम्हारा पतिग्रह में जाना ही ठीक है।"

विवाह के नियमों का विस्तृत विवेचन है। पिता के अभाव में स्त्रियों को अपने पति के चुनाव की स्वतंत्रता दी गई है। कैसी कन्या से विवाह करना चाहिए, उसके लक्षणों का भी वर्णन किया गया है। पुत्र प्राप्ति के वैज्ञानिक नियम का भी उल्लेख है कि "जो पुरुष कन्या जन्म नहीं चाहता। वह पांचवीं रात छोड़ कर छटवीं रात में स्त्री संग करे क्योंकि इसके लिए युग्म रात्रि ही श्रेष्ठ मानी गई है।" ऋतुकाल के दिन, चौदश, अमावस्या, अष्टमी अथवा संक्रान्ति काल में नारी समागम का निषेध किया गया है।

विवाह एक पवित्र आयोजन है, सामाजिक सुव्यवस्था का साधन है, सृष्टि सच मन की एक व्यवस्थित प्रक्रिया है, ऋषियों ने इसे पूर्णता प्राप्ति का साधन बनाया है भोग का नहीं। भोग की सीमा स्त्री के ऋतुमती होने पर ही है अन्यथा नहीं। नारी को केवल भोग की सामग्री मात्र मान लेना उसका अपमान है। जो नारी को केवल अपनी वासना की तृप्ति का साधन मानते हैं, वे अपनी पत्नी से सन्तुष्ट नहीं होते और नित्य नया स्थान देखने की टोह में रहते हैं। इसी दूषित विचारधारा ने बहुपत्नी प्रथा को जन्म दिया। राजाओं म इसका अधिक प्रचलन था। इस से पारिवारिक क्लेश की वृद्धि होती है। दोनों पत्नियाँ द्वेष की अग्नि में जलती रहती हैं। उनकी सन्तान भी इसी महारोग का शिकार होती है। यह छूत का रोग पीढ़ियों तक चलता है। राम वनवास की पृष्ठभूमि में इसी कुप्रथा का दोष झलकता है। कैकयी के द्वेष ने ही राम को राजतिलक की बजाय वन जाने को बाध्य किया। ऋषि ने स्वरोचिष के सम्बन्ध में कहा है कि यह पुरुष धन्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि "एक स्त्री के समक्ष दूसरी स्त्री के सम्पर्क करने में इसे लज्जा नहीं आती। यह अन्य स्त्री से भी सम्पर्क रखता है। इसका चित्त किसी में अनुरक्त नहीं है। किसी एक आलम्बन में अनुराग होना चित्त का स्वभाव है, पर अनेक भामाओं में इसकी प्रीति कैसे हो सकती है। यह निश्चय जानो कि न इन स्त्रियों में इसका प्रेम है और न इनमें इन स्त्रियों का प्रेम है। इनका परस्पर प्रेम व्यवहार एक विनोद मात्र है।" स्वरोचिष ने अपनी पत्नी मनोरमा के अतिरिक्त विभावरी और कलावती से भी विवाह कर लिया था। पति-पत्नी में हार्दिक प्रेम न होने पर पारिवारिक सुख शान्ति की उपलब्धि सम्भव नहीं।

पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने के लिए दोनों को अपने कर्तव्यों पर ध्यान देना चाहिए। पुराणकार ने दोनों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है। कहा है 'वेद की आज्ञा है कि पति को अपनी पत्नी की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि पत्नी की रक्षा से सन्तान की रक्षा होती है। पत्नी में व्यक्ति सन्तान के रूप में स्वयं जन्म लेता है। अतः पत्नी की रक्षा से स्वयं अपनी

रक्षा होती है।" एक और स्थान पर कहा है। "पति को सदैव अपनी पत्नी का भरण और रक्षा करनी चाहिये क्योंकि धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति में पत्नी पति की सहायिका होती है। जब पत्नी और पति प्रेम पूर्वक व्यवहार करते हैं, तभी धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि होती है। पत्नी को त्यागने से धर्म का त्याग हो जाता है। व्यक्ति किसी भी वर्ण का क्यों न हो, वह पत्नी के अभाव में किसी भी कर्म के योग्य नहीं रह जाता।

आदर्श पत्नी के कर्तव्य का बोध कराते हुए ऋषि ने अनसूया जी से कहलवाया है "पुरुष महान कष्ट उठाकर जो पुण्य प्राप्त करते हैं, स्त्रियाँ केवल पति सेवा से ही उसका आधा भाग प्राप्त कर लेती हैं। स्त्रियों के लिए यज्ञ, श्राद्ध और उपवास के लिए प्रथक विधान नहीं है, वे पति की सेवा से ही इहलोकों को प्राप्त कर लेती हैं। पति नारी की श्रेष्ठ गति है।" एक कौशिक नाम के कोढ़ी ब्राह्मण की कथा दी गई है जिसकी पतिव्रता पत्नी ने सूर्य का उदय रोक दिया था क्योंकि सूली पर चढ़े एक अन्य ब्राह्मण ने उसके पति को शाप दिया था कि सूर्य उदय होते ही उसकी मृत्यु हो जायेगी। ऐसी पतिव्रता नारियों की कथाएँ अन्य पुराणों में भी वर्णित हैं। पत्नी पति की सच्ची मित्र और सलाहकार होती है। हरिश्चन्द्र के आख्यान में जब विश्वामित्र को दक्षिणा देने का कोई साधन दिखाई नहीं देता और वह चिन्ताग्रस्त हो जाता है, तो पत्नी उनसे कहती है—महाराज ! चिन्ता छोड़ दो, सत्य का पालन करो, सत्य से च्युत मनुष्य श्मशान के समान त्याज्य होता है। पुरुष के लिए सत्यता से बढ़ कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जिसका वचन असत्य होता है, उसके अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान आदि समस्त पुण्य कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। धर्म शास्त्रों में सत्य से उत्थान और असत्य से पतन होना बताया है।" आदर्श पत्नी के यह विविध रूप दिखाए गए हैं।

पत्नी का एक और महत्वपूर्ण रूप माता का है। मदालसा की प्रसिद्ध कथा इसका माध्यम चुना गया है। मदालसा अपनी संतान को इच्छानुसार बनाती है। स्तन्य की पवित्र धारा के साथ अपने उद्देश्य के अनुरूप बच्चे

को लोरियाँ देती है। परिणाम स्वरूप बच्चे में वैसे ही संस्कार उत्पन्न होते हैं। मनोविज्ञान के पाश्चात्य पण्डितों ने तो आज इस तथ्य की खोज की है परन्तु हमारे ऋषियों ने हजारों वर्षों पूर्व इसे प्रकट कर दिया था। मदालसा ने अपने तीन पुत्रों को लोरियों और उपदेशों से आध्यात्मवादी बनाया तो राजा को चिन्ता होने लगी कि हमारे सभी पुत्र विरक्त होते गए तो हमारे बाद राज्य का सचालन कौन करेगा? राजा के अनुरोध पर मदालसा ने चौथे पुत्र को धर्म की शिक्षा दी। वह पुत्र आदर्श शासक निकला।

परिवार में माता-पिता के साथ पुत्र का भी अपना स्थान है। सभी को मिलाकर एक परिवार बनता है। अतः सभी को अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। ऋषि ने कहा है 'पिता द्वारा अर्जित यश, धन और वीर्य को जो कम नहीं होने देता, वह मध्यम कोटि का पुत्र है। जो अपनी शक्ति से पिता के वीर्य आदि से अधिक वीर्य आदि का सम्पादन कर लेता है, वह उत्तम कोटि का पुत्र है और जो अपनी अकर्मण्यता से पिता के यश, धन को कम कर देता है, वह अधम कोटि का पुत्र है।" कुपुत्र की अनेक स्थानों पर भर्त्सना की गई है। "मनुष्य का पुत्रहीन होना अच्छा पर कुपुत्रवान् होना अच्छा नहीं क्योंकि कुपुत्र माता पिता के हृदय को सदा सन्तप्त करता रहता है और स्वर्गस्थ पितरों को नीचे गिरा देता है। उस कुकर्मी का जन्म माता-पिता के लिए दुःखदायक होता है। वह माता-पिता की चिन्ता से असमय में ही वृद्ध बना देता है।" सुरूप नाम के ब्राह्मण के पास एक बार इन्द्र पक्षी के रूप में आए और अपने आतिथ्य के लिये मनुष्य का मांस अथवा रक्त माँगा। ब्राह्मण ने अपने पुत्रों से पक्षी का आतिथ्य कराना चाहा परन्तु शरीर के मोह में पड़कर उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की। इस पर ब्राह्मण ने अपने पुत्रों को पक्षी होने का शाप दिया।

परिवार को स्वर्गीय बनाने के लिए जहाँ पति पत्नी का प्रेममय व्यवहार आवश्यक है, वहाँ सतान को भी आज्ञाकारी होना चाहिए। शरीर के सभी अंग पुष्ट होने पर ही शरीर स्वस्थ रह सकता है। एक छोटा सा फोड़ा भी सारे शरीर के लिए दुःखदायी हो जाता है। परिवार में जब एक

भी सदस्य अपने कर्तव्यों की अवहेलना करता है तो स्वर्ग को नरक बनने में देर नहीं लगती।

उत्थान के व्यक्तिगत व सामाजिक नियमों का विवेचन—

परिवार की शान्ति सदस्यों के आपसी नम्र व्यवहार पर निर्भर करती है परन्तु यही पर्याप्त नहीं है। सुख वृद्धि के लिए उनके शरीर हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ होने चाहिये। स्वस्थता के नियमों की जानकारी होनी चाहिए। सभी को सदाचारी, चरित्रवान और शिष्ट होना चाहिए तभी समाज में उनका सम्मान स्थिर रह सकता है। चरित्र को सम्पत्ति माना गया है। परिवार की यह शोभा है। जहां इसका अभाव रहता है, वह निर्धन परिवार कहलाता है। आस्तिकता का सदाचार से घनिष्ट सम्बन्ध है क्योंकि ईश्वर को सर्वत्र व्यापक मानने वाला दुराचारों से भय खाकर दूर रहता है।

स्वस्थ और सभ्य नागरिक बनने के लिए महर्षि मार्कण्डेय ने विस्तृत नियमों का प्रतिपादन किया है जो विज्ञान और अनुभव की कसौटी पर खरे उतरते हैं। प्रातःकाल उठकर मल-मूत्र त्याग, दंत धावन, तेल मर्दन और स्नान के नियम बताये गये हैं। स्नान करने पर विशेष बल दिया गया है। स्वच्छता को स्वास्थ्य का एक आवश्यक नियम बताया गया है। यहाँ तक कि दूसरे के पहने हुए जनेऊ विभूषण और कमंडलु को भी ग्रहण करने की मनाही की गई है।

ब्रह्ममुहूर्त में उठने का आदेश देकर स्नान आदि नित्य कर्मों से निवृत्त होकर पूर्वाभिमुख बैठकर नक्षत्र के स्थित रहते हुए ही सन्ध्या करने का उपदेश दिया गया है। सायंकालीन सन्ध्या भी सूर्य के स्थित रहते बताई गई है। प्रातः सायं हवन करने को भी कहा गया है। पाँच महायज्ञों और पितृ तर्पण करने की भी शिक्षा दी गई है। आत्मतत्व का चिन्तन भी आवश्यक बताया गया है। पूजा उपासना करने के बाद ही भोजन की आज्ञा दी गई है। अधिक नमक, अत्यन्त गरम अन्न का व बहुत दिनों का रखा हुआ अथवा बासी भोजन का निषेध किया गया है।

सद्विचारों का स्वास्थ्य से गहरा सम्बन्ध है। बुरे विचारों वाला व्यक्ति कभी पूर्ण स्वस्थ नहीं रह सकता। स्थान-स्थान पर कहा गया है कि गृहस्थ को उदार व परायण होना चाहिए, पर नारी को बुरी दृष्टि से न देखे सब से शिष्ट व्यवहार करे, अहङ्कार, उद्दण्डता की गन्ध न हो, वाणी से प्रेम झलकता हो। ऋषि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है "आचार का पालन गृहस्थ का नित्य कर्तव्य है। जिसमें आचार नहीं उसे न यहाँ सुख मिलता है न वहाँ। सदाचार के बिना यज्ञ, दान, तप कोई करे भी तो क्या लाभ ? जिस पुरुष में आचार का नियम नहीं बँधा, उसे दीर्घ आयु नहीं मिलती।"

अतिथि सत्कार को भी आचार का एक अंग माना गया है, आतिथ्य का अभिप्राय केवल भोजन कराना ही नहीं है वरन् अभावग्रस्त के अभाव को दूर करना, सङ्कटग्रस्त के सङ्कट को दूर करना और दुःखी प्राणी को हर प्रकार से सहायता करना है। जो सामर्थ्य रखते हुए ऐसा नहीं करता, वह निन्दा का पात्र माना गया है। ऋषि के अतिथिसत्कार में समाजवाद के दर्शन होते हैं। वह अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं "समाज में धनवान व्यक्तियों के रहने अन्य लोगों को धनाभाव के कारण जो कुकर्म करने पड़ते हैं उनका उत्तरदायित्व धनी व्यक्तियों पर ही होता है।" परिश्रम-पूर्वक धन कमाने की सलाह भी दी गई है परन्तु उसका कुप्रभाव किसी अन्य पर न पड़े, इसकी चेतावनी भी दे दी गई है अन्यथा समाज में परस्पर असन्तोष और द्वेष की भावनाओं को जन्म मिलेगा।

महर्षि मार्कण्डेय अपने पाठक को आध्यात्म की साधना प्रारम्भ करने के पूर्व उत्तम नागरिक बनाना चाहते हैं। उनके मतानुसार नागरिकता के नियमों की उपेक्षा कर के अध्यात्म पथ पर बढ़ना असम्भव है क्योंकि यह तो उसकी पहली सीढ़ी है। उत्तम स्वास्थ्य तो उसकी नींव है ही।

अवगुणों के प्रति चेतावनी—

मनुष्य सर्वोत्तम सामाजिक प्राणी है क्योंकि उसे बुद्धि जैसी महानतम सम्पत्ति से विभूषित किया गया है। अपने इस गौरव की स्थिरता के लिये

आवश्यक है कि वह बुद्धिमानों जैसे कार्य करे। बुद्धिमान वही है जो अपने विचारों को स्वस्थ और पवित्र रखता है क्योंकि मानव-जीवन की समस्त सुख-शान्ति उसके विचारों पर ही निर्भर करती है, इन्हीं से वह अपने भविष्य की, अपने भाग्य की रेखाओं का निर्माण करता है। विचारों को जो तत्व गदला बनाते हैं, उन्हें दूर करना आवश्यक है। बुरे विचारों को आसुरी शक्तियों की संज्ञा दी जाती है। इनसे सुरक्षा के लिये हमारे शास्त्रकारों ने बारबार चेतावनी दी है। सिद्धार्थ को गौतम बुद्ध बनने के लिये भी यही करना पड़ा था।

आध्यात्म पथ के पथिकों को आत्म-निरीक्षण की शिक्षा दी जाती है ताकि मन के एक करने में घुसे हुए दुर्गुणों को छाँट-छाँट कर बाहर निकालने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि इनसे बढ़कर अपना और कोई शत्रु नहीं है। यह ऐसे शत्रु हैं जो निरन्तर अपने साथ रहते हैं और पग-पग पर चोट पहुँचाने का प्रयत्न करते रहते हैं। दुर्गुणी व्यक्ति अपनी आत्मिक शान्ति खो बैठता है क्योंकि उसे बाह्य जीवन में सब ओर लांछना, असफलता और तिरस्कार ही मिलता है। जिस प्रकार गन्दे, गलीज, छिनौने और छूत के रोगी से बचने का हर कोई प्रयत्न करता है, इसी प्रकार दुर्गुणी व्यक्ति जिधर जाता है, उधर से दुत्कारा जाता है। शरीर में घुसे हुए रोगों को दूर करने की हम चेष्टा करते हैं परन्तु अन्तः क्षेत्र को. अस्त-व्यस्त कर डालने वाले दुर्गुणों की ओर कोई ध्यान नहीं देता। वास्तविकता यह है कि शारीरिक रोगों की अपेक्षा मानसिक दोष दुर्गुणों से अधिक हानि की सम्भावना होती है। दुर्गुण मानव के लिये एक अभिशाप हैं, एक कलङ्क हैं।

समाज में सर ऊँचा उठाकर चलने के लिये दुर्गुणों से रक्षा आवश्यक है। मार्कण्डेय ने बार-बार चेतावनी दी है, दुर्गुणों के दुष्परिणामों के भयङ्कर चित्र खींचे हैं सम्भव है उन्हें असम्भव की संज्ञा दी जाने लगे। परन्तु ऋषि का उद्देश्य केवल उन दुर्गुणों के प्रति सजग रहने की प्रेरणा मात्र है कि इनसे यह परिणाम भी निकल सकते हैं। उदाहरण के लिये मद्यपान से बचने के लिये बलराम की कथा दी गई है कि जब महाभारत युद्ध में उन्होंने पाण्डवों और कौरवों में से किसी का भी पक्ष लेना उचित नहीं समझा तो वह तीर्थ

यात्रा को चल पड़े। एक दिन उन्होंने अधिक मद्यपान कर लिया और रैवत वन में प्रवेश किया जहाँ पर ऋषियों के समक्ष सूतजी की कथा हो रही थी। ऋषि बलराम जी के सम्मान में उठ खड़े हुए परन्तु सूतजी ने व्यास जी की मर्यादा का पालन किया और आसन पर बैठे रहे। इससे बलराम जी को क्रोध आ गया और उन्होंने सूतजी का वध कर दिया। थोड़ी देर के बाद उन्हें होश आया तो इस कुकृत्य पर लज्जित हुए और प्रायश्चित के रूप में नये सिरे से तीर्थाटन का प्रारम्भ किया।

शराब को भी लोग पीते हैं। वह गाली,गलौच और लड़ाई-झगड़ा तो करते देखे जाते हैं परन्तु ऐसा कभी नहीं सुना कि किसी शराबी ने नशे में चूर होकर किसी का वध कर दिया हो। यदि दो-चार हत्यायें इस तरह की हो जायँ तो इसे कानून से ही बन्द करना पड़े क्योंकि इससे लोगों के जानमाल की सुरक्षा का खतरा उत्पन्न हो जायगा। परन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं है। महर्षि मार्कण्डेय भी इस तथ्य से अवश्य परिचित होंगे परन्तु उन्होंने अतिशयोक्ति शैली में अपरोक्ष में मद्यपान के दोष का ही वर्णन किया है कि नशे में जब ज्ञान तन्तु सज्ञा शून्य हो जाते हैं तो उस क्षणिक पागलपन का प्रवाह किसी भी ओर बह सकता है और वह व्यक्ति मारपीट से लेकर हत्या तक कर सकता है।

काम भी एक नशा है जो मनुष्य को अन्धा बना देता है। मन में इसकी उत्तेजना इतनी तीव्र होती है कि कामी व्यक्ति सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन कर बड़े दुःसाहस कर बैठता है। आजकल युवतियों से छेड़-छाड़ तो साधारण बात हो गई है। सड़क पर जाती हुई युवती का अपहरण कर लिया जाता है और उससे मनमाने कुकृत्य किये जाते हैं। वह युवती अपने दुर्भाग्य और फिर भगवान को कोसती होगी कि उसने यह पशुरूप में कैसे मानव बना दिये जो मानव शरीर को भी लज्जित करते हैं। वह इस समाज से भी घृणा करने लगती है जो पतन की पराकाष्ठा में पहुँच गया हो, फिर शासन को दोष देती है जहाँ किसी की लाज सुरक्षित नहीं है। इन घटनाओं पर सभी विचारक खेद प्रकट करते हैं परन्तु यह वातावरण उत्पन्न करने वाले जो माध्यम हैं,

उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। अश्लील फिल्में और उपन्यास, पत्रिकायें जिनसे इस विषय की उत्पत्ति होती है, उनमें सुधार की आवश्यकता है ताकि युवकों में यह सद्‌विचार उत्पन्न हों कि समाज की हर युवती उनकी बहिन है। यही सभ्य समाज की निशानी है अथवा तथाकथित विकसित युग की दुहाई देने से कोई लाभ नहीं है।

इतिहास साक्षी है कि काम भावना से प्रेरित होकर रावण ने सीता का हरण किया और एक महान् युद्ध को निमन्त्रण दिया। अलाउद्दीन खिलजी ने पद्मिनी को प्राप्त करने के लिये भीषण नर संहार कराया। काम के कारण हत्याओं के समाचार आज भी प्राप्त होते रहते हैं। इसी ओर महर्षि ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है। एक कथा इस प्रकार से दी गई है कि नरिष्यन्त के पुत्र दम को दशार्ण के राजा चारुवर्मा की पुत्री राजकुमारी सुमना के स्वयंवर में अपना पति चुना परन्तु भद्रप्रदेश के राजकुमार महानंद,विदर्भ के राजकुमार वप्पुमान व महाधनु को यह सहन नहीं हुआ। उन्होंने एक षड्यन्त्र रचा जिसके अनुसार सुमना को बलपूर्वक छीन लेना था और यह निश्चित किया गया कि वह हम तीनों में से जिसको भी चुन लेगी,उसकी पत्नी हो जायेगी। यदि वह हममें से किसी को चुनेगी तो उसका वध करने वाला ही उसका पति माना जायगा। एक सुन्दर स्त्री को अपनी पत्नी बनाने के लिये वह घोर अन्याय और अधर्म पर उतारू हो गये। जब सुमना ने स्वयंवर में अपना पति चुन लिया तो इस दिशा में कोई भी पग जिसकी लाठी उसकी भैंस की संज्ञा में आ जाता है। दम और उसके शत्रुओं में घोर युद्ध हुआ। दम ने महानन्द का मस्तक काट दिया और वपुष्मान को बाणों से बींध दिया और सुमना को अपने घर ले गया। यदि कथा का मोड़ इस प्रकार से होता कि वह तीनों दम को कैदी बना लेते, या उसका वध कर देते और सुमना को भगा कर ले जाते और तीनों में कोई समझौता न हो पाता तो वह भी परस्पर युद्ध की लपेट में आकर नष्ट हो जाते तो और भी सुन्दर होता क्योंकि काम वासना के अन्तिम परिणामों तक कथा पहुँच जाती।

पर स्त्री को बुरी दृष्टि से देखने वाले को पारलौकिक भय भी दिखाया गया है। कहा है कि ऐसे कामी व्यक्ति को नरक में तो जाना पड़ता है परन्तु वहाँ पर वज्र की चोंच वाले पक्षी उनकी आँखें नोंचते हैं। यह यातना बार-बार दी जाती है और लम्बे समय तक चलती है। जितने क्षणों तक यह पाप किया जाय, उतने वर्षों तक इसका फल भुगतना पड़ता है। नेत्रों से दोष करने वाले को नेत्रों की ही यातना दी जाती है। नियम यही है जिस अङ्ग से दोष किया जाता है, उसके सुधार के लिये उस अङ्ग को ही प्रताड़ना दी जाती है ताकि उसे अपने किये पर पछतावा हो और फिर उसकी पुनरावृत्ति न करने का सङ्कल्प ले।

महर्षि ने यह भी दिखाने का प्रयत्न किया है कि भले व्यक्तियों की कभी परीक्षा की घड़ी भी आती है जब उनको काम वासना की ओर घसीटा जाता है परन्तु इस समय विवेक से काम लेना चाहिए। महर्षि दुर्वासा को पतित करने के लिये वपु नाम की अप्सरा ने सब तरह की काम चेष्टायें कीं तो ऋषि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु जब वह फिर भी अपने हाव भाव प्रदर्शित करने में लगी रही तो दुर्वासा ने उसे शाप दिया कि तुम सुपर्ण गोत्र में पक्षिणी बनो। मार्कण्डेय ने काम वाणों से सुरक्षा के लिये सजग रहने की प्रेरणा दी है क्योंकि किसी समय भी आक्रमण होने का अवसर आ सकता है।

क्रोध मानव का दुर्जय शत्रु है। सब जानते हैं कि इससे मस्तिष्क की नसों में उत्तेजना उत्पन्न होती है, वह बनती हैं जिनका कुप्रभाव सारे शरीर के स्वास्थ्य पर पड़ता है, मन व इन्द्रियाँ भी इस अग्नि की लपेट में आती हैं, बुद्धि भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। गाँधीजी ने इसे शराब और अफीम के नशे की संज्ञा दी है क्योंकि इनके लक्षण मिलते-जुलते हैं। कवियों ने भी कहा है कि पाप का मूल क्रोध है और क्रोध के मिटे बिना जीव का सन्ताप नहीं मिट सकता। गीता में क्रोध से अविवेक की उत्पत्ति कही है क्योंकि क्रोधी को उस दौरे के बाद ही वास्तविकता से परिचय होता है। इसे नरक द्वार भी बताया गया है। यह अध्यात्म साधना को तो नष्ट ही करने वाला है। इन

दुष्परिणामों के कारण ही महर्षि मार्कण्डेय ने इस महारोग के प्रति सावधान किया है। इसके लिये उन्हें अनेकों कथाओं का सहारा लेना पड़ा।

वैवस्वत मनु के पुत्र पृपध्र एक बार मृगया के लिये वन में गये, तो एक ब्राह्मण की गौ को गलती से मार दिया। तब ब्राह्मण ने पृपध्र को शूद्र हो जाने का शाप दिया। क्रोध से क्रोध की वृद्धि होती है। राजा को भी क्रोध आ गया। राजा भी ब्राह्मण को शाप देने लगा। इस पर ब्राह्मण राजा को नष्ट करने के लिए दूसरा शाप देने को प्रस्तुत हुआ। उसी समय उसका पिता वहां पहुँच गया और उसे समझाया कि ब्राह्मण का भूषण क्रोध नहीं क्षमा है। क्रोध से तो धर्म, अर्थ और काम तीनों का नाश होता है। यदि ब्राह्मण का पिता बीच में न आ जाता तो दोनों की उत्तेजना बढ़ती ही जाती और दोनों एक दूसरे को शाप देते ही जाते, जब तक कि उन दोनों में से कोई एक नष्ट न हो जाता।

विश्वामित्र और वशिष्ठ का द्वंद्व और संघर्ष पुराण प्रसिद्ध है। इस पुराण में भी उसे दिया गया है परन्तु बदले हुए रूप में। वशिष्ठ हरिश्चन्द्र के पुरोहित थे। जब विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र से राज्य लिया तो वह जल में तपस्या कर रहे थे। जब वह बारह वर्षों के बाद तप करके आए तो उन्हें हरिश्चन्द्र के भीषण कष्टों से परिचय कराया गया। उन्हें क्रोध का आवेश आया और विश्वामित्र को बक पक्षी होने का शाप दिया। विश्वामित्र तो क्रोध के लिए प्रसिद्ध हैं ही। उन्होंने वशिष्ठ को सारस हो जाने का शाप दे डाला। मनुष्य से पक्षियों की योनि प्राप्त होने पर भी दोनों को शान्ति न मिली और युद्ध पर उतारू हो गये। इससे सारे विश्व में हाहाकार मच गया और देवताओं की प्रेरणा से ब्रह्मा को बीच-बचाव के लिए आना पड़ा, तब कहीं वह शान्त हो पाए। इसमें क्रोध की पक्षियों के अज्ञान से तुलना की गई है और बताया है कि क्रोध से मानव कितना गिर जाता है। वह इसके आवेश में आकर घोर से घोर अपराध कर सकता है।

एक अन्य कथा में विश्वामित्र के क्रोध से विद्याओं का नाश बताया गया है। विद्या का अभिप्राय ज्ञान और विवेक है। क्रोध की उत्पत्ति ही अज्ञान और

अविवेक की नींव पर होती है। अतः शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक स्वास्थ्य के इच्छुक व्यक्ति को इससे बचना चाहिए, तभी आध्यात्म साधना में कुछ प्रगति की आशा की जा सकती है।

क्रोध का आधार अहङ्कार होता है। जब अहङ्कार को ठेस पहुँचती है तो क्रोध से उसकी शान्ति करने का प्रयत्न किया जाता है परन्तु उसका परिणाम अशान्ति ही होता है। जो व्यक्ति इन दोनों के पंजे में फँस जाता है, उससे बड़े बड़े अपराध हो जाते हैं। बलराम जैसे बुद्धिमान् व्यक्ति भी इससे नहीं बच पाए, जिनको भगवान् का अवतार भी माना जाता है। उनकी शक्ति, सामर्थ्य व अन्य कार्यों का दृष्टि में रखते हुए ही यह उच्च सम्मान दिया गया होगा परन्तु सूतजी जैसे कथावाचक उनके आगमन पर सम्मान के प्रदर्शन के लिए उठे नहीं होने तो उनके अहङ्कार को ठोकर लगती है। जैसे दुःखी और चिन्तित व्यक्ति अपने दुःख को कुछ क्षणों के लिए भुलाने के लिए शराब पीता है, उसी तरह से अहंकार की पुष्टि न होने का जो दुःख होता है, उसकी निवृत्ति के लिए क्रोध के नशे की आवश्यकता आ पड़ती है। क्रोध का परिणाम कुछ भी हो, उससे अहंकार का रोग तो दूर हो ही जाता है। एलोपैथिक दवाओं का भी यही प्रभाव पड़ता है। प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले रोग को वह शीघ्र ही दबा देती है परन्तु निश्चित रूप से अन्य भयंकर रोगों की उत्पत्ति होती है। उसका परिणाम कुछ भी हो परन्तु रोगी व अभिभावक को यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि रोगी जिस रोग से पीड़ित हो रहा था, वह ठीक हो गया। अहंकार की औषधि क्रोध है परन्तु क्रोध तो मार-पीट, गाली गलौच, युद्ध, संघर्ष और हत्या आदि से ही शान्त होता है, उसका आहार बहुत ही भयंकर राक्षसों का सा है। इसका कारण तो अहंकार ही है। यदि अहङ्कार की उत्पत्ति न हो तो क्रोध का जन्म लेना भी सम्भव नहीं है। अतः अहङ्कार रूपी जड़ को ही काट देना चाहिए जिससे अन्य दोषों की वृद्धि न होने पाए।

पुराणकार ने क्रोध के भीषण रूप को भी प्रस्तुत किया है। एक राजा बिना कारण दूसरे के राज्य पर अपना अधिकार जमाना चाहता है। उस पर आक्रमण करता है, घोर युद्ध और नर-संहार होते हैं और शक्तिशाली

राजा कमजोर को दबा देता है। अनेकों बार राजाओं के मन में सारी पृथ्वी का सम्राट बनने की लालसाएँ उत्पन्न की गई हैं। लोभ के भयङ्कर परिणामों को भी प्रस्तुत किया गया है।

भोग से पुण्य का क्षय बताया गया है। एक कथा में इससे शक्ति का नाश होना भी व्यक्त किया गया है। सुव्रत तपस्वी ने राजा विदूरथ को कुजृम्भ नाम के एक राक्षस के बारे में जानकारी देते हुए कहा कि जिस दिन उसे कोई स्त्री छू देती है, उसकी शक्ति कम हो जाती है, दूसरे दिन पुनः बढ़ जाती है। इससे स्पष्ट है कि स्त्री के संसर्ग से शक्ति का व्यय होता है। भोग मानव पर अपना चहुँमुखी प्रभाव डालते हैं। इसीलिए प्राचीन काल में वानप्रस्थ और सन्यास की व्यवस्था बनाई गई थी ताकि भोगों से निवृत्त होकर आत्मकल्याण की साधना में अपना पूरा समय लगाया जा सके। यह तभी सम्भव है जब शक्ति के व्यय को रोका जाए। राजा राज्य वर्धन का जब एक बाल पक गया तो उसने समझा कि यह यमराज का दूत है और मृत्यु का सन्देश लेकर आया है। अतः मुझे अपने राज्य का भार अपने पुत्रों को सौंपकर विषय-भोगों से निवृत्त होकर वन में जाकर तप करना चाहिए।" गृहस्थ में रहकर इस साधना को किया जा सके तो अत्यन्त उत्तम है।

इस तरह से पतन के जितने भी मार्ग हो सकते हैं, उनका ऋषि ने दिग्दर्शन कराया है और दुष्ट भावों से बचने की प्रेरणा दी है क्योंकि दुर्गुणों के रहते हुए इस लोक और परलोक दोनों में शान्ति की सम्भावना नहीं हो सकती, चाहे सैकड़ों प्रकार के भौतिक साधन उपलब्ध हों। दुराचारी सदैव अशान्त रहता है। शान्ति के लिए सदाचारी बनना आवश्यक है। उस मार्ग पर चलने के लिए मार्कण्डेय प्रेरित करते हैं।

मानव दोषों का पुतला है। अपने प्रबल संस्कारों व बुरे सङ्ग के कारण वह बुरे काम करता है परन्तु जब रोग उत्पन्न होते हैं, तो उनको दूर करने के लिए दवाओं की भी खोज कर ली गई है। शारीरिक रोगों की तरह मानसिक रोगों के भी उपचार हैं। भारतीय मनीषियों ने मानसिक विकारों की निवृत्ति का अमोघ उपाय यह बताया है कि पापी अपने पाप की घोषणा सार्वजनिक

रूप से कर दे। यदि वह अपने मन में उसे दबाए रखता है तो उसकी ग्रन्थि बन जाती है जो जन्म-जन्मान्तरों तक कष्ट का कारण बनती है। तभी विधान बनाया गया है कि जब किसी से गो हत्या हो जाय तो ग्राम में घूमकर और उस गाय की पूँछ पकड़ कर चिल्ला २ कर कहे कि मैंने इस गाय का वध किया है। यह उस पाप का प्रायश्चित्त मान लिया जाता है। दण्ड से पाप नहीं धुलता है और न ही पापी को फिर पाप करने से बचाया जा सकता है। पाप एक मानसिक रोग है, उसी का उपचार भी इसके अनुरूप ही होना चाहिए। मार्कण्डेय ने भी यही दवा बताई है। जब बलराम जी से मद्यपान के नशे में सूतजी का वध हो गया तो नशा उतरने पर वह अपने कुकर्म पर लज्जित हुए। उन्होंने निश्चय किया कि इस पाप का क्षय करने के लिए अपने कुकर्म का बखान करता हुआ बारह वर्ष का व्रत करूँगा। यही मेरे पाप का सर्वोत्तम प्रायश्चित होगा। आधुनिक मनोविज्ञान ने भी इस सिद्धान्त को अपनी स्वीकृति प्रदान की है।

सद्‌गुणों के विकास पर बल

सद्‌गुणों के प्रति सावधान रहने के साथ साथ सद्‌गुणों का विकास भी आवश्यक है। सद्गुणों को बहुमूल्य सम्पत्ति, मानव-जीवन की सबसे बड़ी विभूति मानी जाती है। सद्गुणों को सच्ची सम्पत्ति इसलिये कहा जा सकता है कि उन्हीं के आधार पर समस्त प्रकार की प्रगति कर सकना सम्भव होता है। दूसरों की सहानुभूति, श्रद्धा एवं सद्भावना केवल उन्हें मिल सकती है जो सद्गुणी हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, कौशल आदि के आधार पर आमतौर पर कुछ कमाया जाता है पर सच्ची स्थिर और चिरस्थायी समृद्धि केवल सद्गुणों के आधार पर ही सम्भव होती है। ऐसी ही समृद्धि से मनुष्य का लौकिक और पारलौकिक जीवन सुख शान्तिमय बनता है।

पुराणकार ने इसकी ओर विशेष ध्यान दिया है। वह अपने पाठक को सत्यवादी, सदाचारी, चरित्रवान्, श्रेष्ठ, परिश्रमी और स्वावलम्बी देखना चाहते हैं। मार्कण्डेय का भिन्न-भिन्न स्थानों पर आदेश है कि—"गृहस्थ को सदाचार

परायण होकर हव्य, कव्य और अन्नदान करते हुए पितर, देवता, अतिथि और बांधवों का पूजन करने वाला होना चाहिए। इनके अतिरिक्त भूत, भृत्य, पशु, पक्षी, पिपीलिका, भिक्षुक, याचक या पर अपर जो कोई भी जैसे प्रार्थना करे, गृहस्थी यदि नित्य नैमित्तिकी क्रिया का उल्लंघन करे तो उसे पाप का भागी होना पड़ता है।'''गृहस्थ को सदैव सदाचार का पालन करना चाहिए, आचार हीन पुरुष को लोक में कभी भी सुख नहीं मिल सकता, जो पुरुष सदाचार को छोड़कर संसार मार्ग में प्रवृत्त होता है, उसके द्वारा किये हुए यज्ञ, दान और तपस्या आदि सभी अमङ्गलजनक होते हैं।''''''दुराचार में प्रवृत्त मनुष्य दीर्घजीवी कदापि नहीं हो सकता, इसलिये सदाचार में ही प्रवृत्त होवे, सदाचार से बुरे लक्षण नष्ट हो जाते हैं।''''''गृहस्थ को उपार्जित किये हुए धन का चतुर्थ भाग धर्म के लिये संचित करना चाहिए, आधे भाग से अपना पोषण और नित्य नैमित्तिक कार्य करे, और शेष भाग की मूलधन के रूप में वृद्धि करे''''' गुरु को देख कर उठ कर खड़े होने इत्यादि से सत्कार पूर्वक आसन दे और प्रणाम करके अनुकूल वार्तालाप करे। उनके गमन समय उनके पीछे चले, प्रतिकूल वचन न कहे।'''द्विजाति की निन्दा न करे।'''गुरु के दुष्कर्म को किसी प्रकार प्रकट न करे तथा उनके कुपित होने पर उन्हें प्रसन्न करे।''''''किसी के मर्म को व्यथित न करे, किसी को न कोसे, चुगली न करे, दंभ, अभिमान और तीक्ष्ण व्यवहार को छोड़ दे। मूर्ख, उन्मत्त, दुःखी आपद्ग्रस्त, विरूप, मायावी, अङ्गहीन अथवा अधिकाङ्ग की हंसी उड़ा कर न छेड़े।''''''परनारीगमन न करे क्योंकि परनारीगमन से इष्टापूर्त नष्ट होता है और दीर्घायु का ह्रास होता है। इस लोक में इस पाप के समान अन्य कोई पाप नहीं है, देव-पूजन, अग्नि कार्य और गुरुजनों को प्रणाम सदा कर्त्तव्य है। '''पूर्वाह्न में देवताओं का, मध्याह्न में मनुष्यों एवं अपराह्न में पितरों का पूजन करे।''''''देवता, वेद, ब्राह्मण, सत्यनिष्ठ, महात्मा, गुरुजन, पतिव्रता, यज्ञ और तप परायण पुरुष इनकी हंसी न उड़ावे। यदि कोई अविनय वाला पुरुष इनकी निन्दा करे तो उधर ध्यान न दे, देवता, पितर और अतिथि का पूजन सदा करे। सावधान चित्त सेवेदाध्ययन करे, अपने से श्रेष्ठ या निम्न

मनुष्य की शय्या अथवा आसन पर न बैठे। अमगल वेश न धारे, अमगल वचन न कहे।" गुरु या देवता के सामने पैर फैलाना भी निषिद्ध है।

दुर्वासा की तरह अपने चरित्र की सुरक्षा के लिये किस प्रकार सजग रहना चाहिए, ऋषि एक ब्राह्मण की कथा के माध्यम से स्पष्ट करते हैं। लोग यह समझ सकते हैं कि दुर्वासा तो ऋषि थे, वह तो हर प्रकार की सामर्थ्य रखते हैं परन्तु एक साधारण गृहस्थ कैसे पतन के मार्ग पर चलने से बच सकता है। एक ब्राह्मण के रूप लावण्य पर मुग्ध होकर वरूथिनी नाम की अप्सरा प्रणय—प्रार्थना करती है। निर्जन पर्वतीय स्थान और युवती का प्रणय प्रस्ताव, स्वीकृति के लिये कोई बाधा नहीं, समाज का कोई बन्धन नहीं, अप-मान का कोई अवसर नहीं, फिर भी जिनका विवेक जाग्रत रहता है और उच्च भावनाओं से ओत-प्रोत रहते हैं, वह कोई देखता हो या नहीं, कदापि दुष्कर्म नहीं कर सकते क्योंकि वह ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं और उसके सहस्र नेत्रों का अनुभव करते हैं। ब्राह्मण कुमार ने बाह्य रूप का मूल्यांकन न किया और प्रस्ताव को तत्काल ठुकरा दिया। ब्राह्मण के शब्द ध्यान देने योग्य हैं —

"ब्राह्मण के लिये भोग चेष्टा, प्रशस्त नहीं मानी गई है अपितु धर्मानुष्ठान और कर्तव्यपरायणता का प्रयत्न ही श्रेष्ठ है क्योंकि यह इस लोक में क्लेश देने वाली होने पर भी परलोक में उत्तम फल देती है। मेरे गुरुजनों की यह शिक्षा है कि परायी स्त्री की अभिलाषा कभी नहीं करनी चाहिए। अतः मैं तुम्हें किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं कर सकता भले ही तुम रोती चिल्लाती रहो और निराशा के शोक से सूख जाओ।"

ब्राह्मण की प्रार्थना पर ही उसके चरित्र का परिचय मिलता है। "यदि मैंने कभी भी ठीक समय पर वैदिक कर्म का त्याग न किया हो और कभी भी मेरे मन में पराये धन और परायी स्त्री की इच्छा न हुई हो तो मेरा मनोरथ पूर्ण हो, चरित्रवान् स्त्री का मन सबल और आत्मा शक्तिशाली होती है, उसका कोई भी कठिन से कठिन कार्य रुका नहीं रहता। जीवन के हर पग पर सफलता उसका स्वागत करती है।

सद्गुणों के विकास और चरित्र के उत्थान व स्थिरता के लिए अच्छे सङ्ग की अपेक्षा रहती है। सङ्ग का प्रभाव अपरिहार्य है। अच्छा सङ्ग भाग्यवानों को ही प्राप्त होता है। ऋषि ने भी शिक्षा दी है कि "सदाचारी साधु मनुष्यों के साथ ही मित्रता करे, बुद्धिमान्, उद्योगी को मित्र बनावे। वेदज्ञान से युक्त, विद्वान्, व्रत परायण और स्नातक का सङ्ग करे," बुद्धिमान् मदालसा ने भी कष्ट आने पर सत्पुरुषों का सङ्ग करने की शिक्षा दी है। मदालसा ने अपने पुत्र अलर्क को एक अँगूठी दी थी कि जब सङ्कट आए तो इसमें लिपटे कागज पर लिखी शिक्षा का सहारा लेना। एक बार अलर्क के बड़े भाई सुबाहु ने काशीश्वर की सहायता से अलर्क के राज्य पर आक्रमण करके उसे राज्य-च्युत कर दिया तो उसने माता को अँगूठी में लिपटी शिक्षा खोली। उसमें लिखा था "प्रत्येक को सङ्ग का त्याग करना चाहिए। ऐसा सम्भव न हो तो सज्जनों के साथ ही सङ्ग करना चाहिए। सज्जन पुरुषों का सङ्ग औषधि है।" माँ की इस शिक्षा को शिरोधार्य कर अलर्क योगीराज दत्तात्रेय के पास गए। वहाँ से उसके दुःख का समाधान हुआ।

सत्सङ्ग का प्रभाव यदि मनुष्य के व्यवहार पर अनुकूल नहीं पड़ता तो उस सङ्ग से क्या लाभ ? मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में उच्च सम्मान का इच्छुक रहता है परन्तु झूठ, छल, कपट से वह मान मिट्टी में मिल जाता है, और सरल सत्य-व्यवहार से सम्मान की वृद्धि होती है। लोग उस पर विश्वास करते हैं। कपटी और छली व्यक्ति पर अपने बन्धु-बान्धव भी विश्वास नहीं करते और उसके हर व्यवहार को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। इसलिए पुराणकार ने घोर से घोर सङ्कट में भी सत्य का परित्याग न करने की शिक्षा दी है। इसके लिए राजा हरिश्चन्द्र का लम्बा आख्यान देना पड़ा है। रानी के मुख से ही सत्य पालन के प्रति दृढ़ निष्ठा की प्रेरणा दिलाई गई है। "राजन्! चिन्ता का त्याग करो, सत्य का पालन करो। सत्य से च्युत व्यक्ति श्मशान की तरह त्याग योग्य होता है। व्यक्ति के लिए सत्य पालन से बड़ा कोई धर्म नहीं है। सत्य पालन न करने वाले के अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान और समस्त पुण्य कर्म नष्ट हो जाते हैं। धर्म शास्त्र कहते हैं कि सत्य से

उत्थान और असत्य से पतन होता है। सत्य से ही सूर्य तपता है। सत्य पर ही पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य सर्व श्रेष्ठ धर्म है। स्वर्ग का अधिष्ठान भी सत्य ही है। एक पलड़े पर सत्य को और दूसरे पर एक हजार अश्वमेध यज्ञों का फल रख दिया जाय तो सत्य का पलड़ा ही भारी रहेगा।" ब्राह्मण का तो यह विशेष गुण घोषित किया गया है। कहा है, "ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व इसी में है कि वह प्राणों के सामने भी सत्य का पालन करे। ब्राह्मण को जो पुण्य सत्य व्यवहार से होता है वह अच्छी दक्षिणा वाले यज्ञों से अथवा किसी उत्तम काम से नहीं प्राप्त हो सकता।"

सत्यवादी ही सच्चा मित्र समझा जा सकता है, उस पर कोई भी विश्वास कर सकता है। उसके सामाजिक सम्बन्ध विस्तृत हो जाते हैं। जन नेतृत्व के योग्य भी वही होता है। मित्रता की कसौटी उपकार बताई गई है। ऋषि ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहा है "मित्रता का स्वार्थ जिससे अपूर्ण नहीं रहता, वह मनुष्य धन्य है, उसका जन्म और जीवन धन्य है। मित्रों के उपकार का बदला चुकाए बिना जो अपने को जीवित समझता है, उसके जीवन को धिक्कार है।" इसकी पुष्टि के लिए एक रोचक कथा का भी सहारा लिया गया है। मदालसा ने जब अपने पति राजा ऋतध्वज की मृत्यु का समाचार सुना तो वह उसी क्षण मूर्छित होकर यमपुर पहुँच गई। यह समाचार गलत था। जब ऋतध्वज आए तो उन्हें बहुत दुःख हुआ और जीवन भर विवाह न करने का निश्चय किया। नागराज अश्वतर के पुत्र इनके मित्र थे। उन्होंने यह घटना अपने पिता को सुनाई। पिता अपने पुत्रों को अपने मित्र का स्वागत सत्कार व उपकार करने की शिक्षा देते थे परन्तु पुत्रों की दलील थी कि संसार की हर वस्तु उसको उपलब्ध है, केवल पत्नी का उसे अभाव है जो सर्वथा असम्भव है। पिता ने सीख दी कि पुरुषार्थ करने पर हर असम्भव वस्तु भी सम्भव हो जाती है। पिता के प्रयत्न से यह भी सम्भव हो गया। मित्रता मानवता का एक आवश्यक लक्षण है।

पुरुषार्थ की महिमा का गान भी स्थान २ पर किया गया है। लक्ष्मी की प्राप्ति का अधिकारी भी उसे ही बताया गया है।

पराजित होने पर लज्जा का अनुभव करने वाले एक राजकुमार ने पुरुषार्थमय जीवन की कामना की है। राजा करन्धम का पुत्र अवीक्षित एक स्वयम्बर में गया। राजकुमारी को बलात् अपने वश में कर लिया। यह अन्य राजकुमारों को बुरा लगा। सबने विरोध किया और विरोध संघर्ष में बदल गया। अन्त में अवीक्षित को बन्दी बना लिया गया। फिर उसके पिता ने अपनी सेनाओं की सहायता से उसे छुड़ाया। जब राजा वन जाने लगे तो राज्य का भार उसको सौंपना चाहते थे। इस पर पुत्र ने कहा कि "मैं इस योग्य नहीं हूँ, मैं अपनी पराजय से लज्जित हूँ। मुझ बन्दी को आपने मुक्त कराया था, मैं स्वयं मुक्त न हो सका। फिर मुझमें क्या पुरुषत्व है? पौरुष से युक्त व्यक्ति पृथ्वी का शासक होने योग्य है। जो पिता की अर्जित सम्पत्ति का भोग करे, या पिता द्वारा सङ्कट से उबारा जाए, कुल में ऐसा व्यक्ति नहीं होना चाहिए, जो अपने बल, पौरुष से सम्पत्ति और ख्याति का अर्जन करते तथा अपने पौरुष से सङ्कटों को पार करते हैं, मैं उन जैसे लोगों की गति चाहता हूँ", ऐसे विचार वाला व्यक्ति ही गौरव के साथ नेपोलियन की तरह सर ऊँचा करके कह सकता है कि असम्भव शब्द को मेरे कोष में से निकाल बाहर करो। इसे कायरों ने बनाया है, मैं इसे सुनना भी नहीं चाहता। मार्कण्डेय भी यही प्रेरणा देते हैं कि पुरुषार्थ और स्वावलम्बन की सद्प्रवृत्ति से ही मानव का उत्थान सम्भव है।

परमार्थ तत्त्व का निरूपण

दान के कुछ अनोखे उदाहरण पुराण में वर्णित हैं। साधारण बुद्धि इसकी कल्पना भी नहीं कर सकती। उन पर सहज में विश्वास भी नहीं होता। हरिश्चन्द्र का विश्वामित्र को अपना सारा राज्य दान में दे देना एक कल्पनातीत घटना है। देने वाला अनुमान लगा सकता है कि उसे जीवन में कितनी ठोकरें खानी पड़ेंगी? निर्धन व्यक्ति पर यदि कोई कष्ट आता है तो उसका सहन करना सरल होता है क्योंकि अभावों का देखना उसका स्वभाव बन चुका है परन्तु जिसकी नस-नस में ऐश-आराम ओत-प्रोत हैं, उन पर मुसीबतों के पहाड़

टूट पड़े, तो उनका आत्म-हत्या जैसी निराशाजनक बातों के सोचने के अति-रिक्त और कोई मार्ग नहीं दिखाई देता। किसी करोड़पति को एक दिन में कङ्गाल कर दिया जाय तो उससे हृदय की गति बन्द हो जायगी परन्तु हरि-श्चन्द्र ने सब कुछ प्रसन्नतापूर्वक झेला। कारण स्पष्ट है, उनके मन में दिव्यता छाई हुई थी, उनकी प्रवृत्ति देने की थी। यदि वह स्वार्थी स्वभाव का होता, तब तो वह अवश्य जीवन से निराश हो जाता। ऋषि प्रेरित करते हैं कि यदि समाज हित के लिये घोर कष्टों का सामना करना पड़े तो भी उनका स्वागत करना चाहिए।

ज्ञान से परमार्थ की सद्‌प्रवृत्ति का उदय होता है। मन स्थिति में उदारता आती है, स्वार्थपरता का नाश होता चलता है और मनुष्य अपने अतिरिक्त दूसरों के बारे में भी सोचता है। उनके हित को अपना हित मानने लगता है। पुराणकार ने लिखा है कि जो दूसरों के अहित की योजना बनाता है उसका स्वयं ही अहित होता है। एक कथा में राजा खनित्र के मन्त्री विश्ववेदी ने उसके विरुद्ध षड्‌यन्त्र रचकर चार पुरोहितों से अभिचारक प्रयोग करवाये जिससे चार कृत्यायें उत्पन्न हुई परन्तु वह खनित्र का कुछ भी न बिगाड़ सकी। परि-णाम स्वरूप उन्होंने लौटकर चार पुरोहितों और विश्ववेदी पर आक्रमण किया और उन्हें मार डाला।

पुराणकार ने इस बुरी भावना से बचने और परमार्थ भावना को मन में स्थिर रखने पर बल दिया है। हरिश्चन्द्र के कष्टों के नाटक का जब अन्त हुआ तो देवता उन्हें स्वर्ग लेने के लिये आये परन्तु राजा ने अस्वीकार कर दिया और कहा कि मैं अयोध्या की प्यारी प्रजा को व्यथित छोड़ कर अकेला नहीं जा सकता। वह अपनी पुण्य राशि का उपयोग अपनी प्रजा के साथ करना चाहते हैं। यदि वह सब के सब मेरे साथ स्वर्ग जा सकें तभी मैं वहाँ जा पाऊँगा अन्यथा उनके साथ मुझे नरक जाना ही पसन्द होगा।"

एक बार किसी कारण से विदेहराज को थोड़े समय के लिये नरक जाना पड़ा। उनके पहुँचते ही नरकवासियों को बहुत सुखद प्रतीत हुआ। राजा ने उसका कारण पूछा तो यमदूत ने कहा—"आपके पुण्य अनगिनत हैं,

आपने बहुत से अश्वमेध यज्ञ किये हैं। समुद्र में जल की बूँदों, आकाश में तारों, मेघ में से जल की बरसती हुई जलधाराओं और गंगा में बालू के कणों की तरह आपके असंख्य पुण्य हैं। उसके कारण आपको स्पर्श करके जो वायु चल रही है, उससे नरकवासियों को अपने कष्टों में कमी अनुभव हो रही है।" यह सुनकर विदेहराज ने नरक से जाने को मना कर दिया और स्पष्ट कहा कि जब तक यह लोग नरक में पड़े हैं, मैं भी यहीं रहूँगा।" यह कहना सरल है करना कठिन है। जिसने जीवन भर सुख ही देखे हों उसके लिये दुःख की एक घड़ी भी युग के बराबर होती है परन्तु जिसके मन में ऐसी उच्च भावनायें उठती हैं, वह मानव नहीं महामानव है। मार्कण्डेय ऐसा ही महामानव अपने पाठकों को देखना चाहते हैं तभी भिन्न-भिन्न कथाओं द्वारा इस प्रकरण को दुहराया गया है।

राजा राज्यवर्धन की आयु बढ़ाने के लिये प्रजा ने सूर्यदेव की सामूहिक प्रार्थना की। इससे राजा की आयु दस हजार वर्ष बढ़ गई। राजा इससे चिन्तित हुए कि "मैं तो दस हजार वर्ष तक जीवित रहूँगा, मेरे प्रजाजन यम-राज के शिकार होते रहेंगे। मुझे यह आयु तभी ग्राह्य है जब मेरी प्रजा की भी यही आयु हो।" इस परमार्थ भावना से ओत-प्रोत हो राजा ने सूर्यदेव की एक वर्ष तक आराधना की और सारी प्रजा की आयु भी दस हजार वर्ष की हो गई तभी वे सन्तुष्ट हुए।

ऋषि ने इस मत का प्रतिपादन किया है कि स्वार्थ आसुरी वृत्ति है, परमार्थ दैवी गुण है। इस गुण के विकास के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। इससे जो मानसिक शान्ति मिलती है, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। इस शान्ति को हीरे-पन्नों से नहीं खरीदा जा सकता, इसे तो अपनी भावनाओं को उदार बनाकर सारे ब्रह्माण्ड में बिखेर देने से आकर्षित किया जा सकता है। इस भावना की पुष्टि व संवर्धन के लिये विश्व कल्याण की प्रार्थना को बड़े ढङ्ग से संजोया गया है "सब प्राणी सुखी हों, अन्यों में स्नेह रखें, समस्त प्राणियों का कल्याण हो और उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो।

जीवों को किसी प्रकार का शारीरिक व मानसिक रोग न हो, सब लोग सबके मित्र हो···तुम्हारी बुद्धि में सब प्राणियों के कल्याण की भावना हो। जिस प्रकार अपना और अपनी सन्तान का हित चाहते हो, उसी तरह सब प्राणियों के कल्याण की बात सोचो।······जो मुझसे प्रेम करता है, उसका सदैव हित साधन हो। मुझसे ▬ करने वाले का भी सदैव कल्याण हो।"

इन पवित्र भावनाओं को अपने जीवन का अङ्ग बनाने वाले ही विश्व हितैषी महामानव बन जाते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

इस भावना के विकास के लिये ऋषि ने एक अनुभव सिद्ध साधना का भी निर्देश किया है। वह है यज्ञ। यज्ञ का अर्थ है त्याग, बलिदान, परमार्थ, निःस्वार्थता। यज्ञ का लाभ शत्रु और मित्र सभी को एक समान पहुँचता है। यह समस्त प्राणी जगत् के हित साधन को रखता है। यज्ञ करने वाले का कोई शत्रु नहीं रह जाता, उसे सब ओर अपना ही रूप दिखाई देता है तभी तो वह अपने गाढ़े पसीने की कमाई को वायु में बिखेरने के लिये प्रस्तुत हो जाता है। वह जानता है कि अपने द्वेषियों का भी लाभ पहुँचने से वह रोक नहीं सकता। अतः वह शत्रु को शत्रु मानना ही छोड़ देता है। यज्ञ से वह सारे ब्रह्माण्ड से अपना नाता जोड़ता है। पहले वह केवल अपने परिवार तक ही सीमित था परन्तु यज्ञ का प्रभाव तो ईथर तत्व के माध्यम से सारे विश्व में फैल जाता है, अतः वह अपने शरीर को ही ब्रह्माण्ड शरीर मानने लगता है।

जात-पात, रंगभेद और सम्प्रदाय के सङ्कीर्ण विचारों से ऊपर उठकर विश्व मैत्री की उच्च भावना को जागृत करने के लिये यज्ञ सरल व श्रेष्ठ साधन है। प्राचीन काल में इसी माध्यम से जनता के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाया जाता था। पुराणकार का कहना है कि नरिष्यन्त ने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप जनता ने असंख्यों यज्ञ किये। पूर्व में अठारह करोड़, पश्चिम में सात करोड़, दक्षिण में चौदह करोड़ और उत्तर में पन्द्रह करोड़ यज्ञ सम्पन्न हुए। इन महान् योजनाओं के फलस्वरूप ही जन-साधारण की सङ्कीर्ण भावनाओं का परिष्कार हो पाया और राम राज्य का साकार रूप देखने को मिला जहाँ पाप, ताप, चोरी, डकैती, छल कपट, आदि का नाम

निशान न था। लोग इस लोक की अपेक्षा परलोक का अधिक ध्यान रखते थे। आज उसके विपरीत है। वह युग पुनः आ सकता है यदि हम ऋषियों की योजनाओं के अनुसार अपने जीवन को मोड़ दें तो।

जीवन निर्माण के सिद्धान्तों का प्रतिपादन—

मार्कण्डेय पुराण में विभिन्न प्रकार के सिद्धान्तों का उल्लेख है जिनका प्रगति पथ पर आरूढ़ होने वाले हर मानव के लिए समझना आवश्यक है।

भौतिकवादी स्थूल नेत्रों से दिखाई देने वाले इस पञ्चभौतिक शरीर को ही सर्वस्व मानते हैं, उससे आगे की वे कल्पना भी नहीं कर सकते। वे उस सूक्ष्म, चेतन तत्व से अपरिचित हैं जिसके आधार पर समस्त क्रियाओं का सञ्चालन होता है। भारतीयों ने उस जीवनतत्व का नाम आत्मा रखा। जो इसे समझता नहीं, वह दुःखी रहता है क्योंकि शरीर अनित्य व नष्ट होने वाला है, उस पर अपने भविष्य को निर्भर करने वाला कभी शाश्वत सुख की आशा नहीं रख सकता। शान्ति के लिए मूल तत्व को जानना होगा। उसके लिए प्रयत्न करने होंगे। आत्मा को जान कर उस के उत्थान की योजनाओं को क्रियान्वित करना होगा। जो विघ्न बाधाएँ इसके मार्ग में आती हैं, उन्हें हटाना होगा, अपनी विचारधारा और जीवन पद्धति को परिष्कृत करना होगा।

पुराणकार ने दुःख की निवृत्ति के लिए शरीर भावना के त्याग का परामर्श दिया है। जब मदालसा पुत्र अलर्क के राज्य पर सुबाहु और काशिराज ने आक्रमण करके उसके राज्य को छीन लिया तो उसे अपनी मां की उस शिक्षा का स्मरण हो आया कि संकट के समय इस अगूँठी में लिपटी शिक्षा के मार्गदर्शन में चलना। उसमें सत्पुरुषों के संग की प्रेरणा दी गई थी। अलर्क योगी दत्तात्रेय के पास गया। दत्तात्रेय ने कहा कि तुम अपने दुःख का कारण बताओ, मैं आज ही उसे नष्ट कर दूँगा। जब अलर्क ने उस पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया तो लगा कि उसने भारी भूल की, दुःख तो शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों से सम्बन्ध रखता है और वास्तव में

मैं इन से भिन्न हूँ। दुःख तो मेरे बाह्य उपकरणों को था, मुझे नहीं, मैं तो इनसे सर्वथा भिन्न हूँ। मुझे तो दुःख छू भी नहीं सकता। मेरे अज्ञान के कारण उस ने मुझे दबाये रखा। अब मैं शरीर से सम्बन्धित नहीं हूँ। इसलिये दुःख से परे हूँ।

जब तक मनुष्य शरीर भावना से लिप्त रहता है, तब तक वह शारीरिक परिवर्तनों से प्रभावित होता रहता है। इस से ऊपर उठकर जब आत्म भावना में स्थित होता है तभी उसे आनन्द का मार्ग मिलता है। इसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा ऋषि देते हैं।

इस सम्बन्ध में साधना का भी पथ प्रदर्शन किया है। आत्मा को जीतने के लिए लिखा है "प्राणायाम से दोषों को, धारणा से पापों को, प्रत्याहार से विषयों को और ध्यान से अनीश्वर गुणों को भस्म करे। जैसे अग्नि में पड़कर सब धातु दोष-रहित होती हैं, वैसे ही प्राण वायु के निग्रह से इन्द्रियों के सब दोष नष्ट होते हैं।' यह आत्मदर्शन में बाधक तत्व हैं, इन्हें दूर करना आवश्यक है।

जिसे आत्मदर्शन हो जाते हैं, वह सांसारिक दुःखों से अलिप्त रहता है। मृत्यु उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती। वे मृत्यु का प्रसन्नता पूर्वक, आलिंगन करते हैं, अपने सम्बन्धियों की मृत्यु पर शोक नहीं मनाते। मृत्यु को तो वे केवल वस्त्रों का बदलना मात्र मानते हैं। जीवन तो एक अखण्ड सत्य है। शरीर नाश से उसका नाश असम्भव है। एक शरीर के नाश के बाद आत्मा दूसरा शरीर धारण करेगी, उस के भी नष्ट होने पर तीसरा धारण करेगी, जब तक जीवन का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो जाता, यह यात्रा चलती ही रहेगी। यह तो यात्रा के भिन्न-भिन्न पड़ाव हैं, इनकी वास्तविकता से आँखें मूँदकर रोना पीटना अज्ञानता है। मदालसा ने अपने पति की मृत्यु के समाचार सुन कर शरीर त्याग दिया तो राजा ने कहा कि "सब प्रकार के सम्बन्धों की अनित्यता पर विचार करने पर ऐसा लगता है कि क्या पुत्र के लिये रोऊँ और क्या पुत्र वधु के लिये रोऊँ? अर्थात् दोनों में किसी के लिए रोने का कोई कारण नहीं है।"

इन विचारों की पुष्टि के लिये पुनर्जन्म के सिद्धान्त को उभारा गया है। सुमति नाम के एक ब्राह्मण कुमार की कथा दी गई है कि जब उसका उपनयन संस्कार किया गया तो उसे उपदेश दिया गया कि उसे क्रमशः ब्रह्मचर्य गृहस्थ, बानप्रस्थ और सन्यास चार आश्रमों में प्रवेश करना होगा। इनके कर्तव्यों का दृढ़ता पूर्वक पालन करने पर ही उसे ब्रह्म प्राप्ति होगी। इस पर सुमति ने अपने अनेकों जन्मों का वृतान्त सुनाया। उन जन्मों में वेदाध्ययन और आश्रम धर्मों के पालन की बात कही, कैसे एक बार नरक की यातना भोगनी पड़ी, उसका भी वृतान्त है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त बताता है कि शरीर के नाश से हमारी प्रगति अवरुद्ध नहीं हो जाती। जितना विकास हम ने इस शरीर के माध्यम से कर लिया है, वह भी नष्ट नहीं होता, उसके संस्कार हम सूक्ष्म शरीर के साथ ले जाते हैं और आगामी जीवन में हम इस विकास का उपयोग करते हैं। कई व्यक्तियों में जन्मजात विलक्षण प्रतिभा बाल्यकाल से ही प्रस्फुटित होने लगती है, वह उनके इस जन्म के कारण नहीं वरन् पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण होता है।

इसीलिए मार्कण्डेय ने जीवन निर्माण के प्रमुख सूत्र कर्म को प्रमुखता दी है। कर्म को ही समस्त सफलताओं का श्रेय दिया है। कहा है "कर्म का बल पृथ्वी के मानव की श्रेष्ठतम शक्ति है। यही उसकी विजय का रहस्य है। यही कारण है कि स्वर्ग के देवता भी पृथ्वी पर जन्म लेने को उत्सुक रहते हैं। जिनके पास कर्म का हथियार होता है, वह उसकी सहायता से देवत्व, इन्द्रत्व और ब्रह्मत्व सभी को प्राप्त करने की क्षमता रखते हैं। जिन व्यक्तियों का चित्त, इन्द्रियाँ और आत्मा अपने वश में हैं और जो कर्म करने के लिये उद्यत हैं, उनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं होता। चलती हुई चींटी हजारों योजन चल जाती है, बिना चले गरुड़ भी एक पग नहीं जा पाता।"

इन सशक्त शब्दों से ऋषि आशा की जीवन ज्योति जलाते हैं और आश्वासन देते हैं कि जैसी भी परिस्थितियाँ इस जीवन में उपलब्ध हुई हैं,

उनसे निराश न होना चाहिये, उनके लिये भाग्य और भगवान को कोसना कायरता और निबलता की निशानी है, कर्म का विस्तृत क्षेत्र मानव के लिये खुला पड़ा है, वह स्वतन्त्रता पूर्वक अपने कर्मों का जाल बिछा सकता है, उन्हें नष्ट करने का अधिकार किसी भी मानव को नहीं दिया गया। यह अलग बात है कि उनमें विघ्न बाधाएँ उपस्थित हों, जिन्हें दूर करने के लिये कुछ अतिरिक्त पुरुषार्थ करना पड़े परन्तु उस दयालु परमात्मा ने उन्नति का मार्ग हमारे लिए खुला छोड़ दिया है। हम अपने कर्मों के द्वारा उच्चतम आसन पर स्थित हो सकते हैं। यदि हम आगे नहीं बढ़ रहे तो इसका कारण हम स्वयं हैं न कि भाग्य और भगवान। किसी को हमारे लिये कुछ नहीं करना है। करने वाले हम स्वयं हैं। अपने भाग्य को हम स्वयं लिखना है, बनाना है। इसी पर ऋषि ने विशेष बल दिया है।

जब राजा शत्रुजित के पुत्र अपने मित्र ऋतध्वज के दुःख निवारण के लिए कुछ नहीं कर सकने तो पिता ने कहा 'पुत्रो! तुम्हारी यह धारणा ठीक नहीं है। बुद्धिमानों के लिए कोई कार्य असाध्य नहीं होता, पुरुषार्थ से सब कुछ उपलब्ध किया जा सकता है—उद्योगी व्यक्ति के लिए कोई भी स्थान गम्य और कोई स्थान अगम्य नहीं होता। कहाँ भूतल और कहाँ ध्रुव का पद? फिर भी इस भूतल पर निवास करने वाले ध्रुव ने उद्योग द्वारा ध्रुव का पद पा ही लिया।

एक राजकुमार ने कामना की है कि "जो अपने बल पौरुष से सम्पत्ति और ख्याति अर्जित करते हैं और अपने पौरुष से ही सङ्कटों को पार करते हैं मैं उन जैसे लोगों की गति चाहता हूँ।' पुरुषार्थ ऐसा यज्ञ है जिससे सांसारिक विघ्न बाधाओं, कठिनाइयों व रुकावटों को दूर करके मानव लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। इसी की ओर ऋषि ने हमें आकृष्ट किया है।

मानव को कुमार्ग से बचाने और सद्मार्ग की ओर प्रेरित करने के लिये अनेकों प्रकार के उपाय अपनाये जाते हैं। उनमें एक नरकों के भय

दिखाना भी है। कर्मफल के सिद्धान्त को तो हर भारतीय स्वीकार करता ही है। वर्तमान बुरी या अच्छी परिस्थितियों का श्रेय भी पिछले जन्मों के बुरे या अच्छे कर्मों को ही होता है। नरक अथवा स्वर्ग का सम्भोग तो वह यहाँ भी कर लेता है। यदि इन्हीं तथ्यों को भीषण रूप से वर्णित करके नरक और स्वर्ग पृथ्वी से दूर किसी दूरस्थ लोक में बताये जाते हैं तो उन पर साधारणजन विश्वास कर लेते हैं और उनमें दी जाने वाली यातानाओं की भयङ्करता को सुनकर वह भयभीत हो जाते हैं और बुरे कर्मों से बचते है। इसी उद्देश्य से मार्कण्डेयपुराण में नरकों का विस्तृत वर्णन है जिनमें लाखों करोड़ों जीव अपने दुष्कर्मों के भोग भोगते दिखाये गये हैं। वहाँ की लोमहर्षक यातनाओं को सुनकर हृदय काँप उठना है। उदाहरण के लिए "जिन नराधम मनुष्यों ने पर नारी को दूषित नेत्रों से देखा है अथवा पराये धन को हड़पने की इच्छा वाले नेत्रों से देखा है, उनके दोनों नेत्रों को यह वज्रतुण्डी पक्षी हरण करते हैं तथा वही नेत्र बारम्बार उत्पन्न हो जाते हैं, इन मनुष्यों ने जितने पलक लगने तक यह पाप किये हैं, उतने ही सहस्र वर्ष यह इस नेत्र पीड़ा को प्राप्त करते रहेंगे, जिन्होंने शत्रु की भी ज्ञान दृष्टि का हरण करने के लिये अन्याय पूर्वक विपरीत शास्त्रोपदेश अथवा भ्रमात्मक परामर्श दिया है या मिथ्या भाषण किया है।"

"जिन्होंने वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुजनों की निन्दा की है, यह वज्र-तुण्डी पक्षी उनकी जीभ को काटते हैं, जितनी बार यह पाप किया है, उतने ही वर्ष उन्हें ऐसी यन्त्रणा मिलती है तथा जिन्होंने मित्रों में या पिता-पुत्र से भेद डलवाया है अथवा याज्ञिक-यजमान में, माता-पुत्र में या पति-पत्नी में मन-मुटाव करा दिया है, वे इस कर पत्र से आहत होते हैं अथवा जो किसी को क्रोध दिलाते या किसी की प्रसन्नता नष्ट करते हैं, जो ताड़ का पंखा या खस या चन्दन का हरण करते अथवा साधुओं को प्राणान्तिक पीड़ा देते हैं, वे पापी तप्त रेत में गिर कर पाप का फल पाते हैं अथवा जो एक श्राद्ध में निमन्त्रित होकर दूसरे के यहाँ भोजन करते हैं उनको यह पक्षीगण व्यथित करते हैं।"

पुनर्जन्म का सिद्धान्त सर्वमान्य है। यह निश्चित है कि हजारों प्रकार

कों पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि की नीच योनियों से होकर मानव को यह योनि प्राप्त होती है। इस योनि में आकर भी यदि वह पतित कार्य करता है तो पुनः उन योनियों में उसे जाना पड़ता है। कैसे कर्म से किस योनि में जाना पड़ता है, इसकी विस्तृत सूची पुराणकार ने दी है। उदाहरण के लिए "पतित मनुष्य से धन लेने वाला ब्राह्मण गधे की योनि को प्राप्त होता है तथा पतित मनुष्य को यज्ञ कराने पर नरक से मुक्त होकर कृमि योनि पाता है। उपाध्याय से प्रति द्रोह करने उसकी स्त्री या अन्य वस्तु की इच्छा करने से श्वान-योनि मिलती है। माता पिता का अपमान करने वाला गधा और उन्हें गाली देने वाला मैना होता है। भाई की पत्नी का अपमान करने वाला कबूतर होता है उसे पीड़ित करने से कछुआ होता है। स्वामी का पिण्ड भोजन करके जो उसका अभिलषित नहीं करता, वह मोह में भरकर मरणान्तर बन्दर बनता है। किसी की धरोहर हड़पने वाला नरक से मुक्त होने पर कृमि होता है, असूया करने वाला नरकान्त में राक्षस होता है।'

नरकों, उसमें दी जाने वाली यातनाओं और विभिन्न प्रकार की योनियों में वर्णन का उद्देश्य यह है कि मानव कुकर्मों से बचे और सत्कार्यों का सम्पादन करे ताकि उसे श्रेष्ठतम योनि में आकर पुनः क्षुद्र योनियों में न जाना पड़े। यह मानव की उन्नत अवस्था का ही परिणाम हो सकता है। पतन से बचने के लिए ही मार्कण्डेय ने यह सत्प्रयास किया है।



साधनात्मक प्रक्रियाएँ

इस सिद्धान्त से हर व्यक्ति परिचित है कि इस जीवन की सुख-सुविधाएँ पिछले उदार कार्यों के कारण प्राप्त हुई हैं और कठिन परिस्थितियों का कारण सङ्कीर्ण और क्षुद्र भावनाएं रही हैं। स्वर्गीय सुखों का भोग करना तो हर कोई चाहता है परन्तु उसके अनुरूप सद्कार्यों का करना हर किसी के बस की बात नहीं है। मनुष्य न चाहते हुए भी पाप करता है। बुरे कार्यों को बुरा समझते हुए भी उनमें फँसता है। इसका कारण उसका अपवित्र और निर्बल मन है। पवित्र और सबल मन में ही सद्विचार उठते हैं। परन्तु मन को अपनी इच्छानुसार चलाना सरल नहीं है। उसकी गति वायु से भी तीव्र है। इसकी चञ्चलता तो प्रसिद्ध है ही। इसे पवित्र, शक्तिशाली और अपने नियन्त्रण में रखने के लिए अनेकों प्रकार की आध्यात्मिक साधनाओं का आविष्कार किया गया है जिन्हें अपना कर हितसाधन किया जा सकता है। जप, तप, योग और विचार-साधना ऐसे अनेकों मार्ग हैं जिनमें से कुछ का मार्ग दर्शन किया गया है।

मार्कण्डेय ने प्रणव की साधना की ओर साधकों का ध्यान आकृष्ट किया है। यह मन्त्रों का सेतु व शिरोमणि है। योगियों ने समाधि अवस्था में देखा कि सूक्ष्म प्रकृति के अन्तराल में जो ध्वनि निरन्तर हो रही है, वह प्रणव की ध्वनि से मिलती-जुलती है। अतः उस ध्वनि को अपने दिव्य कर्णों द्वारा श्रवण करके उन्होंने मानव के हितार्थ साधना का रूप दे दिया ताकि मानव उसके अनुरूप अपने को बना सके। अनुकूलता में शक्ति का विकास और प्रतिकूलता में उसका ह्रास होता है। इसलिए प्रणव को श्रेष्ठतम साधना माना गया है जिसकी महिमा का गान स्वयं पुराणकार ने किया है—"जो विश्व स्वरूप, विश्वेश्वर और विश्वभावन हैं तथा विश्व ही जिनके पाद, ग्रीवा और मस्तक हैं, उन्हीं परब्रह्म को प्रत्यक्ष करके योगी उनको पाने के लिये 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्र का जप करे। यही उनका स्वाध्याय है, इसी ओंकार का श्रवण करना चाहिये······ योगी अक्षर-अक्षर में ओंकार युक्त होता है, प्राण को धनुष रूप, आत्मा को बाण रूप और ब्रह्म को लक्ष्य रूप जाने······ओंकार ही त्रिवेद,

त्रैलोक्य और तीनों अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा ऋक्, यजु, साम स्वरूप है……केवल 'ॐ' का उच्चारण करके ही सदैव सत् असत् का ग्रहण हो जाता है……जो योगी ओंकार स्वरूप या ब्रह्म को जानकर उनका ध्यान करते हैं वह संसार चक्र का अतिक्रमण करते हुए तीनों बन्धनों को छोड़ कर उस पर-ब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं। यदि उनके कर्म बन्धन क्षीण न हो तो वह अरिष्ट द्वारा मृत्यु जानकर उस समय स्मृति लाभ पूर्वक योगित्व को पुनः प्राप्त होते हैं।" पद शास्त्र में वर्णित ऋषियों के अनुभवों से भी इन तथ्यों की पुष्टि होती है।

योग साधना की भी विस्तृत शिक्षा पुराणकार ने दी है। अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ, अहिंसा के पांच यमों और अक्रोध, गुरुसेवा, शौच, लघु आहार और नित्य स्वाध्याय के पांच नियमों के पालन को आवश्यक माना गया है। इसी स्थिति पर आगामी क्रियाओं का सफल सञ्चालन सम्भव है। योग की नींव को दृढ़ करने के लिए इन नैतिक नियमों का पालन आवश्यक है। प्राणायाम से दोषों को धारणा से पापों को, प्रत्याहार से विषयों को और ध्यान से अनीश्वर गुणों को भस्म करने की प्रेरणा दी गई है। प्राण वायु के निग्रह से इन्द्रियों के समस्त दोषों का नष्ट होना बताया गया है। आत्मा पर विजय प्राप्त करने का साधन योग की इन भावनाओं को माना गया है। इन सभी क्रियाओं को खोलकर समझाया गया है। इनसे प्राप्त होने वाली सिद्धियों का भी वर्णन है। अष्ट सिद्धि की प्राप्ति का आश्वासन दिया गया है और इन्हें अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाने वाली कहा गया है। ध्यान के सम्बन्ध में कहा है— 'निखिल वेद और सब प्रकार की यज्ञ क्रिया उत्कृष्ट है, उस यज्ञ से जप श्रेष्ठ है, जप से ज्ञानमार्ग और ज्ञानमार्ग से नि:सङ्ग और रागहीन 'ध्यान' श्रेष्ठ है क्योंकि इस ध्यान के द्वारा ही शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जो सावधानी से ब्रह्मपरायण, प्रमादरहित, एकान्तवासी और जितेन्द्रिय होकर योग साधन करते हैं वे आत्मा में आत्मा के संयोग को पाकर मोक्ष लाभ करते हैं।" इन साधनाओं को क्रिया रूप देकर निश्चित रूप से आत्मा और परमात्मा के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

तप की प्रेरणा तो पग-पग पर दी गई है। जितने भी राजाओं के जीवन-चरित्रों अथवा कथाओं का पुराण में वर्णन है, लगभग सभी ने वृद्धावस्था आने पर राज्य का भार अपने पुत्रों को सौंप कर तपश्चर्या के लिए वन के लिए प्रस्थान किया। तपस्वी का वेष धारण करके वे क्रोध, हिंसा, बदले की भावना से बचते रहे हैं। कई बार जब वन में मुनियों को नागों, राक्षसों व अन्य आसुरी शक्तियों ने परेशान किया तो उन्हें शाप द्वारा स्वयं भस्म करने की शक्ति-सामर्थ्य रखते हुए भी वे राजा के पास रक्षा की प्रार्थना के लिये जाते हैं क्योंकि क्रोध से उनकी आध्यात्मिक शक्ति के क्षय होने की सम्भावना थी। तप द्वारा शक्तियों और सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन है।

आत्मोत्थान के लिये चिन्तन-मनन एक उच्चकोटि की साधना है। इसमें दोनों पक्षों की ओर ध्यान रखना आवश्यक होता है। एक तो अपनी भावनाओं में सात्त्विकता लानी चाहिये। नागराज ने जब ऋतध्वज से वर माँगने के लिये कहा तो उसने उत्तर दिया—"यदि आप कुछ देना ही चाहते हैं तो मुझे यह वर दें कि मेरे हृदय से धर्म की भावना कभी दूर न हो।" वास्तविकता के धारण करने को धर्म कहते हैं। कर्त्तव्य पालन ही सच्चा धर्म है। धर्म-भावना तो आत्म-विकास की नींव है। इसका पुष्पित-पल्लवित होना आवश्यक है।

आत्म-दर्शन के लिए शरीर-भावना से ऊपर उठकर आत्म-भावना के क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ता है तभी मोक्ष का—स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त होता है। जब साधक आत्मभावना में दक्ष हो जाता है तो उसका कोई शत्रु मित्र नहीं रह जाता, सबको वह समान दृष्टि से देखता है, किसी से घृणा-द्वेष नहीं करता। वह जगत् के कल्याण के लिए अपनी समस्त शक्तियों के व्यय के लिए तत्पर रहता है। जब मदालसा-पुत्र अलर्क को दत्तात्रेय के सत्संग से आत्मज्ञान हुआ तो उसकी भी यही स्थिति हो गई। वह चारों ओर अपनी आत्मा के ही दर्शन करने लगा। यह आत्म-साधना की उच्च स्थिति है।

इस स्थिति तक पहुँचने के लिए आत्म-संयम की साधना एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है जिसकी प्रेरणा पुराणकार ने दी है। इसे मोक्ष का साधन माना गया है। संयम से शक्तियों की सुरक्षा होती है। शक्ति ही साधना का मूल है।

उसकी सुरक्षा के लिये विरोधी सांसारिक भावनाओं के प्रति सावधान रहना पड़ता है। इनमें अनित्यता, असंग और ममता के त्याग पर ऋषि ने विशेष बल दिया है। अनित्यता की भावना से सांसारिक वस्तुओं के क्षय होने पर दुःख नहीं होता। उनकी स्वाभाविक गतियों को वह भली प्रकार जानता है, उनमें लिप्त नहीं रहता, अनिप्तता की भावना से ओत प्रोत रहता है। ममता के प्रति विशेष रूप से सजग रहने को कहा गया है क्योंकि "ममता मनुष्य के हृदय में एक महान् वृक्ष के रूप में स्थित है। अज्ञान को इसका बीज, अहङ्कार को अंकुर और ममकार को तना कहा गया है। घर द्वार, खेती-बाड़ी को शाखाएँ, धन सम्पत्ति को पत्ते, स्त्री पुत्र को पल्लव, पाप पुण्य को पुष्प, सुख-दुःख को फल, इच्छाओं को भ्रमर की संज्ञा दी गई है। यह आदि काल से खड़ा है और निरन्तर बढ़ रहा है। यह साधक को आत्म विस्मृत करता है। सत्सङ्ग और विद्या के शस्त्रों से इसको काटा जाना सम्भव है तभी मोक्ष मार्ग प्रशस्त होगा।"

प्रलय के विस्तृत वर्णन करने का उद्देश्य यह है कि हम नित्य के मनन चिन्तन और ध्यान में यह अनुभव करें कि इस विश्व की जितनी वस्तुओं से हमारा सम्बन्ध है, वह धीरे धीरे नष्ट होती जा रही हैं। बन्धु-बान्धव साथ छोड़ते जा रहे हैं, पञ्चभौतिक शरीरों का निरन्तर क्षय होता जा रहा है, ये विनाश की ओर तीव्र गति से बढ़ रहे हैं, बड़े-बड़े भवन और प्रासाद ध्वस्त होते जा रहे हैं, असंख्यों जीव-जन्तु अपने प्राण छोड़ रहे हैं, बड़े बड़े राजा-महाराजा और 'धन' कुबेर भी इस प्रवाह में बहे जा रहे हैं। किसी में रुकने की क्षमता नहीं है। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि सारा विश्व जल कर भस्म हो गया है और चारों ओर जल ही जल दिखाई दे रहा है।

यह भावना दृढ़ होने पर साधक झूँठ, छल, कपट, फरेब, धोखेबाजी, घूस, मिलावट आदि धन एकत्रित करने के अनुचित उपायों से विरत हो जाता है और सन्मार्ग पर चलने का प्रयत्न करता है। उसका किसी से लगाव नहीं रहता, अनित्य भावना से वह जगत् में विचरता है।

देवी उपासना का निर्देशन इस पुराण की एक प्रमुख विशेषता है। देवी के आविर्भाव, उद्देश्य, आसुरी शक्तियों से संघर्ष आदि का विस्तृत वर्णन

है। देवता देवी की स्तुति करते हुए कहते हैं। "इस प्राणी जगत् को अपने प्रभाव से विस्तार करने वाली, समस्त देवगणों की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रूप में परिणित हुई हैं एवम् जो समस्त सुदगणों एवम् महामुनियों की पूज्या हैं, अनन्त भगवान्, ब्रह्मा, एवम् महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने में असमर्थ हैं, वह देवी चण्डिका समस्त विश्व का पोषण करने के लिये और उसके अहित व भय के नाश के लिये आकांक्षित हों। समस्त विश्व की घोर विपत्ति को शमन करने वाली आप ही हैं। आप ही बुद्धि स्वरूप हैं, कठिन भव सागर से निस्तार करने वाली अनुपम नौका स्वरूप हैं, कैटभ शत्रु के वध कर्त्ता भगवान् विष्णु के हृदय में निवास करने वाली लक्ष्मी और महादेव के बाँए अङ्क पर प्रतिष्ठित गौरी आप ही हैं। आपका पराक्रम किसी अन्य के साथ तुलना नहीं किया जा सकता। आपका रूप शत्रुओं की भयदाता एवम् अत्यन्त अनुपम है।"

देवी का आविर्भाव देव शक्तियों के संग्रह से हुआ है। जब-जब राष्ट्र पर घोर सङ्कटों के बादल छाए हैं, तब-तब विश्व पुरुष एकत्रित होकर अपने समस्त सामर्थ्यों को राष्ट्र हित के लिये समर्पित कर देते हैं। परन्तु पृथक् प्रयत्नों का कोई आशा-जनक फल नहीं प्रतीत होता। सङ्गठन से ही शक्ति का विकास होता है। जब महिषासुर, मधु, कैटभ, शुंभ निशुंभ आदि शक्तिशाली विरोधियों ने सर उठाया तो देव शक्तियों ने उनसे अलग-अलग जूझने में अपने को असमर्थ पाया। वह सब मिलकर एक हो गए तब असुरों को पराजित होना पड़ा। भगवान् कृष्ण ने भी ग्वालों को कहा था, तुम अपनी-अपनी अंगुली लगा दो, यह गोवर्धन सहज में ही उठ जायगा। यह सङ्गठन शक्ति की ओर ही संकेत था। भगवान् राम ने वानरों की निम्न स्तर की जाति का संगठन करके ही लङ्का पर आक्रमण किया और सिद्धहस्त सेना को परास्त कर दिया। आज हमारा सामाजिक, नैतिक व सांस्कृतिक ढांचा अस्त-व्यस्त हो रहा है। चारों ओर से आसुरी शक्तियां इसे और ध्वस्त करने का प्रयत्न कर रही हैं। अब यह लड़खड़ाती स्थिति में है। इसे स्थिर रखने के लिये आवश्यक है देवी की उपासना की जाए, देव शक्तियों को एकत्रित किया जाए और असुरों के नगरों

व गढ़ों को नष्ट भ्रष्ट किया जाए ताकि देवता सुख की सांस ले सकें। अर्थात् राष्ट्र का नैतिक व सांस्कृतिक विकास हो। ऐसे संगठन बनाये जायें या बने हुओं का सहयोग किया जाए तो सामाजिक रोगों और कुरीतियों के विरुद्ध अभियान चलायें, उन से घोर संघर्ष करें, उन्हें नष्ट करके ही दम लें, ताकि सारे राष्ट्र में नैतिकता की अजस्र धारा प्रवाहित हो।

देवी उपासना का एक उद्देश्य यह भी है कि जब हम देवी को जग-जननी मानते हैं तो समस्त स्त्री जाति को ईश्वर रूप मानना होगा। आज दूषित दृष्टि की कमी नहीं है। कहीं भी इसका अनुभव किया जा सकता है। नारी जाति के प्रति आदर व सम्मान की भावनायें रखना और उन्हें पुत्री, भगिनी और मातृत्व की पवित्र भावना से देखना ही सच्ची देवी उपासना है। इसी की ओर पुराणकार ने इंगित किया है। अश्लीलता, युवतियों का अपहरण, बलात्कार, कामवासना के ताण्डव नृत्य चारों ओर होते दिखाई दे रहे हैं। इनका शमन इस देवी उपासना से ही सम्भव है।

समन्वयात्मक दृष्टिकोण

मार्कण्डेय पुराण के रचयिता एक सांसारिक बन्धनों से मुक्त महर्षि हैं जो आत्मसाक्षात्कार प्राप्त हैं। वह चाहते तो इसमें अपने पक्ष का प्रतिपादन करते और बुद्ध व नारद की तरह सब को ही गृह-त्याग की शिक्षा देकर सन्यासी बना देते। गीता का प्रतिपाद्य विषय तो कर्म-योग है परन्तु हर टीकाकार आचार्य ने अपनी मान्यताओं के अनुसार उसे अपने अनुकूल मोड़ दे दिया। मार्कण्डेय चाहते तो वे भी सुविधापूर्वक कर सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने तो जगत् के कल्याण की पवित्र भावना से इसका निर्माण किया था। जन-साधारण का हित इसी में है कि उनके बौद्धिक-स्तर और पात्रता के अनुसार ही उन्हें शिक्षा व प्रेरणा दी जाय ताकि वह उसे सुविधापूर्वक अपना सकें। शिक्षायें ऐसी व्यावहारिक होनी चाहिये जिन्हें जन-साधारण के लिए असम्भव न कहा जा सके। मार्कण्डेय दूरदर्शी थे। उन्होंने जगत् के प्रवाह का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया और अपने अनुयायियों को इस धारा के अनुकूल ही

हर व्यक्ति को उपदेश दिया। धारा के विरुद्ध चलने में कड़ा सङ्घर्ष करना पड़ता है जो सर्वसाधारण के लिए अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। इसलिये उन्होंने ऐसे मार्ग का निर्देशन किया जिसे अपनाकर हर कोई क्रमिक विकास करता हुआ उच्चतम स्थिति तक पहुँच सकता है।

मार्कण्डेय स्वयं विरक्त थे परन्तु उन्हें गृहस्थ से विद्वेष नहीं था। उन्होंने भौतिक जीवन को हर प्रकार से समुन्नत करने की प्रेरणा दी, सभी साधनों को पूर्णरूप से विकसित करने पर बल दिया परन्तु इन समस्त प्रक्रियाओं का आधार धर्म और कर्तव्य ही माना है। गृहस्थ की उन्होंने प्रशंसा की है क्योंकि इसमें संघर्षमय जीवन की क्रियात्मक शिक्षा मिलती है। सङ्घर्ष से ही सब प्रकार की शक्तियों का विकास होता है जिन्हें आध्यात्मिक भाषा में सिद्धियाँ कहा जाता है। यही जीवन-निर्माण की आधार शिला बनती हैं। प्रगति पथ पर आरूढ़ होने के लिये अवश्यक नियमों का विवेचन किया गया है और सद्गुणों के विकास पर बल दिया गया है। साथ ही साथ अवगुणों के प्रति चेतावनी भी दी गई है, ताकि उपार्जित शक्तियाँ सुरक्षित रह सकें, उनका व्यय होकर वह मानव को दीन-हीन न बनादें।

ऋषि व्यक्तिगत उत्थान के समस्त सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं, परन्तु इस उत्थान को वे अधूरा मानते हैं जब तक कि परहित की उदार भावनायें मनः क्षेत्र में जाग्रत न हो जायें। पूर्णता की प्राप्ति के लिये वह सारे विश्व को अपना परिवार मानने पर बल देते हैं। इस स्थिति तक पहुँचने के लिये महत्वपूर्ण साधनाओं का भी मार्ग दर्शन किया गया है।

मार्कण्डेय ने भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के जीवन का उचित मूल्याङ्कन किया है। वे भौतिकवाद की उपेक्षा नहीं करते, उसे भी आवश्यक समझते हैं परन्तु केवल उन्हीं के लिये जीवन नष्ट करने को अज्ञानता मानते हैं। उनका दृष्टिकोण समन्वयात्मक है। यही जन-साधारण के अनुकूल है। इसीलिये इसे एक उच्चकोटि का पुराण माना जाता है।

देव वाद

का

वैज्ञानिक स्वरूप

भाग-१ विष्णु रहस्य

**

पूर्ण(हिन्दुसंस्कृति के जितने भी विवादस्पद विषय हैं, उनमें देव
वादप्रमुख स्थान रखता है। देव वाद ठोस मनोवैज्ञानिक विचार-
इस पर आधारित है। देव देवियों का स्वरूप निर्धारित करते समय
की ए के व्यवहारिक व क्रमिक विकास पर ध्यान दिया गया है, परन्तु
है का शिक्षित वर्ग इनके बाह्य रूप को देखकर आलोचना करने
होने है। देव देवियों सम्बन्धी समस्त शंकाओं का समाधान करने के
लिए व वाद का वैज्ञानिक स्वरूप चार खण्डों (१. विष्णु रहस्य,
गई त्र रहस्य, ३. ब्रह्मा रहस्य, ४. देव रहस्य) में प्रकाशित किया
को रहा है।

प्रथम खण्ड विष्णु रहस्य छपकर तैयार हो चुका है। इसमें
परन् के स्वरूप, क्षीर सागर में निवास, शेष शय्या, समुद्र मंथन,
भावी रूप, शालग्राम, चक्र, पद्म, गदा, शंख, वैजैयन्ती माला,
वि वत्स, बाण, धनुष, लक्ष्मी से सम्बन्ध, वेद, उपनिषेदों, रामायण,
हाभारत, पुराणों आदि शास्त्रों में प्रतिपादन, उनके विभिन्न अवतारों
रहस्य आदि समस्त विषयों का प्रमाणित व शास्त्रीय विवेचन
आ गया है जिससे विष्णु साधना एक उच्चकोटि की जीवन निर्माण
प्रक्रिया सिद्ध होती है।

पुस्तक अत्यन्त खोज पूर्ण है। इस विषय पर यह सर्व प्रथम
तक है। मूल्य केवल छः रु० मात्र है।